

# ब्रह्मण्ड पुराण

(द्वितीय खण्ड)

(सरल भाषानुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

मुद्रित तथा विक्रीत गोड

सम्पादकः

## डॉ० चमन लाल गौतम

रचयिता—प्राणायाम के असाधारण प्रयोग, ओंकार सिद्धि,  
मंत्र शक्ति से रोग निवारण, विपत्ति निवारण-कामना सिद्धि,  
श्रीमद्भागवत् सप्ताह कथा, योगासन से रोग निवारण,  
तन्त्र विज्ञान, तन्त्र रहस्य, मनुस्मृति, सूर्य पुराण,  
तंत्र महाविज्ञान, कालिका पुराण, मानसागरी आदि।



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of  
hinduism  
server!



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

I creator of  
hinduism  
server!

पुराणों में यही अन्तिम पुराण है। उच्च कोटि के पुराण में इसे महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त है। इसकी प्रशंसा में पुराणकार यहाँ तक चले गये कि उन्होंने इसे वेद के समान घोषित किया। इसका अभिप्राय यह हुआ कि पाठक जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वेद का अध्ययन करता है, उस तरह की विषय सामग्री उसे यहाँ भी प्राप्त हो जाती है और वह जीवन को चतुर्मुखी बना सकता है।

इस पुराण के पठन-पाठन, मनन-चिन्तन और अध्ययन की परम्परा भी प्रशंसनीय है। गृह ने अपने शिष्यों में से इसका ज्ञान अपने योग्यतम शिष्य को उसका पात्र समझ कर दिया ताकि इसकी परम्परा अवाधि गति से निरन्तर चलती रहे। भगवान् प्रजापति ने वसिष्ठ मुनि को, भगवान् वसिष्ठ ऋषि ने परम पुण्यमय अमृत के अदृश इस तत्व ज्ञान को शक्ति के पुत्र अपने पौत्र पाराशर को दिया। प्राचीन काल में भगवान् पाराशर ने इस परम दिव्य ज्ञान को जातुकूर्ण्य ऋषि को, जातुकूर्ण्य ऋषि ने परम संयमी द्वैपायन को पढ़ाया। द्वैपायन ऋषि ने श्रुति के समान इस अद्भुत पुराण को अपने पाँच शिष्यों जैमिनि, सुमन्तु, वैशम्पायन पेलव और लोमहर्षण को पढ़ायां। सूत परम विनाश, धार्मिक और पवित्र थे। अतः उनको यह अद्भुत वृतान्त वाला पुराण पढ़ाया था। ऐसी मान्यता है कि सूतजी ने इस पुराण का श्रवण भगवान् व्यास देव जी से किया था। इन परम ज्ञानी सूत जी ने ही नैमिषारण्य में महात्मा मुनियों को इस पुराण का प्रवचन किया था। वही ज्ञान आज हमारे सामने है।

पुराण का लक्षण है—सर्ग अथर्ति सृष्टि और प्रति सर्ग अथर्ति उस सृष्टि से होने वाली सृष्टि, वंशों का वर्णन, मन्वन्तर अथर्ति मनुओं का कथन। इसका तात्पर्य यह है कि कौन-कौन मनु किस-किस के पश्चात् हुए! वंशों में होने वालों का चरित यह ही पाँचों वातों का होना पुराण का लक्षण है। यह सभी लक्षण इस पुराण में स्पष्टित हैं। इसके लाल पाद हैं—

प्रक्रिया, अनुषंग, उत्पोद्धात और उपसंहार। इन्हीं के द्वारा सम्पूर्ण वर्णन हुआ है।

इस पुराण के नामकरण का रहस्य है कि इसमें समस्त ब्रह्मांड का वर्णन है। भूवन कोष का उल्लेख तो सभी पुराणों में मिलता है परन्तु प्रस्तुत पुराण में सारे विश्व का सांगोपांग वर्णन उपलब्ध होता है। इसमें विश्व के भूगोल का विस्तृत व रोचक विवेचन है। इसमें ऐसी-ऐसी जानकारी मिलती है जिसे देखकर आश्चर्य होता है कि बिना वैज्ञानिक सहयोग के इतनी गहन खोज कैसे की होगी। वैज्ञानिक युग में अभी तक उसकी पुष्टि भी नहीं हो पायी है।

पुराण में स्वायम्भूव मनु के सर्वव भारत आदि सब वर्षों की समस्त नदियों का वर्णन है। फिर सहस्रों द्वीपों के भेदों का सात द्वीपों में ही अन्तर्भूति हैं, जम्बूद्वीप और समुद्र के मण्डल का विस्तार से वर्णन है। पर्वतों का योजना-बद्ध उल्लेख है। जम्बूद्वीप आदि सात समुद्रों के द्वारा घिरे हुए हैं। सप्तद्वीप का प्रमाण सहित वर्णन है। सूर्य, चन्द्र और पृथ्वी को पूर्ण परिमाण बताया गया है। सूर्य की गति का भी उल्लेख है। ग्रहों की गति और परिमाण भी कहे गये हैं। इस तरह से विश्व के भूगोल का महत्व पूर्ण उल्लेख है।

वेद के सम्बन्ध में भी यह जातकारी उल्लेखनीय है कि विभु बुद्धिमान गीर्ण स्कन्ध ने सन्तान के हेतु से एक वेद के चार पाद किये थे। और ईश्वर ने चार प्रकार से किया था। भगवान शिव के अनुग्रह से व्यास देव ने उसी भाँति भेद किया था। उस वेद की शिष्यों और प्रशिष्यों ने वेद की अयुत शाखाएँ की थीं।

इस पुराण के विषय में एक विशेष बात यह है कि ईसवी सन् ५ की शताब्दी में इस पुराण को बाह्यण लोग जाकर द्वीप ले गये थे। वहाँ की प्राचीन “कवि भाषा” में अनुवाद हुआ जो आज भी मिलता है। इससे इस पुराण की प्राचीनता का भी बोध होता है।

पुराणकार ने श्राद्ध के विषय को बड़े ही साङ्गोपाङ्ग रूप में, मुख्य तथा अवान्तर प्रभेदों के साथ दिया है। परशुराम की महिमा तथा गौरव का विवेचन असाधारण ढंग से किया गया है। परशुराम कातंबीय है हय के संघर्ष का बड़े विस्तार के साथ वर्णन है। परशुराम जी पहले महेन्द्र पर्वत (वर्तमान गंजम जिले में पूर्वी घाट की आरम्भिक पहाड़ी) पर तप करते थे। जब वे सारी पृथ्वी को दान में दे चुके तो अपने निवास के लिए उन्हें भूमि की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होंने समुद्र से भूमि की याचना की जो सत्याद्वि तथा अरब सागर के बीच में मकरी भूमि है” यही चित्पावन आह्यणों का मूल स्थल कोंकण है। परशुराम से प्रमुख रूप से सम्बन्धित होने के कारण इस पुराण का उदय-स्थल सत्यादि तथा गोदावरी प्रदेश में होना उपयुक्त दिखाई देता है।

राजाओं के जीवन चरित्र से पुराण का महत्व बढ़ा है। उनके गुण व अवगुण दोनों ही उजागर हुए हैं। उत्तानपाद राजा के पुत्र ध्रुव का चरित्र और संघर्ष से सफलता प्राप्त करने और हड़ सङ्कूल्प से सिद्धि प्राप्त करने का प्रतीक है। चाक्षुष मनु के सर्ग का कथन भी उपयोगी है। राजा यदु और राजषि देव का वर्णन भी रोचक बन पड़ा है। राजा कंस की कथा से स्पष्ट है कि जब धर्म की हानि से अत्याचार चरम सीमा तक पहुँच जाते हैं तो उनसे निवृत्ति के लिए भगवान अवतरित होते हैं। राजा शान्तनु के पराक्रम के विवरण के साथ भविष्य में होने वाले राजाओं के उपसंहार का भी कथन दिया गया है जो एक आश्चर्य है। राजा सगर और राजा भगीरथ द्वारा गङ्गा का स्वर्गलोक से पृथ्वी लोक पर अवतरण घोर श्रम द्वारा असम्भव को सम्भव बनाने की लोक प्रिय गाथा है।

तपस्वी ऋषियों की गौरव गाथाएं भी कम अनुकरणीय नहीं हैं। कश्यप, पुलस्त्य, अत्रि, पराशर की कथाएँ रोचक हैं। भार्गव चरित्र विस्तार से वर्णित है। महर्षि वासुदेव ज्ञान के और महर्षि विश्वामित्र सृजन के प्रतीक होते हैं।

चारों युगों के विस्तृत वर्णन से आश्चर्य तो होता ही है, साथ ही शृङ्खियों की प्रतिभा का भी आभास होता है। रीरव आदि नरकों के वर्णन से सभी प्राणियों के पापों के परिणामों का निर्णय किया गया है। इससे पाठक को अपने कर्मों की समीक्षा करके जीवन मार्ग को नये ढङ्ग से निर्धारित करने की प्रेरणा मिलती है।

पुराण को साहित्य की दृष्टि से भी, उत्कृष्ट माना जाता है क्योंकि निबन्ध ग्रन्थों में इसके श्लोक दिखाई देते हैं। मिताक्षरा अपरार्क, स्मृतिचन्द्रिका, कल्पतरु में इसके श्लोक उद्घृत किये गये हैं। इससे लगता है साहित्यकारों की दृष्टि में यह पुराण उच्च महत्व का है। कालिदास की रचनाओं का और उनकी वैदर्भी रीति का प्रभाव भी इस पुराण के विवेचन पर है। इतिहास कारों का मत है कि पुराण की रचना गुप्तोत्तर युग में अर्थात् ६०० ईस्वी में मानना उचित है।

—चमनलाल गौतम

# ब्रह्माण्ड पुराण

## (द्वितीय खण्ड)

॥ असमंजस का त्याग ॥

सगर उवाच—

कुण्ठलं मम सर्वत्र महर्षे नात्र संशयः ।

यस्य मे त्वमनुध्याता शमं भार्गवसत्तमः ॥१

यस्तथा शिक्षितः पूर्वमस्त्रे शस्त्रे च सांप्रतम् ।

सोऽहं कथमशक्तः स्यां सकलारिविनिग्रहे ॥२

त्वं मे गृहुः सुहृदैवं बंधुमित्रं च केवलम् ।

न ह्यन्यमभिजानामि त्वामृते पितरं च मे ॥३

त्वयोपदिष्टेनास्त्रेण सकला भूभृतो मया ।

विजिता यदनुस्मृत्या शक्तिः सा तपसस्तव ॥४

तपसा त्वं जगत्सर्वं पुनासि परिपासी च ।

स्वष्टुं संहत्तं मपि च शक्नोत्येव न संशयः ॥५

महाननन्यसामान्यप्रभावस्तपसश्च ते ।

इह तस्येकदेशोऽपि हृश्यते विस्मयप्रदः ॥६

पश्य सिंहासने बाल्यादुपेत्य मृगपोतकः ।

पिबत्यन्भः शनैर्ब्रह्मन्निः शंकं ते तपोवने ॥७

राजा सगर ने कहा—हे महर्षे ! मेरे यहाँ सर्वत्र कुशल है—इसमें तो कुछ भी संशय नहीं है जिस मेरे विषय में भार्गव श्रेष्ठ आप शमका अनुध्यान करने वाले विद्यमान हैं । जिसको पूर्व में ही शस्त्रास्त्रों के प्रयोग करने की भजी भाँति विश्वा दीक्षा दे ली गयी है तरह मैं इस जगत् समस्त

शत्रुओं के विनिग्रह करने में कैसे असमर्थ हो सकता है । १-२। आप तो मेरे गुह्यदेव हैं— सुहृत्-देव-वन्धु और मित्र हैं । केवल आप ही मेरे सब कुछ हैं । मैं तो आपके अतिरिक्त अन्य किसी को भी मेरा पिता नहीं जानता हूँ । ३। आपके द्वारा उपदेश किये गये अस्त्र से ही मैंने सब नृपों पर विजय प्राप्त की है जिनके स्मरण से ही पूर्ण विजय मेरी हुई है यह आपके ही तप की शक्ति है । यहाँ पर उसका एक देश भी विस्मय देने वाला दिखलाई देता है । ४-६। देखिये, मृग का शिशु बचपन से ही सिंहासन पर समीप में आकर हे ब्रह्मन् ! धीरे-धीरे जल पी रहा है और वह आपके इस तपोवन में बिल्कुल ही निःशङ्का अर्थात् भय से रहित है । ७।

धयत्यत्रातिविस्तारात् कृशाऽपि हरिणीस्तनम् ।

करोति मृगश्चुंगाश्च गंडकंडूयनं रुहः ॥८॥

नवप्रसूतां हरिणीं हत्वा वृत्त्यै वनांतरे ।

व्याघ्री त्वत्तसावासे संव पुष्णाति तच्छिशून् ॥९॥

गजं द्रुतमनुद्रुत्य सिंहो यस्मादिदं वनम् ।

प्रविष्टोऽनुसरंतौ त्वदभयादेकत्र तिष्ठतः ॥१०॥

नकुलस्त्वाखुमार्जिरमयूरणशपन्नगाः ।

वृक्षसूकरेणादूर्लशरभक्षप्लवंगमाः ॥११॥

शृगाला गवया गावो हरिणा महिषास्तथा ।

वनेऽत्र सहजं वैरं हित्वा मैत्रीमुपागताः ॥१२॥

एवंविधा तपः शक्तिलोकविस्मयदायिनो ।

न क्वापि दृश्यते ब्रह्मस्त्वामृते भूवि दुर्लभा ॥१३॥

अहं तु त्वत्प्रसादेन विजित्य वसुधामिमाम् ।

रिपुभिः सह विप्रेषं स्वराज्यं समुपागतः ॥१४॥

वह अत्यन्त दुबली हरिणी भी अत्यविक विश्राम के साथ अपने स्तन को पिला रही है । हरिण मृग छोना के गण्डों को भङ्ग के अग्रभाग से खुजला रहा है । ८। नव प्रसूता अर्थात् हाल ही में प्रसव करने वाली हरिणी को मारकर वृत्ति के लिए दूसरे बन में वही व्याघ्री आप के इस तपस्या के आश्रम में उसके शिशुओं के पोषण कर रही है । ९। एक सिंह एक हाथी के

पीछे आक्रमण करके जब यहाँ पर आ गया है तो प्रवेश करते ही अनुसरण करते हुए वे दोनों सिंह और गज आपके ही भय से एक ही स्थान में स्थित हो रहे हैं । १०। जो स्वभाव से ही आपस में शत्रु होते हैं वे सभी नकुल-मूषक-मार्जर-मधूर-शश-सपं-चृक-सूकर-शार्दूल—शरभ—प्लवङ्गम—शुगाल—गवय—गौ हरिण और महिष ये सभी एक-एक के शत्रु होते हुए भी इस बन में अपने स्वाभाविक वेर को भूलकर परस्पर मैत्री के भाव को प्राप्त हो गये हैं । ११-१२। इस प्रकार की यह आपकी ही शक्ति है जो लोगों को बड़ा ही विस्मय देने वाली है । हे ब्रह्मन् ! आपके बिना लोक में इस भूमि पर ऐसी दुर्लभ शक्ति अन्यथ कहीं पर भी दिखलाई नहीं देती है । १३। और मैं तो आपके ही प्रसाद से इस सम्पूर्ण वसुधा को जीतकर सब रिपुओं को छवस्त करके अपने राज्य में प्राप्त हुआ हूँ । १४।

वश्यामात्यस्त्रवर्गेऽपि यथायोग्यकृतादरः ।

त्वयोपदिष्टमार्गेण सम्यग्राज्यमपालयम् ॥ १५ ॥

एवं प्रवर्त्तमानस्य मम राज्येऽवतिष्ठतः ।

भवद्विक्षा संजाता सापेक्षा भृगुपुंगव ॥ १६ ॥

किं त्वच्च मयि पर्याप्तमनपत्यतर्यव मे ।

पितृपिडप्रदानेन सह संरक्षणं भ्रुवः ॥ १७ ॥

तदिदं दुखमत्यर्थमनिवार्यं मनोगतम् ।

नान्योऽपहर्ता लोकेऽस्मिन् ममेति त्वामुपागतः ॥ १८ ॥

इत्युक्तः सगरेणाथ स्थित्वा सोऽतर्मनाः क्षणम् ।

उवाच भगवानोर्बः सनिदेशमिदं वचः ॥ १९ ॥

नियम्य सह भायभ्यां किञ्चित्कालमिहावस ।

अवाप्स्यति ततोऽभीष्टं भवान्नात्र विचारणा ॥ २० ॥

स च तत्रावस्त्रप्रीतस्तच्छृष्टापरायणः ।

पत्नीभ्यां सह धर्मात्मा भक्तियुक्तशिचरं तदा ॥ २१ ॥

मेरे सभी अभात्य वश्य हैं और तीनों वगों में भी मैं यथायोग्य आदर प्राप्त करने वाला हूँ । आपके ही द्वारा जो उपदेश प्राप्त किया है उसी मार्ग से मैंने अच्छी तरह से राज्य का परिपालन किया है । १५। इसी रीति से मैं

प्रवृत्त हो रहा है और अपने राज्य पर स्थित है किन्तु हे भृगु श्रेष्ठ ! मेरी इच्छा आपके दर्शन प्राप्त करने की हुई थी जो कि कुछ अपेक्षा से समन्वित है । १६। आज मुझमें आपके प्रसाद से सभी कुछ पर्याप्त प्राप्त हुआ है किन्तु मेरी कोई सन्तति नहीं है । इसी कारण से मुझे इस भूमि का संरक्षण करना और पितृगण को पिण्डों का देना दुष्कर सा हो रहा है । १७। यही मुझे बड़ा भारी घोर दुःख है जो मेरे मन में बैठा हुआ है और निवारण के योग्य नहीं है । इस लोक में मेरे इस दुःख का अपहरण करने वाला आपको छोड़कर अन्य कोई भी नहीं है । अतएव मैं आपकी सन्निधि में प्राप्त हुआ हूँ । १८। इस प्रकार से जब सगर तृप्ति के द्वारा उस मुनि से कहा गया था तो वह मुनि एक अण तक मन ही मन में सोचते हुए स्थित रहे थे और फिर और्बं भगवान् ने निदेश पूर्वक यह वचन राजा से कहा था । १९। आप नियमित रहकर अपनी दोनों पत्नियों के साथ कुछ समय तक यहाँ पर निवास करें । फिर आपका जो भी अभीप्सित है उसको आप अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । २०। फिर वह राजा भी सेवा में तत्पर होकर वहाँ पर निवास करने लगा था । उसको परम प्रसन्नता हुई थी । उस समय में दोनों पत्नियों के साथ धर्म में युक्त तथा भक्तिभाव से समन्वित होकर ही चिरकाल पर्यन्त वहाँ निवास किया था । २१।

राजपत्न्यौ च ते तस्य सर्वकालमतंद्रिते ।

मुनेरतनुतां प्रीतिं विनयाचारभक्तिभिः ॥२२॥

भक्तच्या शुश्रूषया चैव तयोस्तुष्टो महामुनिः ।

राजपत्न्यौ समाहूय इदं वचनमब्रवीत् ॥२३॥

भवत्यौ वरमस्मत्तो ब्रियतां काममीप्सितम् ।

दास्यामि तं न संदेहो यद्यपि स्यात्सुदुल्लभम् ॥२४॥

ततः प्रणम्य शिरसा तेऽप्युभे तं महामुनिम् ।

ऊचतुर्भगवान्पुत्रान्कामयावेति सादरम् ॥२५॥

ततस्ते भगवानाह भवतीभ्यां मया पुनः ।

राजश्च प्रियकामेन वरो दत्तोऽयमीप्सितः ॥२६॥

पुत्रवत्यौ महाभागे भवत्यौ मत्प्रसादतः ।

भवेतां ध्रुवमन्यच्च श्रूयतां वचनं मम ॥२७

पुत्रो भविष्यत्येकस्यामेकः सोऽनतिधार्मिकः ।

तथापि तस्य कल्पांतं संभूतिश्च भविष्यति ॥२८

उन दोनों राजा की पत्नियों ने सदा ही अतन्द्रित होकर उस मुनि की विनय—आचार और भक्ति से प्रीति को बढ़ा दिया था । २२। उस भक्ति और शुश्रूषा से मुनिवर बहुत ही अधिक सन्तुष्ट हो गये थे और फिर उन्होंने दोनों राजा की पत्नियों को अपने समीप में बुलाकर उन से यह वचन कहा था—आप दोनों ही हमसे किसी भी वरदान का वरण करो जो भी तुम्हारी इच्छा हो और तुमको अभीप्सित हो । मैं उसी को तुम्हारे लिए दे दूँगा—इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है यद्यपि वह वरदान बहुत दुर्लभ भी क्यों न होवे । २३-२४। इसके अनन्तर उन दोनों ने मस्तक टेक कर प्रणाम किया था और उन महामुनि से कहा था—हे भगवान् ! हम दोनों ही आदर के साथ पुत्रों की कामना करती हैं । २५। इसके अनन्तर और भगवान् ने कहा—आप दोनों के लिये राजा के प्रिय की कामना वाले मैंने यह अभीष्ट वरदान दे दिया है । २६। हे महाभाग वालियो ! मेरे प्रसाद से तुम दोनों ही पुत्रों वाली होओगी और अन्य भी एक वचन परम ध्रुव है, उसका भी श्रवण कीजिए । २७। एक पत्नी में एक ही पुत्र जन्म ग्रहण करेगा किन्तु वह अति धार्मिक नहीं होगा तो भी कल्प के अन्त में उनकी संभूति होगी । २८।

षष्ठिः पुत्रसहस्राणामपरस्यां च जायते ।

अकृताथश्च ते सर्वे विनक्षयैत्यचिरादिव ॥२९

एवंविधगुणोपेषौ वरी दत्ती मया युवाम् ।

अभीप्सितं तु यद्यस्याः स्वेच्छया तत्प्रकीर्त्यताम् ॥३०

एवमृक्ते तु मुनिना वैदर्घ्यन्वयवर्ढनम् ।

वरयामास तनयं पुत्रानन्यांस्तथा परा ॥३१

इति दत्त्वा वरं राजे सगराय महामुनिः ।

सभायमिनुमान्यैनं विसर्जं पुरीं प्रति ॥३२

मुनिना समनुज्ञातः कृतकृत्यो महीपतिः ।

रामानन्द लेखन समियः प्राप्तौ पुरीम् ॥३३

स प्रविश्य पुरी रम्या हृष्टपृष्ठजनावृताम् ।

आनन्दितः पौरजनं रेमे परमया मुदा ॥३४

एतस्मिन्नेव काले तु राजपत्न्यावुभे नृप ।

राजे प्रावोचतां गर्भं मुदा परमया युते ॥३५

और दूसरी रानी के गर्भ से साठ महसु पुत्र समुत्पन्न होंगे । और वे भी सब अकृतार्थ अर्थात् असफल ही होकर थोड़े ही समय में बिनष्ट हो जायगे । २६। इस प्रकार के गुणों से समन्वित दो वरदान तुम दोनों को दे दिये हैं । इन दोनों में जिसका भी आप दोनों में जो भी अमीष्ट हो उसको मुझे बतला दो । ३०। महामुनीन्द्र के द्वारा जब उन दोनों से इस तरह से कहा गया था जोकि वैदर्भ्य वंश का वर्धन करने वाला था तो वैदर्भी ने तो एक पुत्र प्राप्त करने का वरदान चाहा था और दूसरी ने अन्य साठ हजार पुत्रों के नाम ग्रहण करने के वरदान की याचना की थी । ३१। उस महामुनि ने इस प्रकार से राजा सगर को वरदान देकर भार्याओं के सहित उसको आज्ञा देकर अपनी नगरी की आर विदा कर दिया था । ३२। मुनि के द्वारा आज्ञा प्राप्त करके राजा कृतकृत्य हो गया था और रथ पर समारूढ़ होकर अपनी प्रियाओं के साथ बड़े वेग से पुरी की ओर चला गया था । ३३। उस नृप ने अपनी नगरी में प्रवेश किया था, जो नगरी परम सुरम्य थी और हृष्ट-पृष्ठ जनों से धिरो हुई थी । पुरवासी जनों के साथ हर्षोल्लास से युक्त होकर आनन्दित होते हुए प्रेम से रमण करने लगा था । ३४। इसी समय में हे नृप ! उन दोनों राजा की पत्नियों ने परमाधिक प्रीति संयुत होकर राजा की सेवा में अपने-अपने गर्भों के धारण करने की सूचना दी थी । ३५।

ववृधे च तयोर्गर्भः शुक्लपक्षे यथोदुराट् ।

सह संतोषसंपत्त्या पित्रोः पौरजनस्य च ॥३६

संपूर्णे तु ततः काले मुहूर्ते केशिनी शुभे ।

असुयताग्निगर्भाभं कुमारममितद्युतिम् ॥३७

जातकर्मादिकं तस्य कृत्वा चैव यथाविधि ।

असमंजस इत्येव नाम तस्याकरोन्नृपः ॥३८

सुमतिश्चापि तत्काले गर्भलिलावुमसूयत ।

सप्रसूतं तु तं त्यक्तुं हृष्ट्वा राजाऽकरोन्मनः ॥३९

तज्जात्वा भगवानीर्वस्त्रागच्छद्यदृच्छया ।

सम्यक् संभावितो राजा तमुवाच त्वरान्वितः ॥४०

गर्भलाबुरयं राजन्न त्यक्तुं भवतार्हति ।

पुत्राणां षष्ठिसाहस्रबीजभूतो यतस्तव ॥४१

तस्मात्तसकलीकृत्य धृतकुंभेषु यत्नतः ।

निःश्रिष्ट्य सपिधानेषु रक्षणीयं पृथक्मृथक् ॥४२

उन दोनों के गर्भ शुक्ल पक्ष में चन्द्रमा के ही समान बढ़ गये थे । इससे माता-पिता को और पुरवासियों को भी बहुत अधिक सन्तोष हुआ था । ३६। इसके अनन्तर जब गर्भ का पूरा समय सम्प्राप्त हो गया तो परम शुभ मुहूर्त में कोशिनी ने अपरिमित द्युति से सम्पन्न वर्गिन के गर्भ की आभा वाले कुमार को जन्म ग्रहण कराया था । ३७। उस कुमार का जातकर्म आदि संस्कार करके उसका विधि के साथ असमञ्जस नाम नृप ने रक्खा था । ३८। उसी समय में सुमति रानी ने भी एक गर्भ से अलावु को प्रसूत किया था । उसको प्रसूत हुआ देखकर उसका त्याग कर देने का विचार राजा के मन में हुआ था । ३९। किन्तु जब यह ज्ञात हुआ था कि राजा उस अलावु का त्याग करना चाहता है तो भगवान् और्व मुनि यदृच्छा से ही वहाँ पर समागत हो गये थे । राजा सगर ने उनका भली भाँति स्वागत-संस्कार किया था । तब बहुत ही शीघ्रता से युक्त होकर मुनि ने राजा से कहा— ४०। हे राजव् ! आप इस गर्भ से निःसृत अलावु का त्याग करने के योग्य नहीं हैं क्योंकि यह आपके साठ सहस्र पुत्रों का बीजभूत है । ४१। इस कारण से इन सबको एकत्रित करके धृत के कलशों में यत्न पूर्वक ऊपर ढकना लगाकर अलग-२ इनको रक्षा करनी चाहिए । ४२।

सम्यगेव कृते राजन्भवतो मत्प्रसादतः ।

यथोक्तसंख्या पुत्राणां भविष्यति न संशयः ॥४३

काले पूर्णे ततः कुम्भान्वित्वा निर्याति ते पृथक् ।

एवं ते षष्ठिसाहस्रं पुत्राणां जायते नृप ॥४४

इत्युक्त्वा भगवानीर्वस्त्रवैवातरथाद्विभुः ।

राजा च तत्था चक्रे यथौर्वेण समीरितम् ॥४५

ततः संवत्सरे पूर्णे धृतकुंभात्कमेण ते ।

भित्वा भित्वा पुनर्जिः सहसैवानुवासरम् ॥४६

एवं क्रमेण संजातासद्दनयास्ते महीपने ।

ववृधुः संधशो राजन्धष्टिसाहस्रसंख्या ॥४७

अपृथन्धर्मचरणा महावलपराक्रमाः ।

वभूवुस्ते दुराधर्षाः कूरात्मानो विशेषतः ॥४८

स नातिप्रीतिमांस्तेषु राजा भतिमतां वरः ।

केशिनीतनयं त्वेकं बहुमान सुतं प्रियम् ॥४९

हे राजन् ! इसी विधि से कार्य किये जाने पर मेरे पूर्ण प्रसाद से आपके पुत्रों की जो भी बतायी गयी है वही संख्या उत्पन्न होगी—इसमें लेश मात्र भी सशय नहीं है ।४३। काल जब भी पूर्ण हो जायगा तभी वे सब इन कुम्भों को तोड़कर पृथक्-२ निकल आयेंगे । हे नृप ! इस तरह से आपके साठ सहस्र पुत्र जन्म ग्रहण करेंगे ।४४। इतना कह कर भगवान् और वहाँ पर ही अन्तर्हित हो गये क्योंकि वे तो विभु थे और राजा सगर ने वैसा ही सब किया था जैसा भी और मुनि ने उनसे कहा था ।४५। इसके पश्चात् जब एक वर्ष पूर्ण हो गया तो वे वृत्त कुम्भों से क्रम से उन्हें फोड़-तोड़ करके तुरन्त ही प्रतिदिन जन्म लेने लग गये थे ।४६। हे महोपते ! इसी तरह से वे सब क्रम से पुत्र समुत्पन्न हुए थे । हे राजन् ! समुदाय में ये उत्पन्न होकर साठ सहस्र संख्या में बढ़ गये थे ।४७। उन सबके धर्मचिरण समान ही थे और वे सब महान बल पराक्रम से समन्वित थे । वे सभी विशेष रूप से कूर आत्मा बाले थे और सब दुराधर्ष थे अर्थात् उनको दबा देना बड़ा ही कठिन था, ऐसे तेजस्वी थे ।४८। राजा सगर भी मतिमानों में परम श्रेष्ठ था और इन साठ सहस्र पुत्रों पर उसकी अधिक प्रीति नहीं थी । केशिनी का जो एक पुत्र था उसका वह राजा विशेष मान किया करता था और वह उसको प्रिय भी लगता था ।४९।

विवाहं विधिवन्तस्मै कारयामास पार्थिकः ।

स चाप्यानन्दयामास स्वगुणः सुहृदोऽखिलान् ॥५०

एवं प्रवर्तमानस्य केशिनीतनयस्य तु ।

अजायत सुतः श्रीमानंशुमानिति विश्रुतः ॥५१

स बाल्य एव मतिमानुदारैः स्वगुणभूशम् ।

प्रीणयामास सुहृदः स्वपितामहमेव च ॥५२

एतस्मिन्ननंतरे राजस्तस्य पुत्रोऽसमंजसः ।

आविष्टो नष्टचेष्टोऽभूत्स पिशाचेन केनचित् ॥५३

स तु कश्चिदभूद्धैश्यः पूर्वजन्ममि धर्मवित् ।

केस्यचिद्विषये राजः प्रभूतधनधान्यवान् ॥५४

स कदाचिदरथ्येषु विचरन्तिधिमुत्तमम् ।

हृष्टवा ग्रहीतुमारेभे वणिग्लोभपरिप्लुतः ॥५५

ततस्तद्रक्षकोऽभ्येत्य पिशाचः प्राह तं तदा ।

क्षुधितोऽहं चिरादस्मिन्नवसन्निधिपालकः ॥५६

राजा सगर ने उस असमंजस पुत्र का विवाह भी विधिपूर्वक करा दिया था और उसने भी अपने सदगुणों के द्वारा सभी सुहृदों को आनन्दित किया था ।५०। इस रीति से रहने वाले उस केशिनी के पुत्र के एक सुत ने भी जन्म ले लिया था जो अशुमान नाम से प्रख्यात हुआ था ।५१। वह बचपन की अवस्था में ही बड़ा मतिमान् था और अपने उदार गुणों से उसमें सभी सुहृदों को तथा अपने पितामह राजा सगर को बहुत ही अधिक प्रीणित किया था ।५२। इसी बीच में ऐसा हुआ था कि उस राजा का अशुमान पुत्र असमंजस किसी पिशाच के द्वारा समाविष्ट हो गया था जिस कारण से उसकी चेष्टा एकदम नष्ट हो गयी थी ।५३। वह पूर्वजन्म में कोई धर्म का ज्ञाता वैश्य हुआ था । वह किसी राजा के देश में हुआ था या और बहुत धन-धान्य की समृद्धि से युक्त था ।५४। वह किसी समय में अरण्यों में विचरण कर रहा था और वहाँ पर उसने एक स्थल में उत्तम निधि देखी थी । वह वैश्य भी लोभ से मुक्त होकर उसके लेने का उपक्रम करने लगा था ।५५। उस निधि का रक्षक एक पिशाच था । वह उसी समय में वहाँ पर आगया था और उससे बोला । मैं बहुत समय से भूखा हूँ और यहाँ पर निवास करता हुआ इस निधि की रक्षा कर रहा हूँ ।५६।

तस्मात्तपरिहाराय मम दत्वा गवामिषम् ।

राजा इति सप्तसंख्या द्वितीये तमाज्ज्ञान लोक लोक लोक लोक लोक लोक लोक

स तस्मै तत्परिश्रुत्य दास्यामीति गवामिषम् ।

आदत्त च निधि तं तु पिशाचेनानुमोदितः ॥५५

न प्रादाच्च ततो मौहच्यात्तस्मै यत्तप्रतिश्रुतम् ।

प्रतिश्रुताप्रदानोत्थरोषं न अद्धे नूप ॥५६

तमेवं सुचिरं कालं प्रतीक्ष्याशनकांक्षया ।

अपनीतधनः सोऽपि ममार व्यथितः क्षुधा ॥६०

वैश्योऽपि बालो मरण संप्राप्य सगरस्य तु ।

बभूव काले केशिन्यां तनयोऽन्वयवद्धनः ॥६१

अशर्वारः पिशाचेऽपि पूर्ववैरमनुस्मरन् ।

वायुभूतोऽविशद्देहे राजपुत्रस्य भूपते ॥६२

तेनाविष्टस्ततः सोऽपि क्रूरचित्तोऽभवत्तदा ।

मतिविष्टशमासाद्य मुहुस्तेन बलात्कृतः ॥६३

इसलिए मेरी क्षुधा को दूर करने के बास्ते तुम मुझको गो मांस लाकर दो और तभी फिर मेरी आज्ञा से इस महान् निधि का ग्रहण करो । ५७। उस वैश्य ने उसके सामने प्रतिज्ञा की थी कि मैं आपको गौथों का मांस लाकर दे दूँगा । फिर पिशाच की अनुमति से उस निधि का ग्रहण कर लिया था । ५८। और मूर्खता से उसको खाने के लिए वह वस्तु नहीं दी थी जिसके देने की उससे प्रतिज्ञा की थी । हे नूप ! प्रतिज्ञा करके भी गो मांस न देने से उसका बड़ा क्रोध हो गया था । जिसको वह सहन नहीं कर सका था । ५९। उस पिशाच ने बहुत लम्बे समय तक खाने की इच्छा से प्रतीक्षा की थी किन्तु जब वह वैश्य न पहुँचा तो उस पिशाच ने क्षुधा से व्यथित होकर उसका समस्त धन छीन लिया और उसको मार भी डाला था । ६०। वह वैश्य भी मृत्युगत होकर फिर सगर के यहाँ बालक होकर जन्मधारी हुआ था । जब समय प्राप्त हुआ था तो वह केशिनी का पुत्र वंश को बृद्धि करने वाला हुआ था । ६१। वह पिशाच भी शरीरधारी तो था नहीं, हे भूपते ! उसने अपने पूर्व के होने वाले वैर का अनुस्मरण करके वायुभूत होकर उसी राजा सगर के पुत्र के पुत्र के देह में प्रवेश कर लिया था । ६२। उसी के द्वारा आविष्ट होकर वह भी फिर बड़ा भारी क्रूर हाचित्त बोला

गया था। मति का विअंश हो गया था और वह बार-२ बल पूर्वक असदाचरण करने लग गया था। ६३।

असमंजसत्वं नगरे चक्रे सोऽपि नृशंसवत् ।

बालांश्च यूनः स्थविरान्योषितश्च सदा खलः ॥६४

हत्वा हत्वा प्रचिक्षेप सरथ्वामतिनिर्दयः ।

ततः पौरजनाः सर्वे दृष्ट्वा तस्य कदर्यताम् ॥६५

बहुजो निकृतास्तेन गत्वा राजे व्यजिज्ञपन् ।

राजा च तदुपशुत्य तमाहृय प्रयत्नतः ॥६६

वारयामास वहृधा दुःखेन महतान्वितः ।

बहुजः प्रतिषिद्धोऽपि पित्रा तेन महात्मना ॥६७

जले तप्ते च संतप्ताः सं बभूवर्यथा यवाः ।

नाशकत्तं यदा पापाद्विनिवर्त्तयितुं नृपः ॥६८

लोकापवादभीरुत्वाद्विषयानत्यजत्तदा ॥६९

उसने भी फिर तो अपने नगर में एक नृशंस के ही समान असम-करदी थी। वह खल ऐसा दुष्ट हो गया था कि छोटे बालकों को—युवकों को—बृद्धों को और स्त्रियों को सदा ही पकड़ लिया करता था। ६४। सबको मार-मार कर वह अत्यन्त निर्दंशता से सरयू नदी में फैकं दिया करता था। फिर तो सभी नगर निवासियों ने उसकी उस नीचता को देखा था। वह सभी का निरादर करके डॉट देता था। ऐसा जब बहुत बार हुआ जो उन सबने जाकर राजा से कहा था और राजा ने अब यह सुना तो उसको प्रयत्न पूर्वक अपने समीप में बुलाया था। राजा ने कितनी ही बार व त अधिक दुःख से संयुत होकर उसको इस महान नीच कुकमं से रोका था। बहुत बार उसको रोका भी गया था तो भी महात्मा पिता का कथन उसने नहीं माना था। ६५-६७। जिस तरह से संतप्त जल में यव हो जाते हैं उसी प्रकार की दशा राजा की हो गयी थी। जब राजा में उस महान पापकर्म से हटाने की शक्ति न रही थी तो बहुत ही बह दुःखित हो गया था। लोक में बड़ा भारी अपवाद होगा कि राजा ही का पुत्र ऐसा अन्यथ करता है तो अब न्याय कहाँ होगा—इससे डरकर उसने उस समय में विषयों का त्याग किया था। ६८-६९।

## अश्वमोचन वर्णन

जैमिनिरुद्धाच—

त्यक्त् वा पुत्रं स धर्मात्मा सगरः प्रेम तद्गतम् ।

धर्मशीले तदा वाले चकारांशुमति प्रभुः ॥१॥

एतस्मिन्नेव काले तु सुमत्यास्तनया नृप ।

ब्रह्मूष्मुः संघर्षः सर्वे परस्परमनुव्रताः ॥२॥

वज्रसंहनननाः कूरा निर्देशा निरपत्रपाः ।

अधर्मशीला नितरामेकधर्मण एव च ॥३॥

एककार्याभिनिरताः क्रोधना मूढचेतसः ।

अधृत्याः सर्वभूतानां जनोपद्रवकारिणः ॥४॥

विनयाचारसन्मार्गनिरपेक्षाः समंततः ।

ब्राह्मिरे जगत्सर्वमसुरा इव कामतः ॥५॥

विद्वस्तयज्ञसन्मार्गं भुवनं तैरुपद्रुतम् ।

निस्वाध्यायवषट्कारं बभूवात् विशेषतः ॥६॥

विद्वस्यमाने सुभृशं सागरेवं रद्धिपिते ।

प्रक्षोभं परमं जगमुद्देवासुरमहोरगाः ॥७॥

जैमिनी मुनि ने कहा—उस परम धर्मात्मा नृप सगर ने अपने पुत्र अस-  
मञ्जस का त्याग कर दिया था और उसमें जो उसका प्रेम था उसको तब  
तब धर्मशील वालक अंशुमान में उस प्रभु ने किया था । १। इसी काल में  
सुमति नाम वाली रानी के जो साठ हजार पुत्र थे हैं नृप । वे सब समुद्राय  
में समुत्पन्न होकर परस्पर में अनुव्रत होकर बढ़कर बढ़े हो गये थे । २। ये  
सभी एक ही धर्म वाले थे तथा वज्र के समान सुहृश शरीरों वाले बहुत ही  
क्रूर-अत्यन्त निर्देशी और निलंज थे और निरन्तर अधर्म शील थे और  
धर्म को सर्वथा जानते ही नहीं थे । ३। ये सब एक ही कार्य में निरत रहते  
थे—बहुत अधिक क्रोधी और मूढ़ चित्तों वाले थे । ये सब समस्त प्राणियों  
को अधृत्याः थे और जनों के लिए अत्यधिक पद्रवों के करने वाले थे । ४।  
ये सभी और से विनय पूर्वक आचरण और सनूमार्ग की अपेक्षा नहीं रखते  
थे । इन्होंने असुरों के ही समान स्वेच्छा से सम्पूर्ण जगत को बाधा पहुँचाई

थी ।५। उन्होंने यज्ञ के सन्मार्ग को विघ्वस्त करके भुवन को उपद्रव से युक्त कर दिया था और इस जगत् को वेदाध्ययन और वषट्कार से रहित करके विशेष रूप से आकृत्ति कर दिया था ।६। उस समय में वरदान से बड़े हुए दर्पण वाले सगर के पुत्रों के द्वारा बहुत अधिक विघ्वस्तमान इस जगत् के ही जाने पर तमस्त देव-असुर और महोरग अत्यधिक झोभ को प्राप्त हो गये थे ।७।

धरा सा सागराकांता न चलापि तदाचला ।

तपः समाधिभंगश्च प्रबभूव तपस्त्विनाम् ॥८॥

हृव्यकव्यपरिभ्रष्टास्त्रिदणाः पितृभिः सह ।

दुःखेन महताविष्ट विरिच्छिभवनं ययुः ॥९॥

तत्र गत्वा यथान्यायं देवाः शवंपुरोगमाः ।

शशंसुः सकलं तस्मै सागराणां विचेष्टिम् ॥१०॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः ।

क्षणमंतर्मना भूत्वा जगाद सुरसत्तमः ॥११॥

देवाः शृणुत भद्रं वो वाणीमवहिता मम ।

विनंक्षयंत्यचिरेणैव सागरा नात्र संशयः ॥१२॥

कालं कंचित्प्रतीक्षाद्वं तेन सर्वं नियम्यते ।

निमित्तमात्रमन्यत् स एव सकलेशिता ॥१३॥

तस्माद्युष्मद्वितार्थीय यद्वक्ष्यामि सुरोत्तमाः ।

सर्वेर्भवद्विभिरधुना तत्कर्त्तव्यमतंद्रितैः ॥१४॥

यह वसुन्धरा अचला है तथापि उस समय में सगर के पुत्रों के द्वारा आक्रान्त होकर चलायमान हो गयी थी । उस समय में धरा की चलगति को देखकर बड़े-बड़े तपस्त्वियों की समाधि टूट गयी थी और तपश्चर्या कर भंग हो गया था ।८। देवगण भी पितरों के साथ अपने हृव्य-कव्य से जो भी उनके लिए समर्पित किए जाते थे उनसे परिभ्रष्ट हो गए थे और उनको महान दुःख हो गया था तथा वे सभी अत्यन्त उत्पोड़ित होकर ब्रह्माजी के

न्याय के अनुरूप उन्होंने ब्रह्माजी से तिवेदन किया था कि सगर नृप के पुत्रों की भूमि पर कैसी कुचेष्टायें हो रही हैं । १०। सब लोकों के पितामह ब्रह्माजी उनके कहे वचनों कर श्रवण करके एक क्षण के अन्दर विचार वाले हुए थे और इसके पश्चात् सुरों में श्रेष्ठ ब्रह्माजी ने उनसे कहा— ११। हे देवगणों ! आप सबका कल्याण होवे । अब आप लोग सावधान हो । तर मेरी बाणी का श्रवण कीजिए जो भी कुछ मैं आपके सामने इस समय में कह रहा हूँ—ये सगर के पुत्र सबके सब विनष्ट हो जायेंगे—यह सर्वथा सत्य है इसमें कुछ भी संशय नहीं है । १२। कुछ काल पर्यन्त प्रतीक्षा करो । समय के ही द्वारा सब नियमित हो जाया करता है । यह काल बड़ा बलवान है । अन्य तो केवल नियमित ही हुआ करते हैं करने वाला तो वास्तव में काल ही होता है । यह ही सबको खाने वाला होता है । इसके सामने सब बल-वैभव और प्रताप धूल में मिल जाया करते हैं । १३। हे सुरश्रेष्ठो ! मैं आप सभी के हित-सम्पादन होने के लिए जो भी कुछ कहूँगा वही अब आप सब को अतनिद्रित होकर कर डालना चाहिए । १४।

त्रिष्णोरांशेन भगवान्कपिलो जयतां वरः ।

जातो जगद्गिताथर्य योगीन्द्रप्ररबो भुवि ॥ १५ ॥

अगस्त्यपीतसलिले दिव्यवर्षणतावधि ।

ध्यायन्नास्तेऽधुनांशोधादेकांते तत्र कुत्रचित् ॥ १६ ॥

गत्वा यूयं ममादेशात्कपिलं मुनिषु गवम् ।

ध्यानावसानमिच्छत्मितष्टुध्वं तदुपह्वरे ॥ १७ ॥

समाधिविरतौ तस्य स्वाभिप्रायमणेषतः ।

नत्वा तस्मै वदिष्यध्वं स वः श्रेयो विधास्यति ॥ १८ ॥

समाधिभंगश्च मुनेयथा स्यात्सागरेः कृतः ।

कुरुक्षं च तथा यूयं प्रवृत्ति विवुधोत्समाः ॥ १९ ॥

जैमिनिरुचाच—

इत्युक्तास्तेन विवुधास्तं प्रणम्य पितामहम् ।

गत्वा तं त्रिवुधश्रेष्ठं ते कृतांजलयोऽनुवन् ॥ २० ॥

देवा ऊचः—

प्रसीद नो मुनिश्रेष्ठ वयं त्वां शरणं गताः ।

उपद्रुतं जगत्सर्वं सागरैः संप्रणाश्यति ॥२१

जयशीलों में श्रेष्ठ भगवान् कपिल मुनि भगवान् विष्णु के ही अंग से इस जगत के हित के लिए समर्पीण हुए हैं। यह विष्णु भगवान का ही अंशावतार है और भूमण्डल में योगीन्द्रों में परम श्रेष्ठ हैं । १५। अगस्त्य मुनि के द्वारा इस विजाल सागर का जल पी लेने पर दिव्य सौ वर्षों की अवधि हो गयी है वे इसी अम्भोधि में वहाँ पर किसी स्थल में इस समय में इस समय में ध्यान करने वाले स्थित हैं । १६। मेरा यह आदेश है [कि आप लोग मुनियों में परम श्रेष्ठ कपिलजी के समीप में चले जाओ। जब उनकी ध्यानावस्था का अन्त हो वे तब तक इच्छा रखने वाले आप लोग वहाँ उपग्रहवर में संस्थित रहें । १७। जब उनकी समाधि समाप्त हो जावे तभी आप अपना अभिप्राय पूर्ण रूप से नमस्कार करके उनको बतला देवें। वही ऐसे शक्तिशाली हैं कि वे आप लोगों का कल्याण कर देंगे । १८। हे देवगणो ! जिस भी रीति से उन मुनिवर की समाधि का भङ्ग सगर के पुत्रों द्वारा किया हुआ हो वे आप लोगों को बैसी ही प्रवृत्ति करनी चाहिए। इसी से आप का कार्य सुभूष्मन्न हो जायगा । १९। जैमिनि मुनि ने कहा—पितामह के द्वारा जब देवगणों से इस तरह से कहा था तो वे सब पितामह को प्रणाम करके उन देवों में श्रेष्ठ मुनिवर के समीप में चले गये थे और हाथ जोड़कर उन्होंने उनसे कहा था । २०। देवों ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाइए। हम लोग आपकी शरणागति में प्राप्त हुए हैं। राजा सगर के पुत्रों ने जगत् में बड़ा उपद्रव मचा दिया है और ऐसा हो गया है कि यह सम्पूर्ण जगत् विनष्ट हो हो जायगा । २१।

त्वं किलाखिललोकानां स्थितिसंहारकारणः ।

विष्णोरंशेन योगीदस्वरूपो भुवि संस्थितः ॥२२

पुंसां तापत्रयात्तनामातिनाशाय केवलम् ।

स्वेच्छया ते धृतो देहो न तु त्वं तपतां वरः । २३

ममसैव जगत्सर्वं स्रष्टुं मंहत्तुं मेव च ।

विधातुं स्वेच्छया ब्रह्मान्भवाऽङ्गवनोत्यसंशयम् ॥२४

त्वं नो धाता विद्याता च त्वं गुरुस्त्वं परायणम् ।

परित्राता त्वमस्माकं विनिवर्त्तय चापदम् ॥२५

शरणं भव विद्वेद् विन्द्राणां विशेषतः ।

सागरैर्द्द्व्यमानानां लोकत्रयनिवासिनाम् ॥२६

ननु वै सात्त्विकी चेष्टा भवतीह भवादृशाम् ।

त्रातुमहंसि तस्मात्वं लोकानस्मांश्च सुव्रत ॥२७

न चेदकाले भगवन्विनक्ष्यत्यखिलं जगत् ।

जैमिनिरुचाच—

इत्युक्तः सकलैर्देवैरुन्मील्य नयने शनैः ॥२८

आप तो समस्त लोकों की स्थिति और संहार के कारण हैं। आप तो भगवान् विष्णु के अंग से ही अवतीर्ण हुए हैं और इस भूमण्डल में योगीन्द्र के स्वरूप को धारण करके समवस्थित हैं। २२। आप कोई महात् श्रेष्ठ तपस्वी ही नहीं हैं। आपने तो अपने इस देह को अपनी ही इच्छा से धारण किया है और यह भी केवल तीनों तापों से अत्यधिक आत्म पुरुषों की आत्म पुरुषों की आत्म के ही विनाश के लिए धारण किया है। २३। हे ब्रह्मन् ! आप तो ऐसे अद्भुत शक्तिशाली हैं कि अपने मन से ही इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन, संस्थिति और संहार अपनी इच्छा के अनुसार विना किसी संशय के कर सकते हैं। २४। आप तो हमारे धाता और विद्याता हैं तथा आप गुरु हैं और परायण हैं। आप हमारा परित्राण भी करने वाले हैं। अब आप हमारी इस दत्तमान आपदा को दूर भगाइए। २५। हे विप्रेन्द्र ! आप हमारे रक्षक होइए और विशेष रूप से हम विप्रों की रक्षा करने वाले होइए। हम तीनों लोकों में निवासी सगर के पुत्रों के द्वारा वह्यमान हो रहे हैं। २६। हे सुव्रत ! हम लोक में आप जैसे महापुरुषों की सात्त्विकी चेष्टा हुआ करती है। हमलिए आप समस्त लोकों की और हमारी रक्षा करने के योग्य हैं। २७। हे भगवान् ! यदि आप ही हम सबकी रक्षा नहीं करेंगे तो यह सम्पूर्ण जगत् अकाल में ही विनष्ट हो जायगा। जैमिनि मुनि ने कहा—जब इस प्रकार से सब देवगणों ने अभ्यर्थना की थी तो कपिल मुनि ने धोरे से अपने दोनों नेत्रों को खोला था। २८।

विलोक्य तानुवाचेदं कपिलः सूनूतं वचः ।

स्वकर्मणैव निर्दंश्वा: प्रविनङ्ग्लक्ष्यति सागराः ॥२६

काले प्राप्ते तु युष्माभिः स तावत्परिपाल्यताम् ।

अहं तु कारणं तेषां विनाशाय दुरात्मनाम् ॥३०

भविष्यामि सुरश्चेष्ठा भवतामर्थंसिद्धये ।

मम क्रोधाग्निविप्लुष्टाः सागराः पापचेतसः ॥३१

भविष्यन्तु चिरेणैव कालोपहृतबुद्धयः ।

तस्माद्गतज्वरा देवा लोकाश्चैवाकृतोभयाः ॥३२

भवन्तु ते दुराचाराः क्षिप्रं यास्यन्ति संक्षयम् ।

तद्यूयं निर्भया भूत्वा वज्रध्वं स्वां पुरीं ति ॥३३

कालं कंचित्प्रतीक्षण्डवं ततोऽभीष्टमवाप्स्यथ ।

कपिलेनैव मुक्तास्ते देवाः सर्वे सवासवाः ॥३४

तं प्रणम्य ततो जग्मुः प्रतीताञ्चिन्दिवं प्रति ।

एतस्मिन्नन्तरे राजा सगरः पृथिवीपतिः ॥३५

फिर उम मन्त्रका अवलोकन करके कपिल भगवान ने यह परम मुनृत वचन कहा था । ये सगर के पुत्र मन्त्र अपने ही कर्म से निर्दंश्व होकर विनष्ट होकर विनष्ट हो जायेंगे ॥२६। जब भी इनके विनाश का काल प्राप्त होगा तभी नाश होगा । तब तक उस काल की आप सब लोग प्रतीक्षा कीजिए । और मैं तो उन दुष्ट आत्मा वालों के विनाश करने का कारण बनूँगा ॥३० हे सुरश्चेष्ठो ! आप लोगों के अर्थ की सिद्धि के लिए केवल मैं कारण स्वरूप बनूँगा । महापापी ये सगर के पुत्र मेरे क्रोध की अग्नि से विप्लुष्ट होकर भस्मीभूत हो जायेंगे ॥३१। ऐसा ही काल होगा कि इन सबकी बुद्धि उपहृत हो जायगी और चिरकाल में इनका विनाश होगा । इसलिए सभी देवों का दुःख दूर हो जायगा और सभी लोक सभी ओर से भयहीन हो जायेंगे ॥३२। वे सभी दुरे आचरण वाले हो जायेंगे । इसलिए अब आप लोग सब निर्भय होकर अपनी पुरी की ओर गमन कीजिए ॥३३। आप लोगों को कुछ काल की प्रतीक्षा अवश्य ही करनी होगी । तभी आप अपने अभीप्सित की प्राप्ति करेंगे । जब इस प्रकार से कपिल मुनि के द्वारा देवगणों से कहा गया था तो इन के महित मन्त्र देवों ने उनका अग्निभ्रात्र किया ।

फिर उन मुनीश्वर को प्रणाम करके परम समाइशस्त होकर उन सबने स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया था । इसी बोच में पृथिवी के स्वामी राजा सगर ने एक महान् यज्ञ करने का विचार मन में किया था । ३५।

**वाजिमेधं महायज्ञं कर्तुं चक्रे मनोरथम् ।**

आहृत्य सवंसंमारान्वसिष्ठानुमते तदा ॥ ३६ ।

**औवद्यि: सहितो विप्रैर्यथावद्दीक्षितोऽभवत् ।**

**दीक्षां प्रविष्टो नृपतिहंयसंचारणाय वै ॥ ३७ ।**

पुत्रान्सवन्निसमाहृय संदिदेश महयशाः ।

संचारयित्वा तुरगं परीत्य पृथिवीतले ॥ ३८ ।

**क्षिप्रं ममातिकं पुत्राः पुनराहर्तुं मर्हथ ।**

**जैमिनिस्वाच-**

ततस्ते पितुरादेशात्तमादाय तुरंगमम् ॥ ३९ ।

परिचकमयामासुः सकले क्षितिमंडले ।

**विधिचोदनयैवाष्वः स भूमौ परिवर्त्तिः ॥ ४० ।**

न तु दिग्बिजयार्थाय करादानार्थमेव च ।

पृथिवीभूमुजा तेन पूर्वमेव विनिजिता ॥ ४१ ।

नृपाश्चोदारवीर्येण करदाः समरे कृताः ।

ततस्ते राजतनया निस्तोये लवणांवृधी ॥ ४२ ।

**भूतले विविशुर्हृष्टाः परिवार्यं तुरंगमम् ॥ ४३ ।**

उस समय में वसिष्ठ मुनि की अनुमति से सगर नृपति ने अश्वमेध नामक एक महान् यज्ञ के करने का मन में मनोरथ किया था और उस यज्ञ कार्य के सम्मादन करने के लिये सभी सम्भारों का समाहरण किया गया था । ३६। उस समय में और्वा आदि जो विप्र थे उनके द्वारा राजा विधि-विधान के साथ दीक्षित हुआ था । जब राजा ने दीक्षा लेकर यज्ञ का समाचरण करने के लिये दीक्षा में प्रविष्ट हो गया था तो उसमें जो अश्व छोड़ा जाता है उसके भली भाँति चारण करने के लिये नियुक्ति की थी । ३७। महायशस्वी सगर ने उन सब सहस्र पुत्रों को अपने समीप में बुलाकर उनको

आदेश दिया था । इस अश्व को इस पृथ्वी तल में चारों ओर चारण कराने को गमन करो । ३८। फिर हे पुत्रो ! जीव्र ही आप लोग धुमाकर इस अश्व को फिर मेरे पास ले आओ । जैमिनि मुनि ने कहा—इसके अनन्तर उन पुत्रों ने अपने पिताश्री की आज्ञा से उस अश्व को बहाँसे अपने साथ में ले लिया था । ३९। उन्होंने उस अश्व को समस्त पृथ्वी तल में चारों ओर धुमाया था । ४०। विधि की प्रेरणा से ही वह अश्व भूमि में परिवर्तित हो गया था । ४१। उस राजा ने अश्व को दिग्विजय करने के लिये तथा करों का आदान करने के लिये तो छोड़ा ही नहीं था क्योंकि समस्त नृपों को तो नृप सगर ने पहिले ही जीत लिया था । ४२। उदार वीर्य वाले सगर ने सभी नृपों को समर में कर देने वाले बना लिया था । इसके पश्चात् जब वह अश्व दिखाई नहीं दिया था तो फिर उन समस्त राजपुत्रों ने जल से रहित आर सागर के पास गमन किया था । ४३। उस अश्व को परिवारित करके उन सबने भूतल के अन्दर प्रसन्न होकर प्रवेश किया था । ४४।

### सगर विनाश वर्णन

#### जैमिनिस्वाच-

तेषु तत्र निविष्टेषु वासवेन प्रचोदितः ।

जहार तुरगं वायुस्तत्क्षणेन रसातलम् ॥१॥

अट्टमष्वं तैः सर्वैरपहृत्य सदागतिः ।

अनयत्तत्पथा राजन्कपिलस्यांतिकं मुनेः ॥२॥

ततः समाकुलाः सर्वे विनष्टेऽश्वे नृपात्मजाः ।

परीत्य वसुधां सर्वा प्रमार्गतस्तुरंगमम् ॥३॥

विचित्य पृथिवीं ते तु स पुराचलकाननाम् ।

अपश्यन्तो यजपशुं दुःखं महदवाणुवन् ॥४॥

ततोऽयोध्यां समासाद्य ऋषिभिः परिवारिताम् ।

इष्वा प्रणम्य पितरं तस्मै सर्वं न्यवेदयन् ॥५॥

परीत्य पृथ्वीमस्माभिनिविष्टे वह्णालये ।

रक्ष्यमाणोऽपि पश्यदिभिः केनापि तुरगो हृतः ॥६॥

इत्युक्तस्तेरुषाविष्टस्तानुवाच नृपोत्तमः ।

प्रयास्यध्वमधर्मिष्ठाः सर्वेऽनावृत्ये पुनः ॥७

जैमिनि मुनि ने कहा—वे सगर के पुत्र जब वहाँ प्रविष्ट हो गये थे तो इसके अनन्तर इन्द्रदेव के द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके वायु ने उसी क्षण में उस अश्व का हरण करके रसातल में पहुँचा दिया था । १। जब उन सगर पुत्रों ने वहाँ कहीं पर भी उस अश्व को नहीं देखा था । वायु देव ने उसका अपहरण करके हे राजन् ! उसी मार्ग से कपिल मुनि के समीप में पहुँचा दिया था । २। उस अश्व के वहाँ पर न दिखलाई देने पर सब नृप के पुत्र बहुत ही अधिक बेचैन हो गये थे और सम्पूर्ण पृथ्वी परिक्रमा लगाकर उस अश्व को खोज कर रहे थे । ३। उन्होंने पहिले सम्पूर्ण भूतल पर उस अश्व को ढूढ़ा था फिर सब नगर-पर्वत और वनों में उसकी खोज की थी । जब उन्होंने कहीं पर भी उस यज्ञ के पश्च अश्व को नहीं देखा था तो उन सबके हृदयों में बड़ा भारी दुःख हुआ था । ४। फिर वे सब अनेक ऋषियों से विरो हुई अयोध्या पुरी में समागम हो गये थे । अपने पिता सगर का दर्शन कर उन्होंने प्रणाम करके सभी घटित घटना के विषय में अपने पिता से निवेदन किया था । ५। उन्होंने कहा—हम सबने पूरी पृथ्वी की परिक्रमा करके फिर वरुणालय (सागर) में प्रवेश किया था । हम उस अश्व को बरा-बर देखते रहे थे किन्तु हमारे द्वारा रक्षा किया हुआ भी वह अश्व को किसी के द्वारा सहसा हरणकर लिया गया है । ६। जब इस रीति से उनके द्वारा राजा सगर से कहा गया था तो यह सुनकर उसको बड़ा भारी क्रोध हो गया था और उस उत्तम नृप ने उन सबसे यह कहा था—तुम सब बड़े पापी हो, यहाँ से इसी समय निकलकर चले जाओ और फिर लौटकर अपना मुँह मत दिखाना । ७।

कथं भवदिभर्जीविदिभर्विनष्टो वै दुरात्मभिः ।

तुरगेण विना सत्यं नेहागमनमस्ति वा ॥८

ततः समेत्य तस्मात्ते संप्रयाताः परस्परम् ।

ऊचुर्न दृश्यतेऽद्यापि तुरगः किं प्रकुर्महै ॥९

वसुधा विचिताऽस्माभिः सशैलवनकानना ।

न चापि दृश्यते वाजी तद्वात्तापि न कुत्रचित् ॥१०

तस्मादव्ये: समारभ्य पातालवधि मेदिनीम् ।

विभज्य खात्वा पातालं विविशाम तुरंगमम् ॥११॥

इति कृत्वा मर्ति सर्वे सागराः क्रूरनिश्चयाः ।

निचल्लुभूमिमंबोधेस्तटादादरभ्य सर्वतः ॥१२॥

तैः खन्यमाना वसुधा ररास भृशविहवला ।

चुकुशुष्ठापि भूतानि हृष्ट्वा तेषां विचेष्टतम् ॥१३॥

ततस्ते भारतं खंडं खात्वा सक्षिप्य भूतले ।

भूमेयोजनसाहस्रं योजयामासुरंवृधौ ॥१४॥

तुम सबने जीवित रहते हुए ही किस तरह से उस अश्व को खो दिया है ! तुम बड़े डरपोक हो । जब वह अश्व हो नहीं हैं तो उसके बिना आप सबका यहाँ पर आगमन सचमुच नहीं होना चाहिए ।८। इसके अनन्तर वे सब इकट्ठे होकर वहाँ से प्रयाण कर गये थे और परस्पर में कहते थे कि अभी तक भी वह अश्व कहीं पर भी दिखाई नहीं दे रहा है । हम अब क्या करें ।९। हमने सम्पूर्ण वसुधा तो देख डाली है और पर्वत-बन और कानन भी देख लिये हैं किन्तु वह अश्व कहीं पर भी दिखाई नहीं दे रहा है । अश्व का दिखाई देना तो दूर रहा, उसकी कहीं पर चर्चा भी नहीं हो रही है कि वह कहाँ पर होकर निकला था ।१०। इसलिए समुद्र से आरम्भ करके पाताल पर्यन्त इस भूमि का विभाजन कर खोद डालें और पाताल में उस अश्व की खोज करें ।११। फिर सगर के पुत्रों ने यही अपना विचार बना लिया था और उन सबका यह बड़ा ही क्रूर निश्चय था । उन सबने समुद्र के तट से आरम्भ करके सब आर से उस भूमि को खोदना आरम्भ कर दिया था ।१२। उनके द्वारा खोदी जाने वाली भूमि बहुत ही वेचेन होती हुई उत्पोड़ित हुई थी । उन सबके इस महान भीषण कृत्य को देखकर समस्त प्राणी रोने लग गये थे ।१३। इसके पश्चात उन्होंने भूमण्डल में भारतखण्ड को खोदकर सक्षिप्त कर दिया था और भूमि के एक सहस्र योजन भाग को सागर के स्वरूप में योजित कर दिया था जिससे यह भूभाग कम हो गया था ।१४।

आपातालतत्त्वं ते तु खनंतो मेदिनीतलम् ।

न चंत सम्बन्धान्ते दद्यन्ते वित्तान्ताः । १४।

संप्रहृष्टास्ततः सर्वे समेत्य च समंततः ।

संतोषाज्जहसुः केचिन्ननृतुश्च मुदान्विताः ॥१६

ददृशुश्च महात्मानं कपिलं दीप्ततेजसम् ।

वृद्धं पद्मासनासीनं नासाग्रन्यस्तलोचनम् ॥१७

ऋज्वायतशिरोग्रीवं पुरोविष्टब्धवक्षसम् ।

स्वतेजसाऽभिसरता परिपूर्णेन सर्वतः ॥१८

प्रकाश्यमानं परितो निवातस्थप्रदीपवत् ।

स्वांतप्रकाशिताशेषविज्ञानमयविग्रहम् ॥१९

समाधिगतचित्तं तु निभृतांभोधिसन्निभम् ।

आरूढयोगं विधिवद्वचेयसलीनसम् ॥२०

योगीद्रप्रवरं शांतं ज्वालामालमिवानलम् ।

विलोक्य तत्र तिष्ठतं विमृशन्तः परस्परम् ॥२१

उन नृप के पुत्रों ने उस समय भूमि को खोदते हुए पाताल लोक के तले तक खोद डाला था और उसके अन्दर पाताल में फिर उस अश्व को देखा था । १५। फिर जब उनको वह यज का अश्व वहाँ दिखाई पड़ गया तो सब चारों ओर से एकत्रित होकर वहुत अधिक प्रसान्न हुए थे । उनका वहुत अधिक सन्तोष हो गया था । उनमें कुछ तो वहुत अधिक हँसने लगे थे और कुछ परमानन्दित होते हुए नाचने लग गये थे । १६। वहाँ पर महान आत्मा वाले कपिल मुनि का दण्डन किया था जो कि परम वृद्ध थे और तेज से देदीप्यमान हो रहे थे । उन्होंने पद्मासन बौध रखा था । इस तरह से बैठकर अपने नेत्रों को नासिका के अग्रभाग लगाकर ध्यान में योग क्रिया के अनुसार मग्न हो रहे थे । १७। उनका शिर और ग्रीवा एकदम सीधे थे और आग की ओर उनका वक्षःस्थल विष्टब्ध था । उनका परिपूर्ण तेज सभी ओर से अभिसरण कर रहा था अर्थात् उनका अपना आत्म तेज उनके चारों ओर एक मण्डलाकार में उद्दीप होकर दिखाई दे रहा था । १८। जिस तरह से निवात स्थान में एक रस दीपक की लौ प्रकाशित हुआ करती है कि उसी भाँति से सब ओर उनका तेज प्रकाशित होता हुआ दिखाई दे रहा था । उनके अपने अन्तःकरण में प्रकाशित जो विज्ञान था उसी से परिपूर्ण उनका कलेवर था । १९। समाधि में उनका संलग्न चित्त छिपे हुए समुद्र के ही

समान था और वे विधि के साथ योगाभ्यास में समारूढ़ होकर अपने द्व्येष परब्रह्म में संलग्न मन बाले थे । २०। उन्होंने परम शान्त योगीन्द्रों में अधिक श्रेष्ठ मुनि का अवलोकन किया तो ऐसा उस समय में आभास हो रहा था कि यह कोई जलती हुई ज्वालाओं की मालाओं से परिपूर्ण साक्षात् अग्नि का ही स्वरूप है । जब उनको समाधि स्थित सबने देखा था तो सब आपस में विचार करने लगे थे कि यह अत्यधिक तेजस्वी कौन महापुरुष है । २१।

**मुहूर्त्तमिव ते राजन्साध्वसं परमं गताः ।**

**ततोऽयमश्वहर्त्तेति सागरा कालचोदिताः ॥२२**

**परिवत्रुदुर्ग्रात्मानः कपिलं मुनिसत्तमम् ।**

**ततस्तं परिवार्योचुञ्चौरोऽयं नात्र संशयः ॥२३**

**अश्वहर्त्ता ततोह्येष वध्योऽस्माभिर्दुर्ग्राशयः ।**

**तं प्राकृतवदासीनं ते सर्वे हतबुद्धयः ॥२४**

**आसन्नमरणाश्चकुर्ध्वितं मुनिमंजसा ।**

**जैमिनिरुचाच—**

**ततो मुनिरदीनात्मा ध्यानभंगप्रधर्षितः ॥२५**

**कोष्ठेन महताऽविष्टश्चुलुभे कपिलस्तदा ।**

**प्रचचाल दुराधर्षो धर्षितस्ते दुर्ग्रात्मभिः ॥२६**

**व्यजृभत च कल्पांते मरुद्विभरिव चातलः ।**

**तस्य चार्णवग्नभीराद्वपुषः कोपपावकः ॥२७**

**दिधक्षुरिव पातालाल्लोकान्सांकर्षणोऽनलः ।**

**शुशूभे धर्षणक्रोधपरामर्शविदीपितः ॥२८**

हे राजन ! मुहूर्त मात्र समय तक तो दङ्ग से होकर रह गये थे और उनको बड़ा भारी डर लगा था । फिर भावी की प्रबलता से प्रेरित होकर उन सगर के पुत्रों ने यही निश्चय बना लिया कि हो न हो यही इस अश्व के हरण करने वाला है । २२। उन दुष्ट आत्माओं वालों ने परम श्रेष्ठ मुनि कपिल को चारों ओर घेर लिया था और घेरा डालकर उन्होंने कहा था—यही चोर है—इसमें लेश भर भी संशय नहीं है । २३। क्योंकि इसने अश्व का अपहरण किया है इसलिए इस दुरे विचार वाले का हमको वध कर

डालना चाहिए । उन सबकी बुद्धि तो होनहार के बश अधीन हो गयी थी और उनकी मृत्यु निकट में प्राप्त हो रही थी । उन सबने योगासीन उस मुनि को एक साधारण मनुष्य के हो समान सहसा धर्षित किया था अथवा डाट-फटकार लगाना आरम्भ कर दिया था । जैमिनी मुनि ने कहा—इसके पश्चात् यह हुआ था कि जब उन सबने बहुत शोर मचाया तो मुनि का ध्यान टूट गया था और अत्युच्च आत्मा वाले मुनि कपिल प्रधर्षित हो गये थे । २४-२५। उस समय में ध्यान के भज्ज हो जाने से कपिल मुनि को महान् क्रोध हो गया था और उस समय में विष्ट उनके हृदय में बड़ा भारी शोभ हो गया था । वे तो इतने तेजस्वी थे कि उनके ऊपर किसी का भी प्रभाव नहीं पड़ सकता था और उनका दबा देना महान् कठिन था । जब उन दुरात्माओं ने धर्षित करने का प्रयास किया था तो वे संचलित हो गये थे । उस समय में कपिल मुनि ऐसे ही क्रोधवेश में देवीप्यमान दिखाई पड़ रहे थे जैसे कल्प के अन्त में सर्व संहारक वायु से प्रेरित अग्नि होता है । उस समय में समुद्र के समान परम गम्भीर उनके शरीर से कोपाग्नि निकल रही थी । २६-२७। वह सर्वसंहारक क्रोधाग्नि पाताल लोकों को दग्ध करने वाले के ही समान था और धर्षण अथवा फटकार से जो क्रोध उत्पन्न हो गया था उसके होने से अत्यधिक प्रदीप होकर वह शोभित हो रहा था । २८।

उन्मीलयत्तदा नेत्रे वहिनचक्रसमद्युतिः ।

तदाऽक्षिणी क्षणं राजन्नराजेतां सुभृशारुणे ॥ २६ ॥

पूर्वसंध्यासमुदितौ पुष्पवंताविवांबरे ।

ततोऽप्युद्धर्त्तमानाभ्यां नेत्राभ्यां नृपनंदनात् ॥ २० ॥

अवैक्षत च गंभीरः कृतांतः कालपर्यये ।

क्रुद्धस्य तस्य नेत्राभ्यां सहसा पावकार्चिषः ॥ ३१ ॥

निश्चेहरभितो दिक्षु कालाग्नेरिव संतताः ।

सधूमकवलोदयाः स्फुलिंगौषमुच्चो मुहुः ॥ ३२ ॥

मुनिक्रांधानलज्वालाः समंताद्व्यानशुर्दिशः ।

व्यालोदरौग्रकुहरा ज्वालास्तन्त्रनिर्गताः ॥ ३३ ॥

विरेजुर्निभृतांभोधेर्वंडवाग्नेरिवार्चिषः ।

**क्रोधाग्निः सुमहाराज ज्वालाव्याप्तदिगंतरः ॥३४**

**दग्धांश्चकार तान्सर्वानावृण्वानो नभस्तलम् ॥३५**

उस समय में कपिल मुनि ने अग्नि मण्डल के समान अपने नेत्रों को खोला था । हे राजन् ! उनकी दोनों आँखें धूण भर तो अत्यधिक अरुण दिखलाई देती हुई शोभा वाली हुई थीं । २६। और वे दोनों नेत्र पूर्व सन्ध्या में समुदित अम्बर में दो पुष्पों के ही सहज प्रतीत हो रहे थे । इसके अनन्तर ही उन्होंने अपने खुले हुए नेत्रों को उन सब नृप सगर के पुत्रों पर ढाला था । ३०। संहार के समय में यमराज के ही तुल्य अत्यन्त गम्भीर मुनि ने नृप सुतों की ओर देखा था । अत्यधिक क्रोध तो समाधि के भज्ज होने से उनको ही ही रहा था । परम क्रुद्ध उनके नेत्रों से अग्नि की ज्वालाएँ निकल रही थीं । ३१। और वे ज्वालाएँ कालाग्नि के ही समान दिशाओं में सभी ओर फैली हुई थीं । धूम के समूहों से युक्त वे ज्वालाएँ अत्यन्त आगे की ओर बढ़ रही थीं और बारम्बार उनमें से अग्नि के कण छूटकर निकल रहे थे । ३२। क्रोधाग्नि की ज्वालाओं ने सभी ओर दिशाओं को व्याप्त कर दिया था । उनके नेत्रों से निकलने वाली क्रोधाग्नि की ज्वालाएँ कालोदर के उग्र कुहरों वाली थीं तात्पर्य यह है कि ज्वालाओं के मण्डल की ऐसी व्याप्ति हो गयी थी । उस समय में कुहरे के समान कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा था । ३३। हे सुमहाराज ! उनके क्रोधाग्नि की ज्वालाएँ छिपे हुए समुद्र की बड़वाग्नि की ज्वालाओं के ही समान शोभित हो रही थीं और उन कपिल मुनि की क्रोधाग्नि ने सभी दिशाओं के अन्तर को व्याप्त कर रखा था वह सर्वत्र फैल गया था । ३४। उस क्रोधाग्नि ने पूर्ण नभस्तल को आवृत करते हुए उन समस्त सगर के साठ सहज पुत्रों को दग्ध करके भस्मीभूत कर दिया था । ३५।

**सज्जवद्मुद्भ्रांतमरुतप्रकोपविवर्त्तमानानलधूमजाले ।**

**महीरजोभिश्च नितांतमुद्धरतः समावृतं**

**लोकमभूद्भूषातुरम् ॥३६**

**ततः स वह्निविलिखन्निवाभितः समीरवेगाभि रमीभिरंवरम् ।**

**शिखाभिरुर्वीशसुतानशेषतो ददाह सद्यः सुर-**

**विद्विषस्तान् ॥३७**

**पितृः सर्वतोक्तम् क्रोधाग्निरात्मगृहे ।**

सागरांस्तानशेषेण भस्मसादकरोत्स तान् ॥३८

एवं कोधाग्निना तेन सागरः पापचेतसः ।

जज्वलु यस्ता दावे तरवो नीरसा इव ॥३९

दृष्ट्वा तेषां तु निधनं सागराणां दुरात्मनाम् ।

अन्योन्यमत्र वन्देवा विस्मिता ऋषिभिः सह ॥४०

अहोदारुणपापानां विपाको न चिरायितः ।

दुरंतः खलु लोकेऽस्मिन्नराणामसदात्मनाम् ॥४१

यदि मे पर्वताकारा नृशंसाः क्रृबुद्धयः ।

युगपद्विलयं प्राप्ताः सहस्रं तृणाग्निवत् ॥४२

सरर-सरर करती हुई महाघ्नि से परिपूर्ण बड़ी जोरदार हवा के प्रकोप से चारों ओर फैली हुई अग्नि की धुंआ के गुब्बारों से और अत्यधिक ऊपर की ओर उठकर उड़ती हुई भूमि की धूलि के सम्पूर्ण लोक ढक सा गया था और बहुत ही अधिक लोक में विकलता हो गयी थी । ३६। इसके पश्चात् वह अग्नि वायु के वेग से समाहृत शिखाओं से जो धूम-धूम करके ऊपर की ओर उठ रहीं थीं नभस्तत में मानों वे कुछ लिख रहीं होवें चारों ओर फैली हुई थीं । उन्होंने उन सुरगण के शत्रु तृप के पुत्रों को पूर्णतया तुरन्त ही प्रदग्ध कर दिया था । ३७। समग्र लोक का विनाश करने वाले उन सगर के पुत्रों का पूर्णतया उस कपिल मुनि की क्रोधाग्नि ने दाह करके राख की ढेरियाँ बना दिया था और उस यज्ञ के अश्व को छोड़ दिया था । ३८। नीरस सूखे हुए वृक्ष तुरन्त ही दान की अग्नि से जल जाया करते हैं उसी भाँति पुण्य रस विहीन पापात्मा के सगर सुत तुरन्त ही जल गये थे । ३९। इस रीति से उन महान् द्रुष्ट सगर मुतों का निधन का अवलोकन करके सभी देवगण अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हो गये थे और परस्पर में ऋषियों के साथ एक दूसरे से कहने लगे थे । ४०। अहो ! बड़े आश्चर्य की बात है कि महान् दारुण पाप करने वालों के पापों का निपाक कितनी शीघ्रता से हो गया है । निश्चय ही इस लोक में जो असत् आत्माओं वाले नर होते हैं उनका अन्त बड़ा ही दुःख से पूर्ण हुआ करता है । तात्पर्य यह है कि नीचों का विनाश तुरन्त ही अवश्यम्भावी होता है । ४१। यही बात है कि ये महान् क्रूर बुद्धि वाले निदयी जिनका कलेवराकार पर्वतों के सहश था और कितनी अधिक संख्या में ये इस समय में तृण

में लगी हुई अग्नि के ही समान तुरन्त ही एक ही साथ विलय को प्राप्त हो गये हैं मानों हुए हो नहीं थे । आप उनका नाम मात्र ही रह गया है । ४२।

उद्देजनीया भूतानां सदिभरत्यंतगहिताः ।

आजीवांतमिमे हतुं दिष्ट्या संक्षयमागताः ॥४३॥

परोपतापि नितरां सर्वलोकजुगुप्सितम् ।

इह कृत्वाऽशुभं कर्म कः पुमान्विदते सुखम् ॥४४॥

विक्रोश्य सर्वभूतानि संप्रथाताः स्वकर्मभिः ।

ब्रह्मदंडहताः पापा निरयं शाश्वतीः समाः ॥४५॥

तस्मात्सदैव कर्तव्यं कर्म पुंसां मनोषिणाम् ।

दूरतंश्च परित्याज्यमितरल्लोकनिदितम् ॥४६॥

कर्तव्यः थ्रेयसे यत्नो यावज्जीवं विजानता ।

नाचरेत्कस्यचिद्द्रोहमनित्यं जीवनं यतः ॥४७॥

अनित्योऽयं सदा देहः संपदश्चातिचंचलाः ।

संसारश्चातिनिस्सारस्तत्कथं विश्वसेदबुधः ॥४८॥

एवं सुरमुनीन्द्रेषु कथयत्सु परस्परम् ।

मुनिक्रोधेऽधनीभूता विनेशः सगरात्मजाः ॥४९॥

निर्दग्धदेहाः सहसा भ्रुवं विष्ट्रभ्य भस्मना ।

अवापुनिरयं सद्यः सागरास्ते स्वकर्मभिः ॥५०॥

सागरांस्तानशेषेण दग्धवा क्रोधजोऽनलः ।

क्षणेन लोकानखिलानुद्यतो दग्धुमांजसा ॥५१॥

भयभीतास्ततो देवाः समेत्य दिवि संस्थिताः ।

तुष्टुवुस्ते महात्मानं क्रोधाग्निशमनार्थिनः ॥५२॥

ये सभी प्राणियों के लिए उद्देश करने वाले थे और सत्पुरुषों के द्वारा बहुत ही निन्दित समझे जाया करते थे । ये जीवन जब तक इनका रहा सबका अपहरण ही किया करते थे । अब बहुत ही अच्छा हुआ कि सबके सब विनाश को प्राप्त हो गये हैं । यह तो एक प्रसन्नता की ही बात हुई है ।

।४३। जो निरन्तर ही दूसरे प्राणियों को उपताप दिया करता है तथा सदा ही सर्वत्र जिसकी लोग निन्दा किया करते हैं ऐसा इस लोक में परमाश्रुम कर्मों को करके कौन सा पुरुष है जो सुख प्राप्त करता है अर्थात् ऐसा कोई भी सुख नहीं प्राप्त करता है ।४४। सब प्राणियों को सता कर अपने ही कुकर्मों के द्वारा इस लोक से विदा होकर चल वसे हैं । ब्राह्मण के अपराध का दण्ड पाकर निहत हो गये हैं । ये महापापी सगर सुत निरन्तर संकड़ों वर्षों तक नरक में रहेंगे ।४५। इस कारण से मनीषी पुरुषों को सर्वदा सत् कर्म ही करना चाहिए और जो दूसरे लोगों के द्वारा विनिन्दित कर्म हो उसका तो दूर से ही परित्याग कर देना चाहिए ।४६। मानव का परम कर्तव्य है कि जब तक भी उसका जीवन रहे सदा श्रेय के ही यत्न करना चाहिए क्योंकि उसको यह जान होना चाहिए कि शुभ कर्म ही सफल होता है और सदा बुरे कर्मों का बुरा ही परिणाम हुआ करता है कभी भी किसी के साथ द्रोह का समाचरण नहीं करे क्योंकि जिस जीवन में द्रोह करता है वही जीवन अनित्य है फिर द्रोह का पाप क्यों अजित किया जावे ।४७। यह देह तो सदा ही अनित्य है कोई चाहे कैसा भी क्यों न हो यहाँ सदा नहीं रहता है न रहा है और न कभी रहेगा । जिस सम्पदा के लिये मानव बड़े-बड़े कृतिस्त कर्म किया करता है वह सम्पदा भी अत्यन्त चञ्चल है और कभी किसी के पास स्थिर नहीं रहा करती है । यह संसार अति निस्सार है अर्थात् सभी सांसारिक कर्मों में पारमाधिक श्रेय नहीं हैं जो सार कहा जा सके । सभी यहाँ की बातें यहाँ समाप्त हो जाया करती हैं फिर भी आश्चर्य यही है कि बुध पुरुष भी कैसे इसमें विश्वासा किया करते हैं ।४८। इस रीति से सुरगण और मुनिगण परस्पर में कह रहे थे और नूप सगर के पुत्र सब के सब कपिल मुनि के क्रोध में इन्धन होकर विनष्ट हो गये थे ।४९। वे सगर के पुत्र अपने ही कर्मों से दग्ध देहों वाले होकर सहस्रा भस्म के रूप में भूमि में मिल गये थे और तुरन्त ही नरक में पतुंच गये थे ।५०। मुनि के क्रोध की अग्नि ने पूर्ण रूप से उन सगर पुत्रों को दग्ध करके फिर वह अग्नि तुरन्त ही समस्त लोकों को दग्ध करने के लिये उद्यत हो गयी थी ।५१। तब सब देवगण भय से भीत हो गये थे और दिवलोक में ही संस्थित रहते हुए उस क्रोधाग्नि के शमन की इच्छा वालों ने उन महात्मा मुनि का स्तवन किया था ।५२।

## कपिल आश्रम में अश्वानयन

**जैमिनिरुद्धाच—**

क्रोधाग्निभेनं विप्रेन्द्र सद्यः सहत्तुं महंसि ।

नो चेदकाले लोकोऽयं सकलस्तेन दह्यते ॥१॥

हृष्टस्ते महिमानेन व्याप्तमासीच्चराचरम् ।

क्षमस्व संहर क्रोधं नमस्ते विप्रपुंगव ॥२॥

एवं संस्तूयमातस्तु भगवान्कपिलो मुनिः ।

तूर्णमेव क्षयं निन्ये क्रोधाग्निमतिभैरवम् ॥३॥

ततः प्रशांतमभवज्जगत्सर्वं चराचरम् ।

देवास्तपस्विनेष्वैव बभूविंगतज्वरा ॥४॥

एतस्मिन्नेव काले तु भगवान्नारदो मुनिः ।

अयोध्यामग मद्राजन्देवलोकाच्छृङ्खल्या ॥५॥

तमागतमभिप्रेक्ष्य नारदं सगरस्तदा ।

अर्घ्यपाद्यादिभिः सम्यक्पूजयामास ग्रास्त्रतः ॥६॥

परिगृह्य च तत्पूजामासीनः परमासने ।

नारदो राजशाद्वूलमिदं वचनमब्रवीत् ॥७॥

जैमिनी मुनि ने कहा—देवों ने कपिल मुनि से प्रार्थना की थी—

विप्रेन्द्र ! आप इस क्रोध की महान् भीषण अग्नि का तुरन्त ही संहार करने के योग्य हैं । यदि इसका संहरण नहीं किया गया तो उससे अकाल में ही यह सम्पूर्ण लोक दाह को प्राप्त होता जा रहा है ॥१॥ आपकी महिमा तो इसी से देखी जा चुकी है जो कि इस चराचर में व्याप्त थी । हे विप्रों में परम श्रेष्ठ ! अब क्षमा कोजिए और अपने क्रोध का संहरण कोजिए । आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम है ॥२॥ इस रीति से जब देवों के द्वारा उनकी स्तुति को गयी थी तो भगवान कपिल मुनि ने उस अत्यधिक भैरव क्रोधाग्नि का क्षय कर दिया था ॥३॥ फिर यह समस्त चराचर जगत् प्रशान्त हो गया था और सब देवगण तथा तपस्वी गण दुःख से रहित हो गये थे

नारद मुनि स्वेच्छा से ही देवलोक से विचरण करते हुए अयोध्या पुरी में समागत हो गये थे ।५। राजा सगर ने जब भगवान् नारदजी को वहाँ पर प्राप्त हुए देखा तो आस्त्रानुसार अर्घ्य-पात्र आदि से भली भाँति उनका अचंत किया था ।६। नारदजी ने उसकी पूजा को ग्रहण करके आसन पर संस्थिति की थी और फिर उन्होंने उस नृप शार्दूल से यह बचन कहा था ।७।

### नारद उवाच-

हयसंचारणार्थाय संप्रयातास्तवात्मजाः ।

ब्रह्मदंडहताः सर्वे विनष्टा नृपसत्तमः ॥८॥

संरक्ष्यमाणस्तैः सर्वैर्हयस्ते यज्ञियो नृप ।

केनाप्यलक्षितः क्वापि नीतो विधिवशादिवि ॥९॥

ततो विनष्टं तुरंग विचिन्वतो महीतले ।

प्रालभंत न ते क्वापि तत्प्रवृत्ति चिरान्नृप ॥१०॥

ततोऽवनेरधस्तेऽश्वं विचेतुः कृतनिश्चयाः ।

सागरास्ते समारङ्ग्य प्रचखनुर्वंसुधातलम् ॥११॥

खनंतो वसुधामश्वं पाताले दट्टशुर्नृप ।

समीपे तस्य योगींद्रिं कपिलं च महामुनिम् ॥१२॥

तं दृष्ट्वा पापकर्मणस्ते सर्वे कालचोदिताः ।

कपिलं कोपयामासुरश्वहत्तदियमित्यलम् ॥१३॥

ततस्तत्कोधसंभूतनेत्राग्नेदंहतो दिशः ।

इन्धनीभूतदेहास्ते पुत्राः संक्षयमागताः ॥१४॥

श्री नारदजी ने कहा— हे राजन् ! यज्ञ के अश्व के सञ्चारण के लिए आपके पुत्रों ने संप्रयाण किया था । हे श्रेष्ठ नृप ! वे सब ब्रह्म-दण्ड से हत होकर विनष्ट हो गये हैं । वा उन सबके द्वारा भली भाँति रक्षा किया भी वह यज्ञिय अश्व किसी के द्वारा अलक्षित कर दिया गया था और भाग्य वश दिव में वह ले जाया गया था ।६। फिर जब वह अश्व विनष्ट अर्थात् खोया हुआ हो गया था उन्होंने महीतल में खोज की थी किन्तु उन्होंने

उसको कहीं पर भी प्राप्त नहीं किया था और वह किस ओर गया है—यह भी बहुत समय तक उनको ज्ञात नहीं हुआ था । १०। इसके पश्चात् उन्होंने इस वसुन्धरा के नीचे उस अश्व की खोज करने निश्चय किया था । उन आपके पुत्रों ने समारम्भ करके इस वसुधा के तल भाग को खोद डाला था । ११। जब वे लगातर पृथ्वी को खोदते ही चले गये तो है नृप ! उन्होंने पाताल में उस अश्व को देखा था जिस अश्व के ही समीप में योगीन्द्र महामुनि कपिल जी समाधि में स्थित हुए उनको दिखाई दिये थे । १२। उन महामुनि को वहीं देखकर पापपूर्ण कर्मों वाले उन सबने काल की मति से प्रेरित होकर उन कपिल देव के ही ऊपर बड़ा कोप किया था और यह ही इस अश्व के हरण करने वाला है—यह कहा था । १३। इसके अनन्तर उन मुनि को क्रोध उत्पन्न हो गया था और उससे संभूत नेत्रों की अग्नि से जो दण्डों दिशाओं को दग्ध कर रही थी आपके समस्त पुत्र इन्धन हो गये थे और जल भूतकर उसके देह भस्मोभूत हो गये थे तथा सब नष्ट हो गये थे । १४।

**कूरा: पापसमाचाराः सर्वलोकोपरोधकाः ।**

**यतस्ते तेन राजेन्द्र न शोकं कर्तुं मर्हसि ॥ १५ ॥**

**स त्वं धीर्यधनो भूत्वा भवितव्यतयात्मनः ।**

**नष्टः मृतमतीतं च नानुशोचति पंडिताः ॥ १६ ॥**

**तस्मात्पीत्रमिमं बालमंशुमंतं महामतिम् ।**

**तु रगानयनार्थयि नियुक्त्वा नृपसत्तम ॥ १७ ॥**

**इत्युक्त्वा राजगाढ़लं सदस्यत्विक्समन्वितम् ।**

**क्षणेन पश्यतां तेषां नारदोऽतर्दधे मुनिः ॥ १८ ॥**

**तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नारदस्य नृपोत्तमः ।**

**दुःखशोकपरीतात्मा दध्यो चिरमुदारधीः ॥ १९ ॥**

**तं ध्यानयुक्तं सदसि समासीनमवाङ्मुखम् ।**

**वसिष्ठः प्राह राजानं सांत्वयन्देशकालवित् ॥ २० ॥**

**किमिदं धीर्यसाराणामवकाशं भवादृशाम् ।**

**लभते हृदि चेच्छोकः प्राप्तं धीरतया कलम् ॥ २१ ॥**

वे सब आपके पुत्र अत्यन्त कूर थे—पाप कर्मों का समाचरण करने वाले तथा समस्त लोकों के उपरोधक थे । क्योंकि ऐसे ही जघन्य थे अतः हे राजेन्द्र ! अब आप उनके लिए शोक करने के योग्य नहीं हैं । १५। आप तो धैर्य को ही धन मानने वाले हैं अतएव आपको धीरज की रक्षा करनी चाहिए । जो भी कुछ भवितव्यता होती है तथा नष्ट हो जाता है और व्यतीत हो जाता है उसको पण्डित लोग नहीं सोचा करते हैं । १६। इस कारण से अब इस अपने अशुमान् पौत्र को जो महान् मतिमान् है हे नृप श्रेष्ठ ! उस अश्व को लाने के कार्य में नियुक्त करो । १७। समस्त सदस्य और ऋत्विजों से युक्त उस नृप शादूल से यही कहकर सभी के देखते हुए एक ही क्षण में नारदजी अन्तर्धान हो गये थे । १८। फिर उस राजा ने नारदजी के कहे हुए उन बच्चों का श्रवण करके भी महान् दुःख और शोक में पूर्णतया चिरा हुआ होकर उभ उदार बुद्धि वाले ने बहुत काल तक चिन्तन किया था । १९। उस समय में राजा सभा में नीचे की ओर मुख बाजा होकर बैठे हुए थे । उसी समय में देश और काल के ज्ञाता वसिष्ठजी ने आकर राजा को सान्त्वना देते हुए कहा था । २०। आप तो धैर्य को बहुत महत्व देने वाले हैं फिर आप जैसे महान् पुरुषों को यह ऐसा अवसर क्यों प्राप्त हो रहा है । यदि आपके हृदय में भी शोक ने स्थान ग्रहण कर लिया है तो धीरता से क्या फल होता है । अथवा फिर तो धैर्य व्यथे ही है । २१।

दीर्घनस्यं जिथिलयन्सर्वं दिष्टवशानुगम् ।

मन्वानोऽनंतरं कृत्यं कर्तुं महस्यसंशयम् ॥ २२ ॥

वसिष्ठेनैव मुक्तस्तु राजा कार्यर्थितत्वविद् ।

धृतिं सत्त्वं समालंब्य तथेति प्रत्यभाषत ॥ २३ ॥

अंशुमंतं समादूय पौत्रं विनयशालिनम् ।

ब्रह्मा क्षत्रसभामध्ये जनेरिदमभाषत ॥ २४ ॥

ब्रह्मदंडहताः सर्वे पितरस्तव पुत्रक ।

पतिताः पापकर्मणो निरये जाश्वतीः समाः ॥ २५ ॥

त्वमेव संतर्तिर्मह्यं राज्यस्यास्य च रक्षिता ।

त्वदायत्तमणेषु मे शेयोऽमुत्र परत्र च ॥ २६ ॥

स त्वं गच्छ ममादेशात्पाताले कपिलांतिकम् ।

तुरगानयनार्थी यत्नेन महतान्वितः ॥२७

तं प्रार्थयित्वा विधिवत्प्रसाद्य च विशेषतः ।

आदाय तुरगं वत्स शीघ्रमागंतुमर्हसि ॥२८

आप इस मन की उदासी को जिथिल करके यह सोच लीजिये कि यह सभी कुछ भाग्य के कारण से ही हुआ है और इसमें अन्य किसी का भी कुछ वज्ञ नहीं चलता है। ऐसा ही मानकर बिना किसी संशय के जो भी कुछ पीछे करने का कृत्य है उसको ही करना अब उचित है। २२। वसिष्ठ जी के द्वारा इस रीति से कहा जाने पर कार्यों के अर्थ के तत्त्वों के ज्ञाता राजा सगर ने धीर्य का सहारा लिया था और मुनि से वही सब कुछ करने के लिये प्रार्थना की थी। २३। फिर नूप सगर ने अपने विनय शाली पौत्र अंशुमान् को अपने पास बुलाकर विप्रों और अश्रियों की सभा के मध्य में धीरे से उससे कहा था। २४। हे वेटा ! तुम्हारे सभी पितृगण ब्रह्मदण्ड से निहत हो गये हैं और वे पाप कर्मों के करने वाले सैकड़ों वर्षों के लिए नरक में पतित हो गये हैं। २५। इस समय में तो मेरे अन्य सभी पुत्रों का विनाश हो गया है मेरी केवल एक तुम ही सन्तति शेष रहे हो जो कि इस मेरे विशाल राज्य के रक्षा करने वाले हो। अब तो इस लोक में और परलोक में मेरे पूर्ण श्रेय को करना तुम्हारे ही अधीन है। २६। वह आप ही अब मेरी आज्ञा से पाताल लोक में कपिल मुनि के समीप में गमन करो। और महान् यत्न से उस यज्ञ के अश्व को यहाँ पर ले आओ। २७। आप वहाँ पर पहुँच कर उन मुनिवर से विधि के साथ प्रार्थना करना और विशेष रूप से उनको प्रसन्न कर लेना। फिर उस अश्व को अपने साथ लेकर हे वत्स। तुम बहुत ही शीघ्रता से यहाँ पर वापिस आ जाओ। २८।

### जैमिनिरुवाच-

एवमुक्तोऽशुमांस्तेन प्रणम्य पितरं पितुः ।

तथेत्युक्त्वा महाबुद्धिः प्रययो कपिलांतिकम् ॥२९

तमुपागम्य विधिवन्नमस्कृत्य यथामति ।

प्रश्रयावनतो भूत्वा शनैरिदसुवाच ह ॥३०

प्रसीद विप्रशाद्वूलं त्वामहं शरणं गतः ।

क्लोरं तं संहर त्रिपां त्रोक्तुमुलाकामम् ॥३१

त्वयि कुद्धे जगत्सर्वं प्रकाशमुपयास्यति ।

प्रशांतिमुपयाद्याशु लोकाः संतु गतव्यथाः ॥३२

प्रसन्नोऽस्मान्महाभाग पश्य सौम्येन चक्षुषा ।

ये त्वत्कोधाग्निनिर्दंग्यास्तत्संततिमवेहि माम् ॥३३

नाम्नांशुमंतं नप्तारं सगरस्य महीपतेः ।

सोऽहं तस्य नियोगेन त्वत्प्रसादाभिकांक्षया ॥३४

प्राप्तो दास्यसि चेद्ब्रह्मस्तुरगानयनाय च ।

जैमिनिरुचाच—

इति तद्वचनं श्रुत्वा योगीद्वप्रवरो मुनिः ॥३५

जैमिनि मुनि ने कहा—जब राजा के द्वारा अपने पौत्र अंशुमान् से इस प्रकार से कहा गया था तो महान् बुद्धिमान उसने पिता के पिता को प्रणाम किया था और मैं ऐसा ही करूँगा—यह कहकर वह कपिल मुनि के समीप में चला गया था ।२६। उसके समीप में प्राप्त होकर उसने विद्धि के साथ उनके प्रणाम किया था और फिर बुद्धि के अनुसार विनाशता से अवनत होकर धीरे से उनसे कहा था ।३०। हे विप्रशादूल ! मुझ पर कृपया प्रसन्न होइए—मैं तो आपके चरणों की शरण में समागत हुआ हूँ । आपके हृदय में जो कोप समुत्पन्न हो गया है उसका संहरण शीघ्र ही कर लीजिए क्योंकि आपका यह कोप समस्त लोकों के विनाश कर देने वाला है ।३१। आपके क्रुद्ध हो जाने पर तो यह समग्र जगत विनाश को ही प्राप्त हो जायगा । अब आप प्रशान्ति को शीघ्र प्राप्त हो जाइए । जिससे इन सब लोकों की व्यथा दूर हो जावे ।३२। हे महाभाग ! आप हमारे ऊपर प्रसन्न हो जाइए । सौम्य नेत्रों से हमको देखिए । जो आपके क्रोध की अग्नि से संदर्घ हो गये हैं उन्हीं की सन्तति मुझे आप समझिए ।३३। मेरा नाम अंशुमान है और मैं राजा सगर का नाती हूँ । वह मैं राजा के ही नियोग से आपकी प्रसन्नता की अभिकांक्षा से ही मैं यहाँ पर समागत हुआ हूँ ।३४। मैं तो उस यज्ञ के अश्व के ले जाने के ही लिए आया हूँ यदि कृपा कर मुझे देंगे । जैमिनि मुनि ने कहा—उस अंशुमान के इस वचन को सुनकर योगीन्द्र प्रवर मुनि ने अंशुमान का अवलोकन किया और परम प्रसन्न होकर यह वचन उससे कहा था ।३५।

अंशुमंतं समालोक्य प्रसन्न इदमब्रवीत् ।

स्वागतं भवतो वत्स दिष्ठा च त्वमिहागतः ॥३६

गच्छ शीघ्रं हयश्चायं नीयतां सगरांतिकम् ।

अधिक्षिप्तोऽस्य यज्ञोऽपि प्रागतः संप्रवत्तताम् ॥३७

द्रियतां च वरो मत्तस्त्वया यस्ते मनोगतः ।

दास्ये सुदुर्लभमपि त्वद्भक्तिपरितोषितः ॥३८

एषां तु संप्रणाशं हि गत्वा वद पितामहम् ।

पापानां मरणं त्वेषां न च जोचितुमर्हसि ॥३९

ततः प्रणम्य योगींद्रमंशुमानिदमब्रवीत् ।

वरं ददासि चेन्मह्यं वरये त्वां महामुने ॥४०

वरमहीमि चेत्त्वतः प्रसन्नो दातुमर्हसि ।

त्वद्रोषपावकप्लुष्टाः पितरो ये ममाखिलाः ॥४१

संप्रयास्यन्ति ते ब्रह्मन्निरयं शाश्वतीः समाः ।

ब्रह्मदंडहतानां तु न हि पिंडोदकक्रियाः ॥४२

हे वत्स ! आपका स्वागत है । बड़े ही हर्ष की बात है कि आप यहाँ पर आ गये हो । ३६। अब बहुत शीघ्र जाओ यह अश्व राजा सगर के समीप में ले जाओ । पूर्व से ही संप्रवृत्त हुआ इस राजा का यज्ञ रुक गया है उसको पूर्ण करो । ३७। और आपके मन में जो भी कुछ हो वह वरदान अब मुझसे प्राप्त कर लो । मैं तुम्हारी भक्ति से बहुत ही परितुष्ट हो गया हूँ यदि तुम्हारा वर परम दुर्लभ भी होगा तो भी मैं तुमको दे ही दूँगा । ३८। अब तुम इन साठ सहस्र नृप के पुत्रों का विनाश हो गया है—यह राजा से कह देना । ये महान पापी थे अतः इनके मरण के विषय में राजा से कह देना कि कोई शोक न करें । ३९। फिर उन योगीन्द्र मुनि को प्रणाम करके अंशुमान ने उनसे यह कहा था । हे मुने ! आप यदि मुझको वरदान देने की इच्छा करते हैं तो मैं आपसे वर का वरुण करूँ । ४०। यदि मैं वर पाने के योग्य हूँ तो आपसे वरदान प्राप्त करूँ किन्तु वह वरदान आप सुप्रसन्न होकर ही मुझे दीजिए । आपके रोष को अग्नि से मेरे सभी पितृगण संप्लुष्ट हो गये हैं । ४१। हे ब्रह्मन् ! क्योंकि उन्होंने आपका महान अपराध किया

या इससे वे सभी बहुत वर्षों तक नरक में जायेंगे । क्योंकि वे सब ब्रह्माण्ड से हत हैं अतएव उनकी पिण्डोदक क्रिया भी कुछ नहीं हो सकती है । ४२।

**पिण्डोदकविहीनानामिह लोके महामुने ।**

**विद्यते पितृसालोक्यं न खलु श्रुतिचोदितम् ॥४३**

**अक्षयः स्वर्गवासोऽस्तु तेषां तु त्वत्प्रसादतः ।**

**वरेणानेन भगवन्कृतकृत्यो भवाम्यहम् ॥४४**

**तत्प्रसीद त्वमेवैषां स्वगंतेर्वद कारणम् ।**

**येनोद्धारणमेतेषां वहनेः कोपस्य वै भवेत् ॥४५**

**ततस्तमाह योगींद्रः सुप्रसन्नेन चेतसा ।**

**निरयोद्धारणं तेषां त्वया वत्स न शक्यते ॥४६**

**तंश्चापि नरके तावद्वस्तव्यं पापकर्मभिः ।**

**कालः प्रतीक्ष्यतां तावद्यावत्त्वत्पौत्रसंभवः ॥४७**

**कालांते भविता वत्स पौत्रस्तव महामतिः ।**

**राजा भगीरथो नाम सर्वधर्मर्थिंतत्त्ववित् ॥४८**

**स तु यत्नेन महता पितृगौरवयंचितः ।**

**आनेष्यति दिवो गंगां तपस्तप्त्वा महदध्रुवम् ॥४९**

हे महामुने ! इस लोक में जिनकी पिण्डोदक क्रिया नहीं होती है वे पितृगण के लोक में उनका सालोक्य प्राप्त नहीं कर सकते हैं—ऐसा श्रुति सम्मत प्रमाण है । ४३। अब मेरा यही वर मुझे प्रदान कीजिए कि आपके प्रसाद से उनको अक्षय स्वर्ग का निवास प्राप्त होवे । हे भगवान ! इस वरदान से मैं कृत-कृत्य हो जाऊँगा । ४४। सो आप प्रसन्न हो जाइए और उनके स्वर्ग में गमन करने का कारण बता दीजिए । जिसके करने से उनका कोप की अग्नि से उद्धार हो जावे । ४५। इसके अनन्तर योगीन्द्र प्रसन्न चित्त से उससे बोले—हे वत्स ! उनका नरक से उद्धार तुम्हारे द्वारा नहीं किया जा सकता है । ४६। पाप कर्मों के करने वालों को तब तक नरक में बास करना ही होगा । उस समय की प्रतीक्षा करो जब तक तुम्हारे यहाँ पौत्र जन्म ग्रहण करे । ४७। कुछ काल के पश्चात् है वत्स ! तुम्हारा एक महामति पौत्र होगा । उसका शुभ नाम राजा भगीरथ होगा जो समस्त धर्मों के

अर्थों के तत्त्वों का जाता होगा । ४८। वह अपने पितरों के गोरव से सुसमन्वित होगा और महान् यत्न से परम धोर तप करके निश्चय ही स्वर्ग से यहाँ पर गङ्गा को लावेगा । ४९।

तदंभसा पावितेषु तेषां गात्रास्थिभस्मसु ।

प्राप्नुवंति गति स्वर्गं भवतः पितरोऽखिला ॥५०॥

तथेति तस्या माहात्म्यं गंगाया नृपनन्दन ।

भागीरथीति लोकेऽस्मिन्सा विख्यातिमुपेष्यति ॥५१॥

यत्तोयप्लावितेष्वस्थिभस्मलोमनखेष्वपि ।

निरयादपि संयाति देही स्वर्लोकमक्षयम् ॥५२॥

तस्मात्त्वं गच्छ भद्रं ते न शोकं कर्तुं मर्हसि ।

पितामहाय चैवैनमश्वं संप्रतिपादय ॥५३॥

जैमिनिरुवाच—

ततः प्रणम्य तं भक्त्या तथेत्युक्त् वा महामतिः ।

ययौ तेनाभ्यनुज्ञातः साकेतनगरं प्रति ॥५४॥

सगरं स समासाद्य तं प्रणम्य यथाकमम् ।

न्यवेदयच्च वृत्तांतं मुनेस्तेषां तथात्मनः ॥५५॥

प्रददौ तुरगं चापि समानीतं प्रयत्नतः ।

अतः परमनुष्ठेयमब्रवीर्तिक भयेति च ॥५६॥

उस पतित पावनी गङ्गा के पुनीत जल से उन सबके गात्र-अस्थि और भस्म के पवित्र हो जाने पर वे समस्त आपके पितृगण स्वर्ग में गति को प्राप्त करेंगे । ५०। हे नृपनन्दन उस गङ्गा का माहात्म्य ही ऐसा अद्भुत है । राजा भगीरथ के द्वारा यहाँ लाने से इस लोक में उसका नाम भागीरथी प्रसिद्ध होगा । ५१। गङ्गा का बड़ा अद्भुत माहात्म्य होता है कि उसके जल में किसी भी प्राणी की अस्थि-भस्म-नख आदि कोई भी भाग जब प्लावित हो जाता है तो वह प्राणी नरक की यातनाओं से भी मुक्त होकर अक्षय स्वर्गलोक में चला जाया करता है । ५२। इस कारण से अब आप यहाँ से चले जाइए—आपका कल्याण होगा—आपको कुछ भी शोक नहीं करना

ने कहा—इसके अनन्तर उस महामति ने—ऐसा ही करूँगा—यह कहकर उनको भक्ति से प्रणाम किया था और उनकी आज्ञा प्राप्त कर साकेत नगरी की ओर वहाँ से गमन किया था । ५४। राजा सगर के समीप में पहुँच कर उसने क्रमानुसार उनको प्रणाम किया था और फिर उन सबका—मूनि का और अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त राजा से निवेदन कर दिया था । ५५। और वह अश्व भी राजा को दे दिया था । जिसको वह बड़े प्रयत्न से लाया था । फिर राजा की सेवा में प्रार्थना की थी कि अब आगे मुझे क्या सेवा करनी चाहिए—यह अपनी आज्ञा प्रदान कीजिए । ५६।

—X—

## ॥ अंशुमान को राज्य प्राप्ति ॥

**जैमिनिरुवाच—**

ततः पौत्रं परिष्वज्य सगरः रमविह्वलः ।  
अभिनन्द्याशिषात्यर्थं लालयन्प्रशंसं ह ॥१॥  
अथ क्रृत्विक्सदस्यैश्च सहितो राजसत्तमः ।  
उपाक्रमत तं यज्ञं विधिवद्वेदपारग्नेः ॥२॥  
ततः प्रवद्वते यज्ञः सर्वसंपद्गुणान्वितः ।  
सम्यगौर्वंवसिष्ठाद्यैमुनिभिः संप्रवत्तितः ॥३॥  
हिरण्मयमयी वेदिः पात्राण्युच्चावचानि च ।  
सुसमृद्धं यथाशास्त्रं यज्ञे सर्वं बभूव ह ॥४॥  
एवं प्रवत्तितं यज्ञमृत्विजः सर्वं एव ते ।  
क्रमात्समापयामासुर्यजमानपुरस्सराः ॥५॥  
समापयित्वा तं यज्ञं राजा विधिविदां वरः ।  
यथावद्वक्षिणां चैव क्रृत्विजां प्रददौ तदा ॥६॥  
अथ क्रृत्विक्सदस्वानां ब्राह्मणानां तथाधिनाम् ।  
तत्कांक्षितादभ्यधिकं प्रददौ वसु सर्वेशः ॥७॥

जेमिनी मुनि ने कहा—इसके अनन्तर राजा सगर ने प्रेम से विट्ठल होकर अपने पौत्र का परिष्करण किया था और अत्यधिक आशीर्वचनों से उसका अभिनन्दन करके बहुत ही अधिक लाड़ करते हुए उसकी प्रशसा की थी । १। इसके उपरान्त सब ऋत्विजों और सदस्यों के सहित उस नूप श्रेष्ठ ने वेदों के पारगामी विप्रों के द्वारा उस यज्ञ का विधि सहित उपक्रम किया था । २। इसके अनन्तर सब प्रकार की सम्पत्ति और गुणों से संयुत वह यज्ञ आरम्भ हुआ था जिसका समारम्भ और्व और वसिष्ठ आदि मुनियों के द्वारा भली भाँति सम्प्रवर्त्तित किया गया था । ३। उस यज्ञ की वेदी सुवर्ण से निर्मित की गयी थी तथा उसके उपयुक्त सभी छोटे-बड़े पात्र अत्युत्तम जुटाये गये थे । उस यज्ञ में शास्त्र के अनुसार सभी वस्तुएँ सुसमृद्ध थीं । ४ इस प्रकार से आरम्भ किया हुआ वह यज्ञ था जिसको सभी ऋत्विजों ने किया था और यजमान के साथ उन्होंने उसको समाप्त किया था । ५। विधि के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ राजा ने उस यज्ञ को समाप्त कराकर उसी समय में ऋत्विजों के लिए उचित दक्षिणा दी थी । ६। इसके उपरान्त ऋत्विज-सदस्य-प्राह्यण तथा याचकों के लिए सबको जो भी उनका आकांक्षित था उस से अधिक घन दिया था । ७।

एवं संतप्यं विप्रादीन्दक्षिणाभिर्यथाक्रमम् ।

क्षमापयामास गुरुन्सदस्यान्प्रणिपत्य च ॥८

ब्राह्मणद्यैस्ततो वर्णकृत्वग्भिश्च समन्वितः ।

वारकीयाकदंदैश्च सूतमागधवंदिभिः ॥९

अन्वीयमानः सस्त्रीकः श्वेतच्छत्रविराजितः ।

दोधूयमानचमरो बालव्यजनराजितः ॥१०

नानावादित्रनिर्घोषेवंविरीकृतदिङ्‌मुखः ।

स गत्वा सरयूतीरं यथाशास्त्रं यथाविधि ॥११

चकारावभृथस्नानं मुदितः सह वन्धुभिः ।

एवं स्नात्वा सप्तनीकः सुहृदिभ्रात्रीह्यर्णः सह ॥१२

वाणावेणुमृदंगादिनानावादित्रनिःस्वनैः ।

मंगल्यवेदघोषेश्च सह विप्रजनेरितैः ॥१३

संस्तूयमानः परितः सूतमागधबंदिभिः ।

प्रविवेश पुरीं रम्यां हृष्टपुष्टजनायुताम् ॥१४

इस प्रकार से विमुग्ण आदि की दक्षिणाओं से भली-भाँति तृप्ति करके क्रम के अनुसार गुरुवर्गों को और सदस्यों को प्रणिपात करके उनसे क्षमा की याचना की थी । ८। फिर वह राजा शोभा यात्रा के स्वरूप में सरयू के तट पर गया था । उसके साथ द्राह्यण आदि सभी वर्णों वाले लोग तथा ऋत्विज गण थे और जो मार्ग में रोकथाम करने वाले लोग थे उनके भी समूह और सूत—मागध और बन्दी जन भी थे । ९। इन सब को साथ में लेकर अपनी पत्नियों के सहित राजा वहाँ से चला था जिसके ऊपर इवेत छत्र शोभित था । उसके दोनों और चमर ढुराये जा रहे थे तथा बाल व्यजन भी किये जा रहे थे । १०। अनेक वाद्य उस समय बजाये जा रहे थे जिनकी तुमुल छवनि से सभी दिशाओं कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था । इस रीति से वह शास्त्र के कथनानुसार विधिपूर्वक सरयू पर प्राप्त हो गया था । ११। समस्त बन्धु-बान्धवों के साथ परम प्रसन्न होकर अवभृथ अर्थात् यज्ञान्त स्नान राजा ने किया था । इस रीति के पत्नियों के सहित सुहृदगण और विप्रों के साथ स्नान करके वहाँ से राजा वापिस चला था । १२। उस समय में बीणा-वेणु-मृदङ्घ आदि अनेक बाजे रहे थे और माझलिक वेद-मन्त्रों की भी छवनि हो रही थी जिन मन्त्रों को द्राह्यण बोल रहे थे । १३। सूत-मागध और बन्दीजन सभी ओर से संस्तब्न कर रहे थे । इस रीति से हृष्ट-पुष्टजनों से समन्वित अपनी सुरम्यपुरो में राजा ने प्रवेश किया था । १४।

श्वेतव्यजनसच्छत्रपताकाठबजमालिनीम् ।

सित्कसंमृष्टभूभागापणशोभासमन्विताम् ॥१५

कैलासाद्रिप्रकाशाभिरुज्ज्वलां सौधपत्तिभिः ।

स तत्रागरुधूपोत्थगंधामोदितदिड्मुखम् ॥१६

विकीर्यमाणः परितः पौरनारीजनैर्मुहुः ।

लाजवर्षेण सानन्दं वीक्षमाणश्च नागरैः ॥१७

उपदाभिरनेकाभिस्तत्र तत्र वणिग्जनैः ।

संभाऽव्यमानः शनकैर्जंगाम स्वपुरं प्रति ॥१८

स प्रविश्य गृहं रम्यं सर्वमंडलमंडितम् ।  
 सभ्यक्संभावयामास सुहृदो ब्राह्मणानपि ॥१६  
 संसेव्यमानश्च तदा नानादेशेश्वरंनूपेः ।  
 सभायां राजगाढ़े लो रेमे शक इवापरः ॥२०  
 एवं सुहृदिभः सहितः पूरयित्वा मनोरथम् ।  
 सगरः सह भार्याभ्यां रेमे नृपवरोत्तमः ॥२१

उस पुरी की शोभा का वर्णन किया जाता है कि उसमें सर्वत्र छत्र पताका-छजाओं की मालायें दिखाई दे रही थीं सर्वत्र पुरी का भूभाग संमाजित तथा संसिक्त था और उसमें दुकान और बाजारों की भी अतीव अद्भुत शोभा हो रही थी । १५। उस पुरी में बड़े-बड़े भवनों की की पंक्तियाँ थीं जो बहुत ही ऊचे थे और जिनमें प्रकाश हो रहा था । वे ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानों उज्ज्वल केलाश गिरि के शिखर हों । वहाँ पर अगुरु की धूप की गन्ध चारों ओर फैल रही थी जिससे सभी दिशाओं के मुख आमोदित हो रहे थे । १६। नगर निवासिनी नारियों का समुदाय सभी ओर बारम्बार खीलों की वर्षा राजा के ऊपर कर रहा था और नगर निवासी पुरुष बड़े आनन्द के साथ राजा का मुखाबलोकन कर रहे थे । १७। साकेत पुरी के बणिग्जन अपनी झेटे लेकर जो अनेक प्रकार की थीं जहाँ-तहाँ पर राजा का सम्मान कर रहे थे । इस रीति से राजा धीरे-धीरे अपने पुर की ओर गये थे । १८। उस नृप ने सभा मण्डलों से मण्डित अपने सुरम्य गृह में प्रवेश किया था और वहाँ पर अपने सुहृदों का तथा ब्राह्मणों का भली भाँति सत्कार-समादर किया था । १९। वहाँ पर अनेक देशों के नृप उस समय में विद्यमान थे और उनके द्वारा राजा का पूर्ण सेवा-सम्मान किया गया था । वह राजाशाढ़े अपनी सभी में दूसरे इन्द्र के ही समान रमण किया करता था । २०। इस प्रकार से सुहृदों के सहित नृप नरोत्तम सगर ने मनोरथ को पूर्ण किया था और वह अपनी दोनों भार्याओं के साथ रमण किया करता था । २१।

अंशुमन्तं ततः पौत्रं मुदा विनयशालिनम् ।  
 वसिष्ठानुमते राजा यीवराज्येऽभ्युषेचयत् ॥२२

पौत्रानुवदानां तु वंभूतां सुहृदामपि ।

स प्रियोऽभवदत्यर्थमुदारैश्च गुणीर्नुपः ॥२३

प्रजास्तमन्वरञ्यंत बालमप्यमितीजसम् ।

नवं च शुक्लपक्षादौ शीतांशुमच्चिरोदितम् ॥२४

स तेन सहितः श्रीमान्सुहृद्भिरश्च नृपोत्तमः ।

भार्याभ्यामनुरूपाभ्यां रममाणोऽवसच्चरम् ॥२५

युवैव राजशादूलः साक्षाद्वर्म इबापरः ।

पालयामास वसुधां सशैलवनकाननाम् ॥२६

एवं महानहिमदीधितिवंशमौलिरत्नायामानवपुरुत्तर-  
कोसलेशः ।

पूर्णन्दुवत्सकललोकमनोऽभिरामः साद्वर्म

प्रजाभिरखिलाभिरलं जहर्षा ॥२७

इसके अनन्तर राजा सगर ने अपने विनयशील अंशुमान् पोत्र को बसिष्ठ मुनि की अनुमति प्राप्त करने पर योवराज्य पद पर बड़ी प्रसन्नता से अभिषिक्त कर दिया था । २१। वह नृप अपने अत्यन्त उदार गुण गणों से पुरवासी जनपद निवासी-बन्धुगण और सुहृदों का भी सबका परम प्रिय हो गया था । २३। जिस तरह से शुल्क पक्ष के आदि में अचिरोदित अथर्तु तुरन्त ही उगे हुए चन्द्रमा को जो कि नवीन होता है सभी उसका दर्शन करके परम प्रसन्न हुआ करते हैं ठीक उसी भाँति से वह राजा बालक था और अपरिमित ओज से समन्वित था अतः उसको बहुत प्यार किया करती थी । २४। वह उत्तम नृप सगर भी श्री से सुसम्पन्न उस नवीन राजा के साथ मित्रों के सहित अपनी अनुरूप दोनों भार्याओं के साथ रमण करता हुआ वहाँ पर निवास किया करता था । २५। यद्यपि वह राजाशादूल युवा ही था किन्तु साक्षात् दूसरे धर्म के ही समान था । उसने पर्वतों और काननों के सहित पृथ्वी का पालन किया था । २६। इस प्रकार से सूर्यवंश के शिरोमणि रत्न के सदृश वपु वाला महान् उत्तर कोसल का स्वामी राजा अंशुमान पूर्ण चन्द्र के समान सभी लोकों में परम सुन्दर अपनी सब प्रजाओं के साथ परमाधिक प्रसन्न हुआ था । २७।

## गंगा का पृथ्वी पर आगमन

**जेमिनिरुद्वाच—**

एतते चरितं सर्वं सगरस्य महात्मनः ।

संक्षेपविस्तराभ्यां तु कथितं पापनाशनम् ॥१॥

खंडोऽयं भारतो नाम दक्षिणोत्तरमायतः ।

नवयोजनसाहस्रं विस्तारपरिमंडलम् ॥२॥

पुत्रैस्तस्य नरेन्द्रस्य मृगयदिभस्तुरंगमम् ।

योजनानां सहस्रं तु खात्वाष्टौ विनिपातिताः ॥३॥

सगरस्य सुतैर्यस्माद्विद्वितो मकरालयः ।

ततः प्रभृति लोकेषु सागराख्यामवाप्तवान् ॥४॥

ब्रह्म पादावधि महीं सतीर्थक्षेत्रकाननाम् ।

अवधिः संक्रमयोमास परिक्षिप्य निजांभसा ॥५॥

ततस्तन्त्रिलयाः सर्वे सदेवासुरमानवाः ।

इतस्ततश्च संजाता दुःखेन महत्तान्विताः ॥६॥

गोकर्ण नाम विख्यातं क्षेत्रं सर्वसुराच्चितम् ।

साद्वियोजनविस्तारं तीरे पश्चिमवारिधेः ॥७॥

जेमिनि मुनि ने कहा—हमने यह महात्मा सगर का सम्पूर्ण चरित संक्षेप तथा विस्तार से आपके सामने कहकर सुना दिया है जो कि पापों का विनाश कर देने वाला है । १। यह दक्षिण से उत्तर पर्यन्त भारत खण्ड है । इसके विस्तार का परिमण्डल नौ सहस्र योजन होता है । २। उस नरेन्द्र के पुत्रों ने उस यज्ञ के अश्व की खोज करते हुए एक सहस्र योजन खोदकर आठ ही विनिपातित किये हैं । ३। क्योंकि सगर के पुत्रों के द्वारा वह समुद्र बढ़ा दिया गया है । तभी से लेकर इसका सागर यह नाम प्राप्त हो गया है । ४। तीर्थों और काननों तथा क्षेत्रों के सहित ब्रह्म पाद की अवधि तक इस मही को समुद्र ने अपने जल से परिक्षिप्त करके संक्रामित कर दिया था । ५। फिर सब निलय-देव-असुर और मानव महान् दुःख से संयुत होते हुए इधर-उधर हो गये थे । ६। पश्चिम समुद्र के तट पर हुए योजन विस्तार वाला गोकर्ण नामक क्षेत्र विख्यात था जो सभी सुरों के द्वारा अचित था । ७।

तत्रासंच्यानि तीर्थानि मुनिदेवालयाश्च वै ।  
 वसंति सिद्धसंघाश्च क्षेत्रे तस्मिन्पुरा नृप ॥८  
 क्षेत्रं तल्लोकविख्यातं सर्वपापहरं शुभम् ।  
 तत्तीर्थमब्देरपतदभागे दक्षिणपश्चिमे ॥९  
 यत्र सर्वे तपस्तप्त्वा मुनयः शंसितव्रताः ।  
 निर्वाणं परमं प्राप्ताः पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१०  
 तत्क्षेत्रस्य प्रभावेण प्रीत्या भूतगणैः सह ।  
 देव्या च सकलैर्देवैनित्यं वसति शंकरः ॥११  
 एनांसि यत्समुद्दिश्य तीर्थयात्रां प्रकुर्वताम् ।  
 नृणामाशु प्रणश्यन्ति प्रवाते शुष्कपर्णवत् ॥१२  
 तत्क्षेत्रसेवनरतिनैव जात्वभिजायते ।  
 समीपे वसमानानामपि पुंसां दुरात्मनाम् ॥१३  
 महता सुकृतेनैव तत्क्षेत्रगमने रतिः ।  
 नृणां संजायते राजन्नान्यथा तु कथंचन ॥१४

हे नृप ! पहिले वहाँ पर उस क्षेत्र में अगणित तीर्थ मुनियों और देवों के आलय और सिद्धों के संघ निवास किया करते थे । ८। वह क्षेत्र लोक में विख्यात था और परम शुभ समस्त पापों के हरण करने वाला था । वह तीर्थ समुद्र के दक्षिण भाग में गिर गया था । ९। जहाँ पर सब मुनिगण तप-श्चर्या करके संशित व्रत वाले हुए थे और वे सब निर्वाण पद को प्राप्त हो गये थे जिस पद पर पहुँच कर इस लोक में पुनः आवृत्ति नहीं होती है । १०। उस क्षेत्र का ऐसा प्रभाव था कि उसी के कारण से भगवान् शङ्कर वड़ी ही प्रीति से अपनी प्रिया देवी-सकल देवगण और भूत गणों के साथ निवास किया करते हैं । ११। इसी का उद्देश्य करके तीर्थ यात्रा करने वाले मनुष्यों के समस्त अघ तेज वायु में शुष्क पुत्रों के ही समान शीघ्र ही विनष्ट हो जाया करते हैं । १२। जो उसके समीप में ही निवास करने वाले दुरात्मा मनुष्य होते हैं और वहाँ पर निवासी हैं उनको कभी भी उस क्षेत्र के सेवन करने की रति नहीं हुआ करती है । १३। हे राजन् यह एक महान् सुकृत हो तभी उस क्षेत्र के गमन में रति हुआ करती है । यदि कोई महान् पुण्यों का

उदय नहीं तो फिर मानवों के हृदय में किसी भी प्रकार से उस क्षेत्र के सेवन करने की रति समुत्पन्न नहीं हुआ करती है । १४।

निर्बन्धेन तु ये तस्मिन्प्राणिनः स्थिरजंगमाः ।

च्रियंते नृप सद्वस्ते स्वर्गं प्राप्स्यन्ति शाश्वतम् ॥ १५ ॥

स्मृत्याऽपि सकलैः पापेर्यस्य मुच्येत मानवः ।

क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं सर्वतीर्थनिकेतनम् ॥ १६ ॥

स्नात्वा चैतेषु तीर्थेषु यजांतश्च सदाशिवम् ।

सिद्धिकामा वसंति स्म मुनयस्तत्र केचन ॥ १७ ॥

कामकोधविनिमुक्ता ये तस्मिन्वीतमत्सराः ।

निवसंत्यच्चिरणैव तत्सिद्धिं प्राप्नुवन्ति हि ॥ १८ ॥

जपहोमरताः शांता नियता ब्रह्मचारिणः ।

वसंति तस्मिन्ये ते हि सिद्धिं प्राप्यन्त्यभीप्सिताम् ॥ १९ ॥

दानहोमजपाद्यं वै पितृदेवद्विजार्चनम् ।

अन्यस्मात्कोटिगुणितं भवेत्तस्मिन्फलं नृप ॥ २० ॥

अंभोधिसलिले मग्ने तस्मिन् क्षेत्रेऽतिपावने ।

महता तपसा युक्ता मुनयस्तन्निवासिनः ॥ २१ ॥

हे नृप ! जो स्थावर या जंगम प्राणी निर्बन्ध होने के कारण से वहाँ पर अपना प्राण परित्याग किया करते हैं वे तुरन्त ही शाश्वत स्वर्ग की प्राप्ति कर लिया करते हैं । यद्यपि स्वर्ग का निवास सावधिक होता है और पुण्य क्षीण हो जाने पर वहाँ से हटना होता है परन्तु इस क्षेत्र के प्रभाव से सदा ही स्वर्ग निवास होता है । १५। इसकी ऐसी अद्भुत महिमा है कि यदि इसकी स्मृति भी कोई कर लेवे तो स्मरण मात्र से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाया करता है । यह सभी क्षेत्रों में उत्तम क्षेत्र है और सब तीर्थों का निकेतन है । १६। कुछ मुनिगण तो इन तीर्थों में स्नान करके सदा ही शिव का यजन करते हुए सिद्धि की कामना वाले यहाँ पर निवास किया करते थे । १७। जो मनुष्य काम और क्रोध से रहित होकर मत्सरता को

कर लिया करते हैं । १८। मन्त्रों के जाप करने तथा हवन करने में जो निरत रहते हुए परम शान्त-नियत तथा ब्रह्मचर्य पालन करने वाले इसमें निवास करते हैं वे भी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त कर लिया करते हैं । १९। हे नृप ! दान-होम-जप और पितृगण तथा देवगण एवं द्विजों का अर्चन आदि सभी धार्मिक क्रत्यों का फल इसमें करने से अन्य स्थल से करोड़ों गुना अधिक हुआ करता है । २०। अति पावन उस क्षेत्र के समुद्र के जल में निमग्न हो जाने पर जो मुनिगण अपने महान् तप से युक्त थे और वहाँ पर निवास किया करते थे वे पर्वत पर चले गये थे । २१।

**सह्यं शिखरिणं श्रेष्ठं निलयार्थं समारुहन् ।**

**वसंतस्तत्र ते सर्वे संप्रधार्यं परस्परम् ॥२२**

**महेंद्राद्वौ तपस्यंतं रामं गन्तुं प्रचक्षमुः ।**

**राजोवाच—**

अगस्त्यपीततोयेऽब्धौ परितो राजनंदनैः ॥२३

खात्वाधः पातिते क्षेत्रे सतीथश्चिमकानने ।

भूभागेषु तथान्येषु पुरग्रामाकरादिषु ॥२४

विनाशितेषु देशेषु समुद्रोपांतवर्त्तिषु ।

किमकाषु मूर्निश्रेष्ठं जनास्तन्निलयास्ततः ॥२५

तत्रैव चावसन्कुच्छातप्रस्थितान्यत्र वा ततः ।

कियता चैव कालेन संपूर्णोऽभूदपां निधिः ।

केन वापि प्रकारेण ब्रह्मन्तेतद्वदस्व मे ॥२६

**जैमिनिरुवाच—**

अनूपेषु प्रदेशेषु नाशितेषु दुरात्मभिः ॥२७

जनास्तन्निलयाः सर्वे संप्रयाता इतस्ततः ।

तत्रैव चावसन्कुच्छात्केचित्क्षेत्रनिवासिनः ॥२८

उन्होंने परम श्रेष्ठ सह्य पर्वत पर निवास के लिए समारोहण किया था । वहाँ पर ही सब निवास करने लगे थे और उन्होंने परस्पर में निश्चय किया था । २२। महेन्द्र पर्वत पर जो राम तपस्या कर रहे थे वहाँ पर गमन

करने का उन्होंने उपक्रम किया था । राजा ने कहा—जब अगस्त्य मुनि ने समुद्र के जल का पान कर लिया था और सभी और सगर पुत्रों ने उसका खनन किया था तथा सभी तीर्थ-क्षेत्र और कानन नीचे की ओर गिरा दिये गये थे और अन्य पुराणा म तथा आकर आदि भू भाग एवं देश विनाशित हो गये थे जो भी समुद्र के समीप में विद्यमान थे हे मुनिश्चेष्ट ! वहाँ पर पतरों वाले मनुष्यों ने फिर क्या किया था ? २३-२४। वे सब वहीं पर बस गये थे अथवा बड़ी कठिनाई से कहीं अन्य स्थलों में प्रस्थान कर गये थे ? फिर कितने समय में यह समुद्र परिपूर्ण हो गया था ? हे ब्रह्मात् ! यह किस प्रकार से सब हुआ था—यह आप अब कृपया मुझे बतलाइये २५। जैमिनि मुनि ने कहा—जब दुरात्माओं के द्वारा सभी अनूप प्रदेश नष्ट कर दिये गये थे तब वहाँ पर रहने वाले सभी जन इधर-उधर प्रयाण कर गये थे । कुछ क्षेत्र के निवासी बड़ी कठिनाई से वहीं पर निवास करने लगे थे । २६-२८।

एतस्मिन्नेव काले तु राजन्नंशुमतः सुतः ।

वभूव भुवि धर्मत्मा दिलीप इति विश्रुतः ॥२६॥

राज्येऽभिविच्य तं सम्यग्भुक्तभोगोऽशुमान्तृपः ।

वनं जगाम मेधावी तपसे धृतमानसः ॥३०॥

दिलीपस्तु ततः श्रीमानशेषां पृथिवीमिमाम् ।

पालयामास धर्मेण विजित्य सकलानरीम् ॥३१॥

भगीरथो नाम सुतस्तस्यासील्लोकविश्रृतः ।

सर्वधर्मर्थकुशलः श्रीमानमितविक्रमः ॥३२॥

राज्येऽभिषिच्य तं राजा दिलीपोऽपि वनं ययौ ।

स चापि पालयन्नुर्वीं सम्यग्विहतकंटकाम् ॥३३॥

मुमुदे विविधैर्भूर्गेऽदिवि देवपतिर्यथा ।

स शुक्रावात्मनः पूर्वं पूर्वजानां महीपतिः ॥३४॥

निरये पतनं घोरं विप्रकोपसमुद्भवम् ।

ब्रह्मादंडहतान्सर्वान्पितृञ्छत्वाऽतिदुःखितः ॥३५॥

इसी समय में हे राजन् ! अशुमान का सुत परम धर्मत्मा दिलीप —इस नाम से प्रसिद्ध हुआ था । अर्थात् दिलीप ने भूमि में जन्म ग्रहण

किया था । २६। समस्त सांसारिक भोगों के उपभोग करने वाले अशुमान नृप ने राज्यासन पर उस अपने पुत्र को अभिषिक्त करा दिया था और मेघा सम्पन्न वह तपश्चर्या करने का संकल्प मन में करके बन में चला गया था । ३०। फिर श्री सम्पन्न राजा दिलीप ने समस्त शत्रुओं को परास्त करके इस सम्पूर्ण भूमि का परिपालन धर्म पूर्वक किया था । ३१। इस दिलीप का पुत्र भगीरथ हुआ था । जो लोक में परम प्रख्यात था सभी धर्म-वर्ष में महाकुशल और श्रीमान् अपरिमित बल-विक्रम से समन्वित था । ३२। वह दिलीप भी अवसर आने पर राज्यासन पर भगीरथ का अभिषेक कराकर बन में गमन कर गया था । उस भगीरथ ने भी भूमि का परिपालन अच्छी तरह से किया था और उसने भूमि के सभी कण्टकों को हत कर दिया था । ३३। स्वर्गलोक में देवाधीश्वर की ही भाँति नाना प्रकार भोगों का उपभोग करके परम प्रसन्न हुआ था । उस राजा ने पहिले अपने पूर्वजों की जो दशा हुई थी उसका पूरा वृत्तान्त सुन लिया था । ३४। विश्र के कोप से महान धोर नरक में पूर्वजों का पतन हुआ है और उसके सभी पितृगण ब्रह्मदण्ड से मारे गये हैं—यह सब सुनकर उसको बहुत अधिक दुःख हुआ था । ३५।

राज्ये बंधुषु भोगे वा निर्वेदं परमं ययौ ।

स मंत्रि वरे राज्यं विन्यस्य तपसे बनम् ॥ ३६ ॥

प्रययो स्वपितृन्नाकं निनीयुन् पसत्तम् ।

तपसा महता पूर्वमायुषे कमलोदभवम् ॥ ३७ ॥

आराध्य तस्माल्लेभे च यावदायुर्निजेप्सितम् ।

ततो गंगां महाराज समाराध्य प्रसाद्य च ॥ ३८ ॥

वरमागमनं वद्रे दिवस्तस्वा महीं प्रति ।

ततस्तां शिरसा धत्तुं तपसाऽराध्यच्छिवम् ॥ ३९ ॥

स चापि तद्वरं तस्मै प्रददौ भक्तवत्सलः ।

मेरोमूर्ध्नस्ततो गंगां पतंती शिरसात्मनः ॥ ४० ॥

सग्राहनक्रमकरां जग्राह जगतां पतिः ।

सा तच्छ्रः समासाद्य महावेगप्रवाहिनी ॥ ४१ ॥

तजजटामंडले शुभ्रे विलिल्ये साऽतिगह्वरे ।

चुलकोदकवच्छंभोविलीनां शिरसि प्रभोः ॥४२

फिर तो राजा भगीरथ को उस विशाल अपने राज्य में—बन्धु-बान्धवों में तथा सुखोपभोगों में परम वैराग्य उत्पन्न हो गया था अर्थात् उसे कुछ भी नहीं सुहाता था और सबको उसने निस्सार ही समझ लिया था । उसने फिर अपने एक परमश्रेष्ठ मन्त्री को राज्य शासन का भार सेवा परियोग दिया था और तप करने के लिए बन में चला गया था । ३६। उसकी उत्कट इच्छा यही थी कि वह श्रेष्ठ नृप अपने पितरों को नरक की ओर यातना से मुक्त कर स्वर्ग वासी बना देवे । सर्वप्रथम उसने महान तप के द्वारा आयु के द्वारा आयु के लिए ब्रह्माजी की समाराधना की थी । ३७। उनकी आराधना से भगीरथ ने अपनी अभीष्ट आयु प्राप्त करली थी । फिर हे महाराज ! गङ्गा की आराधना की थी और गङ्गा को अपने ऊपर प्रसन्न कर लिया था । ३८। भगीरथने स्वर्ग से गङ्गा का भूमि पर समागमन करने का वरदान प्राप्त किया था । फिर उस स्वर्ग से समाप्तन करने वाली गंगा की विशाल धारा को अपने शिर पर धारण करने की कृपा करें—इसलिए शिव की आराधना तप द्वारा की थी । क्योंकि अन्य किसी की भी ऐसी शक्ति नहीं थी जो गंगा के वेग को सह सके । ३९। शिव भी भक्तों पर कृपा करने वाले हैं । उन्होंने भी यह वरदान दे दिया था । मेरु पर्वत की शिखर से समाप्तन करती हुई गंगा देवी को अपने शिर पर जगनों के स्वामी ने ग्रहण किया था जिसमें बड़े-बड़े ग्रह-नक्ष और मकर आदि सभी जल के जीव विद्यमान थे । वह गंगा उनके शिर पर सम्प्राप्त हुई थी जिसमें महान् प्रवाह का वेग विद्यमान था । ४०-४१। किन्तु वह गंगा अति गहन परम शुभ शिव के जटाजूटों का मण्डल था उसमें ही विलीन हो गयी थी । प्रभु शम्भु के शिर में वह ऐसे ही विलीन हो गयी थी जैसे एक चुल्ल जल विहीन हो जाया करता है । ४२।

विलोक्य तत्प्रमोक्षाय पुनराराधयद्वरम् ।

स तां शर्वप्रसादेन लब्धवा तु भुवमागताम् ॥४३

आनिन्ये सागरा दग्धा यत्र तां वै दिशं प्रति ।

सऽनुवजंती राजानं राजर्घ्येजतः पथि ॥

तत्प्रकल्पद्वयिलं तड़ा/वडागुरा गर्वता । MADE WITH LOVE BY Avinash

स तु राजऋषिः संकुद्धो यज्ञथाईऽखिले तथा ॥४५

मग्ने गंडूषजलवत्स पपौ तामशेषतः ।

मग्ने गंडूषजलवत्स पपौ तामशेषतः ।

अतंद्रितो वर्षणतं शुश्रूषित्वा स तं पुनः ॥४६

तस्मात्प्रसन्नान्नपतिलेभे गंगां महात्मनः ।

उषित्वा सुचिरं तस्य निसृता जठराच्छतः ॥४७

प्रथितं जाह्नवीत्यस्यास्ततो नामाभवद्भुवि ।

भगीरथानुगा भूत्वा तत्पितृणामशेषतः ॥४८

निजांभसाऽस्थिभस्मानि सिषेच सुरनिम्नगा ।

ततस्तदंभसा सिक्तेष्वस्थिभस्मसु तत्क्षणात् ॥४९

राजा भगीरथ ने जब ऐसा देखा तो उस गङ्गा देवी के प्रमोक्षण के लिये पुनः भगवान् शङ्कुर की आराधना की थी । फिर भगवान् शिव के प्रसाद से राजा भगीरथ ने गङ्गा को भूमि पर लाने का कार्य सम्पन्न किया था । ४३। राजा भगीरथ उस गङ्गा को उसी दिशा की ओर लाये थे जहाँ पर सगर सुत दग्ध हुए थे । वह गंगा राजा भगीरथ के पीछे ही अनुगमन कर रही थी कि उसके मार्ग में एक राजषि यज्ञ का यजन कर रहे थे । ४४। गंगा देवी ने उसके यज्ञ स्थल को सभी ओर से पूर्णतया प्लावित कर दिया वह राजषि बहुत ही अधिक क्रुद्ध हो गया था जबकि गंगा के द्वारा उसका सब यज्ञ वाट निमग्न हो गया था । उस राजषि ने एक कुल्ली के ही समान उस सम्पूर्ण गंगा का पान कर लिया था । फिर बहुत ही सावधान होकर भगीरथ ने सौ वर्षों तक उस राजषि की शुश्रूषा की थी । ४५-४६। फिर जब वह राजषि प्रसन्न हुए तो भगीरथ ने उन महान् आत्मा वाले से गङ्गा की प्राप्ति की थी । वहुत समय पर्यन्त निवास करके फिर उनके जटा से गंगा निकली थी । इसीलिए सभी से जहनु के उदर से निकलने से ही उनका भूमण्डल में जाह्नवी—यह नाम प्रख्यात हो गया था । फिर भागीरथ के पीछे अनुगमन करने वाली होकर उसके समस्त पितरों का उसने उद्धार कर दिया था । ४७-४८। फिर सुर नदी ने अपने परम पुनीत जल से सगर सुतों की अस्थियों और भस्म का सेवन किया था । गंगा जल के सेचन होने पर जो उनकी अस्थियाँ और भस्म पर हुआ था उसी क्षण में उन सबका उद्धार हो गया था । ४९।

निरयात्सागरः सर्वे नष्टपापा दिवं ययुः ।  
 एवं सा सागरान्सवर्णन्दिवं नीत्वा महानदी ॥५०  
 तेनैव मार्गेण जवात्प्रयाता पूर्वसागरम् ।  
 मेरोमूर्धन्श्चतुर्भेदा भूत्वा याता चतुर्दिशम् ॥५१  
 चतुर्भेदतया चाभूतस्या नामनां चतुष्टयम् ।  
 सीता चालकनंदा च सुचक्षुभद्रवत्यपि ॥५२  
 अगस्त्यपीतसलिलाच्चिरं शुष्कोदका अपि ।  
 गंगांभसा पुनः पूर्णश्चत्वारोऽब्रुद्ययोऽभवन् ॥५३  
 पूर्यमाणे समुद्रे तु सागरे परिवर्द्धिते ।  
 अंतहिताऽभवन्देशा वहवस्तत्समीपगाः ॥५४  
 समुद्रोपांतवर्तीनि क्षेत्राणि च समंततः ।  
 इतस्तततः प्रयाताश्च जनास्तन्निलया नृप ॥५५  
 गोकर्णमिति च क्षेत्रं पूर्वं प्रोक्तं तु यत्तव ।  
 अर्णवोपात्तवर्तित्वात्समुद्रेऽतद्धिमागमत् ॥५६  
 ततस्तन्निलयाः सर्वे तदुद्धाराभिकाञ्जिणः ।  
 सह्याद्रेभूर्गुणादूलं द्रष्टुकामा ययुनृप ॥५७

नरकों में जो घोर यातना पा रहे थे वे सभी सगर के पुत्र समस्त पापों के नष्ट होने से नरक से उसी क्षण में स्वर्ग लोक में चले गये थे । इस रीति से उस महा नदी ने सब सगर सुतों को स्वर्ग में पहुँचा कर फिर वहन करने लगी थी । ५०। उसी मार्ग से बड़े वेग से उसने पूर्व सागर की ओर प्रयाण किया था । मेरु पर्वत के मस्तक से चार भेद होकर वह चारों दिशाओं में गमन कर गयी थी । ५१। उसके चार भेद होने से उसके नाम भी चार हो गये थे । वे नाम में हैं—सीता—अलक नन्दा—सुचक्षु और भद्रवती ये चार नाम हुए हैं । ५२। अगस्त्य मुनि के द्वारा जल पीये जाने पर बहुत समय तक जल के शुष्क ही जाने वाले चारों समुद्र भी गंगा के जल से पुनः परिपूर्ण जल वाले हो गये थे । ५३। समुद्र के पूरित होने पर और सगर सुतों के द्वारा परिवर्द्धित हो जाने पर उसके समीप में रिथत बहुत से

देश थे वे सब लुप्त हो गये थे अर्थात् समुद्र में लीन हो गये थे । ५४। समुद्र के समीप में रहने वाले समस्त क्षेत्र सभी ओर से निमग्न हो गये थे और है नृप ! वहाँ पर जो भी जन निवास करते थे वे सभी इधर-उधर चले गये थे । ५५। गोकर्ण नाम वाला क्षेत्र है जिसके विषय में पूर्व में ही आपसे कहा गया था । वह समुद्र के ही समीप में विद्यमान होने से समुद्र के ही अन्दर में छिप गया था । ५६। इसके अनन्तर उसके विनाश करने वाले सब उसके उद्धार की आकाढ़का वाले थे और सह्य अद्वि पर भृगुशार्दूल की देखने की इच्छा वाले हे नृप ! वे सब वहाँ गये थे । ५७।

### गान्धर्व मूर्छना लक्षण

सूत उवाच—

विसर्गं मनुपुत्राणां विस्तरेण निबोधत ।

पृष्ठध्रो हिंसयित्वा तु गुरोर्गी निशि तत्कथे ॥१॥

जापाच्छूद्रत्वमापन्नश्च्यवनस्य महात्मनः ।

करुषस्य तु कारुषाः क्षतिव्या युद्धदुर्मदाः ॥२॥

सहस्रं क्षतिव्यगणो विक्रांतः संबभूव ह ।

नाभागो दिष्टपुत्रस्तु विद्वानासीद्गलंदनः ॥३॥

भलंदनस्य पुत्रोऽभृतप्रांशुनर्मिमहाबलः ।

प्रांशोरेकोऽभवत्पुत्रः प्रजापतिसमो नृपः ॥४॥

संवर्तेन दिवं नीतः समुहृत्सहवांधवः ।

विवादोऽत्र महानासीत्संवर्त्तस्य वृहस्पतेः ॥५॥

ऋद्धि दृष्ट्वा तु यज्ञस्य क्रुद्धस्तस्य वृहस्पतिः ।

संवर्त्तेन तते यज्ञे चुकोप स भृशं तदा ॥६॥

लोकानां स हि नाशाय देवर्तैर्हि प्रसादितः ।

मरुत्तश्चक्रवर्त्ती स नरिष्यंतमवासवान् ॥७॥

श्री सूतजी ने कहा—अब आप मनु के पुत्रों का विसर्ग विस्तार के साथ समझ लीजिए । पृष्ठध्र रात्रि में गुरुदेव की गो की हिंसा करके उसके कथ्य होने पर महात्मा च्यवन के शाप से शूद्रता को प्राप्त हो गया था । करुष

के कारण अत्रिय हुए थे जो युद्ध करने में दुर्मिल थे । १-२। यह एक सहस्र अत्रियों का समुदाय था जो बहुत ही अधिक विकास्त हुआ था दिष्ट पुत्र नाभाग था और भलन्दन विद्वान था । ३। इस भलन्दन का पुत्र महान् बलवान् प्रांशु नाम वाला हुआ था । प्रांशु का एक ही पुत्र हुआ था जो नृप प्रजापति के ही समान था । ४। उसको सुहृत् और वान्धवों के साथ संबर्त्त के द्वारा स्वर्ग में ले जाया गया था । इस विषय में संबर्त्त का और वृहस्पति का बड़ा भारी विवाद हुआ था । ५। उसके यज्ञ की ऋद्धि का अवलोकन करके वृहस्पति क्रुद्ध हो गये थे । संबर्त्त के द्वारा यज्ञ के विस्तृत होने पर उस समय में वह अत्यधिक कुपित हो गया था । ६। लोकों के विनाश करने के लिए देवगणों के द्वारा वह प्रसन्न किया था । मरुत् चक्रवर्ती उसने नरिष्यन्त को बसाया था । ७।

नरिष्यंतस्य दायादो राजा दंडधरो दमः ।

तस्य पुत्रस्तु विज्ञातो राजाऽसीद्राष्ट्रवद्धनः ॥८

सुधृतिस्तस्य पुत्रस्तु नरः सुधृतिः पुनः ।

केवलस्य पुत्रस्तु बंधुमान्केवलात्मजः ॥९

अथ बंधुभृतः पुत्रो धर्मात्मा वेगवान्नृप ।

बुधो वेगवतः पुत्रस्तृण्विदुर्बुधात्मजः ॥१०

त्रेतायुगमुखे राजा तृतीये संबभूव ह ।

कन्या तु तस्येडविडा माता विश्रवसो हि सा ॥११

पुत्रो योऽस्य विशालोऽभूद्राजा परमधार्मिकः ।

दाश्वान्प्रख्यातवीर्योऽजा विशाला येन निर्मिता ॥१२

विशालस्य सुतो राजा हेमचन्द्रो महाबलः ।

सुचन्द्र इति विख्यातो हेमचन्द्रादनन्तरः ॥१३

सुचन्द्रतनयो राजा धूम्राश्व इति विश्रुतः ।

धूम्राश्वतनयो विद्वान्सृजयः समपद्यत ॥१४

नरिष्यन्त का दायाद दण्डधर राजा दम था । उसका पुत्र परम विज्ञान राष्ट्र वर्धन राजा हुआ था । ८। उसका पुत्र सुधृति हुआ था और जिस सुधृति से नर पुत्र ले जन्म प्राप्त किया था । MADE WITH LOVE BY Avinash Hinduism Discord Server <https://discord/gdharma>

केवलात्मज बन्धुमान् हुआ था । १। हे नृप ! फिर बन्धुमान् के यहाँ धर्मत्मा वेगवान् ने पुत्र के रूप में जन्म धारण किया था । वेगवान् का पुत्र दुध हुआ था और दुध का पुत्र तृण बन्धु उत्पन्न हुआ था । २०। तृतीय त्रेता के मुख में राजा हुआ था । उसकी कन्या इडविडा थी जो विश्रवा की माता थी । २१। इसका पुत्र विशाल राजा आ था जो परम धार्मिक था । यह दाशवान् और प्रख्यात वीर्यं तथा ओज वाला था जिसने विशाल का निर्माण किया था । २२। इस विशाल का पुत्र महावलवान् हेमचन्द्र उत्पन्न हुआ था । इस हेमचन्द्र के अनन्तर सुचन्द्र नाम वाला विख्यात हुआ था । २३। सुचन्द्र का पुत्र राजा धूम्राश्व हुआ था जो प्रसिद्ध था और धूम्राश्व का पुत्र परम विद्वान् सृजय हुआ था । २४।

सृजजयस्य सुतः श्रीमान्सहदेवः प्रतापवान् ।

कृशाश्वः सहदेवस्य पुत्रः परमधार्मिकः ॥ १५ ॥

कृशाश्वस्य महातेजा सोमदत्तः प्रतापवान् ।

सोमदत्तस्य राजर्णः सुतोऽभूजनमेजयः ॥ १६ ॥

जनमेजयात्मजश्चैव प्रमतिनामि विश्रुतः ।

तृणबिदुप्रभावेण सर्वे विशालका नृपाः ॥ १७ ॥

दीघयुषो महात्मानो वीर्यवन्तः सुधार्मिकाः ।

शर्यतिर्मिथुनं त्वासीदानत्तो नाम विश्रुतः ॥ १८ ॥

पुत्रः सुकृत्या कन्या च भार्या या च्यवनस्य च ।

आनर्त्तस्य तु दायादो रेवो नाम सुवीर्यवान् ॥ १९ ॥

आनर्त्तविषयो यस्य पुरी चापि कुशस्थली ।

रेवस्य रेवतः पुत्रः ककुदी नाम धार्मिकः ॥ २० ॥

ज्येष्ठो भ्रातुर्गतस्यासीद्राज्यं प्राप्य कुशस्थलीम् ।

कन्यया सह श्रुत्वा च गांधर्वं ब्रह्मणोऽतिके ॥ २१ ॥

इस सृजय का जो पुत्र समुत्पन्न हुआ था वह श्री सम्पन्न और प्रताप वाला सहदेव था । सहदेव के पुत्र का नाम कृशाश्व था । यह भी परम धार्मिक हुआ था । २५। कृशाश्व का तनय सोमदत्त हुआ था जो महान तेज वाला था और परम प्रतापी था । राजर्णि सोमदत्त के यहाँ जनमेजय ने पुत्र

के रूप में जन्म धारण किया था । १६। इस जनमेजय का पत्र प्रमति नाम वाला बहुत ही प्रछयात हुआ था । तृणबिन्दु के प्रभाव से ये सब वैशालक नृप हुए थे । १७। ये सभी सुदोर्घ आयु वाले—महान् समुच्च आत्माओं वाले—बल—वीर्य से सुसमन्वित और बहुत ही अधिक धार्मिक वृत्ति वाले हुए थे । शयर्ति के एक जोड़ा हुआ था जो आनन्द के नाम विश्रुत था । १८। एक पुत्र था और एक सुकन्या नाम वाली कन्या थी जो च्यवन ऋषि की भार्या थी । उस आनन्द के दायकों ग्रहण करने वाला पुत्र रेव नामक हुआ था जो बड़ा वीर्य वाला था । १९। आनन्द का देश था जिसको कुशस्थली नाम वाली पुरी थी । रेव का पुत्र रेवत कुदूमी नाम वाला बड़ा धार्मिक हुआ था । २०। यह सौ भाइयों में सबसे बड़ा था । इसने ही कुशस्थली के राज्य को प्राप्त किया था । ब्रह्माजी के सभीप में कन्या का श्रवण करके उसके साथ गन्धर्व ज्ञान कर लिया था । २१।

मुहर्त्ति देवदेवस्य मार्त्यं बहुयुगं विभो ।

आजगाम युवा चैव स्वां पुरीं यादवैर्वताम् ॥२२॥

कृतां द्वारवतीं नाम बहुद्वारां मनोरमाम् ।

भोजवृष्ण्यधकंगुप्तां वसुदेवपुरोगमैः ॥२३॥

तां कथां रेवतः श्रुत्वा यथात्त्वमर्दिदमः ।

कन्यां तु बलदेवाय सुव्रतां नाम रेवतीम् ।

दत्त्वा जगाम शिखरं मेरोस्तपसि संस्थितः ॥२४॥

रेमे रामश्च धमत्तिमा रेवत्या सहितः किल ।

तां कथामृष्यः श्रुत्वा प्रच्छुस्तदनंतरम् ॥२५॥

ऋषय ऊचुः—

कथं बहुयुगे काले समतीते महामते ।

न जरा रेवतीं प्राप्ता रैवतं वा ककुचिनम् ।

एतच्छुश्रूषमाणान्नो गान्धर्वं वद चैव हि ॥२६॥

सत उवाच—

न जरा क्षुत्पिपासे वा न च मृत्युभयं ततः ।

न च रोगः प्रभवति ब्रह्मलोकं गतस्य ह ॥२७॥

गांधर्वं प्रति यच्चापि पृष्ठस्तु मुनिसत्तमाः ।

ततोऽहं संप्रवक्ष्यामि याथात्थ्येन सुव्रताः ॥२८

हे विभो ! वह समय देवों के देव का तो एक ही मुहूर्त था और मनुष्यों का वह समय बहुत से युगों के बराबर था । फिर वह युवा यादवों के समुदायों से घिरी हुई अपनी पुरी में आ गया था । २२। वह पुरी द्वारवती नाम वाली की गयी थी जिसमें बहुत से द्वार थे और यह परम मनोहर थी । भोज-वृष्णि और अन्धक जो यादवों के विभिन्न भेद थे जिसमें वसुदेव अग्रगामी थे—इन सबने उसकी रक्षा की थी । २३। अरियों के दमन करने वाले रेवत ने ठोक तात्त्विक रूप से उस कथा का श्रवण किया और फिर उसने अपनी सुन्दर व्रत वाली रेवती नाम वाली कन्या को बलदेवजी के लिए समर्पित करके वह फिर मेरु पर्वत के शिखर तप चला गया था और वहाँ पर करने में संस्थित हो गया था । २४। फिर बलरामजी भी जो परम धर्मतिमा थे, अपनी प्रिय पत्नी रेवती के साथ रमण किया करते थे । इस कथा को ऋषियों ने श्रवण करके इसके पश्चात उन्होंने पूछा था । २५। ऋषियों ने कहा—हे महामते ! बहुत युगों वाले काल के व्यतीत जाने पर भी रेवती को और ककुदमो रेवत को जरावरस्या किस कारण से प्राप्त नहीं हुई थी ? इस सबके श्रवण करने की इच्छा वालों को वह गान्धर्वं क्या है—यह भी बतलाने की कृपा कीजिए । २६। श्रीसूतजी ने कहा—जो प्राणी ब्रह्मलोक में गमन कर जाया करता है उसको न तो कोई रोग ही होता है और उसको न मृत्यु का भय रहता है । वहाँ पर जरा और भूख प्यास भी नहीं सताया करती हैं । २७। हे श्रेष्ठ मुनिगणो ! आपने जो मुझसे गान्धर्वं के विषय में पूछा है उसको भी मैं हे सुव्रतो ! ठीक-ठीक रूप से बतलाऊंगा । २८।

सप्त स्वरात्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकर्विष्टिः ।

तानाश्चंकोनपंचाशदित्येतत्स्वरमंडलम् ॥२९

षड्जंषभी च गांधारो मध्यमः पंचमस्तथा ।

धैवतश्चापि विज्ञेयस्तथा चापि निषादकः ॥३०

सौवोरा मध्यमा ग्रामा हरिणाश्च तथैव च ॥३१

तस्याः कालायनोपेताश्चतुर्थशुद्धमध्यमाः ।

अग्निं च पौषा वै देव हृष्टवा कांच यथाक्रमः ॥३२

मध्यमग्रामिकाख्याता पद्जग्रामा निबोधत ।

उत्तरं मन्द्रा रजनी तथा वाचोन्नरायतः ॥३३

मध्यषड्जा तथा चैव तथान्या चाभिमुदगणा ।

गान्धारग्रामिका श्यामा कीतिमाना निबोधत ॥३४

अग्निष्टोमं तु माद्यं तु द्वितीयं वाजपेयिकम् ।

यवरातसूयस्तु षष्ठवत् सुवर्णकम् ॥३५

सात तो स्वर होते हैं—तीन ग्राम हैं और इकीस मूर्छनाएँ होती हैं । और तान उनचास हैं—यह सम्पूर्ण स्वर मण्डल होता है । २६। सात स्वरों के नाम बताये जाते हैं—पद्ज-ऋषभ-गान्धार मध्यम-घैवत और निषाद ये सात स्वर हैं । ३०। सौबीरा-मध्यमा और हरिणा—ये तीन ग्राम हैं । ३१। उसके कालायनोपेता चतुर्था शुद्ध मध्यमा है । हे देव ! क्रमानुसार नगिन-पौषा और काँच ये देख कर होती हैं । ३२। ये मध्य ग्रामिका कही गयी है । अब षड्ज ग्रामा को समझ लीजिए । उत्तर-मन्द्रा-रजनी और वाचो-न्नारायता है । ३३। तथा मध्यषड्जा है और अन्य अभिमुदगणा होती है । गान्धारग्रामिका-श्यामा अब कीतिमाना होती है उसको समझलो । ३४। अग्निष्टोम-माद्य-द्वितीय वाजपिक-यवरातसूया-षष्ठवत्-सुवर्णक है । ३५।

सप्त गौसवना नाम महावृष्टिकताष्टमाम् ।

ब्रह्मदानं च नवमं प्राजापत्यमनंतरम् ।

नागयक्षाश्रयं विद्वान् तदगोत्तरस्तथैव च ॥३६

पदकांतमृगक्रांतं विष्णुक्रांतमनोहरा ।

सूर्यकांतधरेण्यैव संतकोकिलविश्रुतः ॥३७

तेनवानित्यपवशपिण्डाचातीवनह्यपि ।

सावित्रमर्घसावित्रं सर्वतोभद्रमेव च ॥३८

मनोहरमधात्र्यं च गन्धवानुपतश्च यः ।

अलंबुषेमथो विष्णुवैष्णवरावुभौ ॥३९

सागराविजयं चैव सर्वभूतमनोहरः ।

हतोन्नामेव विजातीत संक्षिं तु प्रियमेव च ॥४०

मनोहरमधात्र्यं च गन्धवर्निपतश्च यः ।

अलंकुसेष्टस्य तथा नारदप्रिय एव च ॥४१

कथितो भीमसेनेन नगरातानयप्रियः ।

विकलोपनीतविनताश्रीराघ्यो भार्गवप्रियः ॥४२

सप्त गौसवना और महावृष्टिकता अष्टमा है और प्रह्लादान नवम है ।  
इसके अनन्तर प्राजापत्य है । नागयक्षाश्रय विद्वान् और तद्गोत्तर तथा है । ३६। पदक्रान्त-मृगक्रान्त-विष्णुक्रान्त-मनोहरा । सूर्यकान्त धरेण्या-सन्त कोकिलविश्रुत है तेनवानित्यपवशपिशाचा-अतीवनही-सावित्र-अर्धं सावित्र और सर्वंतोभद्र है । ३७-३८। मनोहर-अधात्र्य और गन्धवर्निपत है । अलम्बुषेष्ट-विष्णु और वैष्णवर ये दो हैं । ३९। सागरा विजय और सर्वभूत मनोहर-हृतोत्सृष्ट-स्कन्ध और प्रिय जान लेना चाहिए । ४०। जो मनोहर अधात्र्य तथा गन्धवर्निपत है । अलम्बुषेष्ट की और नारद प्रिय है । ४१। नगरातान-प्रिय भीमसेन के द्वारा कहा गया है । विकलोपनीत विनता श्री नाम वाला भार्गव को प्रिय है । ४२।

चतुर्दश तथा पंचदशेच्छंतीह नापदः ।

ससौबीरां सुसोबीरा ब्रह्मणो हयुपगीयते ॥४३

उत्तरादिस्वरश्चैव ब्रह्मा वै देवतास्त्रयः ।

हरिदेशसमुत्पन्ना हरिणस्याव्यजायत ॥४४

मूर्छना हरिणा ते वै चन्द्रस्यास्याधिदैवतम् ।

करोपनीता विवृतावनुद्रिः स्वरमंडले ॥४५

साकलोपनता तस्मान्मनुतस्यान्नदैवतः ।

मनुदेशाः समुत्पन्ना मूर्छनाशुद्धमात्मना ॥४६

तस्मात्तस्मान्मृगमार्गमृज्ञेद्रोस्याधिदैवता ।

सावाश्रमसमाद्युम्ना अनेकापोरुषानखान् ॥४६

मूर्छनायोजना हयेषा स्याद्रजसारजनी ततः ।

तानि उत्तरतद्रांसपदगदैवतकं विदुः ॥४८

तस्मादुत्तरता यावत्प्रथमं स्वायमं विदुः ।

तमोदुत्तरमंद्रोयदेवतास्याध्रुवेत् च ॥४९

यहाँ पर चतुर्दश और पञ्चदश की नारद इच्छा किया करते हैं ? ससोबीरा और सुसोबीरा ब्रह्माजी की उपगीत की जाती हैं । ४३। और उत्तरादि स्वर है । ब्रह्मा तीन देवता हैं । हरि देश में समुत्पन्ना हरिण की हुई थी । ४४। जो मूर्छना हरिण है वे इस चन्द्रकी अधिदेवत हैं । निवृत्ति में करोपनीत स्वरमण्डल में अनुद्रि है । ४५। साकलोपनता है इसलिये मन उसका अनन्देवत है । मनुदेशा समुत्पन्ना मूर्छना आत्मा से शुद्ध है । ४६। इससे मृगमार्गी मृगेन्द्र इसका अधिदेवता है । वह अनेक पीरुषा नखों को समुद्धुम्ना है । ४७। यह मूर्छना योजना रजसारजनीत से होती है । उनको उत्तरमद्वांस सपदग देवत जाननी चाहिए । ४८। इस कारण से जब तक उत्तरता हो तब तक इस स्वायम जानना चाहिए । इस देयता तमोदुत्तर मन्द्रोम निश्चित रूप से समझना चाहिए । ४९।

अपामदुत्तरत्वावधीवतस्योत्तरायणः ।

स्यादिजमूर्छनाट्येच पितरः श्राद्धदेवताः ॥५०॥

शुद्धपद्मस्वरं कृत्वा यस्मादग्निमहर्षयः ।

उपैति तस्मान्नजानीयाच्छुद्धयच्छिकरासभाः ॥५१॥

इत्येता मूर्छनाः कृत्वा यस्यामीहशभावनः ।

पक्षिणां मूर्छनाः श्रुत्वा पक्षोका मूर्छनाः स्मृताः ॥५२॥

नागादृष्टिविषागीता नोपसर्पतिमूर्छनाः ।

नानासाधारणाश्चैव वडवात्रिविदस्तथा ॥५३॥

अपामदुत्तरत्व होने से अवधीवत का उत्तरायण हैं । यह इजमूर्छना है और पितर श्राद्ध देवता होते हैं । ५०। शुद्ध पद्म स्वर करके जिससे अग्नि महर्षि हैं । इससे प्राप्त होता है अतः शुद्धयच्छिकरा सभा नहीं जाननी चाहिए । ५१। ये इतनी मूर्छना करके जिसमें जैसा भी भाव हो । पक्षियों की मूर्छना का श्रवण करके पक्षी का मूर्छना कही गयी है । नानादृष्टिविषा गीता वडवा त्रिविद होती हैं । ५२-५३।

### गान्धर्व लक्षण वर्णन

पूर्वचार्यमतं बुद्धा प्रवेक्ष्याम्यनुपूर्वशः ।

विख्यातात्वे अलंकारांस्तन्मै निगदतः शृणु ॥१॥

अलंकारास्तु वक्तव्याः स्वैः स्वैर्वर्णैः प्रहेतवः ।  
 संस्थानयोगैश्च तथा सदा नाटचाद्यवेक्षया ॥२  
 वाक्यार्थपदयोगार्थेरलंकारेश्च पूरणम् ।  
 पदानि गीतकस्याहुः पुरस्तात्पृष्ठोऽथ वा ॥३  
 स्थातोनित्रीनरो नीड्डीमनः कंठशिरस्थया ।  
 एतेषु त्रिषु स्थानेषु प्रवृत्तो विधिरुत्तमः ॥४  
 चत्वारः प्रकृतौ वर्णाः प्रविचारश्चतुर्विधा ।  
 विकल्पमष्टधा चैव देवाः षोडशधा विदुः ॥५  
 सृष्टो वर्णः प्रसंचारी तृतीयमवरोहणम् ।  
 आरोहणं चतुर्थं तु वर्णं वर्णविदो विदुः ॥६  
 तत्रैकः संचरस्थायी संचरस्तु चरोऽभवत् ।  
 अवरोहणवर्णनामवरोहं विनिर्दिशेत् ॥७

श्री सूतजी ने कहा—मैं अपने पूर्व में होने वाले आचारों के मत को समझ कर क्रम से आरम्भ से अन्त तक बताऊँगा जो भी अलंकार परम प्रसिद्ध हैं उनको मुझ से आप लोग अब श्रवण कीजिए ।१। जो अपने-अपने वर्णों से प्रकृष्ट हेतुओं वाले हैं वे ही अलंकार बताने चाहिए । और जो नाट्य आदि के अवेक्षण से संस्थान योगों से सदा समन्वित हुआ करते हैं ।२। जहाँ पर वाक्य-अर्थ-पद-योग-अर्थ और अलंकारों से पूर्ति होती है वे गीत के पद आगे अथवा पीछे कहे गये हैं ।३। स्थातोनित्रीनर-नीड्डीमनः कण्ठ और शिर में स्थित-इन तीन स्थानों में जो विधि है वहो उत्तम होती है ।४। प्रकृति में चार वर्ण हैं और प्रविचार के चार-प्रकार के हैं । आठ प्रकार से विकल्प है । इसको देव १६ प्रकार का जानते हैं ।५। वर्ण प्रसंचारी सृजन किया गया है । तीसरा अवरोहण होता है । तौथा आरोहण है—इस तरह से वर्णों के ज्ञाता वर्ण को जानते हैं ।६। वहाँ पर संचर स्थायी है और संचर तो चर होगया है । जो अवरोहण वर्ण हैं उनका अवरोह विनिर्दिष्ट करना चाहिए ।७।

आरोहणेन वारोहान्वर्णन्वर्णविदो विदुः ।  
 एतेषामेव वर्णनामलंकारान्तिवोधत् ॥८

अलंकारास्तु चत्वारस्थापनी क्रमरेजनः ।  
 प्रमादस्याप्रमादश्च तेषां वक्ष्यामि लक्षणम् ॥६  
 विस्वरोऽष्टकलाश्चैव स्थानं द्वये कतरागतः ।  
 आवर्त्तस्याक्षमोत्वाक्षी वेकार्या परिमाणतः ॥७  
 कुमारं संपरं विद्धि द्विस्तरं वामनं गतः ।  
 एष वं एष चैवस्यकुतरेकः कुलाधिकः ॥८  
 स्वेन स्वे कातरे जातकलामर्मितरैषितः ।  
 तस्मिन्श्चैव स्वरे वृद्धिनिष्ठप्ते तद्विचक्षणः ॥९  
 स्येनस्तु अपरो हस्त उत्तरः कमला कलः ।  
 प्रमाणघसविदुर्ना जायते विदुरे पुनः ॥१०  
 कला कार्या तु वर्णनां तदा नुः स्थापितो भवेन् ।  
 विपर्ययस्य रोपिस्याद्यस्य प्रादुर्घटी मम ॥११

वर्णों के ज्ञाता विद्वद्गण आरोहण वर्णों को आरोहण से ज्ञात किया ज्ञात किया करते हैं। इन्हीं वर्णों के अलंकारों को समझ लीजिए। ८। अलंकार चार हैं—थापनो-क्रम-रोजन और प्रमाद का अप्रमाद—इनका लक्षण बताऊँगा । ९। विस्वर और अष्ट कला स्थान दो—एकतर में आगत-आवर्त्त का अक्रम आक्षी और परिमाण से वेकार्य हैं । १०। कुमार को संमर समझिए और द्विस्तर वामन को गत है। यह ही एक का है फिर एक कुलाधिक केसे होता है । ११। अपने से अपने कातर में ज्ञात कलाको अग्नितरैषित कहा है। उसका विद्वान् उसमें ही निष्ठप्त स्वर में वृद्धि समझ लेवे । १२। स्येन तो दूसरा हाथ है और उत्तर कमलाकल होता है। फिर विदुर में प्रमाण घम बिन्दु नहीं होता है । १३। तभी वर्णों की कला करनी चाहिए जन नुः स्थापित होवे। विपर्यय का रोपी होती है जिसको मेरी घटी कहा करते हैं । १४।

एकोत्तरः स्वरस्तु स्यात्पद्जतः परमः स्वरः ।  
 अक्षेपस्कंदनाकार्यं काकस्योपचपुष्कलम् ॥१५  
 संतारी तौनुसर्वाद्यौ कार्यं वा कारणं तथा ।

द्वादशे च कलास्थानामेकांतरगतस्तथा ।

प्रेखोलिलखितमलकारमेव स्वरसमन्विता ॥१७

स्वरस्वरबहुग्रामकाप्रयोष्टनुपत्कला ।

प्रक्षिप्तमेव कलयाचोपादानारयो भवेत् ॥१८

द्विकथंवावथाभूत यत्रभाषितमुच्यते ।

उच्चराद्विश्वरारूढा तथायाष्टस्वरातथा ॥१९

वापः स्थादवरोहेण नारतो भवति ध्रुवम् ।

एकांतरं च हयेतेवैतमेवस्वरसत्तमः ॥२०

मक्षिप्रच्छेदनामाच्चतुष्कलगणः स्मृतः ।

अलंकारा भवन्तयेते त्रिशट्टेवै प्रकीर्तिताः ॥२१

एकोत्तर स्वर तो षड्ज से परम स्वर होता है । अक्षेप स्कन्दना कार्य काक का उपच पुष्कल है । १५। वे दोनों अनुसवर्ण्य संतार हैं अथवा कार्य तथा कारण है । आक्षिप्त अवरोही वा तथा प्रोक्षमय होता है । १६। और द्वादश में कलास्थों का उसी भाँति एकान्तर गत होता है । प्रेखोलिलखित अलंकार एक स्वर से समन्वित है । १७। स्वर-स्वर वह ग्राम का प्रयोष्ट-नुपत्कला और कला के द्वारा प्रक्षिप्त ही उपादानारय होता है । १८। द्विकथ अथवा अवथाभूत भाषित जहाँ पर कहा जाया करता है । उच्चर से विश्वरारूढा तथा आयाष्ट स्वरा हो । १९। अवरोहण से वाप होता है और निश्चय ही नार से होता है और एकान्तर एतेवैत ही स्वर संतय होता है । अर्थात् श्रेष्ठ स्वर होता है । २०। और यह मक्षिप्रच्छेद नाम वाला चतुष्कल गण कहा गया है । ये अलंकार होते हैं जो देवों के द्वारा तीस कहे गये हैं । २१।

वर्णस्थानप्रयोगेण कलामात्राप्रमाणतः ।

संस्थानं च प्रमाणं च विकारो लक्षणस्तथा ॥२२

चतुर्विधमिदं ज्ञेयमलंकारप्रयोजनम् ।

यथात्मनो ह्यलंकारो विपर्यस्तो विग्रहितः ॥२३

वर्णमेवाऽप्यलंकतु "विषमा ह्यात्मसंभवाः ।

नानाभरणसंयोगा यथा नार्या विभूषणम् ॥२४

वर्णस्य चैवालंकारो विभूषा ह्यात्मसंभवः । ॥२४॥  
 न पादे कुण्डलं हृष्टं न कंठे रसना तथा ॥२५॥  
 एवमेवाद्यलंकारे विपर्यस्तो विगहितः । ॥२६॥  
 क्रियमाणोऽप्यलंकारो नागं यश्चैव दर्शयत् ॥२६॥  
 यथादृष्टस्य मार्गस्यकर्त्तव्यस्य विधीयते । ॥२७॥  
 लक्षणं पर्यवस्थापिवर्त्तिकामपिवर्त्तते ॥२७॥  
 याथातथ्येन वक्ष्यामि मासोद्भूवमुखोद्भूव । ॥२८॥  
 त्रयोर्विशतिशीतिस्तु विज्ञातपवर्देवतम् ॥२८॥

वर्ण स्थान प्रयोग से—कला मात्रा के प्रमाण से सस्थान-प्रमाण-और लक्षण हैं । २२। इस तरह से चार प्रकार का यह अलंकारों का प्रयोजन समझना चाहिए । जिस प्रकार से शरीर पर विपर्यस्त अर्थात् उचित स्थान के विपरीत अलंकार विगहित हुआ करता है । २३। यह वर्ण को अलंकृत करने के बास्ते हैं और आत्मा में होने वाले विषय हैं । ये नाना आभरणों के संयोग हैं जिस तरह से नारी के शूषण हुआ करते हैं । २४। वर्णका ही यह अलंकार आत्मा की विभूषा होते हैं । अलंकार का एक उचित स्थान होता है तभी वह अलंकारण किया करता है जैसे चरण में कभी कुण्डल नहीं देखा गया है और कण्ठ में रसना नहीं दिखाई दिया करती है । २५। इसी प्रकार से अलंकार में भी विपरीतता बुरी होती है और उसमें शोभाधारकता नहीं हुआ करती है । किया हुआ भी अलंकार कोई भी शोभा नहीं दिखाता है । २६। जिस रीति से अदृष्ट कर्तव्य मार्ग का लक्षण किया जाता है और जो पर्यवस्थ है उसका भी वर्त्तिका होती है । २७। अब मैं यथार्थ रूप से मासोद्भूव को बतलाऊँगा । त्रयोर्विशति शीति अपदेवत विज्ञात है । २८।

नगोनातुपुरस्तानुमध्यमांशस्तु पर्यवः । ॥२९॥  
 तयोर्विभागो देवानां लावण्ये मार्गसंस्थितः ॥२९॥  
 अनुषंगमयो हृष्टं स्वसारं वस्वरातर । ॥३०॥  
 विपर्ययः संवत्ते च सप्तस्वरपदकमम् ॥३०॥  
 गांधारसेतुगीयन्ते वरोमद्भूगवानि च । ॥३१॥  
 पञ्चमं मध्यमं चैव धैवतं तु निषादतः ॥३१॥

षड्जर्षभश्चा जानीमो मदकेष्वेवनांतरे ।

द्वे दव्यपरतु किं विद्या दद्यमुण्ठितिकस्य तु ॥३२

प्राकृते वैकृते चैव गांधारः संप्रयुज्यते ।

पदस्यात्ययरूपं तु सप्तरूपं तु कौशिकीम् ॥३३

गांधारस्येन कात्स्येन चायं यस्य विधिः न्मृतः ।

एष चैव क्रमोद्दिष्टो मध्यमांशन्य मध्यमः ॥३४

यानि प्रोक्तानि गीतानिवतुरूपं विशेषतः ।

ततः सप्तस्वरकार्यसप्तरूपं च कौशिकी ॥३५

नगोनातु पुरस्तानु मध्यमांश पर्यंय होता है । उन दोनों का विभाग देवों के लावण्य में मार्ग संस्थित है । २६। अनुष्ठानमय वस्वरातर स्वसार देखा गया है और संवत्तं में सप्तस्वर पदक्रम विपर्यय है । ३०। गान्धार सेतु और वरो मदभगवानि गाये जाया करते हैं और पंचम-मध्यम-सैवत निषाद से गाये जाते हैं । ३१। षड्ज और ऋषभ को हम मदकों में ही बनान्तर में जानते हैं । द्वेद्वय पद तो उष्णान्तिक के द्वय को क्या जाने । ३२। प्राकृत और वैकृत में वह गान्धार ही प्रयुक्त किया जाया करता है । पद का अत्ययरूप और सप्तरूप कौशिकी का प्रयोग करते हैं । ३३। गान्धार की इन कात्स्येन से यही विधि कही गयी है । यही मध्यमांश का मध्यम क्रमोद्दिष्ट है । ३४। जो भी गीत कहे गये हैं विशेषरूप से वतुरूप हैं । फिर सप्तस्वर सप्तरूप और कौशिकी करने चाहिए । ३५।

अगदर्शनमित्याहुर्मनुद्वेषमके तथा ।

द्वितीयामासमात्राणात्तिः सर्वाः प्रतिष्ठिताः ॥३६

उत्तरेवप्रकृत्येवं माताब्राह्मतलायत ।

तथाहतारोपिष्ठकेयत्रमायां निवर्त्तते ॥३७

पादेनकेनमात्रायाः पादोनमतिवारिणः ।

संख्यापनोपहतां वै तत्र पानमिति स्मृतम् ॥३८

द्वितीयपादभंगं च ग्रहे नाम प्रतिष्ठितम् ।

पूर्वमष्टुतीटती न द्वितीयं चापरान्तिकः ॥३९

पादभागसपादं तु चक्रत्यामपि सस्थितम् ।  
 चतुर्थमुत्तरं चैवमद्रवत्पावमद्रकौ ॥४०  
 मद्रकोदक्षिणस्यापि यथोक्ता वर्त्तते कला ।  
 सर्वमेवानुयोगं तु द्वितीयं बुद्धिमिष्यते ॥४१  
 पादौ वा हरणं चास्मात्पारं नात्र विधीयते ।  
 एकत्वं मनुयोगस्य द्वयोर्यद्यद्विजोत्तम ॥४२  
 अनेकसमवायस्तु पातका हरिणा स्मृताः ।  
 तिसृणां चैव वृत्तीनां वृत्तौ वृत्ते च दक्षिणः ॥४३  
 अष्टौ तु समवायस्तु वीरा संमूर्छना तथा ।  
 कस्यनासुतरा चैव स्वरशाखा प्रकीर्तिंता ॥४४

तथा भानुसौममक में अगदर्शन है—यह कहते हैं। द्वितीय मास मात्राओं से सब प्रतिष्ठित हैं । ३६। इस प्रकार से प्रकृति से उत्तरा की भाँति माता ब्रह्म तलायत है। तथा हतारोपीडक में जहाँ पर माया निवृत्त हो जाया करती है । ३७। एक पाद से माया का पादोना में अति चारी होते हैं। सख्यापनोय हृत वित्त्र पान—यह कहा गया है । ३८। और द्वितीय पाद भङ्ग यह में नाम प्रतिष्ठित है। पूर्व अष्ट तीर तीन द्वितीय अपरान्तिकों से होता है । ३८-३९। पदभाग सपाद तो प्रकृति में संस्थित प्राप्त होता है। चतुर्थ उत्तर इस प्रकार से पान और मद्रक को द्वितित करता था । ४०। दक्षिण की भी मद्रका यथोक्त कला होती है। सम्पूर्ण अनुयोग द्वितीय हैं जो बुद्धि को अभीष्ट किया करती है । ४१। और पादों का ही आहरण होता है और यहाँ पर पार नहीं होता है। हे द्विजोत्तम ! दोनों का जो-जो भी है वह अनुयोग का एकत्व है । ४२। अनेकों का जो समवाय है वह पातक हरण कहे गये हैं तीनों वृत्तियों का वृत्ति में और वृत्त में दक्षिण है । ४३। आठ समवाय तो तथा वीरा संमूर्छना होती है। कस्यना सुतरा स्वर शाखा कीर्तित की गयी है । ४४।

## आभूत संप्लब वर्णन

श्रुत्वा पादं तृतीयं तु क्रांतं सूतेन धीमता ।

ततश्चतुर्थं प्रच्छुः पादं वै ऋषिसत्तमः ॥१॥

ऋषय ऊचुः—

पादः क्रांतस्तृतीयोऽयमनुषंगेण नस्त्वया ।

चतुर्थं विस्तरात्पादं संहारं परिकीर्तय ॥२॥

मन्वंतराणि सर्वाणि पूर्वाण्येवापरैः सह ।

सप्तर्षीणामथैतेषां सांप्रतस्यांतरे मनोः ॥३॥

विस्तरावयवं चैव निसर्गस्य महात्मनः ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च सर्वमेव ब्रवीहि नः ॥४॥

सूत उवाच—

भवतां कथयिष्यामि सर्वमेतद्यथातथम् ।

पादं त्विमं संसंहारं चतुर्थं मुनिसत्तमाः ॥५॥

मनोवैवस्वतस्येमं सांप्रतस्य महात्मनः ।

विस्तरेणानुपूर्व्या च निसर्गं शृणुत द्विजाः ॥६॥

मन्वंतराणां संक्षेपं भविष्यते सह सप्तभिः ।

प्रलयं चैव लोकानां ब्रुवतो मे निबोधत ॥७॥

परम धीमान् श्री सूतजी के द्वारा वर्णित तृतीय पाद का श्रवण करके परम श्रेष्ठ ऋषियों ने फिर उनसे चतुर्थ पाद के विषय में पूछा था ।१। ऋषियों ने कहा—हे भगवन् ! आपने हमारे समझ में अनुषंग से यह तीसरा पाद तो भली भाँति वर्णन करके सुना दिया है । अब आप कुपा करके चतुर्थ पाद का जो संहार हो उसका परिकीर्तन कीजिए ।२। पूर्व में जो सब मन्वन्तर हुए हैं तथा दूसरे जो भी मन्वन्तर हैं उन्हीं के साथ इन सप्तर्षियों का वर्णन कीजिए और वत्समान समय में जो भी मन्वन्तर है उसको बतलाइए ।३। इस महान् आत्मा वाले विसर्ग का अवयवों के सहित विस्तार बतलाइए । और सभी कुछ विस्तार के साथ तथा आनुपूर्वी से अथवा क्रमशः आरम्भ से अन्त तक हरको बतलाइए ।४। श्री सूतजी ने कहा—मैं

आपके सामने अब सभी कुछ यथार्थता से वर्णन करूँगा । हे श्रेष्ठ मुनिगणो ! अब मैं इस चतुर्थ पाद का संहार के सहित वर्णन करता हूँ । ५। वर्तमान में महात्मा वैवस्वत मनु का भी जो निसर्ग है उसका भी वर्णन विस्तार के साथ आरम्भ से अन्त तक क्रम से करूँगा । आप लोग इस सबका श्रवण करिए । ६। हे द्विजो ! सभी मन्वन्तरों का संक्षेप जो भी भविष्य में होने वाले सात मन्वन्तर हैं उनके ही साथ में वर्णन करूँगा और लोकों का जो प्रत्यय होगा उसको भी वर्तलाऊँगा । बता देने वाले मुझसे यह सभी भली भाँति समझ लीजिए । ७।

एतान्युक्तानि वै सम्यक्सप्तस्पत्त सु वै प्रजाः ।

मन्वन्तराणि संक्षेपाच्छृणुतानागतानि मे ॥८॥

मावर्णस्य प्रवक्ष्यानि मनोर्वैवस्वतस्य ह ।

भविष्यस्य भविष्यं तु समासात्तन्निवोधत ॥९॥

अनागताश्च सप्तैव स्मृतास्त्वह महर्षयः ।

कीर्तिको गालवश्चैव जामदग्न्यश्च भार्गवः ॥१०॥

द्रैपायनो वणिष्ठश्च कृपः शारद्वतस्तथा ।

आश्रेयो दीप्तिमांश्चैव क्रृष्णश्रृंगस्तु काश्यपः ॥११॥

भरद्वाजस्तथा द्रौणिरश्वतथामा महायज्ञाः ।

एते सप्त महात्मानो भविष्याः परमर्षयः ।

सुतपाश्चामिताभाश्च सुखाश्चैव गणास्त्रयः ॥१२॥

नैषां गणस्तु देवानामेकैको विशकः स्मृतः ।

नामतस्तु प्रवक्ष्यामि निवोधैवं समाहितः ॥१३॥

कृतुस्तपश्च शुकश्च कृतिनैमिः प्रभाकरः ।

प्रभासो मासकुद्भर्मस्तेजोरश्मिः क्रतुविराट् ॥१४॥

ये सात मन्वन्तर तो मैंने आपको बता दिये हैं और भली भाँति कह कर सुना दिये हैं । अब प्रजा सातों में जो होगी वे अनागत मन्वन्तर जो आगे आने वाले हैं उनको संक्षेप से बतलाता हूँ । आप लोग श्रवण कीजिए । ८। अब सावर्ण वैवस्वत मनु के विषय में बताऊँगा । यह भविष्य में होने

बाला है। इसका भविष्य मैं संक्षेप से कहूँगा। आप लोग समझ लीजिए । १। जो अभी तक नहीं हुए हैं वे सब सात ही महणिगण कहे गये हैं। उनके परम शुभ नाम ये हैं—कौशिक—गालव—जामदग्न्य—भागव—द्वैपायन—वसिष्ठ—कृष्ण—शारदृत—आत्रेय—दीप्तिवान्—ऋष्यशुंग—काश्यप—भरद्वाज—द्रौणि—महायशस्वी अश्वत्थामा—ये सात महान् आत्मा वाले परमणिगण आगे होने वाले हैं। वे सब सुन्दर तप वाले—अपरिमित आभा से सुसम्पन्न और सुखद तीस गण हैं । १०-१२। उन देवों का गण एक-एक विशेष कहा गया है। मैं अब उनके नाम बताते हुए कहूँगा। आप लोग बहुत ही सावधान होकर उनका श्रवण कीजिए और भली भाँति समझ लीजिए । १३। क्रतु-तप-शुक्र-कृति-नेति-प्रभाकर-प्रभास-मासकृत-धर्म-तेजोरशिम-क्रतु-विराट् । १४।

अचिष्मान् द्योतनो भानुर्यशः कीर्तिर्बुधो धृतिः ॥ १५

विशतिः सुतपा हयेते नामभिः परिकीर्तिताः ।

प्रभुविभुविभासश्च जेता हंतारिहा क्रतुः ॥ १६

सुमतिः प्रमतिर्दीप्तिः समाख्यातो महो महान् ।

देही मुनिरिनः पोष्टा समः सत्यश्च विश्रुतः ॥ १७

इत्येते ह्यमिताभास्तु विशतिः परिकीर्तिताः ।

दामो दानी क्रृतः सोमो वित्तं वैद्यो यमो निधिः ॥ १८

होमो हव्यं हुतं दानं देयं दाता तपः शमः ।

ध्रुवं स्थानं विधानं च नियमश्चेति विशतिः ॥ १९

सुखा हयेते समाख्याताः सावर्ण्ये प्रथमेतरे ।

मारीचस्यैव ते पुत्राः कश्यपस्य महात्मनः ॥ २०

सांप्रतस्य भविष्यन्ति षष्ठिदेवास्तदन्तरे ।

सावर्णस्य मनोः पुत्रा भविष्यन्ति नवैव तु ॥ २१

अचिष्मान्—द्योतन-भानु-यश कीर्ति-बुध-धृति—१५। ये सुन्दर तपों वाले हैं। इनकी विशति है जो नाम बताकर कीर्तित कर दिये गये हैं। प्रभु-विभु-विभास-जेता-हंता-रिहा-क्रतु । १६। सुमति-प्रमति-दीप्ति और महान् मह समाख्यात हुआ है। देही-मुनि-इन-पोष्टा-सम-सत्य-विश्रुत । १७।

ये सब अमित आभा से सम्पन्न थे । इनकी भी विश्वासी कही गयी है अर्थात् इन बोसों का समुदाय बताया गया है । अब अन्य विश्वासी भी बतायी जाती है—दम-दानो-ऋत-सोम-वेदायम-निधि-होम-हृष्ट-दान-देय-दाता-तप-शम-घ्रुव-स्थान-विद्यान और नियम—ये विश्वासी होती हैं । १८-१९। ये सब सावर्ण मन्त्रन्तर में सुख बताये गये हैं । वे सब मारीच काश्यप के ही पुत्र हैं जो महान् आत्मा वाले थे । २०। इसके अन्तर में वर्त्तमान् काल के साठ देवता होंगे । सावर्ण मनु के पुत्र तो नहीं होंगे । २१।

**विरजाश्चार्वरीवांश्च निर्मोकाद्यास्तथा परे ।**

नव चान्येषु वक्ष्यामि सावर्णेष्वंतरेषु वै ॥२२

सावर्णमनवश्चान्ये भविष्या ब्रह्मणः सुताः ।

मेरुसावर्णितस्ते वै चत्वारो दिव्यदृष्ट्यः ॥२३

दक्षस्य ते हि दौहित्राः क्रियाया दुहितुः सुताः ।

महता तपसा युक्ता मेरुपृष्ठे महौजसः ॥२४

ब्रह्मादिभिस्ते जनिता दक्षेणैव च धीमता ।

महर्लोकं गता वृत्ता भविष्या मेरुमाश्रिताः ॥२५

महानुभावास्ते पूर्वं जज्ञिरे चाक्षुषेऽतरे ।

जज्ञिरे मनवस्ते हि भविष्यानागतांतरे ॥२६

प्राचेतसस्य दक्षस्य दौहित्रा मनवस्तु ये ।

सावर्ण नामतः पञ्च चत्वारः परमर्षिजाः ॥२७

संज्ञापुत्रस्तु सावर्णिरेको वैवस्वतस्तथा ।

ज्येष्ठः संज्ञासुतो नाम मनुर्वैवस्वतः प्रभुः ॥२८

विरजा-चार्वरीवान् तथा दूसरे निर्मोक आद्य अन्य सावर्ण अन्तरों में नी बतलाऊँगा । २२। अन्य सावर्ण मनु ब्रह्माजी के पुत्र होने वाले हैं । वे मेरु सावर्ण से लेकर चार दिव्य दृष्टि वाले हैं । २३। वे सब प्रजापति दक्ष के दौहित्र हैं और क्रिया नाम वाली उसकी दुहिता के पुत्र हैं । ये सब महान् तप से युक्त थे । २४। वे सब ब्रह्मादि के द्वारा तथा धीमान् दक्ष के द्वारा जनित हुए हैं । महर्लोक को गये थे और वृत्त भविष्य मेरु पर्वत पर समाप्ति होने पर दूसरे सहभाग सूर्योग्राम द्वारा दृष्टि गये । २५। एवं विवरण-

मन्वन्तर था । वे सब मनु भविष्य अनागत अन्तर में समृत्पन्न हुए थे ॥२६। जो मनुगण प्राचेतस दक्ष के दीहित्र थे । वे नाम से पाँच तो सावणे थे और चार परमणि से समृत्पन्न हुए थे ॥२७। संजा का पुत्र एक सावर्णि तथा वैवस्वत था । सबसे बड़ा संजा का पुत्र प्रभु वैवस्वत मनु था ॥२८।

वैवस्वतेऽतरे प्राप्ते समृत्पत्तिस्तयोः शुभा ।

चतुर्दशीते मनवः कीर्तिताः कीर्तिवद्वाग्नाः ॥२९

वेदे स्मृतौ पुण्ये च सर्वे ते प्रभविष्णवः ।

प्रजानां पतयः सर्वे भूतानां पतयः स्थिताः ॥३०

तेरियं पृथिवी सर्वा सप्तद्वीपा सपत्ना ।

पूर्ण युगसहस्रं वै परिपाल्या नरेश्वरः ॥३१

प्रजाभिस्तपसा चैव विस्तरस्तेषु वक्ष्यते ।

चतुर्दशीते विजेयाः सर्गाः स्वायंभुवादयः ॥३२

मन्वन्तराधिकारेषु वत्तन्तेऽत्र सकृत्यकृत् ।

विनिवृत्ताधिकारास्ते महलोकं समाश्रिताः ॥३३

समतीतास्तु ये तेषामष्टी पट् च तथाऽपरे ।

पूर्वेषु सांप्रतश्चायं जास्ति वैवस्वतः प्रभुः ॥३४

ये शिष्टास्तान्प्रवक्ष्यामि सह देवषिदानवैः ।

सह प्रजानिसर्गेण सर्वास्तेऽनागतान्द्रिजः ॥३५

वैवस्वत मनु के अन्तर प्राप्त हो जाने पर उन दोनों को समृत्पत्ति परम शुभ हुई थी । हमने ये चौदह मनुओं का वर्णन कर दिया है जो कि परमाधिक कीर्ति का वधन करने वाले हुए हैं ॥२६। वेद में—स्मृति में और पुराण में वे सभी बहुत ही होनहार बताये गये हैं । ये सभी प्रजाओं के तथा प्राणियों के स्वामी हुए हैं ॥३०। उन्हीं नरेश्वरों के द्वारा पूरे सहस्र युगों तक यह सम्पूर्ण पृथ्वी सातों द्वीपों से समन्वित और बड़े-बड़े विशाल नरों से युक्त परिपालन करने के योग्य हैं ॥३१। प्रजाओं के द्वारा तथा तप से जो उनका विस्तार है वह सब भी बताया जा रहा है । ये चौदह सर्ग स्वायम्भुव आदि के हैं सभा जान लेने के योग्य हैं ॥३२। यहां पर मन्वन्तरों के अधिकारों में एक-एक बार वह होता है । जब अधिकार विनिवृत्त हो जाता है

तो वे सब जाकर महलोंक में समाश्रय वाले हो जाते हैं । ३३। उनमें जो आट थे वे व्यतीत हो चुके थे और छँ दूसरे थे । पूर्व में होने वालों में यह वर्तमान में होने वाला यह वैवस्वत प्रभु शासन कर रहे हैं । ३४। जो भी शिष्ट रहे हैं उनको देव-ऋषि और दानवों के ही साथ अब बतलाऊँगा । हे द्विज ! सम्पूर्ण प्रजा की सृष्टि के साथ ही उन सभी अनागतों को बतलाया जायगा अर्थात् आगे होने वाले हैं उनको कहेंगे । ३५।

वैवस्वतनिसर्गेण तेषां ज्ञेयस्तु विस्तरः ।

अनूना नातिरिक्तास्ते यस्मात्सर्वे विवस्वतः ॥ ३६

पुनरुक्तवहुत्वात् न वक्ष्ये तेषु विस्तरम् ।

मन्त्रवन्तरेषु भाव्येषु भूतेष्वपि तथैव च ॥ ३७

कुले कुले निसर्गस्तु तस्माज्ज्ञेया विभागशः ।

तेषामेव हि सिद्धधर्मं विस्तरेणक्रमेण च ॥ ३८

दक्षस्य कन्या धर्मिष्ठा सुव्रता नाम विश्रुता ।

सर्वकन्यावरिष्ठा तु ज्येष्ठा या वीरणीसुता ॥ ३९

गृहीत्वा ता पिता कन्यां जगाम ब्रह्मणोऽतिके ।

वैराजस्थमुपासीनं धर्मेण च भवेन च ॥ ४०

भवधर्मसमीपस्थं दक्ष ब्रह्माऽभ्यमाषत ।

दक्ष कन्या तवेयं वै जनयिष्यति सुव्रता ॥ ४१

चतुरो वै मनून्पुत्रांश्चातुर्वर्ण्यकराञ्छुभान् ।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा दक्षो धर्मो भवस्तदा ॥ ४२

वैवस्वत मनु के विसर्ग से उनका भी विस्तार जान लेना चाहिए । कारण यह है कि वे सब वैवस्वत मनुसेन तो अन्यून हैं और न उससे अतिरिक्त ही हैं । ३६। वे बहुत हैं इसलिए और उनका दूसरी बार कथन होने से उनके विषय में विस्तार नहीं कहूँगा । जो भी पहिले हो गये हैं तथा जो भविष्य में होने वाले हैं उन सभी के विषय में अधिक विस्तार नहीं कहा जायगा । ३७। इस कारण से कुल-कुल में विभाग से ही निसर्ग समझ लेने चाहिए । उन्हीं की सिद्धि के लिए विस्तार से और क्रम से कहता हूँ । ३८। प्रजापति दक्ष की कन्या वही ही धर्मिष्ठा थी तथा उसका नाम सुव्रता

प्रसिद्ध था । समस्त कन्याओं में बहुत श्रेष्ठ ज्येष्ठा थी जो वैरिणी का सुता थी । ३६। पिता उस कन्या को लेकर ब्रह्माजी के समीप में गया था । ब्रह्माजी वैराज में समवस्थित थे और धर्म तथा मन के द्वारा उपासीन थे । ४०। जब दक्ष भव और धर्म के समीप में स्थित थे तब उनसे ब्रह्माजी ने कहा था—हे दक्ष ! आपकी यह सुन्नत कन्य चार मनुओं को जन्म देगी जो इसके पुत्र चारों वर्णों के करने वाले परम शुभ होंगे । ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर दक्ष-धर्म और भव उस समय में यह किया था । ४१-४२।

तां कन्यां मनसा जग्मुस्त्रयस्ते ब्रह्मणा सह ।

सत्याभिष्यायिनां तेषां सद्यः कन्या व्यजायत ॥४३॥

सद्गानूपतस्तेषां चतुरो वै कुमारकान् ।

संसिद्धाः कार्यकरणे संभूतास्ते श्रियान्विताः ॥४४॥

उपभोगासमर्थेश्च सद्योजातैः शरीरकैः ।

ते हृष्टवा तान्स्वयंभूतान्ब्रह्मव्याहारिणस्तदा ॥४५॥

सरंद्वा वै व्यक्तिंत मम पुत्रो ममेत्युत ।

अभिष्यायायात्मनोत्पन्नानुचुवैं ते परस्परम् ॥४६॥

यो अस्य वपुषा तुल्यो भजतां सततं सुतम् ।

यस्य यः सद्गानश्चापि रूपे वीर्ये च मानतः ॥४७॥

तं गृहणातु स भद्रं वो वर्णतो यस्य यः समः ।

ध्रुवं रूपं पितुः पुत्रः सोऽनुरुद्धयति सर्वदा ॥४८॥

तस्मादात्मसमः पुत्रः पितुमतिष्ठच वीर्यतः ।

एवं ते समयं कृत्वा सर्वेषां जगृहुः सुतान् ॥४९॥

उस समय ब्रह्माजी के साथ ही मन से उन तीनों ने उस कन्या को गमन किया था । सत्याभि धायी उनकी कन्या के तुरन्त ही समुत्पन्न किया था । अर्थात् रूप से उन्हीं के सद्गान चार कुमारों को जन्म दिया था वे कायों के करने में संसिद्ध थे तथा श्री ते समन्वित हुए थे । ४५। उनके तुरन्त ही समुत्पन्न शरीर सभी उपभोगों के लिए समर्थ थे । स्वयं ही समुत्पन्न उन कुमारों दो देखकर वे जो उस समय ब्रह्म के व्यापारी थे आपस में बहुत ही संरम्भ वाले होकर खीचातानी करने लगे कि यह मेरा पुत्र है—

यह मेरा पुत्र है—ऐसा ही कह रहे थे । फिर उन्होंने आपस में कहा था कि ये अधिकार से आत्मा से ही समुत्पन्न हैं । ४५-४६। अतएव जो भी जिसके शरीर के तुल्य हो वह उसी को अपना सुत मान लेवे । जो भी जिसके रूप-बीर्य और मात में सहश होवे अथवा वर्ण से जो जिसके समान हो उसी को वह ग्रहण कर लेवे—इसी में आप का कल्याण है । यह तो निश्चित ही है कि पुत्र पिता के रूप को सर्वदा ग्रहण किया करता है । ४७-४८। इसलिए पिता और माता के बीर्य से पुत्र सदा आत्मा के ही समान हुआ करता है । उस प्रकार से उन्होंने ममजीता करके सब सुतों का ग्रहण किया था । ४९।

**चाक्षुषस्यांतरेऽतीते प्राप्ते वैवस्वतस्य ह ।**

रुचेः प्रजापतेः पुत्रो रौच्यो नामाभवत्सुतः ॥५०॥

भूत्यामुत्पादितो यस्तु भौत्यो नाम कवेः सुतः ।

वैवस्वतेऽतरे जातौ द्वौ मनू तु विवस्वतः ॥५१॥

वैवस्वतो मनुर्यश्च सावर्णो यश्च वै श्रुतः ।

जेयः संज्ञासुतो विद्वान्मनुवैवस्वतः प्रभुः ॥५२॥

सवर्णायाः सुतश्चान्यः स्मृतो वैवस्वतो मनुः ।

सावर्णमनवो ये च चत्वारस्तु महर्षिजाः ॥५३॥

तपसा संभूतात्मानः स्वेषु मन्वन्तरेषु वै ।

भविष्येषु भविष्यन्ति सर्वकायर्थिसाधकाः ॥५४॥

प्रथमे मेरुसावर्णोदध्यपुत्रस्य वै मनोः ।

परामरीचिगर्भाश्च सुधर्मणश्च ते वयः ।

संभूताश्च महात्मानः सर्वे वैवस्वतेऽतरे ॥५५॥

दक्षपुत्रस्य पुत्रास्ते रोहितस्य प्रजापतेः ।

भविष्यन्ति भविष्यास्तु एकको द्वादशो गणः ॥५६॥

चाक्षुष मन्वन्तर के व्यतीत हो जाने पर और वैवस्त मन्वन्तर के सम्प्राप्त होने पर प्रजापति का रुचि से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम रौच्य हुआ था । ५०। जो भूति के गर्भ से उत्पन्न किया गया था उस

में वैवस्वत के दो मनु उत्पन्न हुए थे । ५१। और जो वैवस्वत मन या और जो सावर्ण नाम में विश्रुत था । प्रभु वैवस्वत मनु संज्ञा का ही पुत्र जानना चाहिए । यह पर विद्वान् थे । ५२। सवर्ण का अन्य सुत था वैवस्वत मनु कहा गया है । और जो सावर्ण मनु हैं वे सार महिषियों से जन्म ग्रहण वाले हैं । ५३। वे निश्चित रूप से तपश्चर्या से सम्भूत आत्माओं वाले हुए थे और अपने मन्वन्तरों में ही हुए थे । आगे होने वालों में सभी कार्यों के अर्थों का साधन करने वाले होंगे । ५४। प्रथम मेरु सावर्ण में दक्ष प्रजापति के पुत्र मनु के मरा मरीचि गम्भी और सुधमणि ये तीन थे । वे सब महान् आत्माओं वाले वैवस्वत मन्वन्तर में समुत्पन्न हुए थे । ५५। वे दक्ष के पुत्र प्रजापति रोहित के पुत्र थे । जो आगे होने वाले हैं वे होंगे । एक-एक द्वादश गण हैं । ५६।

ऐश्वरश्च ग्रहो राहुवकुवृगस्तथं च ।

पारा द्वादश विज्ञेया उत्तरास्तु निबोधत ॥ ५७ ॥

वाजिपो वाजिजिच्चैव प्रभूतिश्च ककुद्यथ ।

दधिक्रावा विषवश्च प्रणीतो विजतो मधुः ॥ ५८ ॥

उत्थ्योत्तमको द्वी तु द्वादशेते मरीचयः ।

सुधमणिस्तु वश्यामि नामतस्तान्निबोधत ॥ ५९ ॥

वणस्तथाथगविश्च भुरण्यो ब्रजनोऽमितः ।

अमितो द्रवकेतुश्च जंभोऽथाजस्तु शक्कः ॥ ६० ॥

मुनेमिद्युतयश्चैव सुधमणिः प्रकोर्तिताः ।

तेषामिद्रस्तदा भाव्यो ह्यदभुतो नाम नामतः ॥ ६१ ॥

स्कन्दोऽसौ पार्वतीयो वे कार्तिकेयस्तु पावकिः ।

मेधातिथिश्च पौलस्त्यो वसु काश्यप एव च ॥ ६२ ॥

ज्योतिष्मान्भागवाण्श्चैव द्युतिमानंगिरास्तथा ।

वसिनश्चैव वासिष्ठ आत्रेयो हृव्यवाहनः ॥ ६३ ॥

ऐश्वर-ग्रह-राहु-वाकु-वंश- ये पारा वारह हैं जो जान लेने चाहिए । अब उत्तर जो है उनको भी जान लो । ५७। वाजिप-वाजिजित-प्रभूति-ककुदी-दधिक्रावा-प्रणीत-विजय-मधु-उत्थ्य-उत्तमक ये दो हैं—ये द्वादश

मरीचि हैं। सुधमणि को बतलाऊंगा। उनको नाम से समझ लो। ६८-६९। वर्ण अथगर्भ-भुरण्य-ब्रजन-अभित-द्रवकेतु-जन्म-आज-णक्क-सुनेमि-द्युतय—ये सब सुधमणि कीजिन किये गये हैं। उस समय में उनका जो होने वाला इन्द्र है उसका नाम अद्भुत है। ६०-६१। स्कन्द-पार्वतीय-कात्तिकेय-पावकि-मेघातिथि-पीलस्त्य वसु-काश्यप। ६२। ज्योतिष्मान्-भार्गव-द्युतिमान्-अङ्गिरा वसिन-वासिष्ठ-आश्रोग-हृष्ण वाहन। ६३।

मुतपाः पीलहश्चैव भृत्यैते रोहितेतरे ।

धृतिकेतुर्दीप्तिकेतुः शापहस्तनिरामयाः ॥६४

पृथुवास्तथाऽनीको भूरिद्युम्नो बृहद्यगः ।

प्रथमस्य तु सावर्णेन्नव पुत्राः प्रकीर्तिताः ॥६५

दशमे त्वथ पर्यायि धर्मपुत्रस्य वै मनोः ।

द्वितीयस्य तु सावर्णेभाव्यस्यंवांतरे मनोः ॥६६

सुधमानो विरुद्धाश्च द्वावेव तु गणी स्मृतौ ।

दीप्तिमन्तश्च ते सर्वे शतसंख्याश्च ते समाः ॥६७

प्राणानां यच्छतं प्रोक्तं कृषिभिः पुरुषेति वै ।

देवास्तो वै भविष्यन्ति धर्मपुत्रस्य वै मनोः ॥६८

तेषामिद्रस्तथा विद्वान्भविष्यः शातिरुच्यते ।

हविष्मान्पीलहः श्रामान्सुकीर्तिश्चाथ भार्गवः ॥६९

आपोमूर्तिस्तथात्रेयो वसिष्ठश्चापवः स्मृतः ।

पीलस्त्योऽप्रतिमश्चापि नाभागश्चैव काश्यपः ॥७०

सुसपा-पीलह—ये सात रोहितेतर हैं। धृतिकेतु-दीप्तिकेतु-शाप-हस्त निरामय। ६४। पृथुवास्तथाऽनीक-भूरिद्युम्न-बृहद्यग—ये प्रथम सावर्णि के नी पुत्र बताये गये हैं। ६५। इसके अनन्तर दशम पर्याय में धर्म के पुत्र द्वितीय सावर्णि मनु के जो आगे होने वाला है उस मनु के अन्तर में। ६५। सुधामान और विरुद्ध—ये दो ही गण कहे गये हैं। वे सभी दीप्तिमान् थे और वे सम शत संख्या वाले थे। ६७। कृषियों ने प्राणों के शत को पुरुष—यह कहा है। वे धर्म के पुत्र मनु के देवगण होंगे। ६८। उनका इन्द्र भविष्य विद्वान् हैं और

शान्ति नाम वाला कहा जाता है। हविर्मान्-पौलह-श्रीमान्-सुकीर्ति-भार्गव-आयोमूर्ति-आत्रेय-वसिष्ठ-अपव-पौलस्त्य-अप्रतिम-गाभाग-काश्यप। ६६-७०।

अभिमन्युश्चान्निरसः सप्तते परमर्षयः ।

सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्चाश्च वीर्यवान् ॥७१॥

शतानीको निरामित्रो वृषसेनो जयद्रथः ।

भूरिद्युम्नः सुवच्छिच दण्डते मानवाः स्मृताः ॥७२॥

एकादशे तु पर्याये सावर्णे वै तृतीयके ।

निर्वणिरतयो देवाः कामगा वै मनोजवाः ॥७३॥

गणास्त्वेते त्रयः छ्याता देवतानां महात्मनाम् ।

एकैकस्त्रिशतस्तेषां गणस्तु त्रिदिवौकसाम् ॥७४॥

मासस्याहानि त्रिशत् यानि वै कवयो विदुः ।

निर्वणिरतयो देवा रात्रयस्तु विहंगमा ॥७५॥

गणस्तृतीयो यः प्रोक्तो देवतानां भविष्यति ।

मनोजवा मूहूर्तस्तु इति देवाः प्रकीर्तिताः ॥७६॥

एते हि ब्रह्मण पुत्रा भविष्या मानवाः स्मृताः ।

तैषामिद्रो वृषा नाम भविष्यः सुरराट् ततः ॥७७॥

अभिमन्यु—आज्ञिरस—ये सात परम ऋषि अर्थात् सर्वोत्तम सात ऋषि हैं। सुक्षेत्र-उत्तमौजा-भूरिसेन-वीर्यवान्—शतानीक-निरामित्र—वृषसेन-जयद्रथ-भूरिसेन-सुवच्छि—ये दश मानव कहे गये हैं। ७१-७२। एकादश पर्याय में तीसरे सावर्ण में निर्गणि रति वाले देवगण हैं जो स्वेच्छा से गमन करने वाले हैं और मन के ही तुल्य वेग से समन्वित हैं। ७३। महान् आत्माओं वाले देवताओं वाले देवताओं के ये तीन गण विरुद्धात हैं। उन स्वर्गवासियों एक-एक तीन सौ गण हैं। ७४। एक मास के तीस होते हैं जिनको कविगण जानते हैं। निर्गणि (मोक्ष) में रति अर्थात् अनुराग रखने वाले हैं और रात्रियों तो विहङ्गम (पक्षी) हैं। ७५। तीसरा गण जो कहा गया है वह देवताओं का होगा। मन के वेग और मुहूर्त—ये देव कीर्तित किये गये हैं। ७६। ये सब ब्रह्माजी के पुत्र होते वाले हैं जो कि मानव कहे गये हैं। फिर उनका इन्द्र वृषा नाम वाला सुरराट् होने वाला है। ७७।

हृविष्मान्काशयपश्चापि वपुष्मांश्चैव भार्गवः ॥७५

आरुणिश्च तथात्रेयो वसिष्ठो नग एव च ।

पुष्टिरांगिरसो ज्ञेयः पौलस्त्यो निश्चरस्तथा ॥७६

पौलहो ह्यतितेजाश्च देवा हयेकादशेतरे ।

सर्ववेगः सुधर्मा च देवानीकः पुरोवहः- ॥७०

क्षेमधर्मा ग्रहेषुश्च आदर्शः पौड़को मरुः ।

सावर्णस्य तु ते पुत्राः प्राजापत्यस्य वै नव ॥७१

द्वादशे त्वथ पर्याये रुद्रपुत्रस्य वै मनोः ।

चतुर्थो रुद्रसावर्णो देवांस्तस्यांतरे शृणु ॥७२

पंचैव तु गणाः प्रोक्ता देवतानामनागणाः ।

हरिता रोहिताश्चैव देवाः सुमनसस्तथा ॥७३

सुकर्मणः सुतारश्च विद्वांश्चैव सहस्रदः ।

पर्वतोऽनुचरश्चैव अपाशुश्च मनोजवः ॥७४

उनके जो सप्त ऋषिगण होंगे वे भी बतलाये जा रहे हैं । उनको भली भाँति समझ लो । हृविष्मान्-काशयप-वपुष्मान्-भार्गव-आरुणि-आत्रेय-वसिष्ठ-नग पुष्टि-आङ्गिरस-पौलस्त्य-निश्चर-पौलह-अतितेजा-ये सब प्राजापत्य सावर्ण के नौ पुत्र हैं ॥७१। अब बारह वे पर्याय में रुद्र के पुत्र मनु के चतुर्थ रुद्र सावर्ण है । उसके अन्तर में जो देवगण हैं उनका भी आप लोग श्रवण कर लेवे ॥७२। जो अभी नहीं आगत हुए हैं वे देवताओं के पाँच ही गण कहे गये हैं । देव हारित-रोहित तथा सुमनस होते हैं ॥७३। सुकर्मण-सुतार-विद्वान्-सहस्रद-पर्वत-अनुचर-अपाशु-मनोजव ॥७४।

ऊर्जा स्वाहा स्वाधा तारा दशेते हरिताः स्मृताः ।

तपो ज्ञानी मृतिश्चैव वर्चा वंधश्च यः स्मृतः ॥७५

रजश्चैव तु राजश्च स्वर्णपादस्तथैव च ।

पुष्टिविधिश्च वै देवा दशेते रोहिताः स्मृताः ॥७६

तुषिताद्यास्तु ये देवास्त्रययस्त्रिशत्रकीर्तिः ।

ते वै सुमनसो वेद्यान्निबोधत सुकर्मणः ॥६७॥

सुपर्वा वृषभः पृष्टा कपिद्युम्नविपश्चितः ।

विक्रमश्च क्रमश्चेव विभृतः कांत एय च ॥६८॥

एते देवाः सुकर्मणः सुतराण्णच निबोधत ।

वर्षो दिव्यस्तथांजिष्ठो वर्चस्वी शुतिमान्कविः ॥६९॥

शुभो हविः कृतप्राप्तिवर्यापृतो दशमस्तथा ।

सुतारा नामतस्त्वेते देवा वै संप्रकीर्तिः ॥७०॥

तेषामिद्रस्तु विज्ञेयो कृतधामा महायशाः ।

शुतिर्विष्ठपुत्रस्तु आश्रेयः सुतपास्तथा ॥७१॥

ऊर्जा—स्वाहा—स्वधा—तारा ये दश हरित कहे गये हैं तप—जानी—मृति  
वर्णी—जो बन्धु कहा गया है । ६५। रज—राज—स्वर्णपाद—पुष्टि और विधि  
ये दण देव रोहित संज्ञा वाले कहे गये हैं । ६६। जो तृष्णित आदि देव हैं वे  
तैतीस बताये गए हैं । वे सुमनस जानने के योग्य होते हैं । अब सुकर्मण  
संज्ञा वालों को समझलो । ६७। सुपर्वा—वृषभ—पृष्टा—कपिद्युम्न—विपश्चित्—  
विक्रम—क्रम—विभृत—कान्त । ६८। ये देव सुकर्मण संज्ञा वाले हैं । अब जो  
सुतर मंज्रक है उनको जान लीजिए । वर्ण—अंजिष्ठ—वर्चस्वी—शुतिमान्  
कवि—शुभ—हवि—कृत प्राप्ति—व्यापृत—दशम—ये सब मुतार नाम वाले  
देवण हैं जिनको कीर्तित कर दिया गया है । ६९-७०। उनका इन्द्र शृतधामा  
जान लेना चाहिए जो कि महान् यश वाला है । शुति—वसिष्ठ पुत्र—  
आश्रेय—सुतपा । ७१।

तपोमूर्तिस्त्वांगिरसस्तपस्वी काश्यपस्तथा ।

तपोधनश्च पौलस्त्यः पौलहश्च तपोरतिः ॥७२॥

भार्गवः सप्तमस्तेषां विजेयस्तु तपोधृतिः ।

एते सप्तर्षयः सिद्धा अंत्ये सावर्णिकेऽनररे ॥७३॥

देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदुर्ग्नधः ।

मित्रवान् मित्रसेनोऽथ चित्रसेनो ह्यमित्रहा ॥७४॥

निष्प्रकंप्य स्तथा ऽत्रेयो निर्मोहः काश्यपस्तथा ।

सुतपाश्चैव वासिष्ठः सप्ततो तु त्रयोदश ॥ १०३

चित्रसेनो विचित्रश्च नयो धर्मो धृतो भवः ।

अनेकः क्षत्रिविद्धश्च सुरसो निर्भयो दश ॥ १०४

रीच्यस्यैते मनोः पुत्रा ह्यंतरे तु त्रयोदशे ।

चतुर्दणे तु पर्ययि भौत्यस्याप्यंतरे मनोः ॥ १०५

जो तीतीस देव है उनको पृथक रूप से समझ लो । सुत्रामाण प्रकृष्ट रूप से यजन के योग्य होते हैं क्योंकि वे इस समय में आज्य (धृत) की आशा बाले होते हैं । १०६। सुकर्मण जो देवता हैं वे पश्चात् यजन करने वाले नामों के हैं क्योंकि वे पृष्ठदाज्य के अशन करने वाले होते हैं । सुकर्मण देव उपयाज्य होते हैं । इम प्रकार से देवगण कीत्तित किए गए हैं । १०७। उनका महान् सत्त्व वाला दिवस्पति इन्द्र होगा । वे पुलह के आत्मज रुचि के सुत जानने चाहिए । १०८। अङ्गिरा ही धृति के धारण करने वाला है और वह पौलस्त्य भी अव्यय है । पौलह तत्त्वों का देखने वाला है तथा भार्गव उत्सुकता से रहित है । १०९। निष्प्रकम्प्य तथा आत्रेय-निर्मोह-काश्यप-सुतपा और वसिष्ठ—ये गात हैं । ऐसे कुल तेरह हैं । ११०। चित्रसेन-विचित्र-नय धर्म-धृत-भव-अनेक क्षत्रिविद्ध-सुरस और निर्भय—ये दश हैं । १११। ये सब रीच्य के पुत्र हैं । जो तेरहवें अन्तर में मनु हैं । चौदहवें पर्याय में जो कि भौत्य मनु का अन्तर है । ११२।

देवतानां गणाः पञ्च प्रोक्ता ये तु भविष्यति ।

चाक्षुषाश्च पवित्राश्च कनिष्ठा भ्राजितास्नथा ॥ १०६

वाचावृद्धाश्च इत्येते पञ्च देवगणाः स्मृताः ।

निषादाद्याः स्वराः सप्त सप्त तान्विद्धि चाक्षुषान् ॥ १०७

बृहदाद्यानि सामानि कनिष्ठान्सप्त तान्विदुः ।

सप्त लोकाः पवित्रास्ते भ्राजिताः सप्तसिध्वः ॥ १०८

वाचावृद्धानृषीन्विद्धि मनोः स्वायं भुवस्य ये ।

सर्वे मन्वंतरेन्द्राश्च विज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ॥ १०९

तेजसा तपसा बुद्ध्या बलश्रुतपराक्रमैः ।

त्रैलोक्ये यानि सत्वानि गतिर्माति ध्रुवाणि च ॥११०

सर्वेषः स्वैर्गुण्येस्तानि इन्द्रास्तोऽभिभवन्ति वै ।

भूतापवादिनो हृष्टा मध्यस्था भूतवादिनः ॥१११

भूताभिवादिनः शक्तास्त्रयो वेदाः प्रवादिनाम् ।

अग्नीध्रः काश्यपश्चौव पौलस्त्यो मागधश्च यः ॥११२

देवताओं के पाँच गण बताये गये हैं जो कि होंगे । चाक्षुष-पवित्र-कनिष्ठ तथा आजित और वाचा वृद्ध—ये ही देवोंके पाँच गण कहे गये हैं । निषाद प्रादि सात स्वर हैं वैसे ही चाक्षुषों को भी सात समझ लो । १०७। वृहद आदिक साम हैं । उनको कनिष्ठ सात समझ लो । वे सात लोक पवित्र हैं वे आजित सात सिन्धु हैं । १०८। जो स्वाम्भुव मनु के ऋषि है उनको वाचा वृद्ध समझ लो । ये सभी तुल्य लक्षणों वाले मन्वन्तरों के इन्द्र जान लेने योग्य है । १०९। तेज-तप-बुद्धि-बल-श्रुत पराक्रम के द्वारा इस त्रिभुवन में जो भी जीव गतिमान् और ध्रुव है । ११०। वे इन्द्र सभी प्रकार से अपने गुणों के द्वारा उनका अभिभव किया करते हैं । भूतापवादी हृष्ट-मध्य में स्थित और भूतवादी है । १११। भूतों के अभिवादी प्रवादियों के लिए तीन वेद ही शक्ति वाले होते हैं । अग्नीध्र-काश्यप-पौलस्त्य और जो मागध है । ११२।

भार्गवो ह्यग्निवाहुश्च शुचिरांगिरसस्तणा ।

शुक्रश्चैव तु वासिष्ठः पौलहो मुक्त एव च ॥११३

आत्रेयः श्वाजितः प्रोक्तो मनुपुत्रानतः शृणु ।

उरुगुरुश्च गंभीरो बुद्धः शुद्धः शुचिः कृती ॥११४

ऊर्जस्वी मुवलश्चैव भौत्यरूप्यते मनोः सुताः ।

सावर्णी मनवो हयेते चत्वारो ब्रह्मणः सुताः ॥११५

एको वैवस्वतश्चैव सावर्णो मनुरूच्यते ।

रौच्यो भौत्यश्च यो तो तु मतो पौलहभार्गवो ।

भौत्यस्येवाधिपत्ये तु तूर्णं कल्पस्तु पूर्यन्ते ॥११६

सूत उवाच—

निःशेषेषु तु सर्वेषु तदा मन्वंतरेष्विह ॥ ११७

अंतोऽनेकयुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते ।

सप्तौतो भार्गवा देवा अंतो मन्वंतरे तदा ॥ ११८

भुक्त्वा त्रैलोक्यमध्यस्था युगाख्या ह्येकसप्ततिः ।

पितृभिर्मनुभिः साद्वं क्षीणे मन्वंतरे तदा ॥ ११९

भार्गव-अग्निवाह-शुचि-आङ्गिरस-शुक्र-वासिष्ठ पौलह-मुक्त-आत्रेय-  
श्वाजित कहे गये हैं । इसके बाद में जो मनु के पुत्र हैं उसका श्वरण करो ।  
उह-गुह-गम्भीर-बुद्ध-शुद्ध-शुचि-कृती-ऊर्जस्वी-सुबल-ये सब मीन्य मनु के पुत्र  
हैं । ये सावर्ण मनु हैं और चारों ब्रह्माजी के पुत्र हैं । ११३-११५ । एक वैव-  
स्वत ही सावर्ण मनु कहा जाता है । रौच्य और भौत्य जो ये दो हैं वे पौलह  
और भार्गव माने गए हैं । भौत्य के ही आविष्ट्य में तूर्ण कल्प पूर्ण हो  
जाता है । ११६ । श्री सूतजी ने कहा—यहाँ पर जब सभी मन्वन्तर निःशेष  
हो जाते हैं । ११७ । तब अनेक युगों के क्षीण हो जाने पर अन्त में संहार कहा  
जाया करता है । उस समय के अन्त में मन्वन्तर में ये सात भार्गव देव होते  
हैं । ११८ । ये त्रैलोक्य के मध्य में संस्थित हुए भोग करते हैं । युगों की  
आख्या एकहत्तर होती है । उस समय में पितरों और मनुओं के साथ मन्व-  
न्तर क्षीण हो जाता है । ११९ ।

अनाधारमिदं सर्वं त्रैलोक्यं वै भविष्यति ।

ततः स्थानानि शुभ्राणि स्थानिनां तानि वै तदा ॥ १२०

प्रभ्रशयंतो विमुक्तानि तारा क्रृक्षग्रहैस्तथा ।

ततस्तोषु व्यतीतेषु त्रैलोक्यस्येश्वरेष्विह ॥ १२१

संप्राप्तेषु महलोकं यस्मिस्ते कल्पवासिनः ।

अजिताद्या गणा यत्र आयुष्मंतश्चतुर्दश ॥ १२२

मन्वंतरेषु सर्वेषु देवास्ते वै चतुर्दश ।

सशरीराश्च श्रूयते जनलोके सहानुगाः ॥ १२३

एवं देवेष्वतीतेषु महलोकाज्जनं प्रति ।

सूतादिवर्णिष्टेषु स्थानां तेषु तेषु वै ॥ १२४

शून्यपु लाकस्थानपु महातपु भुवादषु ।

देवेषु च गतेषूद्धर्वं सायुज्यं कल्पवासिनाम् ॥ १२५

संहृत्य तांस्ततो ब्रह्मा देवर्षिपितृदानवान् ।

संस्थापयति वै सर्गमहर्वृष्ट्वा युगक्षये ॥ १२६

चतुर्युं गसहस्रांतमहर्यद्ब्रह्मणो विदुः ।

रात्रि युगसहस्रांतां तेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १२७

तब यह सम्पूर्ण श्रौलोक्य आधार से रहित होता है । फिर जो भी स्थानीयों के परम शुभ्र स्थान हैं वे सभी नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं । १२०। ये सभी तारे और नक्षत्र तथा ग्रहों द्वारा विमुक्त होते हुए विनष्ट हो जाया करते हैं । फिर जब ये सभी व्यतीत हो जाया करते हैं जो इन तीनों लोकों के स्वामी तथा संचलक होते हैं । १२१। जिसमें जो भी कल्पवासी अर्थात् पूरे कल्पों तक रहने वाले हैं वे सभी महलोक में चले जाया करते हैं । जहाँ पर अजित आदि गण हैं और ये चौदह आयुष्मान हैं । १२२। सभी मन्वन्तरों में देवता ये चौदह ही होते हैं । वे ऐसे सुने जाया करते हैं कि सब अपने अनुयायियों के साथ ही में शरीरों के सहित जनलोक में निवास किया करते हैं । १२३। इस तरह से महलोक से जनलोक की ओर सभी देवों के व्यतीत हो जाने पर और स्थावरों के अन्त पर्यन्त सब भूतादि के अवशिष्ट होने पर । १२४। भूलोक से लेकर महलोक तक जितने भी लोक स्थान हैं वे सब शून्य हो जाते हैं । सभी वेद भी कल्पवासियों के समीप में ऊपर की ओर चले जाया करते हैं । १२५। इसके अनन्तर ब्रह्माजी उन सबका देव-ऋषि-पितृ-और दानवों का संहार करके युग क्षय में दिन को देखकर फिर सर्ग को संस्थापित किया करते हैं । १२६। एक सहस्र चारों युगों की चौकड़ी का जब अन्त हो जाता है तब ब्रह्माजी का दिन हुआ करता है और इसी रीति से एक सहस्र चारों युगों की चौकड़ी का जब अन्त होता है तब ब्रह्माजी की एक रात्रि हुआ करती है । ऐसे पितामह का अहोरात्र होता है । १२७।

नैमित्तिकः प्राकृतिको यश्चैवात्यंतिकोऽर्थतः ।

त्रिविधिः सर्वभूतानामित्येष प्रतिसंचरः ॥ १२८

ब्राह्मो नैमित्तिकस्तस्य कल्पदाहः प्रसंयमः ।

प्रतिसर्गं तु भूतानां प्राकृतः करणक्षयः ॥ १२९

ज्ञानाच्चात्यंतिकः प्रोक्तः कारणानामसंभवः ।

ततः संहृत्य तान्नब्रह्मा देवांस्त्रैलोक्यवासिनः ॥१३०

प्रहरांते प्रकुरुते सर्गस्य प्रलयं पुनः ।

सुषुप्तसुर्भगवान्नब्रह्मा प्रजाः संहरते तदा ॥१३१

ततो युगसहस्रांते संप्राप्ते च युगक्षये ।

तत्रात्मस्थाः प्रजाः कतुं प्रपेदे स प्रजापतिः ॥१३२

तदा भवत्यनावृष्टिः संतता शतवार्षिकी ।

तया यान्यल्पसाराणि सत्त्वानि पृथिवीतले ॥१३३

यह समस्त प्राणियों का सञ्चर तीन प्रकार का हुआ करता है—  
अर्थानुसार एक नैमित्तिक होता है—दूसरा प्राकृतिक है और तीसरा आत्यान्तिक होता है । १२८। ब्रह्माजी का जो नैमित्तिक है वह प्रसंयम कल्पदाह है । प्रत्येक भूतों के सर्ग में प्राकृत करना क्षय होता है । १२९। ज्ञान से अत्यधिक कहा गया है जहाँ पर कारणों की कोई सम्भवता नहीं होती है । इसके अनन्तर ब्रह्माजो उन समस्त त्रैलोक्य के निवासी देवों का संहार किया करते हैं । १३०। फिर प्रहर के अन्त में सर्ग का प्रलय किया करते हैं । भगवान् ब्रह्माजी जब शयन करने की इच्छा वाले होते हैं उसी समय में समस्त प्रजाओं का संहार किया करते हैं । १३१। फिर चारों युगों की एक सहस्र चौकड़ी का अन्त हो जाता है और युगों का क्षय प्राप्त होता है उस काल में वही प्रजापति समस्त प्रजाओं को अपनी ही आत्मा में स्थित करने के लिए समुच्चत हो जाया करते हैं । उस समय में जो महान् प्रजाओं का संहार होता है उसका आरम्भ इस तरह से हुआ करता है कि सबसे पूर्व तो वर्षा का एकदम निरन्तर रहने वाला अभाव सौ वर्षों तक होता है । उस समय में जल के एकदम सर्वथा न रहने दो जो बहुत अल्प सार वाले जीव हैं और इस पृथ्वी तल में निवास करते हैं वे सभी नष्ट हो जाया करते हैं । १३२-१३३।

तान्येवात्र प्रलीयंते भूमित्वमुपयांति च ।

सप्तरश्मिरथो भूत्वा उदत्तिष्ठुद्विभावसुः ॥१३४

असह्यरश्मिर्भगवान्पिबत्यन्भो गम्भस्तिभिः ।

हरिता रशमयस्तस्य दीप्यमानास्तु सप्ततिः ॥१३५

भूय एव विवर्तन्ते व्यापनुवंतोबरं शनैः ।

भौमं काष्ठेन्धनं तेजो भृशमदिभस्तु दीपयते ॥ १३६

तस्मादुदकभृत्सूर्यस्तपतीति हि कथ्यते ।

नावृष्टच्चा तपते सूर्यो नावृष्टच्चा परिविच्छयते ॥ १३७

नावृष्टच्चा परिविश्येत वारिणा दीपयते रविः ।

तस्मादपः पिबन्यो वै दीपयते रविरंबरे ॥ १३८

तस्य ते रश्मयः सप्त पिबन्त्यंभो महाणवात् ।

तेनाहारेण संदीप्ताः सूर्याः सप्त भवन्त्युत ॥ १३९

ततस्ते रश्मयः सप्त सूर्यभूताश्वतुदिशम् ।

चतुलोकमिमं सर्वं दर्हति शिखिनस्तदा ॥ १४०

उस जलाभाव में वे ही जीव प्रलीन होकर भूमि में मिल जाया करते हैं। फिर सूर्यदेव सात रश्मयों वाले होकर अष्टति सात गुने तेजस्वी होकर उदित हुआ करते हैं ॥ १३४। उस समय में सूर्य भगवान् न सहन करने के योग्य किरणों वाले हो जाया करते हैं और वे अपनी किरणों से भूमि गत सम्पूर्ण जल को पी जाया करते हैं। उस सूर्य को संपत्ति हरित रश्मयाँ दीप्यमान हो जाती हैं ॥ १३५। फिर नभोमण्डल को व्याप्त करती हुई धीरे बढ़ती हैं। भूमि का काष्ठेन्धन बहुत ही तेज युक्त होकर दीप्त होता है जो जल के ही कारण से हो जाता है ॥ १३६। इसी कारण से जल के भरने वाला सूर्य तपता है—यही कहा जाया करता है। सूर्य अवृष्टि से नहीं तपा करता है और अवृष्टि से सूर्य परिविक्त भी नहीं होता है ॥ १३७। अवृष्टि से सूर्य परिवृष्ट नहीं होता है प्रत्युत जल के ही द्वारा रवि दीप्त हुआ करता है। इसी कारण से जो जलों का पान करता रहता है वही रवि अम्बर में दीप्त हुआ करता है ॥ १३८। उस सूर्य की सात रश्मयाँ (किरणेः) महा सागर से जल का पान किया करती हैं। उसी आहार से सात सूर्य प्रदीप्त होते हैं ॥ १३९। इसके अनन्तर वे रश्मयाँ चारों दिशाओं में सात सूर्यों के समान होती हुई उस समय में वे अग्नियाँ इन चारों लोकों को दग्ध किया करती हैं ॥ १४०।

प्राप्नुवंति च ताभिस्तु ह्यद्वं चाधश्च रश्मभिः ।

दीष्यंते भास्कराः सप्त युगांताग्निप्रतापिनः ॥ १४१

ते वारिणा प्रदीप्ताश्च बहुसाहस्ररशमयः ।

स्वं समावृत्य तिष्ठति निर्दहन्तो वसुन्धराम् ॥१४२

ततस्तेषां प्रतापेन दद्यमाना वसुन्धरा ।

साद्रिनद्यर्णवा पृथ्वी निस्नेहा समपद्यत ॥१४३

दीग्निभिः संतताभिश्च चित्राभिश्च समंततः ।

अधश्चोद्धर्वं च तिर्यक् च संरुद्धा सूर्यरशिमग्निः ॥१४४

सूर्याग्नीनां प्रवृद्धानां संसृष्टानां परस्परम् ।

एकत्वमुपयातानामेकज्वाला भवत्युत ॥१४५

सर्वलोकप्रणाशश्च सोऽग्निभूत्वाऽनुमंडली ।

चतुर्लोकमिदं सर्वं निर्दहत्याशुतोजसा ॥१४६

ततः प्रलीने सर्वस्मिन्जज्ञमे स्थावरे तथा ।

निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिः कूर्मपृष्ठसमा भवेत् ॥१४७

उन रशिमयों के द्वारा ऊपर की ओर तथा नीचे की ओर अग्नियाँ प्राप्त होती हैं युग के अन्त में प्रताप देने वाले सात सूर्य दीप्त हुआ करते हैं ॥१४१। सहस्र रशिमयों की बाहुए वारि के ही द्वारा ही प्रदीप्त होती हैं । वे आकाश को समावृत करके ही सम्पूर्ण वसुन्धरा का निर्दहन करती हुई स्थिर रहा करती हैं ॥१४२। इसके पश्चात् उनके परिताप से दहन को प्राप्त होती हुई सम्पूर्ण वसुन्धरा पर्वत-नदी और समुद्रों के सहित यह पृथ्वी स्नेह (द्रव जल) से रहित हो गयी थी ॥१४३। निरन्तर विद्यमान रहने वाली-सुदीप्त और विचित्रता से चारों ओर युक्त सम्पूर्ण भूमि ऊपर-नीचे और तिरछी ओर सूर्य की किरणों से संरुद्ध हो गयी थीं ॥१४४। प्रवृद्ध हुई और परस्पर में संसृष्ट हुई सूर्य की अग्नियाँ एक स्वरूप को प्राप्त होकर एक ही विशाल ज्वाला हो जाती है ॥१४५। वह अग्नि अनुमण्डल वाली होकर समस्त लोकों का प्रणाश किया करता है और इन चारों लोकों का सबका बहुत ही शीघ्र तेज के द्वारा निर्दहन कर देती है ॥१४६। इसके अनन्तर इस सम्पूर्ण स्थावर और जङ्गम के प्रलीन होने पर यह समग्र पृथ्वी वृक्षों से रहित बिना तृणों वाली कम्फुए की पीठ के ही समान यह जैसी हो गयी थी

अंबरीषमिवाभाति सर्वमप्यखिलं जगत् ।

सर्वमेव तदचिभिः पूर्णं जाज्वल्यतो घनः ॥ १४८

भूतले यानि सत्वानि महोदधिगतानि च ।

ततस्तानि प्रलीयंते भूमित्वमुपयांति च ॥ १४९

द्वीपाइच पर्वताश्चैव वर्षाण्यथ महोदधिः ।

सर्वं तद्भस्मसाच्चक्रे सर्वात्मा पावकस्तु सः ॥ १५०

समुद्रे भ्यो नदीभ्यश्च पातालेभ्यश्च सर्वंशः ।

पिबत्यपः समिद्धोऽग्निः पृथिवीमाश्रितो ज्वलन् ॥ १५१

ततः संबद्धितः शैलानतिक्रम्य ग्रहांस्तथा ।

लोकान्संहरते दीप्तो घोरः संवर्त्तकोऽनलः ॥ १५२

ततः स पृथिवीं भित्वा रसातलमशोषयत् ।

निर्दद्वांते तु पातालं वायुलोकमथादहत् ॥ १५३

अधस्तात्पृथिवीं दग्धवा तूद्धौ स दहतो दिवम् ।

योजनानां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥ १५४

यह सब जगत् उस समय में अम्बरीष के ही समान आभात होता था। और यह सम्पूर्ण उस अग्नि की अचियों से पूर्ण घन प्रज्वलित हो रहा था। १४८। इस भूतल में जितने भी प्राणी थे तथा महासागर में जो भी सत्त्व थे वे सबके सब प्रलीन हो जाते हैं और भूमि को मिटटी में मिल जाया करते हैं। १४९। समस्त द्वीप—पर्वत—वर्ष और महासागर इन सभी को उस सर्वात्मा पावक ने जलाकर भस्म के तुल्य ही बना दिया था। १५०। इस भूमि में रहने वाला वह परमाधिक प्रदीप अग्नि जलता हुआ होकर समुद्रों से-नदियों से और पातालों से सभी जगह से जल का पान किया करता है। १५१। इसके अनन्तर वह परम घोर सम्बर्त्तक अनल अधिक सम्बद्धित होकर शैलों और ग्रहों का अतिक्रमण करके परम दीप होता हुआ समस्त लोकों का संहार किया करता है। १५२। इसके पश्चात् वह भीषण अनल इस पृथ्वी का भेदन करके रसातल में पहुँच कर उसका भी शोषण कर देता है। अन्त में पाताल लोक को निर्दग्ध करके फिर वायु लोक को दग्ध कर दिया था। १५३। नीचे पृथ्वी का दाह करके और ऊपर की ओर स्वर्ग लोक को

दग्ध कर दिया था। सहस्रों तथा प्रयुतों और अर्दुदों योजन पर्यन्त उस कालानल की ज्वालाएँ ऊची उठ रही थीं। १५४।

उदतिष्ठुतिगखास्तस्य वट्वद्यः संवर्तकस्य तु ।

गन्धवीश्च पिण्डाचाँश्च समहोरगराक्षसान् ॥ १५५ ।

तदा दहति संदीप्तो गोलकं चैव सर्वजः ।

भूलोकं च भुवर्लोकं स्वर्लोकं च महस्तथा ॥ १५६ ।

घोरो दहति कालाग्निरेवं लोकचतुष्टयम् ।

व्याप्तेषु तेषु लोकेषु तिर्यगूद्धर्वमथाग्निना ॥ १५७ ।

तत्तेजः समनुप्राप्य कृत्स्नं जगदिदं शनैः ।

अयोगुडनिभं सर्वं तदा ह्येवं प्रकाशते ॥ १५८ ।

ततो गजकुलाकारास्तडिभिः समलंकृताः ।

उत्तिष्ठन्ति तदा घोरा व्योम्नि संवर्तका घनाः ॥ १५९ ।

केचिन्नीलोत्पलश्यामाः केचित्कुमुदसन्निभाः ।

केचिद्वैदूर्यसंकाशा इन्द्रनीलनिभाः परे ॥ १६० ।

णंखकुन्दनिभाश्चान्ये जात्यं जननिभास्तथा ।

धूम्रवर्णा घनाः केचित्केचित्पीताः पयोधराः ॥ १६१ ।

उस सम्वर्तक अनल की शिखाएँ बहुत सी ऊपर की ओर उठ रही थीं और वे ज्वालाएँ ऊपर में संस्थित गन्धवी—पिण्डाचों और महोरगों तथा राक्षसों को निर्दग्ध कर रही थीं। १५४। उस समय में यह संदीप्त अनल सभी ओर से गोलक को दग्ध कर देता है। भूलोक-भुवर्लोक—स्वर्लोक और महर्लोक को भी जला देता है। १५६। यह परम कालग्नि इस रीति से चारों लोकों को निर्दग्ध कर दिया करता है। तिरछा और ऊपर की ओर इस प्रकार से उन समस्त लोकों में इसके व्याप्त हो जाने पर सभी को भस्म-सात् कर देता है। १५७। धीरे-धीरे यह तेज इस सम्पूर्ण जगत् में सम्प्राप्त हो जाता है। उस समय में यह सम्पूर्ण जगत् एक परमाधिक संतप्त लोहे के गोले के हो समान प्रकाशित हुआ करता है। १५८। इसके उपरान्त उस समय में नभोमंडल में हाथियों के समूह के आकार बले विद्युल्लता से समलङ्घत परम घोर सम्वर्तक मेष उमड़ कर उठते हैं। १५९। उन मेषों

में कुछ तो नोल कमलों के सहश आकार वाले होते हैं और कुछ कुमुदों के तुल्य हुआ करते हैं। कुछ वैदूर्यमणि के समान होते हैं तो दूसरे इन्द्रनील मणि के तुल्य हुआ करते हैं। १६०। कुछ शङ्ख और कुन्द पुष्प के सहश श्वेत होते हैं तथा कुछ जाती और अञ्जन के समान हुआ करते हैं। कुछ मेघों का वर्ण धूम्र के समान होता है तथा कुछ पशोधर पीतवर्ण वाले होते हैं। १६१।

**केचिद्रासभवर्णभा लाक्षारसनिभास्तथा ।**

**मनशिलाभास्त्वपरे कपोताभास्तथांबुदाः ॥ १६२**

**इन्द्रगोपनिभाः केचिद्विरितालनिभास्तथा ।**

**चाषपत्रनिभाः केचिदुत्तिष्ठन्ति घना दिवि ॥ १६३**

**केचित्पुरवराकाराः केचिदगजकुलोपमाः ।**

**केचित्पर्वतसंकाशाः केचित्स्थलनिभा घनाः ॥ १६४**

**क्रीडागारनिभाः केचित्केचिन्मीनकुलोपमाः ।**

**बहुरूपा घोररूपा घोरस्वरनिनादिनः ॥ १६५**

**तदा जलधराः सर्वे पूर्यन्ति नभस्तलम् ।**

**ततस्ते जलदा घोरराविणो भास्करात्मकाः ॥ १६६**

**सप्तधा संवृतात्मानस्तमग्निं शमयन्त्युत ।**

**ततस्ते जलदा वर्णं मुचन्ति च महौघवत् ॥ १६७**

**सुधोरमणिवं सर्वं नाशयन्ति च पावकम् ।**

**प्रबृष्टैश्च तथात्यर्थं वारिणा पूर्यते जगत् ॥ १६८**

कुछ मेघों का वर्ण रामभ (गधा) के सहश होता है तथा कुछ लाख के रस के सहश हुआ करते हैं। दूसरे कुछ मैनसिल के सहश एकदम सुख्ख होते हैं तथा कुछ कबूतरों के समान वर्णों वाले होते हैं। १६२। कुछ इन्द्र गोप के सहश हैं तो कुछ हरिताल के समान रङ्ग वाले हुआ करते हैं। उस समय में अन्तरिक्ष में चाष के पत्रों के ही सहश मेघ उमड़कर उठा करते हैं। १६३। कुछ धन श्वेष पुर के आकार वाले हैं तो कुछ द्विज (पक्षी) कुलों के सहश हुआ करते हैं। कुछ धन तो उस यमय में विशाल पर्वतों के समान आकार वाले होते हैं तथा कुछ ऐसे प्रतीत होते हैं मानों स्थल ही होवें। १६४। कुछ

मेष क्रीड़ा ग्रहों के तुल्य होते हैं तो कुछ मीनों के समुद्रम के सहश दिखलाई दिया करते हैं। उस समय में मेघों के अनेक स्वरूप दिखाई दिया करते हैं। उनका स्वरूप परमाधिक घोर होता है और वे भयच्छुर गजंन किया करते हैं। १६५। उस समय जलधर आकर नभस्तल को एक साथ समाच्छादित कर देते हैं। इसके अनन्तर वे मेघ परम भीषण घोघ किया करते हैं और भास्कर के ही स्वरूप वाले होते हैं। १६६। सात स्वरूपों में संवृत होने वाले वे मेघ उस परम ओर अग्नि का शमन कर दिया करते हैं। इसके उपरान्त वे मेघ महान् घोर मूसलाधार वर्षा किया करते हैं। १६७। परम घोर अशिव उस अग्नि का विनाश कर दिया करते हैं और अत्यधिक वर्षा के द्वारा जल से सम्पूर्ण जगत् को भर दिया करते हैं। १६८।

**अदिभस्तेजोभिभूतं च तदाग्निः प्रविशत्यपः ।**

**नष्टे चाग्नी वर्षगते पयोदाः पावकोदभवाः ॥ १६९ ॥**

**प्लावयन्तो जगत्सर्वं वृहउजलपरिस्त्रवैः ।**

**धाराभिः पूरयन्तीमं चोद्यमानाः स्वयंभुवा ॥ १७० ॥**

**अन्ये तु सलिलोघैस्तु वेलामभिभवन्त्यपि ।**

**साद्विद्वीपांतरं पीतं जलमन्येषु तिष्ठति ॥ १७१ ॥**

**पुनः पतति भूमौ तत्पयोधस्तान्नभस्तले ।**

**संवेष्यति घोरात्मा दिवि वायुः समंततः ॥ १७२ ॥**

**तस्मिन्नेकार्णवे घोरे नष्टे स्थावरजंगमे ।**

**पूर्णे युगसहस्रे वै निःशेषः कल्प उच्यते ॥ १७३ ॥**

**अथांभसाऽवृते लोके प्राहुरेकार्णवं बुधाः ।**

**अथ भूमिर्जलं खं च वायुश्चैकार्णवे तदा ॥ १७४ ॥**

**नष्टेऽनलेऽन्धभूते तु प्राज्ञायत न किञ्चन ।**

**पार्थिवास्त्वथ सामुद्रा आपो दैव्याश्च सर्वशः ॥ १७५ ॥**

उस समय में तेज से समुद्रभूत वह अग्नि जलों के द्वारा परिभूरित होकर फिर जल में प्रवेश कर जाया करती है। जब वर्षा से वह अग्नि विनष्ट हो जाती है तो यपोद भी पावकोदभव हो जाया करते हैं। १६९।

द्वारा प्रेरित होते हुए अपनी धाराओं से इस जगत् को भर दिया करते हैं । १७०। कुछ अन्य मेघ अपने जलों के समुदायों से वेला को भी अभिभूत कर दिया करते हैं । सातों द्वीपों के अन्दर जो भी जल था उसका पान कर लिया था और वह जल अन्यत्र स्थित था । १७१। फिर वही जल आकाश से नीचे भूमि में गिर रहा था । उस काल में आकाश में परम घोर स्वरूप वाला वायु सभी और से ढक लिया करता है । १७२। उस समय में केवल परम घोर एक समुद्र ही दिखाई दिया करता है तथा अन्य स्थावर और जंगम स्वरूप पूर्णतया विनष्ट हो जाता है । पूर्ण जब एक सहस्र युगों की चौकड़ी होती है तभी निःशेष कल्प कहा जाया करता है । १७३। इसके अनन्तर जब जल के द्वारा यह लोक समावृत होजाता है तो बुध जन इसको एक मात्र सागर ही कहा करते हैं । इसके अनन्तर भूमि—जल—आकाश और वायु—इन सबका एक ही सागर हो जाता है । १७४। अनल के नष्ट होने पर एकदम अनधिकार हो जाता है और उस समय में अन्य कुछ भी नहीं दिखाई देता है । पार्थिव—अर्थात् पृथ्वी के भाग तथा सामुद्र अर्थात् समुद्र के भाग ये सभी और से दैव्य जल ही जल दिखाई दिया करते हैं । १७५।

असरन्त्यो व्रजंत्यैक्यं सलिलाख्यां भजन्त्युत ।

आगतागतिके चैव तदा तत्सलिलं स्मृतम् ॥ १७६

प्रच्छाद्यति महीमेतामण्वाख्यं तु तज्जलम् ।

आभाति यस्मात्तद्भाभिभर्ति शब्दो व्याप्तिदीप्तिषु ॥ १७७

भस्म सर्वमनुप्राप्य तस्मादंभो निरुच्यते ।

नानात्वे चैव शीघ्रे च धातुर्वें अर उच्यते ॥ १७८

एकार्णवे तदा ह्यो वै न शीघ्रस्तेन ता नराः ।

तस्मिन्युगसहस्रांते दिवसे ब्रह्मणो गते ॥ १७९

तावंतं कालमेवं तु भवत्येकार्णवं जगत् ।

तदा तु सर्वे व्यापारा निवर्त्तते प्रजापतेः ॥ १८०

एकमेकार्णवे तस्मिन्नष्टे स्थावरजंगमे ।

तदा स भवति ब्रह्मा सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ १८१

सहस्रशीर्षा सुमनाः सहस्रपात्सहस्रचक्षुवंदनः सहस्रबाक्  
सहस्रबाहुः प्रथमः प्रजापतिसत्रयीमयो यः पुरुषो  
निरुच्यते ॥ १८२

इनका सरण सर्वथा नहीं होता है और सब एक रूपता को प्राप्त हो जाया करती हैं जिसका नाम सलिल ही होता है। वह आगत और आगतिक जो भी है वह सब सलिल ही कहा गया है। १७६। वह अर्णव नाम वाला जल इस समग्र पृथ्वी को प्रच्छादित कर लिया करता है। क्योंकि उसकी भाऊं से वह आभात होता है। यहाँ भी शब्द व्याप्ति और दीप्ति में आया है। १७७। वह सब भस्म को अनुप्राप्त करके ही—हुआ है अतएव अम्भ कहा जाया करता है। नानात्व में और शीघ्र में अरधातु कही जाती है। १७८। उस समय में एकार्णव में कल है और शीघ्र नहीं है इसीलिए वे नरा हैं। उस एक सहस्र चारों की चौकड़ी के अन्त में ब्रह्माजी का एक दिन व्यतीत होने पर उसने काल पर्यन्त यह जगत् एकार्णव के रूप में रहता है। वह समय ऐसा होता है कि उसमें प्रजापति के सभी व्यापार अर्थात् कार्य-शीलता निवृत्त हो जाते हैं। १८०। उस समय में जब सभी स्थावर और जंगम विनष्ट हो जाया करते हैं और एकमात्र अणन हो रहता है तो एक ही ब्रह्माजी रहा करते हैं जो अनेक नेत्रों और चरणों वाले हैं। १८१। सहस्रों मस्तकों वाले—सुन्दर मन से सम्पन्न—अनेक चरणों सहस्रों चक्षुओं से युक्त और अनेकों वाणियों वाले एवं सहस्र बाहुओं से संयुत प्रथम प्रजापति त्रयीमय हैं जो पुरुष—इस नाम से कहा जाया करता है अर्थात् वही परम पुरुष हैं। १८२।

आदित्यवर्णो भुवनस्य गोप्ता अपूर्वं एकः प्रथमस्तुराषाद् ।  
हिरण्यगर्भः पुरुषो महान्वै संपठच्यते वै रजसः  
परस्तात् ॥ १८३

चतुर्युगसहस्रान्ते सर्वतः सलिलाप्लुते ।

मुखुष्मुरप्रकाशेष्मुः स रात्रिं कुरुते प्रभुः ॥ १८४

चतुर्विधा यदा शेते प्रजाः सर्वा लयं गताः ।

पश्यन्ति तं महात्मानं कालं सर्वत महर्षयः ॥ १८५

एवं स लोके निर्वृत्त उपशान्ते प्रजापतौ ।

ब्राह्मे नैमित्तिके तस्मिन्कल्पिते वै प्रसंयमे ॥१६२

देहैवियोगः सत्त्वानां तस्मिन्वै कृत्स्नशः स्मृतः ।

ततो दग्धेषु भूतेषु सर्वेष्वादित्यरश्मिभिः ॥१६३

देवषिमनुवर्णेषु तस्मिन्नं बुद्ध्लवे तदा ।

गंधवादीनि सत्त्वानि पिशाचांतानि सर्वंशः ॥१६४

कल्पादावप्रतर्णानि जनमेवाश्रयंति गौ ।

तिर्यग्योनीनि नरके यानि यानि गतान्यपि ॥१६५

तदा तान्यपि दग्धानि धूतपापानि सर्वंशः ।

जले तान्युपपद्यान्ते यावत्संप्लवते जगत् ॥१६६

इसके अनन्तर सबकी रचना करने वाले महान् तेजस्वी ने सब कुछ को अपनी ही आत्मा में रखकर फिर रात्रि में ही उस एकार्णव स्वरूप जल में निवास किया करता है ॥१६०। फिर उस रात्रि का क्षय प्राप्त हो जाने पर प्रजापति जागते हैं और सृष्टि के सृजन करने की इच्छा से संयुत करने के लिए मन किया करते हैं ॥१६१। इसी रीति से वह लोक निर्वृत्त होता है जबकि प्रजापति उपशान्त हो जाधा करते हैं । वह प्रसंयम ब्राह्म और नैमित्तिक कल्पित होता है ॥१६२। उसमें जीवों का अपने देहों से पूर्णतया वियोग कहा गया है । फिर सूर्य देव को परमाधिक संतप्त रश्मियों के द्वारा समस्त प्राणियों के दग्ध हो जाने पर सरक्षय हो जाता है ॥१६३। उस जल प्लावन में उस समय में देव-ऋषि-मनुष्य-गन्धर्व-पिशाच आदि जीव सभी यहाँ से जनलोक में निवास किया करते हैं तथा नरकगामी हैं उन सबका भी विनाश हो जाया करता है ॥१६४-१६५। उस समय में वे भी पापों से रहित होकर सब निर्दग्ध हो जाया करते हैं और वे सभी जब तक यह सम्पूर्ण जगत जलमय रहता है जल में ही निमग्न हो जाया करते हैं अर्थात् जल ही के रूप में पहते हैं ॥१६६।

व्युष्टायां च रजन्यां तु ब्रह्मणोऽव्यक्तयोनितः ।

जायन्ते हि पुनस्तानि सर्वभूतानि कृत्स्नशः ॥१६७

ऋषयो मनवो देवाः प्रजाः सर्वश्चितुविधाः ।

तेषामपि च सिद्धानां निधनोत्पत्तिरुच्यते ॥ १६८  
 यथा सूर्यस्य लोकेऽस्मिन्नुदयास्तमने स्मृते ।  
 तथा जन्मनिरोधश्च भूतानामिह दृश्यते ॥ १६९  
 आभूतसंप्लवात्तस्मादभवः संसार उच्यते ।  
 यथा सर्वाणि भूतानां जायन्ते वर्षणेष्विह ॥ २००  
 स्थावरादीनि नियमात्कल्पे कल्पे तथा प्रजाः ।  
 यथात्तर्वितुलिगानि नानारूपाणि पर्यये ॥ २०१  
 दृश्यन्ते तानि तान्येव तथा ब्रह्मद्युरात्रिषु ।  
 प्रत्याहारे विसर्गे च गतिमंति ध्रुवाणि च ॥ २०२  
 निष्क्रमन्ते विशंते च प्रजाः काले प्रजापतिम् ।  
 ब्रह्माणं सर्वभूतानि महायोगं महेश्वरम् ॥ २०३

जिस समय में यह महानिशा नष्ट हो जाती है तब अव्यक्त योनि वाले ब्रह्म से वे सभी भूत पूर्ण रूप से फिर समुत्पन्न हो जाया करते हैं । १६७। ऋषिगण-मनुगण-देवगण और सब चारों प्रकार की प्रजा और उन्हीं सिद्धों की निधनोत्पत्ति कही जाया करती हैं । १६८। जिस प्रकार से इस लोक में सूर्यदेव के उदय और अस्तमन कहे गये हैं उसी तरह से इन समस्त प्राणियों का जन्म और निरोध भी हुआ करता है जो कि सबको दिखाई दिया करता है । आत्मा तो नित्य है, उसका शरीर से वियोग ही निधन और संयोग जन्म कहा जाया करता है । १६९। उस समस्त प्राणियों की जल निमग्नता से उत्पन्न हो जाना ही संसार कहा जाया करता है । जैसे वर्षा होने पर यहाँ पर सब भूतों के साहित्य समुत्पन्न हुआ करते हैं । २००। स्थावर आदि सब प्रत्येक कल्प में तथा समस्त प्रजा जैसे ऋतु काल में सभी ऋतु के चिह्न नाना रूप वाले हो जाया करते हैं और बदल जाते हैं वैसे ही सब समुत्पन्न होते हैं । २०१। जिस तरह से ब्रह्मा के दिन और रात्रि में है वही सबके सब दिखलाई दिया करते हैं । जब प्रत्याहरण होता है और विसर्ग होता है । उस समय में सभी निष्ठित रूप से गतिमान् हुआ करते हैं । २०२। समय के समुपस्थित हो जाने पर अपने ही आप ये सब प्रजाजन निराशति में उत्तेजित होते हैं ।

तथा महेश्वर में महायोग किया करते हैं अर्थात् सृजन काल में ब्रह्माजी में तथा संहरण काल में महेश्वर में इन सबका महान् योग होता है ॥२०३।

स सृष्टा सर्वभूतानां कल्पादिषु पुनः पुनः ।

व्यक्तोऽव्यक्तो महादेवस्तस्य सर्वमिदं जगत् ॥२०४

येनैव सृष्टाः प्रथमं प्रयाता आपो हि मार्गेण महीतलेऽस्मिन् ।

पूर्वं प्रयातेन यथात्वथापस्तेनैव तेनैव तु स्वर्वजंति ॥२०५

यथा शुभेन त्वशुभेन चैव तत्रैव विवर्त्तमानाः ।

मत्यस्तु देहांतरभावितत्वाद्रवेर्शादृधर्वमधश्चरंति ॥२०६

ये चापि देवा मनवः प्रजेशा अन्येऽपि ये स्वर्गंगताश्च सिद्धाः ।

तद्भाविताः ख्यातिवशाच्च धर्म्याः पुनविसर्गेण

भवन्ति सत्त्वाः ॥२०७

अत ऊर्ध्वं प्रवक्ष्यामि कालमाभूतसंलब्धम् ।

मन्वन्तराणि यानि स्युव्याख्यातानि मया द्विजाः ॥२०८

सह प्रजानिसर्गेण सह देवैश्चतुर्दश ।

सा युगाख्या सहस्रं तु सर्वाण्येवांतराणि वै ॥२०९

अस्याः सहस्रे द्वे पूर्णे विशेषः कल्प उच्यते ।

एतद्ब्राह्ममहज्ञैयं तस्य संख्यां निबोधतः ॥२१०

कल्पों के आदि काल में बार-बार समस्त प्राणियों का वही सृजन करने वाला हुआ करता है । महादेव का स्वरूप ब्यक्त और अब्यक्त है और उसी का यह सम्पूर्ण जगत् हुआ करता है ॥२०४। जिसके ही द्वारा ये सर्वे प्रथम सृष्ट हुए हैं वे जल समग्र इसी महीतल में मार्ग के द्वारा चले गये हैं । जैसे पूर्व में यह गमन कर गये हैं उसी मार्ग से फिर भी स्वर्ग में चले जाते हैं ॥२०५। जो भी उनका कर्म शुभ अथवा अशुभ होता है उसी के अनुसार वे वही-वहाँ अन्य देहों में स्थित रहते हुए सूर्य के वंश में रहकर ऊर्ध्वं में अर्थात् देवलोक में और अद्विमाग में अर्थात् नरकों में सञ्चरण किया करते हैं ॥२०६। और जो भी देवगण और मनुगण हैं—प्रवेश और अन्य भी जो स्वर्ग में गये हुए सिद्ध हैं वे सब उसी से होने वाले तथा ख्याति के वश होने से धर्म से मुक्त होते हुए प्राणी फिर विसर्ग के द्वारा हुआ

करते हैं । २०७। इसके आगे आभूत संप्लव अर्थात् समस्त प्राणियों को जल-मग्न हो जाना मैं उस काल के विषय में वर्णन करूँगा । हे द्विजो ! जो-जो भी मन्बन्तर होते हैं । उन सबको मैंने बतला ही दिया है । २०८। प्रजाओं के निसर्ग और देवों के साथ चतुर्दश होते हैं । वह सहस्र युगार्थ्या है उसी में सभी अन्तर होते हैं । २०९। इस युगार्थ्या के जब पूर्ण हो सहस्र होते हैं तब विशेष कल्प कहा जाया करता है । यही ब्रह्माजी का दिन समझना चाहिए । उसकी संख्या को भी समझ लो । २१०।

**निमेषतृल्यमात्रा हि कृता लब्धक्षणेन तु ।**

**मानुषाक्षिनिमेषास्तु काष्ठा पञ्चदश स्मृताः ॥२११**

**नव क्षणस्तु पञ्चैव विज्ञत्काष्ठा तु ते त्रयः ।**

**प्रस्था सृष्टोदकाशचैव साधिकास्तु लबः स्मृतः ॥२१२**

**लवास्त्रिशत्कला ज्ञेया मुहूर्तस्त्रिशतः कलाः ।**

**मुहूर्तस्तु पुनस्त्रिशदहोरात्रमिति स्थितिः ॥२१३**

**अहोरात्रं कलानां तु अधिकानि शतानि षट् ।**

**ताश्चैव संख्यया ज्ञेयाश्चंद्रादित्यगतिर्यथा ॥२१४**

**निमेषा दश पञ्चैवं काष्ठास्तास्त्रिशतः कला ।**

**त्रिशत्कला मुहूर्तं तु दशभागं कला स्मृतम् ॥२१५**

**चत्वारिंशत्कलाः पञ्च मुहूर्ता इति संज्ञितः ।**

**मुहूर्ताश्च लवाश्चापि प्रमाणज्ञैः प्रकल्पिताः ॥२१६**

**तथानेनांभस्त्वापि पलान्यथ त्रयोदश ।**

**मागधेनैव मानेन जलप्रस्थो विधीयते ॥२१७**

अण के लाभ से निमेष की मात्रा होती है । मनुष्य की आँखों की पलकें जो चलती हैं उसी काल को निमेष कहा जाता है । ऐसे पन्द्रह निमेषों की एक काष्ठा होती है । नौ और पाँच क्षण ही बीस काष्ठा है । वे तीन तथा साधिक सात प्रस्थोदक लब कहा गया है । २११-२१२। तीस लब की एक कला होती है और तीस कला का—एक मुहूर्त होता है । यही स्थिति हुआ करती है । २१३। कलाओं का अहोरात्र साधिक शत और छूँ है । वे ही संख्या से जैसी चन्द्र और सूर्य की गति होती है जान लेनी

चाहिए । २१४। पन्द्रह निमेष काष्ठा है और तीस काष्ठाओं की कला होती है । तीस कला का मुहूर्त होता है । दशभाग ही कला कहा गया है । २२५। चालीस कलाओं के पाँच मुहूर्त संज्ञा होती है । ये मुहूर्त और लब प्रमाणों के ज्ञाताओं के द्वारा कल्पित किये हैं । उसी भाँति से इसके द्वारा जल के भी तरह पल होते हैं । मागध मान से भी जल प्रस्थ किया जाता है । २१६-२१७।

एते वाराप्लुतप्रस्थाश्चत्वारो नालिकोच्चयः ।

हेममाषः कृतच्छिद्रश्चतुभिश्चतुरंगुलैः ॥ २१८ ॥

समाहनि च रात्रौ च मुहूर्ता वै द्विनालिकाः ।

रवेगंतिविशेषेण सर्वेष्वेतेषु नित्यशः ॥ २१९ ॥

अधिकं षट्शतं यच्च कलानां प्रविधीयते ।

तदहर्मानुषं ज्ञेयं नाक्षत्रं तु दशाधिकम् । २२० ॥

सावनेन तु मानेन अब्दोऽयं मानुषः स्मृतः ।

एतदिदव्यमहोरात्रमिति शास्त्रविनिश्चयः ॥ २२१ ॥

अहनानेन तु या संख्या मासत्वंयनवाहिकी ।

तदा बद्धमिदं ज्ञानं संज्ञया ह्युपलक्षितम् ॥ २२२ ॥

कलानां तु परीमाणं कला इत्यभिधीयते ।

यदहो ब्रह्मणः प्रोक्तः दिव्या कोटी तु सा स्मृतः । २२३ ॥

शतानां च सहस्राणि दशद्विगुणितानि च ।

नवति च सहस्राणि तथंवान्यानि यानि तु ॥ २२४ ॥

ये धारा प्लुत प्रस्थ नालिकोच्चय चार हैं । चार अंगुल चार हेम-माषों से कृतच्छिद्र है । २१८। सम दिन में और रात्रि में द्विजालि का मुहूर्त होते हैं । नित्य ही इन सबों में रवि की गति विशेष से होते हैं । २१९। और अधिक छं सौ कलाओं का प्रविधान किया जाता है । वह मनुष्यों का दिन समझना चाहिए और जो नक्षत्र है वह दशाधिक होता है । २२१। इस दिन से जो संख्या होती है वह मास-ऋतु-अयन और वर्ष की होती है । उस समय में यह बद्धज्ञान संज्ञा के द्वारा उपलक्षित होता है । २२२। कलाओं का जो परिमाण है वह कला—इस नाम थे कहा जाया करता है । जो ब्रह्माजी

का दिन कहा गया है वह दिव्य कोटी कही गयी है । २२३। शतों के सहस्र दश ही से गुणित होते हैं नब्बे सहस्र और उसो भाँति जो अन्य हैं । २२४।

एतच्छ्रुत्वा तु ऋषयो विस्मयं परमादभृतम् ।

संख्यासंभजनं ज्ञानमपृच्छन्सुतरां तदा ॥ २२५ ॥

ऋषयु ऊचु—

संप्रकालनमानं तु मानुषेणैव सम्मतम् ।

मानेन श्रोतुमिच्छामः संक्षेपार्थं पदाक्षरम् ॥ २२६ ॥

तेषां श्रुत्वा स देवस्तु वायुलोकहिते रतः ।

संक्षेपादिदव्यचक्षुष्ट्वात्प्रोवाच वचनं प्रभुः ॥ २२७ ॥

एते रात्र्यहनी पूर्वं कीर्तिते त्विह लौकिके ।

तासों संख्याथ वर्षग्रिं ब्राह्मे वक्ष्याम्यहः क्षये ॥ २२८ ॥

कोटीशतानि चत्वारि वर्षाणि मानुषाणि तु ।

द्वार्त्रिशत्त्वं तथा कोट्यः संख्याताः संख्यया द्विजैः ॥ २२९ ॥

तथा शतसहस्राणि एकोननवतिः पुनः ।

अशीतिशत्त्वं सहस्राणि एष कालः प्लवस्य तु ॥ २३० ॥

मानुषाख्येन संख्यातः कालो ह्याभूतसंप्लवः ।

सप्तसूर्यं प्रदग्धेषु तदा लोकेषु तेषु वै ।

महाभूतेषु लीयंते प्रजाः सर्वाश्चतुर्विधाः ॥ २३१ ॥

समस्त ऋषियों ने जब यह सुना तो उनको बहुत ही अधिक आश्चर्य हुआ था । उस समय में पुनः इस संख्या के संभजन के ज्ञान को पूछा था । २२५। ऋषियों ने कहा—यह संप्रकालन का ज्ञान मनुष्यों के द्वारा ही सम्मत होता है । अब हम लोग मान के द्वारा संक्षेपार्थं पदाक्षर को श्रवण करने की इच्छा करते हैं । २२६। उनके इस वचन को सुनकर लोगों के हित में रति रखने वाले वायु देव ने जो प्रभु दिव्य चक्षु वाले थे यह वचन बोले । २२७। वे रात और दिन जो कि लौकिक होते हैं और यहाँ पर माने जाते हैं और यहाँ पर माने जाते हैं वे तो अपने पूर्व में ही वर्णन कर दिए हैं ।

चार सौ करोड़ मानवों के वर्ष तथा बत्तीस करोड़ द्विजों के द्वारा संख्या से संख्यात है । २२६। उसी भाँति एक सौ सहस्र और फिर उन्यासी अस्सो सहस्र यह उस महान् प्लव का काल होता है । २३०। यह आभूत संप्लव का काल मानुष नामक संख्या से गिनकर बताया गया है । जिसमें समस्त प्राणियों का संक्षय होकर सर्वत्र जल ही जल हो जाता है उसी को आभूत संप्लव कहा जाया करता है । सात सूर्यों के द्वारा उस समय में उन लोकों के प्रदग्ध होने पर चारों प्रकार की सम्पूर्ण प्रजा महाभूतों में लीन हो जाया करती है । जरायुज—स्वेदज—अण्डज और उदिभज—ये प्रजा के चार प्रकार होते हैं । २३१।

सलिलेनाप्लुते लोके नष्टे स्थावरजंगमे ॥२३२

विनिवृत्ते च संहारे उपशान्ते प्रजापतौ ।

निरालोके प्रदग्धो तु नैशेन तमसा वृते ॥२३३

ईश्वरराधिष्ठिते त्वस्मिस्तदा ह्येकार्णवे किल ।

तावदेकार्णवे ज्येयं यावदासीदहः प्रभोः ॥२३४

रात्रिस्तु सलिलावस्था निवृत्तौ वाप्यहः स्मृतम् ।

अहोरात्रस्तथैवास्य क्रमेण परिवर्तते ॥२३५

आभूतसंप्लवो ह्येष अहोरात्रः स्मृतः प्रभोः ।

त्रैलोक्ये यानि सत्वानि गतिमंति ध्रुवाणि च ॥२३६

आभूतेभ्यः प्रलीयन्ते तस्मादाभूतसंप्लवः ।

अतीता वर्तमानाश्च तथैवानागताः प्रजाः ॥२३७

दिव्यसंख्या प्रसंख्याता अपरार्धगुणीकृताः ।

पराद्दृं द्विगुणं चापि परमायुः प्रकीर्तितम् ॥२३८

उस समय में सम्पूर्ण लोक जल से समाप्लुत होकर नष्ट हो जाया करता है और सभी स्थावर तथा जलम विनष्ट हो जाया करते हैं । २३२। समग्र संहार के समीप हो जाने पर और प्रजापति के उपशान्त होने पर तथा सर्वत्र प्रकाश से रहित एवं दग्ध तथा रात्रि के अन्धकार से आबृत होने पर । २३३। उस समय में यह सम्पूर्ण जगत् ईश्वर के द्वारा ही अधिष्ठित था और सबत्र एक ही अण्ठंव था । यह तब तक एकार्णव का स्वरूप था जब

उसी को दिन कहा गया है। इसी रीति से इनका अहोरात्र क्रम से परिवर्तित हुआ करता है। २३५। यह आभूत संप्लव प्रभु का अहोरात्र कहा गया है। इन तीनों लोकों में जो भी प्राणी हैं वे सभी गतिमान् और ध्रुव हैं। २३६। जितने भी भूत हैं वे सभी प्रलीन होते हैं इसी कारण से इसका नाम आभूत संप्लव होता है। जो व्यतीत हो चुके हैं—जो भी वर्तमान हैं और जो प्रजा अनागत हैं और अपराध से गुणी वृत हैं। पराध द्विगुण हैं और यही परम आयु कीत्ति की गयी है। २३७-२३८।

एतावान्स्थितिकालस्तु ह्यजस्येह प्रजापतेः ।

स्थित्यंतं प्रतिसर्गश्च ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ॥२३९

यथा वायुप्रगेन दीपाच्चिरूपशाम्यति ।

तथैव प्रतिसर्गेण ब्रह्मा समुपशाम्यति ॥२४०

तथा स्वप्रतिसंसृष्टे महादादौ महेश्वरे ।

महत्प्रलीयते व्यक्ते गुणसाम्यं ततो भवेत् ॥२४१

इत्येष वः समाख्यातो मया ह्याभूतसंप्लवः ।

ब्रह्मन्मित्तिको हृष संप्रक्षालनसंयमः ।

समासेन समाख्यातो भूयः किं वर्णयामि वः ॥२४२

य इदं धारयेन्नित्यं शृणुयाद्वाप्यभीक्षणशः ।

कीर्त्येद्वर्णयेष्टापि महतीं सिद्धिमाप्नुयात् ॥२४३

उस अजन्मा प्रजापति का इतना ही स्थिति का काल होता है। उस परमेष्ठी ब्रह्माजी का स्थिति का अन्त और प्रति सर्ग होता है। २३९। जिस प्रकार से वायु के प्रवेग से दीप की शिखा उपशान्त हो जाया करते हैं। २४०। उसी भाँति महदादि महेश्वर के अपने प्रति संसृष्ट होने पर महिमा है। जो भी कोई इसको नित्य धारण किया करता है अथवा इसका बारम्बार श्रवण किया करता है अथवा इसका कीर्त्तन किया करता है या वर्णन करता है वह मानव बड़ी भारी सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। २४३।

## ॥ प्रतिसर्ग वर्णन ॥

सूत उवाच-

प्रत्याहारं प्रवक्ष्यामि परस्यांते स्वयंभुवः ।

ब्रह्मणः स्थितिकाले तु क्षीणे तस्मिस्तदा प्रभोः ॥१

यथेदं कुरुतो व्यक्तं सुसूक्ष्मं विश्वमीश्वरः ।

अव्यक्तं ग्रसतो व्यक्तं प्रत्याहारे च कृत्स्नशः ॥२

पुरांतदव्यणु काच्चानां संपूर्णे कल्पसंक्षये ।

उपस्थितो महाघोरे ह्यप्रत्यक्षे तु कस्याचित् ॥३

अंतौ द्रुमस्य संप्राप्तो पश्चिमस्य मनोस्तदा ।

अंतो कलियुगे तस्मिन्क्षीणे संहार उच्यते ॥४

संम्प्राप्तो तदा वृत्ते प्रत्याहारे ह्युपस्थितो ।

प्रत्याहारे तदा तस्मिन्भूततन्मात्रासंक्षये ॥५

महदादिविकारस्य विशेषांतस्य संक्षये ।

स्वभावकारितो तस्मिन्प्रत्ते संचरे ॥६

आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम् ।

आत्तंगंधा ततो भूमिः प्रलयत्वाय कल्पते ॥७

श्री सूतजी ने कहा—पर के अन्त में स्वयंभू का प्रत्याहार मैं कहूँगा । प्रभु ब्रह्म के स्थिति के काल में और उस समय में उसके क्षीण हो जाने पर । १। जैसे ईश्वर इस सुसूक्ष्म व्यक्त विश्व की रचना करता है । प्रत्याहार के समय में इस अव्यक्त को व्यक्त ग्रस लिया करता है और पूर्णतया यह ग्रस्त हो जाता है । २। पुरान्त द्वयणुक आदि का सम्पूर्ण कल्प संक्षय होने पर । ३। अन्त में उस समय में पश्चिम द्रुम मनु के सम्प्राप्त होने पर अन्त में उस कलियुग के क्षीण हो जाने पर संहार कहा जाता है । ४। उस समय में वृत्त के सक्षाल होने पर और प्रत्याहार के उपस्थित होने पर उस काल में प्रत्याहार में भूतों और तन्मात्राओं का संक्षय हो जाता है । ५। महत् तत्त्व आदि जो प्रकृति के विकार हैं विशेषान्त पर्यन्त सबका संक्षय हो जाता है । यह सभी कुछ स्वभाव से ही किया जाता है तब वह प्रति सञ्चर

प्रवृत होता है । ६। सर्व प्रथम जल भूमि का जो विशेष गुण गन्ध है उसको ग्रस लिया करते हैं । इसके अनन्तर गन्ध हीन भूमि प्रलय को ही प्राप्त हो जाया करती है । ७।

प्रणष्टे गंधतन्मात्रे तोयावस्था धरा भवेत् ।

आपस्तदा प्रविष्टास्तु वेगवत्यो महास्वनाः ॥ ८

सर्वमापूरयित्वेदं तिष्ठति विचरति च ।

अपामपि गणो यस्तु ज्योतिः ष्वालीयते रसः ॥ ९

नश्यत्यापस्तदा तत्र रसतन्मात्रसंक्षयात् ।

तीव्रते जोहतरसा ज्योतिष्ठवं प्राप्नुवत्युत ॥ १०

ग्रस्ते च सलिले तेजः सर्वतोमुखमीक्षते ।

अथाग्निः सर्वतो व्याप्त आदत्ते तज्जलं तदा ॥ ११

सर्वमापूर्यंतोऽचिभिस्तदा जगदिदं शनैः ।

अचिभिः संतते तस्मिस्तर्यंगूर्ध्वं मधस्ततः ॥ १२

ज्योतिषोऽपि गुणं रूपं वायुरत्ति प्रकाशकम् ।

प्रलीयते तदा तस्मिन्दीपाचिरिव मारुते ॥ १३

प्रणष्टे रूपतन्मात्रे हतरूपो विभावसुः ।

उपशाम्यति तेजो हि वायुराधूयते महान् ॥ १४

गन्ध की तन्मात्रा जब प्रणष्ट हो जाती है तो यह समस्त पृथ्वी जल की ही अवस्था वाली हो जाया करती है और भूमि का अस्तित्व ही सर्वथा लुप्त हो जाता है । उस समय में यह जल बड़े भीषण घोष और वेग से समन्वित होकर प्रविष्ट हो जाया करते हैं । ८। ये जल सबको आपूरित करके ही स्थित हो जाया करते हैं तथा विचरण किया करते हैं । फिर जल का जो विशेष गुण रस है वह तेज में लीन हो जाता है । ९। जब रस की तन्मात्रा का विनाश हो जाता करता है । तेज की तीव्रता से जल के रस के अपहत हो जाने पर वह जल तेज के ही स्वरूप को प्राप्त हो जाया करता है । १०। तेज के द्वारा जल के ग्रस्त हो जाने पर वही तेज सभी और दिखाई निकल जाता है । इसके पश्चात् सभी भेद व्याप्ति तुला अग्नि रह सकते हैं

उस जल को अपने ही स्वरूप ले लेता है । ११। धीरे-धीरे यह सब जगत् अग्नि (तेज) की ज्वालाओं से सम्पूरित हो जाता है । वे सब अचियाँ ऊपर-नीचे और तिरछी और सब व्याप हो जाती हैं । १२। इस तेज का विशेष गुण रूप होता है जो कि इसका प्रकाश करने वाला है । इस रूप को वायु भक्षण कर जाता है । उस समय में वह तेज की ज्वालाओं वायु में दीप की शिखा के ही समान प्रलीन हो जाया करती है । जब रूप की तन्मात्रा विनष्ट हो जाती है तो वह अग्नि रूप से रहित हो जाता है । तेज तो फिर उपशान्त हो जाता है और केवल वायु ही महान् स्वरूप को धारण करके धूम धाम से सर्वंत्र वहन किया करता है । १३-१४।

**निरालोके तदा लोके वायुभूतो च तेजसि ।**

**ततस्तु मूलमासाद्य वायुः संबंधमात्मनः ॥ १५**

**ऊर्ध्वं चाधश्च तिर्यक्च दोधवीति दिशो दश ।**

**वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशं ग्रसते च तत् ॥ १६**

**प्रशाम्यति तदा वायुः वं तु निषुत्यनावृतम् ।**

**अहृपमरसस्पर्शमगंधं न च मूर्तिमत् ॥ १७**

**सर्वमापूरयच्छब्दैः सुमहत्तत्प्रकाशते ।**

**तस्मैल्लीने तदा शिष्टमाकाशं शब्दलक्षणम् ॥ १८**

**शब्दमात्रं तदाऽकाशं सर्वमावृत्य तिष्ठति ।**

**तत्र शब्दं गुणं तस्य भूतादिर्ग्रसते पुनः ॥ १९**

**भूतोद्दियेषु युगपदभूतादौ संस्थितोषु वै ।**

**अभिमानात्मको ह्येष भूतादिस्तामसः स्मृतः ॥ २०**

**भूतादिर्ग्रसते चापि महान्वै बुद्धिलक्षणः ।**

**महानात्मा तु विजेयः संकल्पो व्यवसायकः ॥ २१**

तेज को जब वायु ने ग्रस लिया था तो प्रकाशक रूप के अभाव होने से लोक में आलोक सर्वथा नहीं रहा था क्योंकि तेज तो वायु के ही रूप में लीन हो गया था । इसके पश्चात् वायु अपने सम्बन्ध भूत को प्राप्त करके । १५। वह वायु ऊपर नीचे और इधर-उधर सर्वंत्र दश दिशाओं में प्रकम्पित किया करता है । इस वायु का विशेष गुण स्पर्श होता है उस स्पर्श को

आकाश ग्रस लिया करता है । १६। उस समय में वायु भी अस्तित्व खोकर प्रशान्त हो जाता है और केवल आकाश ही अनावृत होकर स्थित रहा करता है । न तो इसके रूप है और न रस-स्पर्श-गन्ध तथा मूर्ति हैं । ऐसा आकाश रहा करता है । १७। आकाश का विशेष गुण शब्द है । वह इसी से सबको पूरित करके बहुत विशाल दिखाई देता है । तात्पर्य यही है कि इसी का अस्तित्व होता है । वायु में भी लीन होने पर केवल अवशिष्ट आकाश ही होता है जिसका लक्षण ही शब्द होता है । १८। उस समय में केवल शब्द ही जिसमें शेष रह गया था ऐसा आकाश सबको ढककर स्थित था । वहाँ पर जो उसका गुण शब्द था उसको भूतादि ग्रस लेते हैं । १९। भूतेन्द्रियों में एक साथ भूतादि के संस्थित होने पर यह अभिमान के ही स्वरूप वाला भूतादि तमस कहा गया है । २०। बुद्धि के लक्षण वाला यह महान् भूतादि का ग्रसन कर लेता है, महान् के स्वरूप वाला यह व्यवसाय करने वाला सङ्कल्प ही समझ लेना चाहिए । २१।

बुद्धिर्मनश्च लिगं च महानक्षर एव च ।

पर्यायवाचकैः शब्दस्तमाहुस्तत्त्वचितकाः ॥२२

संप्रलीनेषु भूतेषु गुणसाम्ये ततो महान् ।

लीयंते गुणसाम्यं तु स्वात्मप्येवावतिष्ठते ॥२३

लीयंते सर्वभूतानां कारणानि प्रसंगमे ।

इत्येष संयमश्चैव तत्त्वानां कारणः सह ॥२४

तत्त्वप्रसंयमो ह्येष स्मृतो ह्यावर्तिको द्विजाः ।

धर्मधिम् तपो ज्ञानं शुभं सत्यानृते तथा ॥२५

ऊर्ध्वभावो ह्यधोभावः सुखदुःखे प्रियाप्रिये ।

सर्वमेतत्प्रपञ्चस्थं गुणमात्रात्मकं स्मृतम् ॥२६

निरिन्द्रियाणां च तदा ज्ञानिनां तच्छ्रुभाशुभम् ।

प्रकृत्यां चैव तत्सर्वं पुण्यं पापं प्रतिष्ठिति ॥२७

यात्यवस्था तु स चैव देहिनां तु निरुच्यते ।

जंतूना पापपुण्यं तु प्रकृतौ यत्प्रतिष्ठितम् ॥२८

जो तत्वों का चिन्तन करने वाले महा मनीषी हैं वे उसको बुद्धि-मन-लिङ्ग-महान् और अक्षर—इन पर्यायी वाचक शब्दों के द्वारा कहा करते हैं । २२। जब ये सब भूतादिक भली भाँति से प्रलीन हो जाया करते हैं तब गुणों की (सत्त्व-राज-तम) समता हो जाती है और उस में वह गुणों का साम्य लीन हो जाता है तथा अपने ही स्वरूप में अवस्थित रहा करता है । २३। समस्त भूतों के कारण प्रसङ्ग में लीन हो जाया करते हैं । यही तत्वों का कारणों के साथ संयम होता है । २४। हे द्विजो ! यह तत्वों का प्रसंयम आवर्त्तक कहा गया है । धर्म और अधर्म, शुभ ज्ञान, सत्य और मिथ्या—ऊर्ध्वभाव और अधोभाव—सुख और दुःख—प्रिय और अप्रिय—यह सभी कुछ प्रपञ्च में स्थित गुणमात्र के स्वरूप वाला कहा गया है । २५-२६। बिना इन्द्रियों वाले ज्ञानियों का उस समय में जो भी शुभ और अशुभ कम है वह सब पुण्य और पाप प्रकृति में प्रतिष्ठित होता है । २७। और यही अवस्था होती है जो देह धारियों की कही जाया करती है और जन्मुभौं का जो भी कुछ पुण्य और पाप है वह प्रकृति में प्रतिष्ठित होता है । २८।

अवस्थास्थानि तात्येव पुण्यपापानि जंतवः ।

योजयंति पुनर्देहात्परत्वेन तथैव च ॥२६

धर्मधिमै तु जंतुनां गुणमात्रात्मकावुभौ ।

कारणः स्वैः प्रचीयेते कार्यत्वेन जंतुभिः ॥३०

सचेतनाः प्रलीयांते धेत्रज्ञाधिष्ठिता गुणाः ।

सगें च प्रतिसगें च संसारे चैव जंतवः ॥३१

संयुज्यन्ते वियुज्यन्ते कारणः संचरंति च ।

राजसी तामसो चैव सात्त्विकी चैव वृत्तयः ॥३२

गुणमात्राः प्रवर्तन्ते पुरुषाधिष्ठितास्त्रिधा ।

उद्धवं देशात्मकं सत्त्वमधोभागात्मकं तमः ॥३३

तयोः प्रवर्त्तकं मध्ये इहैवावर्त्तकं रजः ।

इत्येवं परिवर्त्तते त्रयश्चेतोगुणात्मकाः ॥३४

लोकेषु सर्वभूतानां तन्न कायं विजानता ।

अविद्याप्रत्वयारंभा आरभ्यन्ते हि मानवैः ॥३५

उस अवस्था में स्थित हो वे ही सब पाप और पुण्य जन्मुओं को पुनः परत्व से उसी प्रकार से देहों के साथ योजित किया करते हैं अर्थात् उन्हीं पुण्य पापों के अनुसार जीव देहों को प्राप्त किया करते हैं । २६। जीवों के धर्म और अधर्म दोनों ही गुण मात्रों के स्वरूप वाले होते हैं । जन्मुओं के द्वारा अपने ही कारणों से कार्य के रूप में परिणत होकर बढ़ जाया करते हैं । ३०। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) में अधिष्ठित गुण चेतन के सहित धलीन होते हैं । इस संसार में सर्ग में सब जन्म होते हैं । ३१। राजसी तामसी और सात्त्विकी वृत्तियाँ संयुक्त होती हैं—वियुक्त होती हैं और कारणों के द्वारा सञ्चरण किया करती हैं । ३२। पुरुषों में अधिष्ठित केवल गुण ही प्रवृत्त हुआ करते हैं और तीन प्रकार से होते हैं । ऊर्ध्वं दशात्मक सत्त्व है—और अधोभागात्मक तम है । ३३। इन दोनों का मध्य प्रवत्तक रजोगुण चेत इसी रीति से यहाँ पर है और ये तीनों परिवर्त्तित हुआ करते हैं । ३४। लोकों में समस्त भूतों के कार्यों को जानने वाले को वह नहीं करना चाहिए । मानवों के द्वारा अविद्या के विश्वास से ही सभी का आरम्भ किया जाया करता है । तात्पर्य यही है कि सबका आरम्भ अविद्या के ही विश्वास से हुआ करता है । ३५।

एतास्तु गतयस्तिथः शुभात्पापात्मिकाः स्मृताः ।

तमसोऽभिभवाजंतुयथातथ्यां न विदति ॥ ३६ ॥

अतत्वदर्शनात्सोऽथ विविधं वद्यते ततः ।

प्राकृतेन च बन्धेन तथावेकारिकेण च ॥ ३७ ॥

दक्षिणाभिस्तृतीयेन बद्धोऽत्यंतं विवर्तते ।

इत्येते वै त्रयः प्रोक्ता बन्धा ह्यज्ञानहेतुकाः ॥ ३८ ॥

अनित्ये नित्यसंज्ञा च दुःखे च सुखदर्शनम् ।

अस्वे स्वमिति च ज्ञानमशुचौ शुचिनिश्चयः ॥ ३९ ॥

येषामेते मनोदोषा ज्ञानदोषा विपर्यात् ।

रागद्वेषनिवृत्तिश्च तज्ज्ञानं समुदाहृतम् ॥ ४० ॥

अज्ञानं तमसो मूलं कर्मद्वयफलं रजः ।

कर्मजस्तु पुनर्देहो महादुःखं प्रवर्तते ॥ ४१ ॥

श्रोत्रजा नेत्रजा चैव त्वग्जिह्वाध्राणजा तथा ।

पुनर्भवकरी दुखात्कर्मणा जायते तुषा ॥ ४२ ॥

ये तीन ही गतियाँ होती हैं जो शुभ और पापात्मिक कही गयी हैं। तमोगुण से अभिभूत होकर यह जीवात्मा यथार्थता को प्राप्त नहीं हुआ करता है। ३६। तत्व के दर्शन न करने से ही वह जीवात्मा यहाँ पर अनेक प्रकार से बद्ध हो जाया करता है। वह बन्धन तत्व वैकारिक और प्राकृत है। ३७। तृतीय दक्षिणओं में बद्ध हुआ यह अत्यन्त ही विवत्तित हो जाता है। ये ही तीन इस जीवात्मा के बन्धन होते हैं जो केवल अज्ञान के ही कारण से हुआ करते हैं। ३८। यह जीवात्मा जो वस्तु अनित्य है उनमें नित्य होने का ज्ञान रखता है जो कि सर्वथा गलत है। जो दुःखमय है उसमें ही सुख का दर्शन किया करता है। जो वस्तुतः अपना नहीं है उसको ही अपना समझता है और जो वास्तव में अशुचि अथवा अपवित्र है उसको पवित्र जानता है। ३९। ज्ञान की विपरीतता होने ही से ये सब दोष समुत्पन्न हुआ करते हैं और जिनमें ये होते हैं वे सब उनके मन के ही दोष हैं। जिसके मन में सांसारिक वस्तुओं के प्रति राग द्वेष की निवृत्ति होती है, उसी का नाम ज्ञान कहा गया है, किन्तु वास्तविक रूप से ऐसा होता नहीं है, दिखाने और कहने को भले ही कोई कुछ भी किया करे। ४०। यह अज्ञान जो होता है उसका मूल तमोगुण की ही अधिकता है। ज्ञान का होना और अज्ञान का जमा रहना ये दोनों ही रजोगुण का परिणाम हैं। सभी जानते हैं कि कुछ भी साथ नहीं जाता है फिर भी सांसारिक वस्तुओं में प्रबल मोह नहीं दूटता है। यह देह तो कर्मों ही से प्राप्त होता है और फिर भी वही अज्ञान इसमें भरा ही रहता है तो यह महान् दुःख का भागी होता है। ४१। विषयों के प्रति बड़ी भारी तृष्णा बनी रहती है। यही तृष्णा पुनः संसार में फँसाये रखने वाली होती है जो कर्मों के कारण दुःख से होती है। कानों में समुत्पन्न—नेत्रों से सम्भूत-त्वचा, रसना और नासिका से उत्पन्न यह विषयों के आस्वादन की पिपासा हुआ करती है। ४२।

सतृष्णोऽभिहितो बालः स्वकृतैः कर्मणः फलैः ।

तैलपीडकवज्जीवस्तत्रैव परिवर्त्तते ॥ ४३ ॥

तस्मान्मूलमनर्थनामज्ञानमुपदिश्यते ।

तं शत्रुमवधार्येकं जाने यत्नं समाचरेत् ॥ ४४ ॥

ज्ञानाद्वि त्यजते सर्वं त्यागाद्वुद्धिर्विरज्यते ।

वैराग्याच्छुद्यते चापि शुद्धः सत्त्वेन मुच्यते ॥ ४५ ॥

अत ऊद्धवं प्रवक्ष्यामि रागं भूतापहारिणम् ।

अभिष्वंग्राय योगः स्याद्विषयेष्ववशात्मनः ॥४६

अनिष्टमिष्टमप्रीतिप्रीतितापविषादनम् ।

दुःखलाभे न तापश्च सुखानुस्मरणं तथा ॥४७

इत्येष वैषयो रागः संभूत्याः कारणं स्मृतः ।

ब्रह्मादौ स्थावरांते वै संसारे ह्याधिभौतिके ॥४८

अज्ञानपूर्वकं तस्मादज्ञानं तु विवर्जयेत् ।

यस्य चार्षे न प्रमाणं शिष्टाचारं तथैव च ॥४९

वाल वृष्णा के सहित होता है और अपने ही द्वारा किये हुए कर्मों के फलों से तेल पीड़क की भाँति उसी में परिवर्तित हुआ करता है अर्थात् जैसे तेल निकालने की धानी में कोई पिरता है उसी तरह से इस संसार के चक्र में जीव धूमा करता है । ४३। इस कारण से अन्यों का मूल अज्ञान ही बताया जाया करता है । उसी एक अज्ञान को अपना शत्रु मानकर ज्ञान के प्राप्त करने में ही पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए । ४४। मन से सब कुछ का त्याग किया जाता है और त्याग जब होता है तो उस त्याग से बुद्धि में वैराग्य हो जाया करता है अर्थात् फिर संसार की सभी वस्तु सार हीन और हेय प्रतीत हुआ करती हैं । वैराग्य से शुद्धि हो जाया करती है तथा शुद्ध सत्त्व से युक्त हो जाता है । ४५। अब इसके आगे हम उस राग के विषय में बतलायेंगे जो भूतों का अपहरण करने वाला होता है, विषयों में अवश आत्मा वाले का अभिष्यञ्ज के लिए योग हुआ करता है । ४६। अनिष्ट-इष्ट-अप्रीति-प्रीति-ताप—विषाद—दुःखों के लाभ में ताप होता है और सुखों का अनुस्मरण नहीं हुआ करता है । ४७। इतना यही विषयों में रहने वाला राग है और संभूति कारण यही राग बताया गया है । जो ब्रह्म से आदि लेकर स्थावर पर्यन्त इस आधिभौतिक संसार में होता है । ४८। यह सब अज्ञान पूर्वक अर्थात् अज्ञान से ही होता है । इस कारण से अज्ञान को परिवर्जित कर देना चाहिए । जिसका आर्थग्रन्थों में कोई प्रमाण नहीं है और जो शिष्ट पुरुषों का आचरण भी नहीं है । ४९।

वणश्रिमविरुद्धो यः शिष्टास्त्रविरोधकः ।

एष मार्गो हि निरये तिर्थग्योनौ च कारणम् ॥५०

तिर्थ्यग्योनिगतं चैव कारणं तत्त्वरुच्यते ।

त्रिविधो यातनास्थाने तिर्थ्य योनी च पद्मिधे ॥५१

कारणे विषये चैव प्रतिधातस्तु सर्वशः ।

अनीश्वर्यं तु तत्सर्वं प्रतिधातात्मकं स्मृतम् ॥५२

इत्येषा तामसी वृत्तिर्भूतादीनां चतुर्विधा ।

सत्त्वस्थमात्रकं चित्तं यथासत्त्वं प्रदर्शनात् ॥५३

तत्वानां च यथातत्त्वं दृष्ट्वा वै तत्त्वदर्शनात् ।

सत्त्वलेत्रज्ञानानात्ममेतन्नानार्थदर्शनम् ॥५४

नानात्मदर्शनं ज्ञानं ज्ञानाद्वै योग उच्यते ।

तेन बद्धस्य वै वंधो मोक्षो मुक्तस्य तेन च ॥५५

संसारे विनिवृत्ते तु मुक्तो लिङेन मुच्यते ।

निः संबंधो ह्यचैतन्यः स्वात्मन्येवावतिष्ठते ॥५६

जो कार्य वर्णों और आश्रमों के विरुद्ध है और जो शिष्ट शास्त्रों के विरोध करने वाला है—यह ऐसा ही मार्ग है जिसमें गमन करने वाला नरक में जाता है और तिर्थंग् योनि में प्राप्त होने का भी यही कारण होता है ।

५०। तिर्थंग् योनि में रहने वाला जो कारण है वह तीन कहे जाते हैं । यातना स्थान में तीन प्रकार का है और छोड़े प्रकार का तिर्थंग् योनि में होता है । ५१। कारण में और विषय में सभी ओर प्रतिधात है । वह सब अनैश्वर्यं प्रतिधात है । यह सब अनैश्वर्यं प्रतिधात के स्वरूप वाला कहा गया है ।

५२। यह इस प्रकार से भूतादिक की तामसी वृत्ति चार प्रकार की होती है । चित्त सत्त्वस्थ मात्रक होता है तथा सत्त्व प्रदर्शन से होता है यथा “सत्त्व प्रदर्शन से होता है । ५३। और तत्त्वों का यथा तत्त्व देखकर तत्त्व प्रदर्शन से होता है । तत्त्व—क्षेत्रज का नानात्म जो है यही नानार्थं प्रदर्शन हैं । ५४। नानात्म का दर्शन ज्ञान है और ज्ञान से योग कहा जाया करता है उससे बद्ध का बन्ध और मुक्त का मोक्ष भी उसी से होता है । ५५। इस संसार के विशेष निवृत्त होने पर लिङ्ग से मुक्त हो जाया करता है । निःस्वन्धं अचैतन्यं अपनी ही आत्मा में अवस्थित होता है । ५६।

स्वात्मन्यवस्थितश्चापि विरूपाख्येन लिख्यते ।

इत्येतत्त्वलक्षणं प्रोक्तं समाप्तज्ञानमोक्षयोः ॥५७

स चापि त्रिविधः प्रोक्तो मोक्षो वं तत्वदर्शिभिः ।

पूर्वं वियोगो ज्ञानेन द्वितीये रागसंक्षयात् ॥५८

तृष्णाक्षयात् तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षकारणम् ।

लिङ्गभावात् कैवल्यं कैवल्यात् निरंजनम् ॥५९

निरंजनत्वाच्छुद्धस्तु नेताऽन्यो नैव विद्यते ।

अत ऊद्धर्वं प्रवक्ष्यामि वैराग्यं दोषदर्शनात् ॥६०

दिव्ये च मानुषे चैव विषये पञ्चलक्षणे ।

अप्रद्वेषोऽनभिष्वंगः कर्तव्यो दोषदर्शनात् ॥६१

तापप्रीतिविषादानां कार्यं तु परिवर्जनम् ।

एवं वैराग्यमास्थाय शरीरी नियंत्रो भवेत् ॥६२

अनित्यमशिवं दुःखमिति बुद्ध्यानुचित्य च ।

विशुद्धं कार्यकरणं सत्वस्यातिनिषेवया ॥६३

वह अपने ही स्वरूप में अवस्थित होता हुआ भी विरूपात्मा के द्वारा लिखा जाता है। यह इतना ही संक्षेप से ज्ञान और मोक्ष का लक्षण कहा गया है। ५७। वह मोक्ष भी तत्व दर्शियों के द्वारा तोन प्रकार का कहा गया है। पूर्वं ज्ञान वियोग—दूसरे में राग का संक्षय से होता है। ५८। तृष्णा के क्षय से तीसरा मोक्ष का कारण कहा गया है। लिङ्ग के अभाव से कैवल्य होता है और कैवल्य से निरञ्जन होता है। निरञ्जनत्व होने से शुद्ध होता है। अन्य कोई भी नेता नहीं होता है। इसके आगे हम दोषों के देखने से जो वैराग्य होता है उसको बतलायेंगे। ५९-६०। दिव्य और मानुष पाँच लक्षणों वाला विषय है उसमें अप्रद्वेष और अनभिष्वङ्ग दोषों के देखने से करना चाहिए। ६१। ताप प्रीति और विष आदि का अच्छी तरह से परिवर्जन कर देना चाहिए। उस तरह से वैराग्य में ममास्थित होकर यह शरीरधारी ममता से रहित हो जाया करता है। ६२। बुद्धि से ऐसा अनुचित्यन करना चाहिए कि यह दुःख अनित्य और अशिव है। सत्व की ही अतिनिषेवा से सर्वथा परम विशुद्ध कार्यों को करे। ६३।

परिपक्वकषायो हि कृतस्नान्दोषान्प्रपश्यति ।

ऊर्जा प्रकृपितः काये तीव्रवायुसमीरितः ।

स शरीरमुपाश्रित्य कृत्सनान्दोषान्हण्डि वै ॥६५

प्राणस्थानानि भिदन्हि छिदन्मर्ण्यतीत्य च ।

शेष्यात्प्रकृपितो वायुरुद्धवं तृत्क्रमते ततः ॥६६

स चायं सर्वभूतानां प्राणस्थानेष्ववस्थितः ।

समासात्संवृते जाने संवृत्तेषु च कर्मसु ॥६७

स जीवो नाभ्यधिष्ठानः कर्मभिः स्वैः पुराकृतैः ।

अष्टागप्राणवृत्ति वै स विच्यावयते पुनः ॥६८

शरीरं प्रजहन्सोऽते निरुच्छवासस्ततो भवेत् ।

एवं प्राणः परित्यक्तो मृत इत्यभिधीयते ॥६९

यथेह लोके स्वप्ने तं नीयमानमितस्ततः ।

रंजनं तद्विधेयस्य तेनान्यो न च विद्यते ॥७०

जब मनुष्य परिपक्व कथाय बाला होता है अर्थात् सांसारिक दुखों के भोगों से परिपक्व होता है। ऐसा मनुष्य सभी दोषों का अवलोकन किया करता है। इसके अनन्तर प्रयाण के समय में नैमित्तिक दोषों से इस शरीर में तीव्र वायु से प्रेरित ऊर्जा प्रकृपित होकर शरीर में उपाश्रय ग्रहण करके समस्त दोषों का अवरोध कर दिया करता है । ६४-६५। वह प्राण के स्थानों का भेदन करता हुआ तथा कर्म स्थलों में अतिक्रमण करके उन का छेदन किया करता है और शेष्य से प्रकृपित हुआ वायु फिर ऊपर की ओर उत्क्रमण किया करता है । ६६। और वही यह समस्त प्राणियों के प्राण के स्थानों में अवस्थित होता है। संक्षेप से ज्ञान के संवृत हो जाने पर सभी कर्म भी संवृत हो जाते हैं । ६७। वह जीव अपने पूर्व में किये हुए कर्मों से अभ्यधिष्ठान नहीं होता है। फिर वह अष्टाङ्ग प्राण वृत्ति को भी विच्यावित कर दिया करता है । ६८। वह अन्त में इस पाञ्चभौतिक शरीर का त्याग करता हुआ फिर विना श्वासों बाला हो जाया करता है। इस रीति से प्राणों के द्वारा परित्यक्त होता हुआ वह मानव मर गया है—यही कहा जाया करता है । ६९। जिस तरह से इस लोक में स्वप्न में इधर से उधर नीयमान होता है। उसके विधेय का रञ्जन है उससे अन्य नहीं होता है । ७०।

तृष्णाक्षयस्तृतीयस्तु व्याख्यातं मोक्षलक्षणम् ।

शब्दाद्ये विषये दोषहृष्टिवै पचलक्षणे ॥७१॥

अप्रद्वेषोऽनभिष्वंगः प्रीतितापविवर्जनम् ।

वैराग्यकारणं ह्येतो प्रकृतीनां लयस्य च ॥७२॥

अष्टो प्रकृतयो ज्ञेयाः पूर्वोक्ता वै यथाक्रमम् ।

अव्यक्ताद्यास्तु विज्ञेया भूतांतः प्रकृतेर्भवाः ॥७३॥

वर्णश्रिमाचारयुक्तः शिष्टः शास्त्राविरोधनः ।

वर्णश्रिमाणां धर्मोऽयं देवस्थानेषु कारणम् ॥७४॥

ब्रह्मादीनि पिशाचांतान्यष्टौ स्थानानि देवताः ।

ऐश्वर्यमणिमाद्यं हि कारणं ह्यष्टलक्षणम् ॥७५॥

निमित्तमप्रतीघाते हृष्टे शब्दादिलक्षणे ।

अष्टावेतानि रूपाणि प्राकृतानि यथाक्रमम् ॥७६॥

शेत्रज्ञेष्वनुसज्जन्ते गुणमात्रात्मकानि तु ।

प्रावृट्काले पृथग्मेघं पश्यतीव सचक्षुषः ॥७७॥

तीसरा तृष्णा का क्षय है जो कि मोक्ष का लक्षण व्याख्यान किया गया है । शब्दादि पञ्च लक्षण विषय में दोष हृष्टि होती है ॥७४॥ अप्रद्वेष-अभिष्वङ्ग-प्रीति ताप का विवर्जन ये ही प्रकृतियों का और लय का वैराग्य का कारण हैं ॥७२॥ आठ पूर्व में वर्णित क्रमानुसार प्रकृतियाँ जाननी चाहिए । अव्यक्तादि और भूतान्त प्रकृति से उद्भूत समझने चाहिए ॥७३॥ वर्णोऽग्राहण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र और आश्रमों (ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ्य-वाणप्रस्थ-संन्यास) से समन्वित-शिष्ट और शास्त्रों का विरोध न करने वाला यह वर्णश्रिमों का देवों के स्थानों में कारण होता है ॥७४॥ ब्रह्मा से आदि लेकर पिशाचों के अन्त पर्यन्त ये आठ स्थान ही देवता हैं । ऐश्वर्य और अणिमादि आठ लक्षण ही कारण हैं ॥७५॥ शुक्रादि के लक्षण वाले अप्रतीघात के हृष्ट होने पर निमित्त हैं । ये क्रमानुसार आठ प्राकृत रूप हैं ॥७६॥ ये गुण मात्रात्मक शेत्रज्ञों में अनुसज्जित होते हैं । जिस तरह से नेत्रों वाले मनुष्य वर्षी काल में मेघ को पृथक् देखा करते हैं ॥७७॥

पश्च्रांतयेवं विद्याः सिद्धा जीवं दिव्येन चक्षुषा ।

खादतश्चान्पानानि योनीः प्रविशतस्तथा ॥७८

तिर्यगूर्ध्वमध्यस्ताच्च धावतोऽपि यथाक्रमम् ।

जीवः प्राणस्तथा लिङं करणं च चतुष्टयम् ॥७९

पर्यायिवाचकैः शब्देरेकार्थैः सोऽभिलिप्यते ।

व्यक्ताव्यक्तप्रमाणोऽयं स वै भुक्ते तु कृत्स्नशः ॥८०

अव्यक्तानुग्रहांतं च क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं च यत् ।

एवं ज्ञात्वा शुचिर्भूत्वा ज्ञानाद्वै वि मुच्यते ॥८१

नष्टं चैव यथातत्वं तत्त्वानां तत्त्वदर्शने ।

यथेष्टं परिनिर्याति भिन्ने देहे सुनिवृते ॥८२

भिद्यते करणं चापि ह्यव्यक्तज्ञानिनस्ततः ।

मुक्तो गुणशरीरेण प्राणाद्वेन तु सर्वशः ॥८३

नान्यच्छरीरमादत्ते दग्धे बीजे यथांकुरः ।

ज्ञानी च सर्वसंसाराविज्ञाशारीरमानसः ॥८४

इसी प्रकार के सिद्ध पुरुष जीव को दिव्य चक्षुके द्वारा देखा करते हैं तथा उनको जो अन्न को खाते हैं और पान किया करते हैं तथा योनियों में प्रवेश किया करते हैं ।७८। ऊपर-नीचे और तिरछा दौड़ता हुआ भी जो क्रम के ही अनुरूप उसका धावन होता है उस दशा में भी उसके जीव-प्राण-लिङ्ग और करण—ये चार वस्तुएँ विद्यमान हैं ।७९। ये चारों पर्याय वाचक अर्थात् समानार्थक हैं तो भी एकार्थ वाले शब्दों से वह अभिलिप्ति होता है । व्यक्त और अव्यक्त प्रमाण वाला यह है और वह पूर्णतया भोगता है ।८०। अव्यक्त के अनुग्रह के अन्त वाला है और जो क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित है । इस प्रकार से ज्ञान प्राप्त करके शुचि होकर ज्ञान से ही निश्चित रूप से विमुक्ति को प्राप्त हुआ करता है ।८१। तत्वों के दर्शन में तत्त्व जैसे ही नष्ट होता है फिर भिन्न सुनिवृत्त देह में जैसा भी इष्ट हो वह परिनिर्याण किया करता है ।८२। फिर अव्यक्त ज्ञानी का करण भी विद्यमान होता है । वह प्राणादि गुण शरीर से सब प्रकार से मुक्त ही हो जाता है ।८३। फिर वह अन्य शरीर को ग्रहण नहीं किया करता है क्योंकि जैसे जब बीज ही दग्ध हो जाता है

तो बीजांकुर भी समाप्त हो जाया करता है और ज्ञानी जो है वह तो सर्वं संसाराविज्ञ शारीर मानस होता है अर्थात् सभी संसार के द्वारा उसका शरीर और मन अविज्ञ ही रहता । ८४

ज्ञानाच्चतुर्दशो बुद्धः प्रकृतिस्थो निवर्तते ।

प्रकृति सत्यमित्याहुर्विकारोऽनृतमुच्यते ॥ ८५

असद्भावोऽनृतं ज्ञेयं सद्भावः सत्यमुच्यते ।

अनामरूपं क्षेत्रज्ञनामरूपं प्रचक्षते ॥ ८६

यस्मात्क्षेत्रं विजानाति तत्मात्क्षेत्रज्ञ उच्यते ।

क्षेत्रं प्रत्ययते यस्मात्क्षेत्रज्ञः शुभं उच्यते ॥ ८७

क्षेत्रज्ञः स्मर्यते तस्मात्क्षेत्रं तज्ज्ञर्विभाष्यते ।

क्षेत्रं त्वत्प्रत्ययं दृष्टं क्षेत्रज्ञः प्रत्ययः सदा ॥ ८८

क्षणात्कारणाच्चैव क्षतत्राणात्तथैव च ।

भोज्यत्वविषयत्वाच्च क्षेत्रं क्षेत्रविदो विदुः ॥ ८९

महदाद्यं विशेषांतं सर्वैरूप्यं विलक्षणम् ।

विकारलक्षणं तद्वे सोऽक्षरः क्षरमेति च ॥ ९०

तमेवानुविकारं तु यस्माद्वे क्षरते पुनः ।

तस्माच्च कारणाच्चैव क्षरमित्यभिधीयते ॥ ९१

ज्ञान से चार प्रकार की दशा से बढ़ प्रकृति में स्थित निवृत्त हो जाता है । यह प्रकृति तो सत्य ही कही जाती है इस से जो भी विकार होता है वही मिथ्यां बताया जाया करता है । ८४। जो असद्भाव वाला है वही अनृत समझना चाहिए और जो सद्भाव होता है वह सत्य कहा जाता है । यह क्षेत्रज्ञ नाम और रूप से रहित होता है । यह तो क्षेत्रज्ञ इसी नाम से बोला जाया करता है । ८६। क्षेत्रज्ञ इसका नाम इसीलिए होता है कि यह क्षेत्र को जानता है । जिस कारण से यह क्षेत्र को विश्वस्त मानता है इसी से क्षेत्रज्ञ परम शुभ कहा जाता है । ८७। क्षेत्रज्ञ का स्मरण किया जाता है इसी कारण से उसके ज्ञाताओं के द्वारा विभास्यमान होता है । क्षेत्र तो त्वत्प्रत्यय वाला देखा गया है और सदा ही क्षेत्रज्ञ प्रत्यय होता है । ८८। अब यह बताते हैं कि क्षेत्र यह नाम इसका नाम हमा लै हस्ता पापा होता है

एक तो यही कारण है और दूसरा कारण यह है कि क्षत का त्राणात्व वाला है। यह भोज्यत्व वाला है तथा इसमें विषय भी होता है। इसी लिये क्षेत्र के ज्ञाता इसको क्षेत्र कहा करते हैं। ६६। महत तत्व से आरम्भ करके अर्थात् महत् तत्व जिसमें आदि है और विशेष के अन्त पर्यन्त में एक परम विलक्षण विरूपता रहा करती है। वह विकार का लक्षण है किन्तु वह वक्षर होता है और क्षरता को प्राप्त हो जाता है। ६०। कारण यह है कि उसी अनुविकार को फिर क्षरित करता है और उसी कारण से यह क्षर—इस नाम से पुकारा जाया करता है। ६१।

संसारे नरकेभ्यश्च त्रायते पुरुषं च यत् ।

दुःखत्राणात्पुनश्चापि क्षेत्रमित्यभिधीयते ॥६२

सुखदुःखमहंभावाद्भोज्यमित्यभिधीयते ।

अचेतनत्वाद्विषयस्तद्विधर्मा विभुः स्मृतः ॥६३

न क्षीयते न क्षरति विकारप्रसृतं तु तत् ।

अक्षरं तेन वाप्युक्तमक्षीणत्वात्तथैव च ॥६४

यस्मात्पुर्यनुशेते च तस्मात्पुरुष उच्यते ।

पुरप्रत्ययिको यस्मात्पुरुषेत्यभिधीयते ॥६५

पुरुषं कथयस्वाथ कथितोऽज्ञैविभाष्यते ।

शुद्धो निरंजनाभासो ज्ञाता ज्ञानविवर्जितः ॥६६

अस्तिनास्तीति सोऽन्यो वा बद्धो मुक्तो गतः स्थितः ।

नैर्हेतुकात्वनिर्देश्यादहस्तस्मिन्न विद्यते ॥६७

शुद्धत्वान्न तु दृश्यो वौ द्रष्टृत्वात्समदर्शनः ।

आत्मप्रत्ययकारित्वादन्यूनं वाप्यहेतुकम् ॥६८

जो इस परमाधिक दुःखमय संसार में नरकों से पुरुष का परित्राण किया करता है और फिर भी दुःखों के त्राण से इसका नाम क्षेत्र यह कहा जाता है। ६२। इसमें सुख-दुःख और अहंभाव विद्यमान रहता है अतएव इसको भोज्य—इस नाम से भी पुकारा जाया करता है। इसमें अचेतना होती है इसीलिए यह विषय है और उसले विधर्मा होता है अतएव यह न तो क्षीण होता है और न इसका क्षरण ही होता है और विकार से प्रसृत

के द्वारा उस प्रकार से आत्मा को दिया करता है। वहाँ पर प्रकृति में कारण में अपनी आत्मा में ही उपस्थित होता है ॥१०१। अस्ति—नास्ति—इससे वह अन्य है अथवा यहाँ पर अथवा परलोक में फिर होता है। एकत्व है अथवा पृथक्त्व है—क्षेत्रज्ञ है अथवा पुरुष है ॥१०२। वह आत्मा है या निरात्मा है। चेतन है या अचेतन है। वह कर्ता है या अकर्ता है—वह भोक्ता है या भोज्य ही है ॥१०३। जहाँ पर पहुँच कर फिर वहाँ से वापिस नहीं लौटता है क्षेत्रज्ञ निरञ्जन है। उसका कोई भी आख्यान नहीं होता है इसलिये वह अवाच्य है और वाद के हेतुओं के द्वारा अग्राह्य है ॥१०४। चिन्तन न करने के योग्य होने से वह प्रतर्क के योग्य नहीं है। अवार्य योग्य नहीं है और मन के साथ भी अप्राप्त है ॥१०५।

क्षेत्रज्ञे निर्गुणे शुद्धे शांते क्षीणे निरंजने ।

व्यपेतसुखदुःखे च निरुद्धे शांतिमागते ॥१०६

निरात्मके पुनस्तस्मिन्वाच्याच्यं न विद्यते ।

एतौ संहारविस्तारौ व्यक्ताव्यक्तौ ततः पुनः ॥१०७

सृज्यते ग्रसते चैव व्यक्तौ पर्यवतिष्ठते ।

क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सर्वं पुनः सर्वे प्रवर्त्तते ॥१०८

अधिष्ठानं प्रपद्येत तस्यांते बुद्धिपूर्वकम् ।

साधमर्यवैधमर्यकृतः संयोगो विदितस्तयोः ।

अनादिमांश्च संयोगो महापुरुषजः स्मृतः ॥१०९

यावच्च सर्गप्रति सर्गकालस्तावज्जगत्तिष्ठति सनिरुद्ध्य ।

पूर्वं हि तस्यैव च बुद्धिपूर्वं प्रवर्त्तते तत्पुरुषार्थमेव ॥११०

एषा निसर्गप्रतिसर्गपूर्वा प्राधानिकी चेश्वरकारिता वा ।

अनाद्यनन्ता ह्यभिमानपूर्वकं वित्त्रासयन्ती जगदभ्युपैति ॥१११

इत्येष प्राकृतः सर्गस्तृतीयो हेतुलक्षणः ।

उक्तो ह्यस्मिन्स्तदात्यन्तं कालं ज्ञात्वा प्रमुच्यते ॥११२

इत्येष प्रतिसर्गो वस्त्रविधः कीर्तितो मया ।

विस्तरेणानुपूर्व्यां च भूयः कि वर्तयाम्यहम् ॥११३

क्षेत्रज्ञ के निरुण—शुद्ध—शान्त—क्षीण—निरञ्जन—अपेत अर्थात् रहित सुख दुःख वाले—निरुद्ध और शान्ति को प्राप्त होने वाले और निरात्मक होने पर फिर उसमें वाच्य और अवाच्य नहीं रहता है। ये दो संहार और विस्तार और फिर व्यक्त और अव्यक्त होते हैं। १०६-१०७। सूजन किया जाता है ग्रसन होता है और व्यक्त पर्यवस्थित होते हैं। सब क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित फिर सर्ग में प्रवृत्त हुआ करता है। १०८। उसके अन्त में बुद्धि पूर्वक अधिष्ठान को प्रपन्न हो जाता है। उन दोनों का संयोग साधम्य और वैधम्य के द्वारा किया हुआ विदित होता है। महापुरुष से समुत्पन्न संयोग अनादिमान् कहा गया है। १०९। और जबतक सर्ग और प्रतिसर्ग काल होता है तब तक जगत संनिरुद्ध होकर स्थित रहा करता है और उसके पूर्व में ही बुद्धिपूर्वक उसका पुरुषार्थ ही प्रवृत्त होता है। ११०। यह विसर्ग और प्रतिसर्ग पूर्व वाली प्राधानिकी अर्थात् प्रधान (प्रकृति) के द्वारा की हुई या ईश्वर की कराई हुई है। यह ऐसी है जिसका न आदि है और न अन्त ही है और यह अभिमान के साथ इस जगत को नित्रस्त करती हुई ही प्राप्त हुआ करती है। १११। यही प्राकृत तीसरा सर्ग है जो हेतु के लक्षण वाला है। जो इसमें कहा गया है तब अत्यन्त काल का ज्ञान प्राप्त करके ही प्राणी प्रसक्त हुआ करता है। ११२। यही प्रतिसर्ग है जो तीन प्रकार का होता है जिसका वर्णन मैंने आपके सामने किया है। मैंने इसका विस्तार से और बानुपूर्वी से अर्थात् क्रम से आदि से अन्त पर्यन्त कह दिया है। अब फिर मैं क्या बताऊँ—यह बतलाइये। ११३।

—X—

### ब्रह्माणवर्त वर्णन

ऋषय ऊचुः—

श्रुतं सुमहदाख्यानं भवता परिकीर्तितम् ।

प्रजानां मनुभिः साद्वै देवानामृषिभिः सह ॥१

पितृगंधर्वभूतानां पिशाचोरगरक्षसाम् ।

देत्यानां दानवानां च यक्षाणामेव पक्षिणाम् ॥२

अप्यदभुतानि कर्माणि विविधा धर्मनिश्चयाः ।

विचित्राश्च कथायोगा जन्म चाच्छ्रद्यमनुत्तमम् ॥३

पूर्ववत्स तु विजेयः समासात्तन्निवोधत ।  
 हष्टेनैवानुमेयं च तर्कं वक्ष्यामि युक्तिः ॥१०  
 यस्माद्वाचो निवर्त्तते त्वप्राप्य मनसा सह ।  
 अव्यक्तवत्परोक्षत्वादगहनं तददुरासदम् ॥११  
 विकारैः प्रतिसंसृष्टो गुणः साम्येन वर्तते ।  
 प्रधानं पुरुषाणां च साधम्येणैव तिष्ठति ॥१२  
 धर्माधिमाँ प्रलीयेते ह्यव्यक्ते प्राणिनां सदा ।  
 सत्वमात्रात्मको धर्मो गुणे सत्वे प्रतिष्ठितः ॥१३  
 तमोमात्रात्मको धर्मो गुणे तमसि तिष्ठति ।  
 अविभागेन तावेती गुणसाम्ये स्थितावुभौ ॥१४

इस सर्ग की प्रवृत्ति होने की क्या रीति होती है—यही अब हम पूछते हैं उसको आप कृपा करके हमको बतला दीजिए इस तरह से जब लोम हर्षण सूतजी से पूछा गया था तो फिर उन्होंने पुनः उस सर्ग की जैसे प्रकृति हुआ करती है उसकी व्याख्या करने का उपक्रम किया था और उन्होंने कहा था कि यहाँ पर जैसे यह सर्ग प्रवृत्त होगा—उसको मैं आप लोगों को बतलाऊँगा ।—६। हे वत्स ! यह सब पूर्व की ही भाँति समझ लेना चाहिए । और संक्षेप से अब भी समझ लो । जो भी हष्ट है उसी से अनुमान कर लेना चाहिए । मैं युक्ति से तर्क बतलाऊँगा ।१०। वह ऐसा विषय है जहाँ पर वाणी की पहुँच नहीं है और मन भी वहाँ तक नहीं पहुँचता है । वह अव्यक्त के ही समान परोक्ष है अतएव बहुत ही गहन और दुरासद है ।११। विकारों के साथ प्रति संसृष्ट होता हुआ गुण समता से रहता है । प्रधान पुरुषों के साधम्य से ही स्थित रहा करता है ।१२। प्राणियों के सदा धर्म और अधर्म अव्यक्त में प्रलीन हो जाते हैं । उस समय में सत्व मात्रात्मक अर्थात् केवल सत्व स्वरूप वाला धर्म सत्वगुण में प्रतिष्ठित होता है ।१३। तमो मात्रात्मक धर्म तमोगुण में प्रतिष्ठित होता है । ये दोनों ही बिना ही विभाग के गुणों की समता में स्थित रहते हैं ।१४।

सर्वं कार्यं बुद्धिपूर्वं प्रधानस्य प्रपत्स्यते ।

अपुरुषार्थं भेदतः अपि वाचागति ताङ्गुणम्

तत्कथ्यमानमस्माकं भवता शलक्षणया गिरा ।  
 मनः कर्णसुखं सूते प्रीणात्यमृतसन्निभम् ॥४  
 एवमाराध्य ते सूतं सत्कृत्य च महर्षयः ।  
 पप्रच्छुः सत्त्विणः सर्वे पुनः सर्गप्रवर्त्तनम् ॥५  
 कथं सूत महाप्राज्ञ पुनः सर्गः प्रपत्स्यते ।  
 बन्धेषु संप्रलीनेषु गुणसाम्ये तमोमये ॥६  
 विकारेष्वविसृष्टेषु ह्यव्यक्ते चात्मनि स्थिते ।  
 अप्रवृत्तो ब्रह्माणा तु सहसा योज्यगैस्तदा ॥७

ऋषियों ने कहा—आपके द्वारा वर्णित यह महान आख्यान हमने सुन लिया है । इसमें मनुओं के साथ प्रजाओं का तथा ऋषियों के सहित देवों का—पितरों का—गन्धर्वों का—भूतों का—पिशाच—उरग और राक्षसों का—दैत्यों का—दानवों का—यक्षों का और पक्षियों का वर्णन है । इन सबके अत्यन्त अद्भुत कर्म हैं तथा धर्म आदि का भी निश्चय है और बहुत ही विचित्र कथा के योग हैं और अत्युत्तम तथा श्रेष्ठजन्म हैं । यह सभी का हमने भली श्रवण कर लिया है । १-३। आपने जो भी वर्णन किया है वह बहुत ही श्रुति प्रिय सुन्दर वाणी के द्वारा किया है और हमारे मन और कानों को सुख देने वाला है तथा अमृत के ही समान प्रीणन करने वाला है । ४। उन सब महर्षियों ने सूतजी की इस रीति से आराधना करके उनका बड़ा ही सत्कार किया था । फिर उन सत्र करने वालों ने सबने पुनः सर्ग के प्रवर्तन के विषय में उनसे प्रश्न किया था । ५। उन्होंने कहा था—हे सूतजी ! आप तो महान् पण्डित हैं । अब हमको यही बतलाइये कि फिर इस सर्ग का प्रवर्तन किस प्रकार से होगा । जब ये सभी बन्धन प्रलीन हो जाते हैं और प्रकृति के तीनों गुणों में साम्यावस्था होती है और यह सर्वत्र अन्धकार से परिपूर्ण होता है । समस्त विकार अविसृष्ट होते हैं तथा अव्यक्त आत्मा में स्थित होता है । उस समय में योज्यगों के द्वारा सहसा ब्रह्माजी के अप्रवृत्त होने पर यह सर्ग कैसे होता है । ६-७।

कथं प्रपत्स्यते सर्गस्तन्नः प्रब्रूहि पृच्छताम् ।  
 एवमुक्तस्ततः सूतस्तदाऽसौ लोमहर्षणः ॥८  
 व्याख्यातुमुपचक्राम पुनः सर्गप्रवर्त्तनम् ।  
 अत्र वो वर्त्तयिष्यामि यथा सर्गं प्रपत्स्यते ॥९

एवं तानभिमानेन प्रपत्स्यति पुनस्तदा ।

यदा प्रवर्त्तितव्यं तु क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्द्वयोः ॥१६

भोज्यभोक्तृत्वसंबंधाः प्रपत्स्यन्ते च तावुभौ ।

तस्मादक्षरमव्यक्तं साम्ये स्थित्वा गुणात्मकम् ॥१७

क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं तत्र वैषम्यं भजते तु तत् ।

ततः प्रपत्स्यते व्यक्तं लोकेत्रज्ञयोर्द्वयोः ॥१८

क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं सत्त्वं विकारं जनयिष्यति ।

महदाद्यं विशेषांतं चतुर्विशगुणात्मकम् ॥१९

क्षेत्रज्ञस्य प्रधानस्य पुरुषस्य प्रवत्स्यंतः ।

आदिदेवः प्रधानस्यानुग्रहाय प्रचक्षते ॥२०

अनाद्यौ बपमुल्पादौ उभौ सूक्ष्मौ तु तौ स्मृतौ ।

अनादिसंयोगयुतौ सर्वं क्षेत्रज्ञमेव च ॥२१

यह सभी कार्यं बुद्धिपूर्वकं प्रधान का ही होगा । यह क्षेत्रज्ञ अबुद्धि पूर्वक उन गुणों में अधिष्ठित होगा । १५। इस प्रकार से उस समय में फिर अभिमान के साथ उनको प्राप्त होगा । जिस समय में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन दोनों का प्रवृत्त होना चाहिए । १६। वे दोनों ही को भोज्य और भोक्तृत्व के सम्बन्ध प्राप्त होंगे । इससे गुणात्मक अक्षर अव्यक्त समता में स्थित होता है । १७। वहाँ पर वह क्षेत्रवत्र में अधिष्ठित विषमता को प्राप्त होता है । फिर दोनों क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ को व्यक्त प्राप्त होगा । १८। क्षेत्रज्ञ में अधिष्ठित सत्त्व विकार को उत्पन्न कर देगा । वह विकार महत् तत्व से लेकर विशेष के अन्त तक चौबीस गुणों के स्वरूप वाला है । १९। क्षेत्रज्ञ का प्रधान का और पुरुष का प्रवृत्त होंगे । जो आदि देव हैं वे प्रधान के ही ऊपर अनुग्रह करने वाले कहे जाते हैं । वे दोनों अनादि और श्रेष्ठ उत्पाद तथा सूक्ष्म कहे गये हैं । २०-२१।

अबुद्धिपूर्वकं युक्तमशक्तौ तु वरी तदा ।

अप्रत्ययममोघं च स्थितावुदकमत्स्यवत् ॥२२

प्रवृत्तपूर्वो तौ पूर्वं पुनः सर्वं प्रपत्स्यते ।

अज्ञा गुणः प्रवत्तंते रजः सत्त्वतमोऽभिधैः ॥२३

प्रवृत्तिकाले रजसाभिपन्नो महत्वभूतादिविशेषतां च ।

विशेषतां चेन्द्रियतां च याति गुणावसानौषधिभिर्मनुष्यः ॥२४  
सत्याभिध्यायिनस्तस्य ध्यायिनः सन्निमित्तकम् ।

रजः सत्त्वतमौव्यक्ता विधुर्मणः परस्परम् ॥२५

आद्यंतं वै प्रपत्स्यन्ते क्षेत्रमज्ञाम्बु सर्वशः ।

संसिद्धकार्यकरणा उत्पद्यन्तेऽभिमानिनः ॥२६

सर्वे सत्त्वाः प्रपद्यन्ते ह्यव्यक्तात्पूर्वमेव च ।

प्राक्सृती ये त्वसुवहाः साधकाश्चाप्यसाधकाः ॥२७

असंशान्तास्तु ते सर्वे स्थानप्रकरणैः सह ।

कार्याणि प्रतित्स्यन्ते उत्पत्स्यन्ते पुनः पुनः ॥२८

उस समय में अबुद्धि पूर्वक युक्त है और अशक्त पर हैं यह प्रत्यय रहित और अमोघ हैं और जल में मछली के ही समान स्थित हैं । २२। पूर्व में वे दोनों ही पूर्व की प्रवृत्ति वाले हैं फिर सर्वे को प्राप्त हो जायगा । जो अज्ञ हैं वे रज-सत्त्व और तम नामों वाले गुणों से प्रवृत्त हुआ करते हैं । २३। यह मनुष्य प्रवृत्ति के समय से रजोगुण से अभिपन्न होता है और महत्वभूत आदि की विशेषता और इन्द्रियता की विशेषता को गुणामुखी के और निमित्तों के साथ ध्यायी के ये रज-सत्त्व और तम पर स्वर में विधर्मी होते हुए व्यक्त होते हैं । २४-२५। आद्यन्त सभी और अज्ञाम्बु क्षेत्र में प्राप्त हो जायगे । फिर संसिद्ध कार्य और करण वाले अभिमानी उत्पन्न हुआ करते हैं । २६। सभी सत्त्व अव्यक्त से पूर्व ही प्रसन्न होते हैं । पूर्व में होने वाली सृति में जो भी प्राणधारी हैं वे चाहे साधक होवे या असाधक होवे । २७। वे सभी स्थान प्रकरणों के साथ असंशान्त हैं । वे सब कार्यों को प्राप्त करेंगे और बार-बार उत्पन्न होंगे । २८।

गुणमात्रात्मकावेव धर्मधिमां परस्परम् ।

आरप्सेते हि चान्योन्यं वरेणानुग्रहेण वा ॥२९

शबस्तुल्यप्रसृष्टचथ सर्गादौ याति विक्रियाम् ।

गुणास्तं प्रतिधीर्यते तस्मात्तस्य रोचते ॥३०

गुणास्ते यानि कर्माणि प्राक्सृष्टयां प्रतिपेदिरे ।

तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः ॥३१

हिंसाहिंसे मृदुकूरे धर्मधर्मवितानृते ।

तद्वाविताः प्रपद्यन्ते तस्मात्तत्स्य रोचते ॥३२

महाभूतेषु नानात्वमिद्रियार्थेषु मूर्त्तिषु ।

विप्रयोगश्च भूतानां गुणेभ्यः संप्रवर्त्तते ॥३३

इत्येष वो मया ख्यातः पुनः सर्गः समासतः ।

समासादेव वक्ष्यामि ब्रह्मणोऽथ समुद्भवम् ॥३४

अव्यक्तात्कारणात्तस्मान्नित्यात्सदसदात्मकात् ।

प्रधानपुरुषाभ्यां तु जायते च महेश्वरः ॥३५

अमं और अधर्म परस्पर में केवल गुण के ही स्वरूप वाले होते हैं और वे एक दूसरे के वर के द्वारा या अनुग्रह के द्वारा आरम्भ हुआ करते हैं ।२६। इसके उपरान्त तुल्य प्रसूष्टि शब्द सर्ग के आदि काल में विक्रिया को प्राप्त होता है । गुण इस कारण से उसका प्रतिधान किया करते हैं वह उसको अच्छा लगता है ।२७। वे गुण जो भी कर्म कर्म पूर्व की सृष्टि में प्रतिपन्न हुए थे वे ही बार-बार सृज्यमान होते हुए प्रतिपन्न हुआ करते हैं ।२८। हिंस-अहिंस, मृदु-कूर, धर्म-अधर्म, ऋत-अनृत ये सब जो भी जिसको प्रिय लगता है उसी भाव से भावित होते हुए प्रसन्न हुआ करते हैं ।२९। महाभूतों में अनेक रूपता-इन्द्रियों के विषयों में तथा मूर्त्तियों में अनेक रूपता-इन्द्रियों के विषयों में तथा मूर्त्तियों में अनेकता होती है और प्राणियों के विप्रयोग गुणों से ही प्रवृत्त हुआ करते हैं ।३०। मैंने यह सर्ग आपको बहुत ही संक्षेप से बता दिया है । अब ब्रह्माजी का उद्भव भी मैं बहुत संक्षेप से बर्णन करूँगा ।३१। उसी अव्यक्त कारण से जो सत् और असत् स्वरूप वाला है । प्रधान से और पुरुष से महेश्वर जन्म ग्रहण किया करते हैं ।३२।

स पुनः संभावयिता जायते ब्रह्मसंज्ञितः ।

सृजते स पुनर्लोकानभिमानगुणात्मकान् ॥३६

अहंकारस्तु महतस्तस्मादभूताति चात्मतः ।

युगपत्संप्रवत्तंते भूतान्येवेद्रियाणि च ॥३७

भूतभेदाश्च भूतेभ्य इति सर्गः प्रवत्तंते ।

विस्तरावयवस्तेषां यथाप्रज्ञं यथाश्रुतम् ।

कीर्त्यतो वा यथापूर्वं तथैवाप्युपधार्यताम् ॥३८

एतच्छ्रुत्वा नैमिषेयास्तदानीं लोकोत्पत्ति सुस्थिति  
चाप्ययं च ।

तस्मिन्सत्रेऽवभृथं प्राप्य शुद्धाः पुण्यं लोकमृषयः

प्राप्नुवन्ति ॥३९

यथा यूर्यं विधिना देवतादीनिष्ट् वा चैवावभृथं प्राप्य शुद्धाः ।

त्यक्त् वा देहानायुषोऽते कृतार्थाः पुण्यं लोकं प्राप्य  
मोदद्वमेवम् ॥४०

एते ते नैमिषेया वै हृष्ट् वा स्पृष्ट् वा च वै तदा ।

जग्मुश्चावभृथस्नाताः स्वर्गं सर्वे तु सत्त्विणः ॥४१

विप्रास्तथा यूयमपि इष्टा बहुविधीर्मखैः ।

आयुषोऽते ततः स्वर्गं गंतारः स्थ द्विजोत्तमाः ॥४२

वे ही फिर सम्मान करने वाला ब्रह्म के नाम वाले हो जाते हैं ।

और फिर यही ब्रह्माजी अभिमान और गुणात्मक लोकों का सृजन करते हैं । ३६। महत् तत्व से अहंकार की उत्पत्ति होती है और फिर अहंकार से भूतों का उद्भव हुआ करता है । ये भूत और इन्द्रियाँ एक ही साथ सम्प्रवृत्त हुआ करते हैं । ३७। इन भूतों से अन्य भूतों के भेद होते हैं—इस तरह से सर्गं प्रवृत्त हुआ करता है । उनका विस्तार और अवयव जैसी प्रज्ञा है और जैसा भी सुना है मैंने आपको पूर्वं में बता दिया है उसी प्रकार से इनका अवधारण आप कर लीजिये । ३८। इसको नैमिष क्षेत्र में रहने वालों ने श्रवण करके जो उस समय में लोकों की उत्पत्ति और संहार कहा गया था उस समय में अवभृथ को प्राप्त करके शुद्ध हुए ऋषिगण—पुण्य लोक को प्राप्त हो जाते हैं । ३९। जिस रीति से आप लोग विधि पूर्वक यजन करके और देव आदि का अर्चन करके तथा अवभृथ को प्राप्त करके शुद्ध हुए हो । फिर आयु के समाप्त होने पर शरीरों का त्याग करके कृतार्थ हुई है और

परम पुण्यलोक को प्राप्त करके इस प्रकार से आनन्दित हो रहे हैं । ४०। ये वे भी नैमिषेय अर्थात् नैमिष क्षेत्र में रहने वाले सत्री देखकर को और स्पर्श करके उस समय में अवभृथ स्नान किये हुए सबके सब स्वर्गलोक को गमन कर गये थे । ४१। हे विप्रो ! उसी प्रकार से आप लोगों ने भी बहुत प्रकार के यज्ञों के द्वारा यजन किया है । हे उत्तम द्विजगणो ! फिर जब आपकी आयु का अवसान होगा तब आप भी सब स्वर्ग में गमन कर जायगे । ४२।

**प्रक्रिया प्रथमः पादः कथायास्तु परिग्रहः ।**

अनुषंग उपोद्धात उपसंहार एव च ॥४३॥

एवमेव चतुः पादं पुराणं लोकसम्मतम् ।

उवाच भगवान्सक्षाद्वायुलोकहिते रतः ॥४४॥

नैमिषे सत्रमासाद्य मुनिभ्यो मुनिसत्तम् ।

तत्प्रसादं च संसिद्धं भूतोत्पत्तिलयान्वितम् ॥४५॥

प्राधानिकीमिमां सृष्टि तथैवेश्वरकारिताम् ।

सम्यग्विदित्वा मेधावी न मोहमधिगच्छति ॥४६॥

इदं यो ब्रह्मणो विद्वानितिहासं पुरातनम् ।

शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि तथाऽध्यापयतेऽपि च ॥४७॥

स्थानेषु स महेन्द्रस्य मोदते शाश्वतीः समाः ।

ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा ब्रह्मणा सह मोदते ॥४८॥

तेषां कीर्तिमतां कीर्ति प्रजेशानां महात्मनाम् ।

**प्रथयन्पृथिवीशानां ब्रह्मभूयाय गच्छति ॥४९॥**

इस महा पुराण में चार पाद हैं—सर्व प्रथम प्रक्रिया है जो कि प्रथम पाद है—फिर कथा का परिग्रह है । फिर अनुषंग है और अन्त में उपोद्धात तथा उपसंहार है । ४३। इसी रीति से चार पादों वाला यह पुराण लोक सम्मत है । इस पुराण को लोकों के हित में रखने वाले भगवान् वायु देव ने ही साक्षात् रूप से इसको कहा है । ४४। हे श्रेष्ठतम मुने ! नैमिष क्षेत्र में एक सत्र (यज्ञ) को प्राप्त करके मुनिगण एकत्रित हुए थे तभी उनसे कहा उसका प्रसाद संसिद्ध हो गया जो भूतों की उत्पत्ति और तप से संयुत है । ४५। इस प्राधिनिकी अर्थात् प्रधान के द्वारा की हुई तथा ईश्वर के द्वारा

करायी हुई सृष्टि को भली भाँति जानकर मेधावी पुरुष कभी भी मोह को प्राप्त नहीं होता है । ४६। जो भी कोई विद्वान् विप्र इस ब्रह्माजी के परम पुरातन इतिहास का श्रवण करता है अथवा श्रवण कराता है और इसका ध्यान भी करता है वह महेन्द्र देव के स्थानों में अनन्त वर्षों पर्यन्त आनन्द प्राप्त किया करता है और ब्रह्म के सायुज्य को प्राप्त करके ब्रह्म के साथ आनन्दित होता है । ४७-४८। उन प्रजाओं के स्वामी महात्माओं तथा कीर्तिमानों की कीर्ति को जो कि इस पृथिवी के ईश हैं संसार में प्रथित करके ब्रह्म के ही समान हो जाता है । ४९।

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं वेदैश्च संमितम् ।

कृष्णद्वैपायनेनोक्तं पुराणं ब्रह्मवादिना ॥५०॥

मन्वन्तरेश्वराणां च यः कीर्ति प्रथयेदिमाम् ।

देवतानामृषीणां च भूरिद्रविणतेजसाम् ॥५१॥

स सर्वेऽमुच्यते पापे पुण्यं च महदाप्नुयात् ।

यश्चेदं श्रावयेद्विद्वान्सदा पर्वणि पर्वणि ॥५२॥

धूतपाप्मा जितस्वगो ब्रह्मभूयाय कल्पते ।

अक्षयं सर्वकामीयं पितृस्तन्त्रोपतिष्ठुते ।

यस्मात्पुरा ह्यणंतीदं पुराणं तेन चोच्यते ॥५४॥

निरुक्तमस्य यो वेद सर्वपापैः प्रमुच्यते ।

तथैव त्रिषु वर्णेषु ये मनुष्या अधीयते ॥५५॥

इतिहासमिमं श्रुत्वा धर्माय विदधे मतिम् ।

यावन्त्यस्य शरीरेषु रोमकूपानि सर्वंशः ॥५६॥

यह पुराण परम धन्य है—यश की वृद्धि करने वाला है—आयु के बढ़ाने वाला—परम स्मरूप और वेदों की समानता रखने वाला है । यह पुराण ब्रह्मवादी श्रीकृष्ण द्वैपायन ने ही कहा है । ५६। जो मनुष्य इस मन्वन्तरों की कीर्ति को प्रथित करता है तथा देवों की और भूरि द्रविण तेज वाले ऋषियों की कीर्ति को फैलाता है वह सभी प्रकार के पापों से छूट जाता है और महान् पुण्य का लाभ प्राप्त किया करता है और जो विद्वान् प्रत्येक पर्व पर इसका श्रवण कराता है और इस अन्तिम पाद को शाद्म में ब्राह्मणों को सुनाता है वह अक्षय और सर्वकामनाओं की पूर्ति करने वाला

पितृगणों के समीप में उपस्थित होता है। कारण यही है कि पहिले यह उसी के द्वारा कहा जाता है । ५१-५४। जो पुरुष इसकी निष्क्रिति को जानता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। उसी भाँति तीनों वर्णों में जो मनुष्य इसको पढ़ते हैं इस इतिहास का अवण करके धर्म की बुद्धि हो जाती है और शरीर में जितने भी करोड़ रोमों के छिद्र हैं उतने ही वर्ष वह सर्ग में निवास करता है । ५५-५६।

**तावत्कोटिसहस्राणि वर्षाणि दिवि मोदते ।**

**ब्रह्मसायुज्यगो भूत्वा दैवतैः सह मोदते ॥५७**

**सर्वपापहरं पुण्यं पवित्रं च यशस्वि च ।**

**ब्रह्मा ददौ शास्त्रमिदं पुराणं मातरिश्वने ॥५८**

**तस्माच्चोशनसा प्राप्तं तस्माच्चापि ब्रह्मस्पतिः ।**

**ब्रह्मस्पतिस्तु प्रोवाच सवित्रे तदनंतरम् ॥५९**

**सविता मृत्यवे प्राह मृत्युश्चेद्राय वै पुनः ।**

**इन्द्रश्चापि वसिष्ठाय सोऽपि सारस्वताय च ॥६०**

**सारस्वतस्त्रिधाम्नेऽथ त्रिधामा च शरद्वते ।**

**शरद्वास्तु त्रिविष्टाय सोऽतरिक्षाय दत्तवान् ॥६१**

**चषिणे चांतरिक्षो वै सोऽपि त्रय्यारुणाय च ।**

**त्रय्यारुणाद्वनंजयः स वै प्रादात्कृतंजये ॥६२**

**कृतंजयात् णंजयो भरद्वाजाय सोऽप्यथ ।**

**गौतमाय भरद्वाजः सोऽपि निर्यतरे पुनः ॥६३**

शरीर में स्थित रोम कूपों के समान उतने ही सहस्र वर्षों तक स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है। फिर ब्रह्मा के सायुज्य में गमन करने वाला होकर देवों के साथ में परमानन्दित हुआ करता है । ५७। यह महापुराण सभी पापों के हरण करने वाला—पुण्य स्वरूप—पवित्र और यश वाला है। ब्रह्माजी ने ही इस शास्त्र पुराण को वायु देव के लिये दिया था । ५८।

जी ने प्राप्त किया था । बृहस्पति ने फिर सविता को बताया था । ५६। सविता ने मृत्यु को दिया था और मृत्यु ने फिर इन्द्र को दिया था । इन्द्र ने वसिष्ठ मुनि को बताया था और वसिष्ठजी सारस्वत को दिया था । ५७-६०। सारस्वत ने विद्यामा को दिया था और विद्यामा ने शरद्वान् को दिया था । शरद्वान् ने विविष्ट को दिया और उसने अन्तरिक्ष को दिया था । ६१। अन्तरिक्ष ने चर्षी को बतलाया और उसने ब्रह्माण्ड को दिया था । ब्रह्माण्ड ने धनञ्जय को दिया था उसने कृतञ्जय को दिया था । ६२। कृतञ्जय से तृणञ्जय को मिला था और इससे भरद्वाज को प्राप्त हुआ था । भरद्वाज ने गौतम को दिया था और उसने फिर नियंत्रन्तर को दिया था । ६३।

नियंत्रस्तु प्रोवाच तथा वाजश्रवाय वै ।

स ददौ सोमशुभ्याय स चादात्तृणबिदवे ॥६४

तृणबिदुस्तु दक्षाय दक्षः प्रोवाच शक्तये ।

शक्तेः पराशरञ्चापि गर्भस्थः श्रुतवानिदम् ॥६५

पराशराज्जातुकण्यस्तस्माद्द्वैपायनः प्रभुः ।

द्वैपायनात्पुनश्चापि मया प्राप्तं द्विजोत्तम् ॥६६

मया चैतत्पुनः प्रोक्तं पुत्रायामितबुद्धये ।

इत्येव वाक्यं ब्रह्मादिकगुरुणां समुदाहृतम् ॥६७

नमस्कार्यश्च गुरवः प्रयत्नेन मनीषिभिः ।

धन्यं यशस्यमायुष्यं पुण्यं सर्वार्थसाधकम् ॥६८

पापघ्नं नियमेनेदं श्रोतव्यं ब्राह्मणैः सदा ।

नाशुचौ नापि पापाय नाप्यसंवत्सरोषिते ॥६९

नाश्रद्वानेऽविदुषे नापुत्राय कथंचन ।

नाहिताय प्रदातव्यं पवित्रमिदमुत्तमग् ॥७०

नियंत्रन्तर ने वाजश्रव को यह बताया था और उसने सोम शुभ्य को दिया था फिर उसने तृण विन्दु के लिए दिया था । ६४। तृण विन्दु ने दक्ष को दिया था और उसने फिर शक्ति को बताया था । शवित से गर्भ में ही स्थित पराशर मुनि ने इसका श्रवण किया था । ६५। पराशर से जातुकण्य ने प्राप्त किया था फिर उससे प्रभु द्वैपायन ने प्राप्त किया था । हे द्विजोत्तम !

द्वैपायन मुनि से इस महापुराण को मैंने प्राप्त किया था । ६६। फिर मैंने अमित बुद्धि पुत्र को दिया था । यह इतना वाक्य ब्रह्मा से आदि लेकर गुरु वर्गों का मैंने बता दिया है । ६७। मनीषियों को प्रयत्न से इन गुरु वर्णों के लिए नमस्कार करना चाहिए । यह पुराण यशस्य—आयुष्य—पुण्य और सब अर्थों का साधक है । ६८। यह पापों के हनन करने वाला है । ब्राह्मणों को सदा ही इसका श्रवण करना चाहिए । इस पुराण को जो अशुचि हो—पापी हो तथा जो एक वर्ष से भी कम वास करने वाला हो उसको नहीं बताना चाहिए । ६९। जिसमें इसके प्रति श्रद्धा न हो उसको—अविद्वान् को और पुत्रहीन को भी कभी नहीं बताना चाहिए । यह परम पवित्र तथा उत्तम है अतः जो अपना हित न हो उसको भी नहीं देना चाहिए । ७०।

अव्यक्तं वै यस्य योनि वर्दंति व्यक्तं देहं कालमेतं गतिं च ।  
वह्निर्वक्त्रं चन्द्रसूयों च नेत्रे दिशः श्रोत्रे घ्राणमाहुश्च  
वायुम् ॥७१॥

वाचो वेदा अंतरिक्षं शरीरं क्षितिः पादास्तारका रोमकूपाः ।  
सर्वाणि द्यौर्मस्तकानि त्वथो वै विद्याश्चैवोपनिषद्यस्य  
पुच्छम् ॥७२॥

तं देवदेवं जननं जनानां यज्ञात्मकं सत्यलोकप्रतिष्ठम् ।

वरं वराणां वरदं महेश्वरं ब्रह्माणमादिं प्रयतो नमस्ये ॥७३॥

जिसकी योनि अव्यक्त है—व्यक्त जिसका देह है—यह काल ही गति है—अग्नि मुख हैं—चन्द्र और सूर्य ही नेत्र हैं—दिशायें जिसके श्रोत्र हैं और वायु घ्राण है । ७१। वाणी जिसकी वेद है—अन्तरिक्ष ही शरीर है—क्षितिही पाद हैं—तारे रोम कथ हैं—द्यौ मस्तक है—विद्या अधोभाग है और उपनिषद् जिसकी कूप है । ७२। उस देवों के भी देव को और जनों के जन्म स्थल को—यज्ञ स्वरूप तथा सत्यलोक में प्रतिष्ठित को—वरों के देने वालों के श्रेष्ठ वर को आदि महेश्वर ब्रह्माजी को प्रणत होकर नमस्कार करता हूँ । ७३।

## अगस्त्य यात्रा जनार्दन आविभवि

श्रीगणेशाय नमः—

अथ श्रीललितोपाख्यान प्रारभ्यते ।

चतुर्भुजे चन्द्रकलावर्तंसे कुचोन्नने कुञ्जमरागशोणे ।

पुण्ड्रेक्षुपाशांकुशपुष्पवाणहस्ते नमस्ते जगदेकमातः ॥१॥

अस्तु नः श्रेयसे नित्यं वस्तु वामाङ्गसुन्दरम् ।

यतस्तृतीयो विदुषां तृतीयस्तु परं महः ॥२॥

अगस्त्यो नाम देवषिवेदवेदाङ्गपारगः ।

सर्वसिद्धान्तसारज्ञो ब्रह्मानन्दरसात्मकः ॥३॥

चचारादभुतहेतूनि तीर्थान्यायतनानि च ।

शैलारण्यापगामुख्यान्सर्वाङ्गजनपदानपि ॥४॥

तेषु तेष्वखिलाङ्गंतूनज्ञानतिमिग्रवृत्तान् ।

शिश्नोदरपरान्हृष्ट्वा चिन्तयामास तान्प्रति ॥५॥

तस्य चिन्तयमानस्य चरतो वसुधामिमाम् ।

प्राप्तमासीन्महापुण्यं काँचीनगरमुत्तमम् ॥६॥

तत्र वारणशैलेन्द्रमेकाग्रनिलयं शिवम् ।

कामाक्षीं कलिदोषघ्नीमपूजयदथात्मवान् ॥७॥

हे इस जगत् की एक ही जननि ! आपकी सेवा में मेरा सादर प्रणाम निवेदित हैं । आप चार भुजाओं वाली हैं आपके मस्तक में चन्द्रमा की कला का भूषण विद्यमान है—आपके अत्यन्त उन्नत उरोज हैं—आपका वर्ण कुंकुम के राग के सहश रक्त है—पुण्ड्र-इक्षु, पाश-अंकुश और पुष्पों का वाण आपके करों में सुणोभित है । १। आपके वाम अङ्ग में परम सुन्दर वस्तु हमारे नित्य ही कल्याण के लिए होवे । जिससे विद्वानों में तीसरे और तृतीय परम तेज विद्यमान है । २। वह अगस्त्य नाम वाले देवषि हैं जो वेदों और वेदाङ्ग शास्त्रों के पारगामी विद्वान् हैं । वे सब सिद्धान्तों के सार के ज्ञाता हैं और ब्रह्मानन्द के रस के ही स्वरूप वाले हैं । ३। अद्भुतता के हेतु स्वरूप तीर्थों का और पवित्र आयतनों का जिन्होंने सञ्चरण किया था

तथा समस्त शैल-अरण्य-नदियाँ आदि प्रमुख स्थलों का एवं जनपदों का भी जिन्होंने परिभ्रमण किया है ।४। उन-उन स्थलों में जहाँ-जहाँ पर उन्होंने परिभ्रमण किया था वहाँ पर सभी जन्मुओं को ज्ञान से शून्य तथा अत्यन्त ही अन्धकार से समन्वित एक केवल उदर पूर्ति तथा काम वासना में परायण देखा था । उन्होंने यह बुरो दशा देखकर उनके विषय में चिन्तन किया था ।५। वे इसी प्रकार से चिन्तन करते हुए संचरण कर रहे थे और इस भूमि पर विचर रहे थे कि उन्हें काञ्ची नगर मिला या जो महान् पुण्यमय और अत्युत्तम था ।६। वहाँ पर इन आत्मवान् अगस्त्यजी ने वारण शैल के स्वामी और एकाग्र ध्यान में तल्लीन भगवान् शिव का तथा कलियुग के दोषों का हनन करने वाली देवी कामाक्षी का अर्चन किया था ।७।

**लोकहेतोर्दयाद्र्स्य धीममश्चिन्तनो मुहुः ।**

**चिरकालेन तपसा तोषितोऽभूज्जनार्दन ॥८॥**

**हयग्रीवां तनुं कृत्वा साक्षाच्चिचन्मात्रविग्रहाम् ।**

**शङ्खचक्राक्षवलयपुस्तकोज्ज्वलबा हुकाम् ॥९॥**

**पूरयित्रीं जगत्कृत्स्नं प्रभया देहजातया ।**

**प्रादुर्बंधूव पुरतो मुनेरमिततेजसा ॥१०॥**

**तं दृष्ट्वानन्दभरितः प्रणम्य च मुहुर्मुहुः ।**

**विनयावनतो भूत्वा सन्तुष्टाव जगत्पतिम् ॥११॥**

**अथोवाच जगन्नाथस्तुष्टोऽस्मि तपसा तव ।**

**वरं वरय भद्रं ते भविता भूसुरोत्तम् ॥१२॥**

**इति पृष्ठो भगवता प्रोवाच मुनिसत्तमः ।**

**यदि तुष्टोऽसि भगवन्निमे पामरजन्तवः ॥१३॥**

**केनोपायेन मुक्ताः स्युरेतन्मे वक्तुमर्हसि ।**

**इति पृष्ठो द्विजेनाथ देवदेवो जनार्दनः ॥१४॥**

लोकों के कारण से दया से आद्रं (पसीजे हुए हृदय वाले)-परमधी-  
मान् और बारम्बार चिन्तन करने वाले उन अगस्त्य मुनि के अधिक समय  
हल्का किये हुए वह से अगवाह् / अल्लग्नेश्वर से देवे । वा एकमात्र में लोकाद्यक्षे vina-

वारण करक ताक्षात् । च४ (ज्ञान) हा क विग्रह वाला आर शख, चक्र,  
बलय और पुस्तक के धारण करने से समुज्ज्वल बाहुओं वाली तथा अपने  
देह से समुत्पन्न प्रभा से सम्पूर्ण जगत् जगत् को पूरित करने वाली अपने  
अपरिमित तेज से मुनि के आगे प्रादुर्भूत हुई थी । १९-२०। उनका दर्शन  
प्राप्त करके आनन्द से भरे हुए ऋषि ने उनको बारम्बार प्रणाम किया था  
और विनय से अवनत होकर जगत् के पति की भली भाँति स्तुति की थी  
। २१। इसके अनन्तर जगन्नाथ प्रभु ने कहा था—हे भूसुरों में श्रेष्ठ ! मैं  
आपके तप से सन्तुष्ट हो गया हूँ आप किसी भी वरदान का वरण करो ।  
तुम्हारा कल्याण होगा । २२। जय भगवान् के द्वारा इस रीति से पूछा गया  
तो श्रेष्ठ मुनि ने कहा—हे भगवन् ! यदि परम सन्तुष्ट है तो यही मुझे  
बतलाइए कि ये पामर जन्मुगण किस उपाय से मुक्त होंगे । जब इस रीति  
से द्विज के द्वारा पूछा गया था तो देवों के भोदेव जनादेन ने कहा था—  
। २३-२४।

एष एव पुरा प्रश्नः शिवेन चरितो मम ।

अयमेव कृतः प्रश्नो ब्रह्मणा तु ततः परम् ॥ १५ ॥

कृतो दुर्वासिसा पश्चाद्भवता तु ततः परम् ॥ १६ ॥

भवदिभः सर्वभूतानां गुरुभूतैर्महात्मभिः ।

ममोपदेशो लोकेषु प्रथितोऽस्तु वरो मम ॥ १७ ॥

अहमादिर्हि भूतानामादिकर्ता स्वयं प्रभुः ।

सृष्टिस्थितिलयानां तु सर्वेषामपि कारकः ॥ १८ ॥

त्रिमूर्तिस्त्रिगुणातीतो गुणहीनो गुणाश्रयः ॥ १९ ॥

इच्छाविहारो भूतात्मा प्रधानपुरुषात्मकः ।

एवं भूतस्य मे ब्रह्मस्त्रिजगद् प्रधारिणः ॥ २० ॥

द्विधाकृतमभूद्यपं प्रधानपुरुषात्मकम् ।

मम प्रधानं यद्यपं सर्वलोकगुणात्मकम् ॥ २१ ॥

यह ही प्रश्न बहुत पहिले शिवजी ने मुझसे किया था । इसके पीछे  
ऐसा ही प्रश्न ब्रह्माजी ने भी किया था । १५। इसके अनन्तर दुर्वासा मुनि  
ने यह प्रश्न किया था । इसके बाद में अब आपने भी यह प्रश्न मुझ से किया

है । १६। यह प्रश्न जो आपने किया है इसका कारण यही है कि आप महान् आत्मा बाले हैं और समस्त प्राणियों के गुरु के ही समान है । लोकों में मेरा उपदेश ही परम प्रसिद्ध वर है । १७। मैं समस्त प्राणियों में आदि हूँ और मैं ही आदि कर्त्ता प्रभु हूँ जों स्वयं ही हुआ हूँ । इस लोक की सृष्टि-स्थिति और संहार के करने वाला भी सबका मैं ही हूँ । १८। मैं ही तीन मूर्तियाँ वाला हूँ अथवा ब्रह्म-विष्णु और महादेव—ये तीन मूर्तियाँ मेरी ही हैं जो कि मैं गुणों से पर-गुणों से रहित और गुणों का समाश्रय भी हूँ । १९। मैं समस्त भूतों की आत्मा हूँ और मैं अपनी ही इच्छा से बिहार करने वाला हूँ । हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार के जगत् में सीन रूप धारण करने वाला हूँ । २०। मेरा ही रूप दो प्रकार का है एक पुरुष और दूसरा प्रधान मेरा जो प्रधान नामक रूप है वह सब (सत्त्व-रजा-तम) गुणों के ही स्वरूप वाला है । २१।

अपरं यद्गुणातीतं परात्परतरं महत् ।

एवमेव तयोर्ज्ञात्वा मुच्यते ते उभे किम् ॥२२॥

तपोभिश्चिरकालोत्थैर्यमेश्च नियमैरपि ।

त्यागैर्दुष्कर्मनाशाति मुक्तिराश्वेव लभ्यते ॥२३॥

यद्रूपं यद्गुणयुतं तद्गुण्यैक्येन लभ्यते ।

अन्यत्सर्वं जगद्रूपं कर्मभोगपराक्रमम् ॥२४॥

कर्मभिर्लभ्यते तच्च तत्यागेनापि लभ्यते ।

दुस्तरस्तु तयोस्त्यागः सकलैरपि तापसैः ॥२५॥

अनपायं च सुगमं सदसत्कर्मगोचरम् ॥२६॥

आत्मस्थेन गुणनैव सतां चाप्यसतापि वा ।

आत्मैक्येनैव यज्ञानं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥२७॥

वर्णत्रयविहीनीनां पापिष्ठानां नृणामपि ।

यद्रूषध्यानमात्रेण दुष्कृतं सुकृतायते ॥२८॥

दूसरा मेरा स्वरूप सब गुणों से परे है और पर से भी अधिक पर हैं तथा महान् है । इस रीति से उन दोनों के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके वे दोनों ही मुक्त हो जाते हैं । २९। चिरकाल पर्यन्त किये हुए तप-यम और

नियम तथा त्याग से दुष्कर्मों के विनाश होने के अन्त में बहुत ही शीघ्र मुक्ति प्राप्ति हो जाया करती है । २३। जो रूप जिस गुण से युक्त होता है उन गुणों की एकता से प्राप्त किया जाता है । अन्य समस्त जगत् के स्वरूप वाला है जो कर्म—भोग और पराक्रम से संयुक्त होता है । २४। जो कर्मों के द्वारा प्राप्त किया जाता है वह कर्मों के त्याग से भी पाया जाया करता है । हे तपस्त्व ! सभी के द्वारा उन दोनों का त्याग करना बड़ा ही कठिन होता है । २५। सत् और असत् कर्मों को प्रत्यक्ष रूप से जान लेना निविधि और सुगम होता है । २६। आत्मा में स्थित गुण से जो सत् हो या असत् हो । आत्मा के साथ एकता से जो भी ज्ञान है वह समस्त सिद्धियों के देने वाला होता है । २७। तीन वर्णों से जो हीन हैं और महान् पापी हैं ऐसे मनुष्यों को भी जिसके केवल ध्यान से हो दुष्कृत भी सुकृत के स्वरूप में परिणत हो जाया करता है । २८।

येऽर्चयंति परां शक्ति विधिनाऽविधिनापि वा ।

न ते संसारिणो नूनं मुक्ता एव न संशयः ॥२९॥

शिवो वा यां समाराध्य ध्यानयोगबलेन च ।

ईश्वरः सर्वसिद्धानामर्द्धनारीश्वरोऽभवत् ॥३०॥

अन्येऽब्जप्रमुखा देवाः सिद्धास्तद्वचानवैभवात् ।

तस्मादशेषलोकानां त्रिपुराराधनं विना ॥३१॥

न स्तो भोगापवर्गो तु योगपद्येन कुत्रचित् ।

तन्मनास्तद्वगतप्राणस्तद्वाजी तद्वगतेहकः ॥३२॥

तादात्म्येनैव कर्माणि कुर्वन्मुक्तिमवाप्स्यसि ।

एतद्रहस्यमाख्यातं सर्वेषां हितकाम्यया ॥३३॥

सन्तुष्टेनैव तपसा भवतो मुनिसत्तम ।

देवाश्च मुनयः सिद्धा मानुषाश्च तथापरे ।

त्वन्मुखाभोजतोऽवाप्य सिद्धि यांतु परात्पराम् ॥३४॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा हयग्रीवस्य शाङ्किणः ।

प्रणिपत्य पुनर्वक्यमुवाच मधुसूदनम् ॥३५॥

जो मानव पराशक्ति का अर्चन किया करते हैं वाहे वे विद्यि के साथ करें या विना ही विद्यि से करें वे संसारी नहीं होते हैं अर्थात् बारम्बार जीवन—मरण की ओर यातनाएँ सहन करने वाले नहीं रहते हैं और निश्चय ही वे मुक्त हो जाया करते हैं—इसमें लेशमात्र भी जिसकी आराधना करके और ध्यान तथा योग के बल से अर्चना करके ईश्वर भी जो सभी सिद्धों के स्वामी हैं अधिनारीश्वर हो गये थे । २६-३०। अन्य देव भी जिनमें अब्ज प्रमुख हैं उसके ध्यान के ही वैभव से ही सिद्ध हो गये हैं । इस कारण से वह सिद्ध होता है कि समस्त लोगों को त्रिपुरदेव का ही आराधन मुख्य है । इसके विना कुछ भी नहीं होता है । ३१। सुखों का उपभोग और मोक्ष दोनों ही एक साथ किसी भी प्रकार से नहीं प्राप्त हुआ करते हैं । उनमें ही मन के लगाने वाला—उसमें अपने प्राणों को संलग्न रखने वाला—उसका ही यजन करने वाला तथा अपनी इच्छा को उसमें ही केन्द्रित करने वाला मानव तादात्म्य भाव से अर्थात् उसमें ही सर्वतोभाव से एकता धारण करने वाला पुरुष कर्मों को करता हुआ मुक्ति को प्राप्त कर लेगा । यही रहस्य मैंने सबके हित की कामना से कह दिया है । ३२-३३। हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! मैं आपके तप से परम सन्तुष्ट हो गया हूँ । इसी से मैंने आपको यह बतला दिया है । देवगण—मुनिमण्डल—सिद्धसमुदाय—मनुष्य तथा दूसरे लोग आपके मुख कमल से भी पर से भी पर सिद्धि को प्राप्त कर लेवें । ३४। भगवान् हृयग्रीव शार्ङ्गी के इस ववन का श्रवण करके अगस्त्य मुनि ने उनको प्रणिपात किया था और फिर मधुसूदन प्रभु से कहा था । ३५।

भगवन्कीटृष्णं रूपं भवता यत्पुरोदितप् ।

किविहारं किप्रभावमेतन्मे वक्तुमहंसि ॥ ३६ ।

हृयग्रीव उवाच—

एषोऽशभूतो देवर्णं हृयग्रीवो ममापरः ।

श्रोतुमिच्छसि यद्यत्त्वं तत्सर्वं वक्तुमहंति ॥ ३७ ।

इत्यादिष्य जगन्नाथो हृयग्रीवं तपोधनम् ।

पुरतः कुम्भजातस्य मुनेरंतरधाद्वरिः ॥ ३८ ।

तत्स्तु विस्मयाविष्टो हृष्टरोमा तपोधनः ।

हृयग्रीवेण मुनिना स्वाश्रमं प्रत्यपद्वत् ॥ ३९ ।

आप मुझको बतलाइए । ३६। हयग्रीव जी ने कहा—हे देवर ! यह अंशभूत  
मेरा अपर हयग्रीव है । आप जो-जो भी श्रवण करना चाहते हैं वही यह  
कहने के योग्य होता है । जगन्नाथ प्रभु इतना ही तपोधन हयग्रीव को  
आदेश देकर अगस्त्य मुनि के ही आगे अन्तर्हित हो गये थे । ३७-३८। इसके  
पश्चात् अगस्त्य मुनि बड़े ही विस्मित हुए और उनके रोम-रोम प्रसन्नता  
से उद्गत हो गये थे । फिर वे तप के ही मन वाले मुनि हयग्रीव मुनि के  
साथ अपने आश्रम में प्राप्त हो गये थे । ३९।

— X —

## ॥ हयग्रीव अगस्त्य संवाद ॥

अथोपवेश्य चैवैनमासने परमाद्भुते ।

हयानन्मुपागत्यागस्त्यो वाक्यं समब्रवीत् ॥१॥

भगवन्सर्वधर्मज्ञ सर्वसिद्धान्तवित्तम् ।

लोकाभ्युदयहेतुहि दर्शनं हि भवाद्शाम् ॥२॥

आविभविं महादेव्यास्तस्या रूपान्तराणि च ।

विहाराश्चैव मुख्या ये तान्नो विस्तरतो वद ॥३॥

हयग्रीव उवाच—

अनादिरखिलाधारा सदसत्कर्मरूपिणी ।

ध्यानैकहृश्या ध्यानांगी विद्यांगी हृदयास्पदा ॥४॥

आत्मैक्यादव्यक्तिमायाति चिरानुष्ठानगौरवात् ॥५॥

आदौ पादुरभूच्छक्तिर्ब्रह्मणो ध्यानयोगतः ।

प्रकृतिर्नामि सा ख्याता देवानामिष्टसिद्धिदा ॥६॥

द्वितीयमुद्भूद्रूपं प्रवृत्तेऽमृतमंथने ।

सर्वसंमोहजनकमवाङ्मनसगोचरम् ॥७॥

इसके अनन्तर उनको परम अद्भुत आसन पर बिठाकर फिर  
हयानन के समीप में उपस्थित होकर अगस्त्य जी ने यह वाक्य कहा था ।

।१। हे भगवन् ! आप तो सभी शमाँ के ज्ञाता हैं और समस्त सिद्धान्तों के परम श्रेष्ठ जानने वाले हैं । आप सरीखे महापुरुषों का दशन तो लोकों के अम्युदय का ही हेतु हुआ करता है । २। महादेवी का आविभवि और उनके अन्य स्वरूप तथा मुख्य बिहार जो भी हैं उनको अब मेरे समक्ष में विस्तार से वर्णन कीजिए । ३। श्री हयग्रीवजी ने कहा—सत् और असत् कमाँ के रूप वाली जो पूर्ण धारा है वह अनादि है । ध्यान के ही अङ्गों वाली—विद्या ही जिसका शरीर है और उसका हृदय ही निवास का स्थल है वह ध्यान के ही द्वारा देखने के योग्य है । बहुत काल पर्यन्त अनुष्ठान के गौरव से जब अपनी आत्मा के साथ उसकी एकता हो जाती है तभी वह प्रकट हुआ करती है । ४-५। आदि काल में ब्रह्माजी के ध्यान के योग से वह शक्ति प्रादुर्भूत हुई थी । उसका प्रकृति—यह नाम विरुद्धात हुआ था जो देवों के इष्ट की सिद्धि देने वाली थी । ६। उसका दूसरा स्वरूप उस समय में उद्भूत हुआ था जिस समय में देवों और अमुरों के द्वारा अमृत के प्राप्त करने के लिये समुद्र का मन्थन करना प्रवृत्त हुआ था । जो भगवान् शिव को भी मोह उत्पन्न करने वाला था जो कि वाणी और मन के भी अगोचर हैं । ७।

यदर्शनादभूदीशः सर्वज्ञोऽपि विमोहितः ।

विसृज्य पार्वतीं शीघ्रं तथा रुद्रोऽतनोद्रतम् ॥८॥

तस्यां वै जनयामास शास्तारमसुरार्दनम् ॥९॥

अगस्त्य उवाच—

कथं वै सर्वभूतेषो वशी मन्मथशासनः ।

अहो विमोहितो देव्या जनयामास चात्मजम् ॥१०॥

हयग्रीव उवाच—

पुरामरपुराधीशो विजयश्रीसमृद्धिमान् ।

त्रैलोक्यं पालयामास सदेवासुरमानुषम् ॥११॥

कैलासशिखराकारं गजेऽमधिरुद्धा सः ।

चचाराखिललोकेषु पूज्यमानोऽखिलैरपि ।

तं प्रमत्तं विदित्वाथ भवानीपतिरव्ययः ॥१२॥

दुर्वासिसमथाहृय प्रजिघाय तदंतिकम् ।

खण्डाजिनधरो दंडी धूलिधूसरविग्रहः ।

उन्मत्तरूपधारी च ययी विद्याधराध्वना ॥ १३ ॥

एतस्मन्नन्तरे काले काचिद्विद्याधरांगना ।

यद्यच्छया गता तस्य पुरश्चारुतराकृतिः ॥ १४ ॥

जिसके दर्शन करने से ईश्वर जो सर्वज्ञ हैं वे भी विमोहित हो गये थे । उन्होंने पार्वती जी को भी त्याग करके शीघ्रता से उसके द्वारा रुद्ध होकर रति का विस्तार किया था । ८। उसमें असुरों के अदंन करने वाले एक शासक को उसने उत्पन्न किया था । ९। अगस्त्यजी ने कहा—शिव तो समस्त प्राणियों के स्वामी हैं तथा वशी और कामदेव को भी भस्मीभूत कर देने वाले हैं फिर वे कैसे देवी के द्वारा विमोहित हो गये थे और उन्होंने उसमें एक पुत्र को भी जन्म ग्रहण करा दिया था ? । १०। हयग्रीव ने कहा—पहिले समय में अमर पुर का स्वामी विजय की श्री तथा समृद्धि से समन्वित था और देव-असुर और मनुष्यों के समुदाय से युक्त त्रैलोक्य का पालन किया करता था । ११। वह कैलास के शिखर के समान समुच्च आकार वाले गजेन्द्र पर समारुद्ध होकर सभी लोकों में विचरण करने लग गया था और सबके द्वारा उसकी पूजा की जाती थी । भवानी को पति ने उसको प्रमत्त जानकर जो कि अविनाशी हैं उसके मद का हनन करने की इच्छा की थी । फिर दुर्वासा मुनि को बुलाकर उसके समीप में भेजा था । जो खण्ड मृगचर्म के धारण करने वाले थे और दण्डधारी थे । उनका सब शरीर धूल से मटीला हो रहा था । उनका स्वरूप उन्मत्त जैसा था । वे विद्याधरों के मार्ग से गये थे । १२-१३। इसी बीच में उस समय में कोई विद्याधर की अज्ञना वहीं पर यहच्छा से उसके ही आगे समागत हो गयी थी । जिसकी आकृति अधिक सुन्दर थी । १४।

चिरकालेव तपसा तोषयित्वा परांबिकाम् ।

तत्समर्पितमाल्यं च लब्ध्वा संतुष्टमानसा ॥ १५ ॥

तां हृष्ट्वा मृगशावाक्षीमुवाच मुनिपुञ्जवः ।

कुत्र वा गम्यते भीरु कुतो लब्धमिदं त्वया ॥ १६ ॥

प्रणम्य सा महात्मानमुवाच विनयान्विता ।

चिरेण तपसा ब्रह्मन्देव्या दत्तं प्रसन्नया ॥ १७

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्याः सोऽपृच्छन्माल्यमुत्तमम् ।

पृष्ठमात्रेण सा तुष्टा ददौ तस्मै महात्मने ॥ १८

कराम्यां तत्समादाय कृतार्थोऽस्मीति सत्वरम् ।

दधौ स्वशिरसा भक्तच्चा तामुवाचातिहर्षितः ॥ १९

ब्रह्मादीनामलभ्यं यत्तल्लब्धं भाग्यतो मया ।

भक्तिरस्तु पदांभोजे देव्यास्तव समुज्ज्वला ॥ २०

भविष्यच्छोभनाकारे गच्छ सौम्ये यथासुखम् ।

सा तं प्रणम्य शिरसा ययो तुष्टा यथागतम् ॥ २१

उस अंगना ने बहुत लम्बे समय तक तप करके परा अम्बिका को प्रसन्न कर लिया था और उस अम्बिका के द्वारा अपित एक माला को प्राप्त किया था तथा उससे वह परम सन्तुष्ट मन वाली सुप्रसन्न थी । १५। उस हिरन के समीप सुन्दर नेत्रों वाली को देखकर मुनिश्रेष्ठ ने उससे कहा था—हे भीरु ! आप कहाँ जा रहीं हो ? और आपने यह कहाँ से प्राप्त की है ? । १६। उसने महात्माजी को प्रणाम करके नम्रता से कहा—हे ब्राह्मण ! बहुत समय तक तपश्चर्या करने से देवी ने प्रसन्न होकर मुझे यह दी है । १७। उसके वचन को सुनकर फिर उसने उस उत्तम माला के बावत पूछा था । केवल पूछने ही से परम प्रसन्न हो गयी थी और फिर उस माला को उस महात्मा को दिया था । १८। उस महात्मा ने उसको अपने दोनों हाथों से लेकर यह कहते हुए कि मैं कृतार्थ हो गया उसको भक्तिभाव अपने शिर में धारण कर लिया था और फिर अति तर्षित होकर उससे कहा था । १९। जो ब्रह्मादिक के लिए भी अलभ्य है वह आज मैंने भाग्य से प्राप्त की है । आपकी देवी के चरण कमलों में समुज्ज्वल भक्ति होवे । २०। हे सौम्य ! परम शोभन आकार वाली आप हैं अब सुख पूर्वक गमन करें । उस अंगना ने भी मुनि को प्रणाम करके और चरणों में शिर रखकर वह जैसे आई थी प्रसन्न होती हुई चली गई थी । २१।

प्रेषयित्वा स तां भूयो ययौ विज्ञाधराध्वना ।

विष्णुभूतभूतप्रतिज्ञात वत्त्वात् ॥

दिव्यसूर्गनुलेपांश्च दिव्यान्याभरणानि च ।

ववचिद्वधी ववचिद्गृहणन्कवचिद्गायन्कवचिद्वसव ॥२३

स्वेच्छाविहारी स पुनिर्यौ यत्र पुरांदरः ।

स्वकरस्थां ततो मालां शक्राय प्रददौ मुनिः ॥२४

तां गृहीत्वा गजस्कन्धे स्थापयामास देवराट् ।

गजस्तु तां गृहीत्वाथ ऐषयामास भूतले ॥२५

तां हृष्टवा ऐषितां मालां तदा क्रोधेन तापसः ।

उवाच न धृता माला शिरसा तु मयापिता ॥२६

त्रैलोक्येश्वर्यमतेन भवता ह्यवमानिता ।

महादेव्या धृता या तु ब्रह्माद्यैः पूज्यते हि सा ॥२७

त्वया यच्छासितो लोकः सदेवासुरमानुषः ।

अशोभनो ह्यतेजस्को मम शापादभविष्यति ॥२८

उस अङ्गना को वहाँ से विदा करके वह मुनि फिर विद्याधरों के मार्ग से गये थे । विद्याधर की वधू के हाथ से बल्लकी का प्रतिग्रहण किया था । २२। और दिव्य सूक्ष्म-अनुलेप और गन्ध तथा परम दिव्य आभरण भी ग्रहण किये थे । कहीं पर तो इनको धारण कर लेते थे और कहीं पर हाथों में ही ग्रहण करते थे—कहीं पर गान करते जाते थे और कभी हँसते जाते थे । २३। अपनी ही इच्छा से विहार करने वाले वह मुनि वहाँ पर पहुँचे थे जहाँ पुरन्दर विराजमान थे । फिर उस मुनि ने अपने करों में स्थित उस माला को इन्द्रदेव को समर्पित कर दी थी । २४। उसको ग्रहण करके देवराज ने उस माला को हाथी के कन्धे पर स्थापित कर दिया । उस गज ने उसको लेकर भूतल में भेज दिया था । २५। उस समय में उस माला को भूतल में प्रेषित की हुई देखकर तपस्वी को बड़ा क्रोध आ गया था और उसने कहा था कि मेरे द्वारा समर्पित की हुई माला को इन्द्र देव ने शिर पर धारण किया है । २६। त्रैलोक्य के ऐश्वर्य से प्रमत्त आपने मेरी दी हुई माला का अपमान किया है । जिस माला को महादेवी ने धारण किया था और वह ब्रह्मा आदि के द्वारा पूजी जाया करती है । २७। तूने देव असुर और मनुष्यों का लोक शासित किया है वह अब मेरे शाप से अशोभन तेज से रहित हो जायगा । २८।

इति शप्त्वा विनीतेन तेन संपूजितोऽपि सः । २६

तूष्णीमेव ययौ ब्रह्माविकार्यमनुस्मरन् ॥२६

विजयश्रीस्ततस्तस्य दैत्यं तु बलिमन्वगात् । २७

नित्यश्रीनित्यपुरुषं वासुदेवमथान्वगात् ॥३०

इन्द्रोऽपि स्वपुरं गत्वा सर्वदेवसमन्वितः । २८

विष्णुचेता निःश्रीकश्चिन्तयामास देवराट् ॥३१

अथामरपुरे दृष्ट्वा निमित्तान्यशुभानि च । २९

बृहस्पति समाहृय वाक्यमेतदुवाच ह ॥३२

भगवन्सर्वधर्मज्ञ त्रिकालज्ञानकोविद । ३०

दृश्यतेऽहृष्टपूर्वाणि निमित्तान्यशुभानि च ॥३३

किफलानि च तानि स्युरुपायो वाऽथ कीदृशः । ३१

इति तद्वचनं श्रुत्वा देवेन्द्रस्य बृहस्पतिः ।

प्रत्युवाच ततो वाक्यं धर्मर्थसहितं शुभम् ॥३४

कृतस्य कर्मणो राजन्कल्पकोटिशतेरपि ।

प्रायश्चित्तोपभोगाभ्यां विना नाशो न जायते ॥३५

इस रीति से शाप देकर जब वह शान्त हुए तो विनीत उस इन्द्र ने उनका पूजन भी किया था किन्तु हे ब्रह्मन् ! आगे होने वाले कार्य का अनुस्मरण करते हुए वह चुपचाप चले गये थे । २६। इसके अनन्तर उस इन्द्र की जो विजय की श्री थी वह असुरराज बलि का अनुगमन कर गयी थी और और जो नित्य श्री थी वह नित्य पुरुष वासुदेव के समीप में चली गयी थी । ३०। इन्द्र भी अपने पुर में पहुँच कर सब देवगणों से युक्त होता हुआ श्री से विहीन होकर ही विषाद से युक्त चित्त वाला हो गया था और वह चिन्ता करने लगा था । ३१। इसके पश्चात् उस देवों के पुर में परमाशुभ निमित्तों को उसने देखा था । फिर अपने गुह बृहस्पतिजी को बुलाकर यह वाक्य उनसे कहा— । ३२। हे भगवान् ! आप तो सभी धर्मों के ज्ञाता हैं और तीनों कालों के ज्ञान के महान् पंडित हैं । अब तो ऐसे अशुभ निमित्त विभलाई दे रहे हैं जो पहिले कभी भी नहीं देखे गये थे । इन सबका क्या

फल होगा और इनका क्या कैसा भी कोई उपाय भी है ? वृहस्पतिजी ने देवराज के इस वाक्य का श्रवण कर फिर उन्होंने ब्रह्मर्थं के सहित परम शुभ वाक्य में उत्तर दिया था । ३३-३४। हे राजव् ! किये हुए कर्मों का फल सैकड़ों करोड़ कल्पों में भी बिना प्रायशिच्छत् और उपभोगों के कभी भी विनाश नहीं होता है । ३५।

इन्द्र उवाच—

कर्म वा कीदृशं ब्रह्मन्प्रायश्चितं च कीदृशम् ।

तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि तन्मे विस्तरतो वद ॥ ३६ ॥

बृहस्पतिरुवाच—

हननस्तेयहिसाशच पानमन्यगतारतिः ।

कर्म पञ्चविधं प्राहुद्दुष्कृतं धरणीपतेः ॥ ३७ ॥

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रगोतुरंगखरोष्ट्रकाः ।

चतुष्पदोऽण्डजाब्जाश्च तिर्यचोऽनस्थिकास्तथा ॥ ३८ ॥

अयुतं च सहस्रं च शतं दश तथा दश ।

दशपञ्चत्रिरेकाधींमानुपूर्व्यादिदं भवेत् ॥ ३९ ॥

ब्रह्मक्षत्रियां स्त्रीणामुक्तार्थं पापमादिशेत् ।

पितृमातृगुरुम्वामिपुत्राणां चैव निष्कृतिः ॥ ४० ॥

गुरुवैश्या कृतं पापं तदाज्ञालंघनेऽर्थकम् ।

दशन्नाह्यणभृत्यर्थमेकं हन्याद्द्विजं नृपः ॥ ४१ ॥

शतन्नाह्यणभृत्यर्थं ब्राह्मणो ब्राह्मणं तु वा ।

पञ्चब्रह्मविदामर्थं गौप्यमेकं तु दंडयेत् ॥ ४२ ॥

इन्द्रदेव ने कहा—हे ब्रह्मन् ! वह कर्म किस प्रकार का है और प्रायशिच्छत् कैसा है ? वह सब में सुनने का इच्छुक है । वह मुझे विस्तार के साथ बतलाइए । ३६। वृहस्पति जी ने कहा—राजा के लिये पाँच तरह के दुष्कृत कहे गये हैं—किसी का हनन करना—स्तेय (चोरी)—हिसा—मदिरा पान और अन्य अज्ञना के साथ में रति करना । ३७। ब्राह्मण, खत्रिय वेश्य, शूद्र, गौ—अश्व, गधा, ऊँट, चतुष्पद—अण्डज—अब्ज—तिर्यक्—

अनास्थिक ये योनियाँ हैं—इनमें अयुत, सहस्र-शत-दश-दश, पाँच, तीन, एक और आधा क्रम से आरम्भ से अन्त से अन्त तक जन्म धारण करना पड़ता है । ३८-३९। ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य और स्त्रियों का ऊपर में कहे हुए अर्थ में पाप समादिष्ट होता है । पिता-माता-गुरु-स्वामी और पुत्रों की निष्कृति होती है । ४०। गुरु की आज्ञा से कृत पाप उसकी आज्ञालंघन में अर्थ पाता है । राजा को दश ब्राह्मणों की भूति (भरण) के लिए चाहिए कि एक द्विजका हनन कर देवे । तात्पर्य यह है कि यदि दश ब्राह्मणों की जीविका की रक्षा होती है तो एक द्विज का हनन कर देना चाहिए । ४१। सौ ब्राह्मणों की भूति के लिए अथवा ब्राह्मण को ब्राह्मण तथा पाँच ब्रह्मा (वेद) के ज्ञाताओं के लिए एक वैश्य को दण्ड राजा को दे देना चाहिए । ४२।

गौश्यं दशविशामर्थं विशां वा दंडयेत्था ।

तथा शतविशामर्थं द्विजमेकं तु दंडयेत् ॥ ४३ ॥

शूद्राणां तु सहस्राणां दंडयेद्ब्राह्मणं तु वा ।

तच्छतार्थं तु वा गौश्यं तदशाद्वं तु शूद्रकम् ॥ ४४ ॥

बंधूनां चैव मित्राणामिष्ठार्थं तु त्रिपादकम् ।

अर्थकलत्रपुत्रार्थं स्वात्मार्थं न तु किंचन ॥ ४५ ॥

आत्मानं हन्तुमारब्धं ब्राह्मणं क्षत्रियं विशम् ।

गां वा तु रगमन्यं वा हत्वा दोषेन्द्रं लिप्यते ॥ ४६ ॥

आत्मदारात्मजभ्रातृबंधूनां च द्विजोत्तम ।

क्रमादशगुणो दोषो रक्षणे च तथा फलम् ॥ ४७ ॥

भूपद्विजश्रोत्रियवेदविद्वतोवेदान्तविद्वेदविदां विनाशे ।

एकद्विपंचाशदथायुतं च स्यान्निष्कृतिश्चेति

वदंति संतः ॥ ४८ ॥

तेषां च रक्षणविधी हि कृते च दाने पूर्वोदितोत्तरगुणं

प्रवदन्ति पुण्यम् ।

तेषां च दर्शनविधी नमने च कार्यं शुश्रूषणेऽपि चरतां

सहस्राणां च तेषाम् ॥ ४९ ॥

दश वैश्यों की सुरक्षा के लिये एक वैश्य अथवा वैश्यों को दण्ड दे देना चाहिए। अथवा शत (सौ) वैश्यों का हित सम्पादन होता हो तो एक द्विज को दण्ड दे देना चाहिए। ४३। सहस्र शूद्रों के लिए अथवा ब्राह्मण को दण्डित करे। उसके शतार्धि वैश्य को या उसका दशार्धि शूद्र को दण्ड देवे। ४४। बन्धुओं के और मित्रों के अभीष्ट अर्थ में त्रिपाद अर्थात् तीन भाग में और कलत्र तथा पुत्र के लिए भी तीन भाग अर्थ का करे अपनी आत्मा के लिए कुछ भी न करे। ४५। जो आत्मा को अर्थात् अपने को हनन करना आरम्भ करे वह चाहे ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य कोई भी हो अथवा अश्व—गौ या अन्य को मारता हो तो उसका हनन करके भी दोषों से लिप्त नहीं होता है। ४६। हे द्विज श्रेष्ठ ! अपनी स्त्री-पुत्र-भाई और बन्धु का हनन करने में दशगुना दोष होता है और रक्षा करने में उतना ही फल भी होता है। ४७। राजा—द्विज—श्रोत्रिय—वेदवेत्ता—ग्रती—वेदान्त ज्ञाता और वेदों के मनीषी के विनाश करने में एक-दो-पचास और अयुत गुनी निष्कृति (प्रायशिच्छत) होता है—ऐसा सन्त पुरुष कहते हैं। ४८। और इनकी रक्षा करने की विधि में और दान करने में पूर्व में जो कहा है उससे उत्तर गुना पुण्य कहते हैं। उनके दर्शन की विधि में तथा नमन करने में तथा इनकी सुश्रूषा करने में और इनके सहज समाचरण करने वालों की भी शुश्रूषा आदि करने में भी वैसा ही फल होता है। ४९।

**सिहव्याघ्रमृगादीनि लोकहिंसाकरणि तु ।**

**नृपो हन्याच्च सततं देवार्थं ब्राह्मणार्थंके ॥५०**

**आपत्स्वात्मार्थंके चापि हृत्वा मेध्यानि भक्षयेत् ॥५१**

**नात्मार्थं पाचयेदन्नं नात्मार्थं पाचयेत्पशुन् ।**

**देवार्थं ब्राह्मणार्थं वा पचमानो न लिप्यते ॥५२**

**पुरा भगवती माया जगदुज्जीवनोन्मुखी ।**

**ससर्जे सर्वदेवांश्च तथैवासुरमानुषान् ॥५३**

**तेषां संरक्षणार्थयि पशूनपि चतुर्दश ।**

**यज्ञाश्च तद्विधानानि कृत्वा चैनानुवाच ह ॥५४**

सिह-व्याघ्र और मृग आदि जो लोगों की हिंसा करने वाले हैं उनको राजा देवों के तथा ब्राह्मणों के लिए निरन्तर हनन कर सकता है। ५०।

आवृत्ति के समय में अपने लिए भी हनन करके मेघों (पवित्रों) का लक्षण कर लेवे । ५१। अपने अन्न का पाचन न करे और पशुओं का भी पाचन नहीं करना चाहिए । देवों तथा ब्राह्मणों के लिये यदि पकाया भी जावे तो शेष से लिप्त नहीं होता है । ५२। पहिले इस जगत् के उज्जीवन की ओर प्रवृत्ति वाली भगवती माया ने देवों—असुरों और मानवों का सूजन किया था । उनकी रक्षा के लिए चौदह पशुओं की भी रचना की थी उसी भाँति यज्ञों की तथा उनके विधानों की भी रचना करके इनको बताया था । ५३-५४।

### स्तेयपान वर्णन

इन्द्र उवाच—

भगवन्सर्वमाख्यातं हिंसाद्यस्य तु लक्षणम् ।

स्तेयस्य लक्षणं किं वा तन्मे विस्तरतो वद ॥१॥

बृहस्पतिरुवाच—

पापानामधिकं पापं हननं जीवजातिनाम् ।

एतस्मादधिकं पापं विश्वस्ते शरणं गते ॥२॥

विश्वस्य हृत्वा पापिष्ठं शूद्रं वाप्यन्त्यजातिजम् ।

ब्रह्महत्याधिकं पापं तस्मान्नास्यस्य निष्कृतिः ॥३॥

ब्रह्मज्ञस्य दरिद्रस्य कृच्छार्जितधनस्य च ।

बहुपुत्रकलत्रस्य तेन जीवितुमिच्छतः ।

तद्रद्वयस्तेयदोषस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४॥

विश्वस्तद्रव्यहरणं तस्याप्यधिकमुच्यते ।

विश्वस्ते वाप्यविश्वस्ते न दरिद्रधनं हरेत् ॥५॥

ततो देवद्विजातीनां हेमरत्नापहारकम् ।

यो हन्यादविचारेण सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥६॥

गुरुदेवद्विजसुहृत्पुत्रस्वात्मसुखेषु च ।

स्तेयादधः क्रमेण्व दशोत्तरगणं त्वघम् ॥७॥

इन्द्र देव ने कहा—हे भगवन् ! आपने हिंसादि का सम्पूर्ण लक्षण बता दिया है। अब स्तेय का क्या लक्षण है—यह भी आप मेरे सामने विस्तार के साथ वर्णन कीजिए । १। समस्त पापों में अधिक पाप जीव जातियों का हनन करना ही होता है। इससे भी अधिक पाप उसके हनन करने का होता है जो विश्वस्त होने वे तथा शरण में समागत हो गया हो । २। विष्वास देकर पापिष्ठ शूद्र वा अन्त्य जातिज हो जो उसका हनन करता है वह ब्रह्म हत्या से भी अधिक पाप होता है जिसका कोई भी प्रायशिच्छा ही नहीं होता है । ३। जो ब्रह्मज्ञ हो—दरिद्र हो और बड़ी ही कठिनाई से जिसने धन का अर्जन किया हो तथा बहुत पुत्रों और कलत्र वाला हो एवं उसी धन से जो जीवित रहने की इच्छा रखता हो उसके द्रव्य की चोरी इतना महान दोष होता है कि फिर उसका कोई भी प्रायशिच्छा नहीं होता है । ४। जो विश्वस्त हो उसके द्रव्य के हरण करने का पाप उससे भी अधिक होता है। विश्वस्त हो अथवा अविश्वस्त हो दरिद्र के धन का हरण कभी नहीं करना चाहिए । ५। देवों और द्विजतियों के सुवर्ण तथा रत्नों के अपहरण करने वाले को जो विना ही विचार किये मार डालता है उसको अश्वमेघ यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त होता है । ६। गुरु-देव-द्विज-पुत्र-और आत्म सुख के धन की चोरी करता है उसका अधःक्रम से ही दश गुना उत्तर अघ होता है । ७।

अंत्यजात्पादजादैश्यात्क्षत्रियाद्ब्राह्मणादपि ।

दशोत्तरगुणोऽपैलिष्यते धनहारकः ॥८॥

अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ।

रहस्यातिरहस्यं च सर्वपापप्रणाशनम् ॥९॥

पुरा कांचीपुरे जातो वज्राख्यो नाम चोरकः ।

तस्मिन्पुरवरे रम्ये सर्वेश्वर्यसमन्विताः ।

सर्वे नीरोगिणो दांताः सुखिनो दययांचिताः ॥१०॥

सर्वेश्वर्यसमृद्धेऽस्मिन्लगरे स तु तस्करः ।

स्तोकास्तोककमेणैव बहुद्रव्यमपाहरत ॥११॥

तदरण्येऽवटं कृत्वा स्थापयामास लोभतः ।

तद्गोपनं निशाध्यिं तस्मिन्नूरं गते सति ॥१२॥

किरातः कण्ठिचादागत्य तं दृष्ट्वा तु दशांशतः ।

जहाराविदितस्तेन काष्ठभारं वहन्ययो ॥१३॥

सोऽपि तच्छिलयाच्छाद्य मृदिभरापूर्य यत्नतः ।

पुनश्च तत्पुरं प्रायाद्वज्ञोऽपि धनतृष्णया ॥१४

अन्त्यज-शूद्र-वैश्य-क्षत्रिय और ब्राह्मण से भी दश गुणोत्तर पापों से धन के हरण करने वाला लिप्त हुआ करता है । ८। इस विषय में एक पुराना इतिहास उदाहृत करते हैं । यह रहस्यों का भी अधिक रहस्य है और पापों का विनाश कर देने वाला है । ९। प्राचीन काल में काञ्चीपुर में एक वज्र नाम वाला चोर उत्पन्न हुआ था । वह पुर ऐसा था कि वहाँ पर बड़ी रम्यता थी और वहाँ के निवासी जन सभी प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त—नीरोग—दान्त-मुखो—और दयावित थे । १०। यह नगर सब तरह के ऐश्वर्य से समन्वित था उससे वह तस्कर ने स्तोकास्तोक अर्थात् न्यूनाधिक क्रम से बहुत से धन का अपहरण किया था । ११। उसको वह जङ्गल में एक गड्ढा बनाकर लोभ से रख दिया करता था । उसका गोपन आधी रात में किया करता था । जब धन रख चला गया था तब किसी किरात ने वहाँ आकर उसको देखा था उसका दशम भाग उसमें से किरात ने ले लिया था । वह तस्कर इसको नहीं जान पाया था । वह किरात तो काष्ठ का भार लेकर चला गया था । १२-१३। वह तस्कर भी एक शिला से उस गड्ढे को ढक कर और मिट्टी से भरकर फिर उसी नगर में धन को तृष्णा से चला गया था । १४।

एवं बहुधनं हृत्वा निश्चक्षेप महीतले ।

किरातोऽपि गृहं प्राप्य बभाषे मुदितः प्रियाम् ॥१५

मया काष्ठं समाहतुं गच्छता पथि निर्जने ।

लब्धं धनमिदं भीरु समाधत्स्व धनार्थिनि ॥१६

तच्छ्रुत्वा तत्समादाय निधायाभ्यन्तरे ततः ।

चितयंती ततो वाक्यमिदं स्वपतिमब्रवीत् ॥१७

नित्यं संचरते विप्रो मामकानां गृहेषु यः ।

मां विलोक्यैवमचिराद् बहुभाग्यवती भवेत् ॥१८

चातुर्वर्णसु नारीषु स्थेयं चेद्राजवल्लभा ।

किं तु भिल्ले किराते च शैलूषे चांत्यजातिजे ।

लक्ष्मीर्ण तिरुति चिरं सातुरात्मीकरजन्म ॥१९

तथापि बहुभाग्यानां पुण्यानामपि पात्रिणे ।  
दृष्टपूर्वं तु तद्वाक्यं न कदाचिद्वृथा भवेत् ॥२०

अथ वात्मप्रयासेन कृच्छ्राद्यल्लभ्यते धनम् ।  
तदेव तिष्ठति चिरादन्यदगच्छति कालतः ॥२१

इस रीति से बहुत सा धन चोर कर वज्र ने भूमि में रख दिया उस किशात ने भी घर में आकर प्रसन्न होते हुए अपनो पत्नो से कहा था । १५। मैंने काष्ठ का समाहरण करने के लिए वन में गमन करते हुए मार्ग में यह धन प्राप्त किया है । हे भीर ! आपको तो धन की इच्छा है इसे अब अपने पास रखो । १६। यह अवण करके उसने उस धन को ले लिया था और घर में अन्दर रख दिया था । फिर मन में कुछ गिन्तन करती हुई उसने अपने पति से यह वाक्य कहा था । १७। जो यह विप्र हमारे घरों में नित्य ही सञ्चरण किया करता है । वह मुझ को देखकर कि यह थोड़े ही समय में बहुत भाग्य वाली हो गई है । चारों वर्णों की नारियों में यह यदि राज वल्लभा हौ—ऐसा ही कहेंगे । किन्तु भील-किरात-शैलूष और अन्त्य जातीय पुरुष में वात्मीकि के शापसे यह लक्ष्मी अधिक समय तक नहीं स्थित रहा करती है । १८-१९। तो भी बहुत भाग्य वाले पुण्यों के पात्र के लिए यह वाक्य पूर्व में देखा गया है और यह कभी भी वृथा नहीं होता । २०। अथवा जो धन अपने प्रयास से कष्ट के साथ प्राप्त किया जाता है वह ही धन स्थिर होता है और अधिक समय पर्यन्त ठहरता है । इसके अतिरिक्त जो अनायास मिल जाता है वह कुछ ही समय में चला जाया करता है । २१।

स्वयमागतवित्तं तु धर्मार्थं विनियोजयेत् ।

कुरुष्वैतेन तस्मात्वं वापीकृपादिकाङ्गुभान् ॥२२

इति तद्वचनं श्रुत्वा भाविभाग्यप्रबोधितम् ।

बहूदकसमं देशं तत्रकव्यलोथयत् ॥२३

निर्ममेऽथ महेद्रस्य दिग्भागे विमलोदकम् ।

सुबहुद्रव्यसंसाध्यं तटाकं चाक्षयोदकम् ॥२४

दत्तेषु कर्मकारिभ्यो निखिलेषु धनेषु च ।

असंपूर्णं तु तत्कर्म हृष्ट्वा चिताकुन्तोऽभवत् ॥२५

तं चौरं वज्रनामानमज्ञातोऽनुचराम्यहम् ।

तेनैव बहुधा क्षिप्तं धनं भूरि महीतले ॥२६

स्तोकं स्तोकं हरिष्यामि तत्र तत्र धनं बहु ।

इति निश्चित्य मनसा तेनाज्ञातस्तमन्वगात् ॥२७

तथैवाहृत्य तद्द्रव्यं तेन सेतुमपूरयत् ।

मध्ये जलावृत्स्तेन प्रसादश्चापि शार्ङ्गिणः ॥२८

यह धन तो बिना ही श्रम के आपके पास आगया है । इसका तो धर्मर्थ आपको विनियोग करना चाहिए । अतः आप इस धन से शुभ कर्म वावड़ी—कूप और तालाब आदि के निर्माण करने में व्यय कर दीजिए । २१ अपनी पत्नी के इस वज्रन का श्रवण करके जो कि आगे होने वाले भाग्य को सुबोधित करने वाला था उस किरात ने जहाँ-तहाँ पर देखा था कि सभी स्थल अधिक जल वाले थे । २३। फिर ऐन्द्री दिशा में उसने एक विमल उदक वाला तलाब जो बहुत अधिक धन से बनाये जाने वाला था बनवाया था जिसमें जल कभी भी क्षीण नहीं होता था । २४। सम्पूर्ण धन काम करने वालों को दे देने पर भी वह काम अपूर्ण देखकर वह चिन्ता से बेचैन हो गया था । २५। उसने सोचा कि उस वज्र नामक चौर के पीछे उसके बिना जाने हुए मैं गमन करूँ । उसने ही प्रायः भूमि में अधिक धन डाला ही होगा । २६। वहाँ-वहाँ से ही योड़ा-योड़ा करके बहुत-सा धन हरण करूँगा । ऐसा ही मन में निश्चय करके वह उसके बिना जाने हुए उसी के पीछे गया था । २७। उसी भाँति से उसने उस धन का आहरण किया था और उस सेतु को पूर्ण कर दिया था । उस तालाब के मध्य में जिसके चारों ओर जल था, एक भगवान् विष्णु का प्रासाद भी बनवाया था । २८।

### अमृत मन्थन वर्णन

इन्द्र उवाच—

भगवन्सर्वधर्मज्ञ त्रिकालज्ञानवित्तम् ।

दुष्कृतं तत्प्रतीकारो भवता सम्यगीरितः ॥१

केन कर्मविपाकेन ममापदियमागता ।

प्रायश्चित्तं च कि तस्य गदस्व वदतां वर ॥२

**बृहस्पतिरुचा-**

काश्यपस्य ततों जज्ञे दित्यां दनुरिति स्मृतः ।

कन्या रूपवती नाम धात्रे तां प्रददी पिता ॥३

तस्याः पुत्रस्ततो जातो विश्वरूपो महाद्युतिः ।

नारायणपरो नित्यं वेदवेदांगपारगः ॥४

ततो देत्येश्वरो वन्ने भृगुपुत्रं पुरोहितम् ।

भवानधिकृतो राज्ये देवानामिव वासवः ॥५

ततः पूर्वे च काले तु सुधर्मयां त्वयि स्थिते ।

त्वया कश्चिच्चत्कृतः प्रश्नः ऋषीणां सन्निधी तदा ॥६

संसारस्तीर्थयात्रा वा कोऽधिकोऽस्ति तयोर्गुणः ।

वदं तु तद्विनिश्चत्य भवन्तो मदनुग्रहात् ॥७

इन्द्र देव ने कहा—हे भगवन् ! आप तो सभी धर्मों के ज्ञान रखने वाले हैं और भूत वत्तमान और भविष्य के ज्ञान वाले हैं । आपने दुष्कृत और उसका प्रतीकार भली भाँति से वर्णित कर दिया है । १। अब आप मुझे यही बताने की कृपा करें मुझे यह आपत्ति किस कर्म के विपाक से प्राप्त हुई है और इसका प्रायश्चित्त क्या हो सकता है ? आप तो बोलने वालों में भी परम श्रेष्ठ हैं । २। बृहस्पतिजी ने कहा—काश्यप मुनि की पत्नी दिति में दनु नाम वाली कन्या ने जन्म ग्रहण किया था । वह कन्या रूपवती थी । पिता ने उसको धाता को दी थी । ३। उसका पुत्र फिर महती द्युति वाला विश्वरूप उत्पन्न हुआ था वह भगवान नारायण में ही परायण था तथा वेदवेदाङ्गों का पारगामी विद्वान था । ४। इसके उपरान्त उस देत्येश्वर ने भृगु के पुत्र पुरोहितजी से कहा था कि आप देवों में वासव की ही भाँति राज्य में अधिकृत हैं । ५। फिर पूर्वकाल में देवों को सभा में आप जब स्थित थे तब आपने ऋषियों की सन्निधि में कोई प्रश्न किया था । ६। संसार अथवा तीर्थयात्रा इन दोनों में कौन अधिक गुण वाला है । अब आप मेरे पर अनुग्रह करके उसका निश्चय करके मुझे बतलाइए । ७।

तत्प्रश्नस्योत्तरं वक्तुं ते सर्वं उपचकिरे ।

तत्पूर्वमेव कथितं मया विधिबलेन वै ॥८

तीर्थयात्रा समधिका संसारादिति च द्रुतम् ।

तच्छ्रुत्वा ते प्रकुपिताः शेषु मासूष्योऽखिलाः ॥६

कर्मभूमि व्रजेः शीघ्रं दारिद्र्येण मितैः सुतैः ।

एवं प्रकुपितैः शप्तः खिन्नः कांचीं समाविशम् ॥१०

पुरीं पुरोधसा हीनां वीक्ष्य चिताकुलात्मना ।

भवता सह देवैस्तु पौरोहित्यार्थमादरात् ॥११

प्रायितो विश्वरूपस्तु बभूव तपतां वरः ।

स्वस्त्रीयो दानवानां तु देवानां च पुरोहितः ॥१२

नात्यर्थमकरोद्वैरं देत्येष्वपि महातपाः ।

बभूवतु स्तुल्यवली तदा देत्येन्द्रवासवी ॥१३

ततस्त्वं कुपितो राजन्स्वस्रीयं दानवेशितुः ।

हंतु मिच्छन्नगाश्चाशु तपसः साधनं वनम् ॥१४

उस प्रश्न का उत्तर बताने के लिए उनने सबने उपक्रम किया था । उसके पूर्व ही मैंने विद्याता के बल से पूर्व में ही शीघ्र कहा था कि तीर्थयात्रा संसार से समधिक है । यह सुनकर वे सब ऋषिगण बहुत प्रकुपित हो गये थे और उन्होंने मुझको शाप दे दिया था । ८-६। कर्म भूमि में मित सुतों के सहित दरिद्रता से युक्त होकर गमन कर जाओ । इस तरह कुपित ऋषियों के द्वारा शाप दिया हुआ मैं काञ्जी में प्रवेश कर गया था । १०। चिन्ता से विकल पुरोहितजी ने हीन पुरी का अवलोकन करके आपके द्वारा देवों के सहित बड़े ही आदर से पौरोहित्य कर्म के लिए उनसे प्रार्थना की गयी थी । ११। तापसों में श्रेष्ठ विश्वरूप से जब प्रार्थना की गयी थी तो वह दानवों का तो बहिन का पुत्र था और देवों का पुरोहित था । १२। उस महान तपस्वी ने देवत्यों में भी अत्यधिक वैर नहीं किया था । उस समय में देत्येन्द्र और इन्द्र दोनों तुल्य बल वाले हुए थे । १३। इसके पश्चात् हे राजन् ! दानवेश्वर के स्वस्त्रीय पर आप कुपित हो गये थे और उसका हनन करने की इच्छा रखते हुए शीघ्र ही तप के साधन वन में चला गया था । १४।

तमासनस्थं मुनिभिस्त्रशृंगमिव पर्वतम् ।

तथापि युवराज्ञिमाः तद्वातु तु लोकान्तिष्ठिताः ॥१५॥

सर्वभूतहितं तु मत्वा चेशानुकूलितः ।  
 शिरांसि योगपद्मेन छिन्नान्यासंस्तवयैव तु ॥१६  
 तेन पापेन संयुक्तः पीडितश्च मुहुमुहुः ।  
 ततो मेरुगुहां नीत्वा वहूनब्दान्हि संस्थितः ॥१७  
 ततस्तस्य वचः श्रुत्वा जात्वा तु मुनिवाक्यतः ।  
 पुत्रशोकेन संतप्तस्त्वां शशाप रुषान्वितः ॥१८  
 निः श्रीको भवतु क्षिप्रं मम शापेन वासवः ।  
 अनाथकास्ततो देवा विषण्णा दैत्यपीडिताः ॥१९  
 त्वया मया च रहिताः सर्वे देवाः पलायिताः ।  
 गत्वा तु ब्रह्मसदनं नत्वा तद्वृत्तमूचिरे ॥२०  
 ततस्तु चितयामास तदघस्य प्रतिक्रियाम् ।  
 तस्य प्रतिक्रियां वेत्तुं न शशाकात्मभूस्तदा ॥२१

मुनियों के साथ आसन पर स्थित उसको तीन शिखरों वाले पर्वत के समान बेदब्रयी से दिशाओं का भाग मुखरित हो रहा था और वह ब्रह्मानन्द में एकनिष्ठ था तथा सब भूतों का हितकर था उसको ऐसा मान कर ईशानुकूलित था । आपने ही एक साथ उसके शिरों को काट दिया था । १५-१६। उस पाप से संयुत बार-बार पीड़ित हैं । फिर मेरु की गुहा में जाकर बहुत वर्षों तक रहा था । १७। इसके अनन्तर उसके वचन का श्रवण करके और मुनि के वाक्य से जान प्राप्त करके पुत्र शोक से सन्तप्त होकर क्रोध से समन्वित उसने आपको शाप दे दिया था । १८। इन्द्र मेरे शाप से शीघ्र ही श्री से विहीन हो जावे । फिर सभी देवगण विना नाथ वाले हो गये थे और विषाद से युक्त हो गये थे तथा दैत्यों के द्वारा उत्पीड़ित हो गये थे । १९। तुम्हारे द्वारा और मेरे द्वारा रहित सभी देव भाग गये थे । वे सब देवगण ब्रह्माजी के निवास स्थान में जाकर प्रणाम करके सम्पूर्ण वृत्त उनसे कह दिया था । २०। इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने उसके पाप की प्रतिक्रिया का चिन्तन किया था किन्तु उस समय में ब्रह्माजी उसकी कोई भी प्रतिक्रिया न जान सके थे । २१।

ततो देवैः परिवृत्तो नारायणमुपागमन् ॥२२

नत्वा स्तुत्वा चतुर्वक्त्रस्तद्वृत्तांतं व्यजिज्ञपत् ।  
 विचित्य सोऽपि बहुधा कृपया लोकनायकः ॥२३  
 तदवं तु त्रिधा भित्वा त्रिषु स्थानेष्वथार्पयत् ।  
 स्त्रीषु भूम्यां च वृक्षेषु तेषामपि वरं ददौ ॥२४  
 तदा भर्तुं समायोगं पुत्रावाप्तिमृतुष्वपि ।  
 छेदे पुनर्भवत्वं तु सर्वेषामपि शाखिनाम् ॥२५  
 खातपूर्तिं धरण्याश्च प्रददौ मधुसूदनः ।  
 तेष्वधं प्रबभूवाशु रजोनिर्यासिमूषरम् ॥२६  
 तिर्गतो गह्वरात्तस्मात्वमिद्रो देवनायकः ।  
 राज्यश्रियं च संप्राप्तः प्रसादात्परमेष्ठिनः ॥२७  
 तेनैव सांत्वितो धाता जगाद च जनार्दनम् ।  
 मम शापो वृथा न स्यादस्तु कालांतरे मुने ॥२८

इसके अनन्तर जब कोई भी प्रतिक्रिया समझ में नहीं आयी तो ब्रह्माजी देवों से घिरे हुए ही भगवान् नारायण के समोप में पहुँचे थे । २२। सर्व प्रथम उन्होंने नारायण को प्रणाम किया था फिर स्तुति की थी और इसके उपरान्त यह वृत्तान्त उनकी सेवा में कहा था । उन लोकों के नायक प्रभु ने कृपाकर बहुत विचिन्तिन करके विचार किया था । २३। उसके अघ को तीन भागों में विभक्त करने तीन स्थानों में अपित कर दिया था । स्त्रियों में—वृक्षा में और भूमि में उसको रख दिया था और उनको वरदान भी दिया था । उस अघ के देने के बदले में ही तीनों को तीन वरदान दिये थे । २४। उस समय में जब अस्तुकाल हो तो स्वामी के साथ संयोग से पुत्र की प्राप्ति हो जायगी । वृक्षों का छेदन में पुनः जन्म धारण कर लेना हो जायगा । २५। भूमि में गत्तं कर दिया जाये तो वह अपने आप ही कुछ समय में भर जायगा—ये तीनों को तीन वरदान मधुसूदन प्रभु ने दिये थे । उसका अघ शीघ्र ही तीनों में प्रभूत हो गया था—स्त्रियों ये रजोदर्शन-वृक्षों में गोद और भूमि में ऊपर में उसी अघ के कारण हुआ था । २६। तुम इन्द्र उस गहन अघ से निकल गये थे और देव नायक के फिर परमेष्ठी के प्रसाद से राज्य की श्री को प्राप्त करने वाले हो गये थे । २७। उसके द्वारा धाता को इस प्रकार सान्त्वना दी थी और जनार्दन प्रभु से कहा था । हे मुने ! मेरा शाप वृथा नहीं होगा और अन्य काल में होगा । २८।

भगवांस्तद्वचः श्रुत्वा मुनेरमिततेजसः ।

प्रहृष्टो भाविकार्यजस्तूष्णीमेव तदा ययौ ॥२६॥

एतावंतमिमं कालं त्रिलोकीं पालयन्भवान् ।

ऐश्वर्यमदमत्त्वात्कैलासाद्रिमपीडयत् ॥३०॥

सर्वज्ञेन शिवेनाथं षितो भगवान्मुनिः ।

दुर्वासास्त्वन्मदध्रुणं कर्तुं कामा शशाप ह ॥३१॥

एकमेव फलं जातमुभयोः शापयोरपि ।

अधुना पश्यन्ति श्रीकं त्रैलोक्यं समजायत ॥३२॥

न यज्ञाः संप्रवत्तते न दानानि च वासव ।

न यमा नापि नियमा न तपांसि च कुत्रचित् ॥३३॥

विप्राः सर्वेऽपि निः श्रीका लोभोपहृतचेतसः ।

निःस्त्वा धैर्यहीनाश्च नास्तिकाः प्रायशोऽभवन् ॥३४॥

निरीषधिरसा भूमिनिवीर्या जायतेतराम् ।

भास्करो धूसराकारश्चन्द्रमाः कांतिवर्जितः ॥३५॥

उन अपरिमित तेज वाले मुनि के इस वचन का श्रवण करके भगवान उस समय में चुप चाप ही वहाँ से चले गये थे क्योंकि ये तो आगे होने वाले कार्य का ज्ञान रखने वाले थे ॥२६॥ आप इतने समय तक त्रिलोकी का पालन करते हुए ऐश्वर्य के मद से मत्तता होने के कारण से आपने कैलाश पवंत को पीड़ित किया था ॥३०॥ इसके अनन्तर सर्वज्ञ भगवान शिव ने भगवान मुनि को भेजा था । दुर्वासा जी ने आपके मद को ध्रुण करने की ही इच्छा से शाप दिया था ॥३१॥ इन दोनों शापों का एक फल हुआ है । अब देखिए यह त्रैलोक्य श्री से रहित हो गया ॥३२॥ हे वासव ! न तो अब यज्ञ संप्रवृत्त हो हो रहे हैं और न दान ही दिये जा रहे हैं और इस समय में तो कहीं पर भी यम-नियम और तपश्चर्या कुछ भी नहीं हैं ॥३३॥ सभी विप्र श्री से रहित हैं और इनके हृदय में लोभ ऐसा बैठ गया है कि इनका चित्त उपहृत सा हो गया है । इनमें स्त्व नाम मात्र को भी नहीं है—ये धैर्य से हीन हो गये हैं तथा बहुधा ये सब नास्तिक हो गये हैं । जो ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते हैं वे नास्तिक होते हैं ॥३४॥ यह

भूमि औषधियों के रस से विहीन है और अधिकतया वीर्य होना हो गयी है। यह सूर्य भी धूसर आकार वाला है तथा चन्द्रमा में कान्ति का अमाव दिखाई देना है। ३५।

**निस्तेजस्को हविभोक्ता मरुदधूलिकृताकृतिः ।**

न प्रसन्ना दिशां भागा नभो नैव च निर्मलम् ॥३६

दुर्बला देवताः सर्वा विभात्यन्यादृशा इव ।

विनष्टप्रायमेवास्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३७

हयग्रीव उबाच—

इत्थं कथयतोरेव वृहस्पतिमहेद्रयोः ।

मलकाद्या महादैत्याः स्वर्गलोकं बबाधिरे ॥३८

नंदनोद्यानमखिलं चिच्छिदुर्बलगविताः ।

उद्यानपालकान्सर्वनायुधैः समताडयन् ॥३९

प्राकारमवभिद्यैव प्रविष्य नगरांतरम् ।

मंदिरस्थान्सुरान्सर्वनित्यंतं पर्यपीडयन् ॥४०

आजहु रस्सरो रत्नान्यशेषाणि विशेषतः ।

ततो देवाः समस्ताश्च चक्रुभृंशमवाधिताः ॥४१

तादृशं घोषमाकर्ण्य वासवः प्रोज्जितासनः ।

सवैरनुगतो देवैः पलायनपरोऽभवत् ॥४२

हवि का भोक्ता अग्नि तेजसे शून्य है तथा मरुत् धूलि कृत आकृति वाला है। समस्त दिशायें प्रसन्न नहीं हैं और नभो मण्डल में निर्मलता का अभाव है। ३६। सब देवगण भी परम दुर्बल कुछ और ही जैसे विभात हो रहे हैं। यह पूर्ण चराचर त्रैलोक्य विनष्ट युगम सा ही हो गया है। ३७। हयग्रीवजी ने कहा—इस रीति से वृहस्पति और महेन्द्र आलाप कर ही रहे थे कि महान दैत्यों ने स्वर्ग को बाधित कर दिया था। ३८। बल के गर्व वाले दैत्यों ने नन्दन वन को पूर्णतया छेदन कर दिया था। जो उद्यान के पालक थे उन सबको दैत्यों ने आयुधों से प्रताड़ित किया था। ३९। जो स्वर्ग के चारों ओर प्राकार भित्ति थी उसका भेदन करके नगर के भीतर प्रवेश कर गये थे। अतः जो सहित्यों से सम्बन्ध तेजाम थे वायसे वर्तमत ही प्रीति

किया था । ४०। विशेष रूप से जो रत्नों के समान अप्सराएँ थीं उनका हरण कर लिया था । इसके उपरान्त सभी देवगण बहुत ही बाधित कर दिए थे । ४१। उस प्रकार का जो बड़ा भारी शोर हुआ था उसको सुनकर इन्द्र ने अपना आसन त्याग दिया था और सब देवों के साथ में वहाँ से भाग जाने में तत्पर हो गया था । ४२।

**ब्रह्म धाम समभ्येत्य विषण्णवदनो वृषा ।**

**यथावत्कथयामास निखिलं दैत्यचेष्टितम् ॥४३**

**विधातापि तदाकर्ण्य सर्वदेवसमन्वितम् ।**

**हतश्रीकं हरिहर्यमालोकयेदमुवाच ह ॥४४**

**इन्द्रत्वमखिलैदेवैमुंकुन्दं शरणं ब्रज ।**

**दैत्यारातिर्जगत्कर्ता स ते श्रेयो विधास्यति ॥४५**

**इत्युक्त् वा तेन सहितः स्वयं ब्रह्मा पितामहः ।**

**समस्तदेवसहितः क्षीरोदधिमुपाययो ॥४६**

**अथ ब्रह्मादयो देवा भगवंतं जनार्दनम् ।**

**तुष्टुवुर्वाग्विरष्टाभिः सर्वलोकमहेश्वरम् ॥४७**

**अथ प्रसन्नो भगवान्वासुदेवः सनातनः ।**

**जगाद सकलान्देवाऽजगद्रक्षणलंपटः ॥४८**

**श्रीभगवानुवाच-**

**भवतां सुविधास्यामि तेजसंवोपवृहणम् ।**

**यदुच्यते मयेदानीं युज्माभिस्तद्विधीयताम् ॥४९**

ब्रह्माजी के धाम में जाकर विषाद से युक्त मुख वाले इन्द्र ने जो कुछ भी दैत्यों ने किया था वह सभी ज्यों का त्यों कह दिया था । ४३। विधाता भी उसको सुनकर सब देवों के सहित और हतश्री वाले हरिहर को देखकर यह बोले थे । ४४। हे इन्द्र ! अब आप सब देवों के साथ भगवान मुकुन्द की शरण में चले जाओ । वही दैत्यों के विनाशक और इस जगत के कर्ता हैं और वही तुम्हारा कल्याण करेंगे । ४५। इतना कहकर पितामह ब्रह्माजी उसके तथा समस्त देवों के सहित क्षीर सागर में गये थे । ४६। इसके अनन्तर ब्रह्मा आदि देवों ने भगवान जनार्दन की जो सब लोकों के महेश्वर हैं वहूत

ही शेष वाणियों के द्वारा स्तुति की थी । ४७। इसके अनन्तर सनातन वासुदेव भगवान् प्रसन्न हुए थे और इस जगत् की रक्षा करने में विशेष संसक्त प्रभू ने सम्पूर्ण देवों से कहा था । ४८। श्री भगवान् ने कहा—आप लोगों का उपबृंहण में तेज के ही द्वारा कर दूँगा । अब मेरे द्वारा जो भी कहा जाता है आप लोगों को वह करना चाहिए । ४९।

**ओषधिप्रवरा: सर्वाः क्षिपत क्षीरसागरे ।**

**असुरैरपि संधाय सममेव च तेरिह ॥५०**

**मन्थानं मंदरं कृत्वा कृत्वा योक्त्रं च वासुकिम् ।**

**मयि स्थिते सहाये तु मथ्यताममृतं सुराः ॥५१**

**समस्तदानवाश्रापि वक्तव्याः सात्वपूर्वकम् ।**

**सामान्यमेव युज्माकमस्माकं च फलं त्विति ॥५२**

**मथ्यमाने तु दुग्धाब्धौ या समुत्पद्यते सुधा ।**

**तत्पानाद् बलिनो यूयममत्यश्च भविष्यथ ॥५३**

**यथा दैत्याङ्गच पीयूषं नैतत्प्राप्स्यन्ति किञ्चन ।**

**केवलं क्लेशवंतश्च करिष्यामि तथा ह्यहम् ॥५४**

**इति श्रीवासुदेवेन कथिता निखिलाः सुराः ।**

**संधानं त्वतुलैदेत्यैः कृतवंतस्तदा सुराः ।**

**नानाविधीषधिगणं समानीय सुरासुराः ॥५५**

**क्षीराविधपयसि क्षिप्त्वा चंद्रमोऽधिकनिमंलम् ।**

**मन्थानं मंदरं कृत्वा कृत्वा योक्त्रं तु वासुकिम् ।**

**प्रारेभिरे प्रयत्नेन मंथितुं यादसां पतिम् ॥५६**

इस क्षीर सागर में आप लोग असुरों के भी साथ में सन्धि अर्थात् मेल-जोल करके सब उनके भी साथ में समस्त परम शेष औषधियाँ डाल दो । ५०। और मन्दराचल को मन्थान बनाकर अर्थात् मन्थन करने का साधन बनाकर तथा वासुकि नामक सर्पराज को योक्त अर्थात् मथने की डोरी करके सब देवगण मेरे सहायक होने पर अमृत का मथन करो अर्थात् अमृत निकालो । ५१। सान्त्वना के साथ आपको समस्त दानवों से भी इस कार्य को

सम्पन्न कराने के लिए कहना चाहिए। यह उन्हें बताओ कि इसके करने से जो भी कुछ फल होगा वह तो हम और आपको सभी को सामान्य ही होगा अर्थात् उसको हम और आप सभी प्राप्त करेंगे ॥५२। इस क्षीरसागर के मन्थन किये जाने पर जो सुधा उत्पन्न होगी उस अमृत के पान करने से आप लोग बलशाली और न मरण वाले हो जाओगे ॥५३। जिस प्रकार से ये दैत्यगण उस अमृत को किञ्चित्तन मात्र भी न प्राप्त कर पावेंगे और केवल मन्थन करने में बलेश वाले ही होंगे उस प्रकार का उपाय तो मैं कर दूँगा ॥५४। यह भगवान् वासुदेव के द्वारा समस्त सुरगणों में कहा गया था तब सब सुरगणों ने उन अतुल दैत्यों के साथ सन्धि की थी। फिर अनेक प्रकार की औषधियाँ सुरो और असुरों ने एकत्रित करके वहाँ पर प्राप्त की थी ॥५५। उस क्षीर सागर के जल में डालकर चन्द्रमा से भी अधिक निर्मल मन्दराचल को मन्थन करने का साधन और वासुकि सर्प को उसको ढोरी बनाया था। फिर सभी ने मिल-जुलकर क्षीर सागर के मन्थन करने का कार्य बड़े ही प्रबल प्रयत्न से प्रारम्भ कर दिया था ॥५६।

वासुके: पुच्छभागे तु सहिताः सर्वदेवताः ।

शिरोभागे तु दैतेया नियुक्तास्तत्र शीरिणा ॥५७

बलवंतोऽपि ते दैत्यास्तन्मुखोच्छ्वासपावकैः ।

निर्दग्धवपुषः सर्वे निस्तेजस्कास्तदाभवन् ॥५८

पुच्छदेशे तु कर्षतो महुराप्यायिताः सुराः ।

अनुकूलेन वातेन विष्णुना द्रेरितेन तु ॥५९

आदिकूर्मकृतिः श्रीमान्मध्ये क्षीरपयोनिधेः ।

भ्रमतो मंदराद्रेस्तु तस्याधिष्ठानतामगान् ॥६०

मध्ये च सर्वदेवानां रूपेणान्येन माधवः ।

चक्रषं वासुकि वेगाद्यत्यमध्ये परेण च ॥६१

ब्रह्मरूपेण तं शैलं विधायाक्रांतवारिष्मि ।

अपरेण च देवर्षिर्महता तेजसा मुहुः ॥६२

उपबृहितवान्देवान्येन ते वलशालिनः ।

तेजसा पुनरन्येन बलात्कारसहेत् सः ॥६३

वासुकि सर्प के पूँछ के भाग में तो हित के साथ समस्त देवगण और उसके शिर के हिस्से में सब दैत्यगण भगवान् ने ही नियुक्त किये थे ।५७। यद्यपि दैत्यगण बहुत बलवान् थे तो भी उस सर्प के मुख के उच्चवासों की अग्नि से उनके समस्त शरीर निर्दग्ध हो गये थे और उस समय में वे बिल्कुल ही तेज से क्षीण हो गये थे ।५८। भगवान् विष्णु के द्वारा प्रेरित अनुकूल वायु से पूँछ के भाग का कर्षण करते हुए देवगण बार-बार आप्यायित (सन्तुप्त) हो रहे थे ।५९। भगवान् आदि कूर्म के आकार वाले बनकर खोरसागर के मध्य में घ्रमण करते हुए मन्दर पर्वत के अधिष्ठान बन गये थे जिस पर वह पर्वत टिक रहा था । मध्य में सब देवों के दूसरे स्वरूप से माधव दिखाई दे रहे थे । दूसरे रूप से दैत्यों के मध्य में उन्होंने भी बड़े वेग से वासुकि का कर्षण किया था । ब्रह्म के रूप से जिसने सागर को आक्रान्त कर दिया था उस शंख को धारण किया था और एक दूसरे रूप से देवर्षि ने महान् तेज के द्वारा देवों को सबल बना दिया था ।६०-६२। भगवान् ने देवों का बलवर्धन किया था जिसके बली बने रहे और फिर बलात्कारके सहन करने वाले तेज से सभी को कार्य सम्पन्न करने की शक्ति प्रदान की थी ।६३।

उपबृहितवान्नागं सर्वशक्तिजनार्दनः ।

मध्यमाने ततस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः ॥६४

आविर्बभूव पुरतः सुरभिः सुरपूजिता ।

मुदं जग्मुस्तदा देवा दैतेयाश्च तपोधन ॥६५

मध्यमाने पृनस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः ।

किमेतदिति सिद्धानां दिवि चितयता तदा ॥६६

उत्थिता वारुणी देवी मदाल्लोलविलोचना ।

असुराणां पुरस्तात्सा स्मयमाना व्यतिष्ठुत ॥६७

जगृहुन्नेव तां दैत्या असुराश्चाभवंस्ततः ।

सुरा न विद्यते येषां तेनैवासुरशब्दिताः ॥६८

अथ सा सर्वदेवानामग्रतः समतिष्ठुत ।

लगृहुतां पुरा केषां तदूलिता वरते एषिता ॥६९

सुराग्रहणतोऽप्येते सुरशब्देन कीर्तिताः ॥६६

मन्थमाने ततो भूयः पारिजातो महाद्रुमः ।

आविरासीत्सुं गथेन परितो वासयञ्जगत् ॥७०

सर्वशक्ति शाली जनार्दन प्रभु ने उस नाग वासुकि की भी शक्ति का वधन किया था । फिर देवों और दानवों के द्वारा क्षीरसागर के मन्थन किये जाने पर ।६४। फिर आगे अर्थात् सबसे पूर्व सुरों की पूजित सुरभि प्राविभूत हुई थी । हे तपोधन ! उसका अवलोकन करके उस समय में देवगण और दैत्यगण सभी प्रसन्नता से भर गये थे ।६५। फिर उस क्षीर सागर के मन्थन करने पर जो कि देवों और दानवों के द्वारा किया गया था, उस समय में सिद्धगण यही चिन्तन कर रहे थे कि यह क्या बस्तु है ।६६। तब उस क्षीर सागर से वारुणी देवी उत्थित हुई थी जिसके मद के कारण परम चञ्चल नेत्र थे । वह असुरों के आगे मुस्कुराती हुई संस्थित हो गयी थी ।६७। दैत्यों ने उसका ग्रहण नहीं किया था । तभी से वे असुर हो गये थे क्योंकि सुरा ग्रहण करने वाले नहीं हुए थे जिनके पास सुरा नहीं है उसी से वे असुर शब्द से कहे गये थे ।६८। इसके पश्चात् वह समस्त देवों के सामने स्थित हो गयी थी । परमेष्ठी के द्वारा संकेतित होकर उन देवों ने बड़े ही आनन्द के साथ उसको ग्रहण कर लिया था । सुरा के ही ग्रहण करने से ये लोग सुर शब्द से कीर्तित हुए थे ।६९। फिर मन्थन किये जाने पर महान् द्रुम परिजात प्रकट हुआ था जो अपनी सुगन्ध से सम्पूर्ण जगत् को मुवासित कर रहा था ।७०।

अत्यर्थसुन्दराकारा धीराश्वाप्सरसा गणाः ।

आविभूताश्च देवष्ट सर्वलोकमनोहराः ॥७१

ततः शीतांशुरुदभूतं जग्राह महेश्वरः ।

विषजातं तदुत्पन्नं जगृहृन्नर्गिजातयः ॥७२

कौस्तुभाख्यं ततो रत्नमाददे तज्जनार्दनः ।

ततः स्वपत्रगंधेन मदयंती महोषधीः ।

विजया नाम संजजे भैरवस्तामुपाददे ॥७३

ततो दिव्यांवरधरो देवो धन्वंतरिः स्वयम् ।

उपस्थितः करे विभ्रदमृताद्यं कमंडलुम् ॥७४

ततः प्रहृष्टमनसो देवा दैत्याश्च सर्वंतः ।

मुनयश्चाभवं स्तुष्टास्तदानीं तपसां निधे ॥७५

ततो विकसितांभोजवासिनीवरदायिनी ।

उत्थिता पद्महस्ता श्रीस्तस्मात्क्षीरमहार्णवात् ॥७६

अथ तां मुनयः सर्वे श्रीसूक्तेन श्रियं पराम् ।

तुष्टुवुस्तुष्टुहृदया गंधवर्षिं जगुः परम् ॥७७

विश्वाचीप्रमुखाः सर्वे ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।

गङ्गाद्याः पुण्यनद्यश्च स्नानार्थं मुपतस्थिरे ॥७८

फिर हे देवर्षे ! अत्यधिक सुन्दर आकृति वाली सब लोकों में मन को हरण करने वाली धीर अप्सराओं के गण आविभूत हुए थे ।७१। इसके पश्चात् शीतांशु (चन्द्रमा) प्रकट हुआ था जिसको महेश्वर भगवान् ने मस्तक पर धारण करने के लिये ग्रहण कर लिया था । फिर महा कालकूट विष उत्पन्न हुआ था जिसका ग्रहण नाग जातियों ने किया था ।७२। इसके अनन्तर कौस्तुभ मणि जिसका नाम है वह रत्न निकला था उसको भगवान् जनादेन ने ले लिया था । इसके पश्चात् अपने पत्रों की गन्ध से मद उत्पन्न करती हुई एक महीषधि आविभूत हुई थी उसका विजया नाम रक्खा गया था और भैरव ने उसका उपादान किया ।७३। इसके उपरान्त परम दिव्य व शस्त्रों के धारण करने वाले देव आविभूत हुए थे जो स्वयं ही धन्वन्तरि वे अपने कर में एक अमृत से परिपूर्ण कमंडल लिए हुए ही उपस्थित हुए थे ।७४। हे तपों के निधे ! फिर देवगण-दैत्यवर्ग और मुनिगण सबके सब प्रसन्न मन वाले तथा परम सन्तुष्ट हुए थे ।७५। इसके बाद उत्फुल्ल कमलों के अन्दर निवास करने वाली—वरदान देने वाली—हाथों में पद्म धारण किये हुए श्री देवी उस क्षीर सागर से उठकर बाहिर आयी थी ।७६। फिर तो सभी मुनिगणों ने उस परा देवी श्री का श्रीसूक्त के द्वारा स्तवन किया था । और परम सन्तुष्ट हृदय वाले गन्धवर्णों ने बहुत सुन्दर गान किया था ।७७। जिनमें विश्वाची प्रमुख थे उन सभी ने गान किया था । और अप्सराओं के समूह ने श्री देवी के आगे नृत्य किया था । गंगा आदि जो परम पुण्यमयी सरिताएँ थीं वे सभी स्नान के लिए समुपस्थित हो गयी थीं ।७८।

अष्टौ दिव्दंतिनश्चैव मेध्यपात्रस्थितं जलम् ।

आदाय स्नापयांचक्रुस्तां श्रियं पद्मवासिनीम् ॥७९

तुलसीं च समुत्पन्नां पराध्यमैक्यजां हरेः ।

पदममालां ददौ तस्यै मूर्तिमान्कीरसागरः ॥८०

भूषणानि च दिव्यानि विश्वकर्मा समर्पयत् ।

दिव्यमाल्यांबरधरा दिव्यभूषणभूषिता ।

यथौ वक्षःस्थलं विष्णोः सर्वेषां पश्यतां रमा ॥८१

तुलसीं तु धूता तेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।

पश्यति स्म च सा देवी विष्णुवक्षःस्थलालया ।

देवान्दयाद्र्दया हृष्टया सर्वलोकमहेश्वरी ॥८२

आठ जो दिग्गज हैं अथवा आठों दिशाओं को बाँध कर रोकने वाले आठ दन्ती हैं । वे सब पवित्र पात्रों में जल भरकर उस पदमों में निवास करने वाली श्री स्नपन करा रहे थे ॥८३। मूर्तिमान् क्षीर सागर ने हरि के साथ श्रेय को प्राप्त हुई समुत्पन्न तुलसी को तथा पदा की माला उस देवी के लिये अपित की थी ॥८०। विश्वकर्मा ने परमाद्भूत एवं दिव्य भूषण उसके लिए समर्पित किये थे । परम उत्तम माला और वस्त्रों के धारण करने वाली एवं दिव्य भूषणों से विभूषिता वह श्री देवी सबके देखते-देखते भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में चली गयी थी ॥८१। प्रभविष्णु श्री विष्णु ने तुलसी को तो धारण कर लिया था । भगवान् के वक्षःस्थल में आलय वाली वह देवी देखती थी । सब लोकों की महेश्वरी देवी को दया से आद्रे हृष्टि से देखा था ॥८२।

—X—

## ॥ मोहिनी प्रादुर्भाव वर्णन ॥

हयग्रीव उवाच-

अथ देवा महेन्द्राद्या विष्णुना प्रभविष्णुना ।

अङ्गीकृता महाधीरा: प्रमोदं परमः ययुः ॥१

मलकाद्यास्तु ते सर्वे दैत्या विष्णुपराङ्मुखाः ।

संत्यक्ताश्च श्रिया देव्या भृशमुद्देगमागताः ॥२

ततो जगृहिरे दैत्या धन्वंतरिकरस्थितम् ।

परमामृतसाराद्यं कलशं कनकोदभवम् ।  
 अथासुराणां देवानामन्योन्यं कलहोऽभवत् ॥३  
 एतस्मन्नन्तरे विष्णुः सर्वलोककरक्षकः ।  
 सम्यगाराधयामास ललिता स्वैक्यरूपिणीम् ॥४  
 सुराणामसुराणां चरणं वीक्ष्य सुदारुणम् ।  
 ब्रह्मा निजपदं प्राप शम्भुः कैलासमास्थितः ॥५  
 मलकं योधयामास दैत्यानामधिपं वृषा ।  
 असुरंश्च सुराः सर्वे सांपरायमकुर्वत् ॥६  
 भगवानपि योगीन्द्रः समाराध्य महेश्वरीम् ।  
 तदेकध्यानयोगेन तद्रूपः समजायत ॥७

श्री हयग्रीव ने कहा—इसके अनन्तर महेन्द्र आदि देवों को भगवान् प्रभविष्णु विष्णु ने जग अंगाकार कर लिया था तो महाधीर वे परम प्रसन्नता को प्राप्त हुए थे । १। मलक आदि वे सब दैत्य भगवान् विष्णु के पराङ्मुख हो गये थे । जब श्री देवी के द्वारा वे संत्यक्त हो गये थे तो वे अत्यन्त अधिक उद्धिग्न हो गये थे । २। इसके उपरान्त उन दैत्यों ने धन्वन्तरि भगवान् के कर में स्थित सुवर्ण निर्मित परमामृत के सार से युक्त कलश को ले लिया था अर्थात् हरण कर लिया था । इसके अनन्तर देवों का और असुरों का परस्पर में कलह उत्पन्न हो गया था । ३। इसी बीच में समस्त लोकों के एक ही रक्षा करने वाले विष्णु भगवान् ने अपने साथ एक रूप बाली ललिता की भली भाँति आराधना की थी । ४। सुरों और असुरों का परम दारुण युद्ध देखकर ब्रह्माजी अपने स्थान पर चले गये थे और शम्भु कैलास पर्वतपर समास्थित हो गये थे । ५। इन्द्र ने देव्यों के अधिप मलक से युद्ध किया था । समस्त सुरों ने असुरों के साथ युद्ध किया था । ६। योगीन्द्र भगवान् ने भी महेश्वरी की समाराधना की थी । उन्होंने महेश्वरी का ध्यान योग से द्वारा करके एकता के साथ उसी रूप को प्राप्त हो गये थे । ७।

सर्वसंमोहिनी सा तु साक्षाच्छृङ्गारनायिका ।

Hinduism Discourse Series on Sanskrit / वर्णार्थानुवाद BY WITH LOVE BY Avinash

सुराणामसुराणां च निवार्य रणमुल्वणम् ।

मंदस्मितेन दैतेयान्मोहयंती जगाद ह ॥६

अलं युद्धेन कि शस्त्रैर्मर्मस्थानविभेदिभिः ।

निष्ठुरः कि वृथालापैः कंठशोषणहेतुभिः ॥१०

अहमेवात्र मध्यस्था युष्माकं च दिवीकसाम् ।

यूयं तथामी नितरामत्र हि क्लेशभागिनः ॥११

सर्वेषां सममेवाद्य दीस्याम्यमृतमद्भुतम् ।

मम हस्ते प्रदातव्यं सुधापात्रमनुत्तमम् ॥१२

इति तस्या वचः श्रुत्वा दीत्यास्तद्वाक्यमोहिताः ।

पीयूषकलशं तस्यै ददुस्ते मुग्धचेतसः ॥१३

सा तत्पात्रं समादाय जगन्मोहनरूपिणी ।

सुराणामसुराणां च पृथक्पर्णिं चकार ह ॥१४

वह देवी तो सबका संमोहन करने वाली थी और वह साक्षात् शृंगार की नायिका थी । वह सम्पूर्ण शृंगार के वेषवाली थी और असुरों का जो अतीव उल्ल्वण युद्ध था । उसका निवारण करके अपने मन्दस्मित के द्वारा दैत्यों की मोहित करती हुई वह बोली । ८-६। अब यह युद्ध समाप्त करो, मर्मस्थानों के विभेदन करने वाले शास्त्रों से क्या लाभ होगा । और परम निष्ठुर व्यर्थ के इन बलापों से भी क्या लाभ है जो कि केवल कण्ठों के शोषण करने के कारण स्वरूप ही है । १०। मैं ही आपके और देवों के मध्य में स्थित हूँ इसमें जैसा कि इस समय में आप लोग कर रहे हैं आप लोग तथा ये देवगण अत्यन्त ही क्लेश के भागी होंगे । ११। मैं आप सभी के लिए आज इस अद्भुत अमृत को बराबर-बराबर दे दूँगी । अब आप लोग इस उत्तम सुधा के पात्र को मेरे हाथ में दे दीजिए । १२। इस उस महादेवी के वचन का श्रवण करके दैत्य विमोहित हो गये थे क्योंकि उसका वाक्य ही इस प्रकार था । मुख्य चित्त वाले उन्होंने वह अमृत का कलश उस देवी को दे दिया था । १३। सम्पूर्ण इस जगत् के मोहन करने वाली उस देवी ने उस अमृत के कलश को ले लिया था और फिर उसने सुरों की तथा असुरों की पृथक्-पृथक् पंक्ति बिठा दी थी । १४।

द्वयोः पंक्त्योश्च मध्यस्थास्तानुवाच सुरासुरान् ।

तृष्णीं भवन्तु सर्वे पि क्रमणो दीयते मया ॥१५

तद्वाक्यमुररीचक्रुस्ते सर्वे समवायिनः ।

सा तु संमोहिताश्लेषलोका दातुं प्रचक्रमे ॥१६

क्वण्टकनकदर्वीका क्वणन्मंगलकंकणा ।

कमनीयविभूषाद्या कला सा परमा बभौ ॥१७

वामे वामे करांभोजे सुधाकलशमुज्ज्वलम् ।

मुश्रां तां देवतापंक्तो पूर्वं दव्या तदादिशत् ॥१८

दिशांती क्रमणस्तत्र चन्द्रभास्करसूचितम् ।

दर्वीकरेण चिञ्छेद संहिकेयं तु मध्यगम् ।

पीतामृतजिरोमात्रं तस्य व्योम जगाम च ॥१९

तं हृष्ट्वाऽप्यसुरास्तत्र तृष्णीमासन्विमोहिताः ।

एवं क्रमेण तत्सर्वं विबुधेभ्यो वितीर्यं सा ।

असुराणां पुरः पात्रं सा निनाय तिरोदधे ॥२०

रिक्तपात्रं तु तं हृष्ट्वा सर्वे दैतेयदानवाः ।

उद्गेलं केवलं क्रोधं प्राप्ता युद्धचिकीर्षया ॥२१

उन दोनों पंक्तियों के मध्य में स्थित होकर उन समस्त सुरों और असुरों से उसने कहा था । आप सब लोग बिलकुल चुपचाप रहें—मेरे द्वारा आप सबको क्रम से ही यह अमृत दिया जाता है । १५। उन सभी ने जो समवायां थे उस देवी के उस वाक्य की स्वीकृत कर लिया था । वह तो सभी लोकों को संमोहित करने वाली थी । फिर उस देवी ने देने का उपक्रम किया था । १६। उस समय में उसके सुवर्ण की करधनी क्वणित हो रही थी तथा उसके करों के कङ्कण भी क्वणित हो रहे थे जो परम मंगल स्वरूप थे । वह परम कमनीय भूषा से समन्वित थी । उस समय में वह परमाघिक मधुर मूर्ति सुशोभित हो रही थी । १७। परम सुन्दर वाम कर कमल में तो वह उज्ज्वल सुधा का कलश था, उस सुधा को उसने दर्वी से प्रथम देवों की पंक्ति में ही देना आरम्भ किया था । १८। वह बहाँ पर क्रम से देती हुई

देखती जा रही थी । उस समय में मध्य में सैंहिकेय स्थित था जिसकी सूचना संकेत द्वारा चन्द्र और सूर्य ने उसको दे दी थी । अतः दर्वों के कर से उसका उस देवी ने छेदन कर दिया था । वह अमृत का पान कर चुका था अतएव उसका केवल गिर आकाशमें चला गया था ॥१९॥ उसको देखकर वहाँ पर जो असुर थे वे विमोहित हुए चुप थे । इसी प्रकार से क्रमसे उस देवी ने वह सम्पूर्ण अमृत देवों के लिए वितीण कर दिया था और असुरों के आगे उस खाली पात्र को रखकर वह तिरोहित हो गयी थी ॥२०॥ उन सब दैत्य दानवों ने उस खाली पात्र को देखा था और युद्ध करने की इच्छा से उन्होंने केवल असीम क्रोध किया था ॥२१॥

इन्द्रादयः सुराः सर्वे सुधापानाद्बलोत्तराः ।

दुर्बलैरसुरैः साध्यं तमयुद्धयन्त सायुधाः ॥२२

ते विध्यमानाः शतशो दानवेद्राः सुरोत्तमीः ।

दिगंतान्कतिचिजजग्मुः पातालं कतिचिद्ययुः ॥२३

दैत्यं मलकनामानं विजित्य विबुधेश्वरः ।

आत्मीयां श्रियमाजहै श्रीकटाक्षसमीक्षितः ॥२४

पुनः सिहासनं प्राप्य महेन्द्रः सुरसेवितः ।

त्रैलोक्यं पालयामास पूर्ववत्पूर्वदेवजित् ॥२५

निर्भया निखिला देवास्त्रैलोक्ये सचराचरे ।

यथाकामं चरन्ति स्म सर्वदा हृष्टचेतसः ॥२६

तदा तदखिलं दृष्ट्वा मोहिनीचरितं मुनिः ।

विस्मितः कामचारी तु कैलासं नारदो गतः ॥२७

नन्दिना च कृतानुजः प्रणम्य परमेश्वरम् ।

तेन संभाव्यमानोऽसौ तुष्टो विष्टरमास्त सः ॥२८

इन्द्र आदि समस्त सुध के पान से विशेष बलवान् होकर दुर्बल असुरों के साथ आयुधों को लेकर भली भाँति लड़े थे ॥२२॥ उन उत्तम सुरों के द्वारा वे दानवेन्द्र संकड़ों वारे विध्यमान हुए थे उनमें से कुछ तो अन्य दिशाओं में चले गये थे और कुछ पाताल लोक में चले गये थे ॥२३॥ श्री देवों के कटाक्षों से सम्प्रेरित होकर देवों के स्वामी इन्द्र देव ने मलक नाम वाले दैत्य का जीत लिया था और

उसने अपनी श्री का आहरण कर लिया था ।२४। सुरगणों के द्वारा सेवित महेन्द्र देव ने फिर अपने सिंहासन को प्राप्त कर लिया था और पूर्व की ही भाँति पूर्व देव जित् ने त्रिलोक्य का परिपालन किया था ।२५। फिर समस्त देवगण निर्भय होकर इस चराचर त्रिलोकी में सर्वदा प्रसन्न चित्त होते हुए अपनी इच्छा के अनुसार सञ्चरण किया करते थे ।२६। उस समय सम्पूर्ण मोहिनी के चरित को देखकर मुनि नारद बहुत ही आश्चर्यान्वित होकर स्वेच्छा से चरण करने वाले कंतास गिरि पर चले गये थे ।२७। वहाँ पर नन्दी से आज्ञा पाकर उन्होंने परमेश्वर को प्रणाम किया था । शिव प्रभु के द्वारा भली भाँति आदर प्राप्त करके परम तुष्ट हुए थे और आसन पर समवस्थित हो गये थे ।२८।

आसनस्थं महादेवो मुर्नि स्वेच्छाविहारिणम् ।

प्रच्छ पार्वतीजानिः स्वच्छस्फटिकसन्निभः ॥२९॥

भगवन्सर्ववृतज्ञ पवित्रीकृतविष्टर ।

कलहप्रिय देवर्षे कि वृत्तं तत्र नाकिनाम् ॥३०॥

सुराणामसुराणां वा विजयः समजायत ।

कि वाच्यमृतवृत्तांतं विष्णुना वापि कि कृतम् ॥३१॥

इति पृष्ठो महेशेन नारदो मुनिसत्तमः ।

उवाच विस्मयाविष्टः प्रसन्नवदनेक्षणः ॥३२॥

सर्वं जानासि भगवन्सर्वज्ञोऽसि यतस्ततः ।

तथापि परिपृष्टेन मया तद्वक्ष्यतेऽधुना ॥३३॥

तादेश समरे घोरे सति देत्यदिवीकसाम् ।

आदिनारायणः श्रीमान्मोहिनीरूपमादधे ॥३४॥

तामुदारविभूषाद्यां मूर्ती शृङ्गारदेवताम् ।

सुरासुराः समालोक्य विरताः समरोद्यमात् ॥३५॥

परम स्वच्छ स्फटिक मणि के सहश स्वरूप वाले पार्वती के स्वामी श्री महादेवजी ने आसन पर विराजमान नारदजीजी से जो कि अपनी ही

करने वाला है। अब यह बतलाइये कि उन स्वर्गवासी देवगणों का क्या हाल है? ।३०। मुरों का अथवा असुरों का विजय हुआ है? अथवा उस अमृत का क्या हुआ—यह भी वृत्तान्त बतलाइए तथा भगवान् विष्णु ने उसमें क्या किया था? ।३१। इस तरह से महेश प्रभु के द्वारा पूछे गये मुनिश्रेष्ठ नारदजी ने परम विस्मय से आविष्ट होकर प्रसन्न मुख और नेत्रों वाले नारदजी ने कहा था ।३२। हे भगवन्! आप तो सभी कुछ जानते हैं क्योंकि आप स्वयं सबक्षण हैं। तो भी क्योंकि आपने मुझसे पूछा है अतः मैं अब वह सब बतलाता हूँ ।३३। उस प्रकार का महान् घोर जब देत्यों और देवों का युद्ध शुरू हो गया था तो उस समय में आदि नारायण ने जो परम श्री सम्पन्न हैं मोहिनी का स्वरूप धारण कर लिया था ।३४। उस मोहिनी का विलोकन करते ही जो परमोज्ज्वल विभूषा से सुसम्पन्न थीं और मूर्त्ति-मती शृङ्खार की देवता थीं सभी सुर और असुर युद्ध के उद्यम से विरत हो गये थे ।३५।

तन्मायामोहिता दैत्याः सुधापात्रां च याचिताः ।

कृत्वा तामेव मध्यस्थामर्पयामासुरंजसा ॥३६॥

तदा देवी तदादाय मंदस्मितमनोहरा ।

देवेभ्य एव पीयूषमशेषं विततार सा ॥३७॥

तिरोहितामहृष्टवा तां हृष्टवा शून्यं च पात्रकम् ।

ज्वलन्मन्युमुखा दैत्या युद्धाय पुनरुत्थिताः ॥३८॥

अमरेरमृतास्वादादत्युल्वणपराक्रमैः ।

पराजिता महादैत्या नष्टाः पातालमध्ययुः ॥३९॥

इमं वृत्तांतमाकर्ण्य भवानीपतिरव्ययः ।

नारदं षयित्वाशु तदुक्तं सततं स्मरन् ॥४०॥

अजातः प्रमथैः सर्वैः स्कन्दनं दिविनायकैः ।

पार्वतीसहितो विष्णुमाजगाम सविस्मयः ॥४१॥

क्षीरोदतीरणं हृष्टवा सस्त्रीकं वृषवाहनम् ।

भोगि भोगासनाद्विष्णुः समुत्थाय समागतः ॥४२॥

उस मोहिनी की माया से मोहित होते हुए देख्यों से जब सुधा का पात्र माँगा गया था तो उन्होंने उसी मोहिनी को मध्यस्थ बनाकर तुरन्त ही वह पात्र उसको दे दिया था । ३६। मन्द मुस्कान से परम मनोहर उस देवी ने उसी समय में उस पात्र को ले लिया था । उसने इस सम्पूर्ण सुधा को देवों के ही लिए बाटिकर खाली कर दिया था । ३७। जब उन्होंने देखा था कि वह मोहिनी तो तिरोहित हो गयी है और वह सुधा का पात्र खाली है तो क्रोध से उन सबका मुख लाल हो गया था और वे दैत्य फिर युद्ध करने के लिए समुद्रत हो गये थे । ३८। अमृत के खाने से वे देवगण तो अमर हो गये थे और उनका पराक्रम भी बहुत ही उल्लंण हो गया था । उन्होंने उस युद्ध में देख्यों को पराजित कर दिया था फिर वे महादेत्य नष्ट होते हुए पाताल लोक में चले गये थे । ३९। अविनाशी भवानी के स्वामी ने इस वृत्तान्त का श्रवण करके नारदजी को तो विदा कर दिया था और उसी वृत्तान्त का निरन्तर स्मरण करने लगे थे । ४०। स्कन्द-नन्दी और विनायक इन समस्त गणों के द्वारा अज्ञात होते हुए बड़े ही आश्चर्य से समन्वित होकर केवल पार्वती को साथ में लेकर भगवान् विष्णु के समीप में आ गये थे । ४१। क्षीर सागर के तट पर अपनी प्रिया के साथ भगवान् शश्मु का दर्शन करके शेष की शय्या से समुस्थित होकर भगवान् विष्णु तुरन्त ही वहाँ पर समागत हो गये थे । ४२।

**वाहनादवरुद्येशः पार्वत्या सहितः स्थितम् ।**

**तं हृष्ट्वा शीघ्रमागत्य संपूज्याध्यादितो मुदा ॥४३**

**सस्नेहं गाढमालिगय भवानीपतिमच्युतः ।**

**तदागमनकार्यं च पृष्ठवान्विष्टरथवाः ॥४४**

**तमुवाच महादेबो भगवन्मुखोत्तम् ।**

**महायोगेश्वर श्रीमन्सर्वसौभाग्यसुन्दरम् ॥४५**

**सर्वसंमोहजनकमवाङ्मनसगोचरम् ।**

**यद्रूपं भवतोपातं तन्मह्यं संप्रदर्शय ॥४६**

**द्रष्टुमिच्छामि ते रूपं श्रृंगारस्याधिदेवतम् ।**

**अवश्यं दर्शनीयं मे त्वं हि प्राथितकामधुक् ॥४७**

**इति संप्रार्थितः शशवन्महादेवेन तेन सः ॥**

यद्यानवैभवाल्लब्धं रूपमद्वैतमद्भुतम् ॥४८

तदेवानन्यमनसा ध्यात्वा किञ्चिद्विहस्य सः ।

तथास्त्वति तिरोऽधत्त महायोगेश्वरो हरिः ॥४९

भगवान शिव वाहन से उतर कर पावंती के सहित विष्णु भगवान के समीप में पहुँचे और संस्थित भगवान की बड़े आनन्द से पूजा की और अर्घ्य अपित किया था । ४३। भगवान अच्युत ने भवानी के पति का स्नेह के साथ गाढ़ालिंगन किया था । विष्णु भगवान ने उनके समागमन का कारण पूछा था । ४४। महादेवजी ने भगवान से कहा—आप तो उत्तम पुरुष हैं और महान योगेश्वर हैं । आपने श्री सम्पन्न—सभी प्रकार के सौभाग्य से परम सुन्दर तथा सबको संमोह का पैदा करने वाला जो वाणी और मन से कभी गोचर नहीं हो सकता है कैसा स्वरूप आपने धारण किया था । उस स्वरूप का प्रदर्शन मुझे भी कृपाकर कराइए । ४५-४६। मैं आपके—उस स्वरूप का दर्शन करना चाहता हूँ जो कि शृंगार का अधिष्ठात्री देवता है । मुझे वह अवश्य दिखाना चाहिए । आप तो प्राथित पदार्थों के प्रदान करने वाले कामधेनु ही हैं । ४७। इस प्रकार से महादेवजी के द्वारा ब्राह्मण भगवान विष्णु की प्रार्थना की गयी थी । जिनके ध्यान के वैभव से अद्वैत और अद्भुत रूप प्राप्त किया था । ४८। उसी का अनन्यमन से ध्यान करके और कुछ हँसकर उन्होंने कहा—ऐसा ही होगा—और फिर महोयोगेश्वर हरि तिरोहित हो गये थे । ४९।

सर्वोऽपि सर्वतश्चक्षुर्मुहुर्व्यापारयन्वचित् ।

अदृष्टपूर्वमाराममभिरामं व्यलोकयत् ॥५०

विकसत्कुसुमश्रेणीविनोदिमधुपालिकम् ।

चंपकस्तबकामोदसुरभीकृतदिक्तटम् ॥५१

माकन्दवृन्दमाधवीकमाद्यदुल्लोलकोकिलम् ।

अशोकमण्डलीकांडसतांडवशिखण्डकम् ॥५२

भृजालिनवज्ञांकारजितवल्लकिनिस्वनम् ।

पाटलोदारसौरभ्यपाटलीकुसुमोज्जवलम् ॥५३

तमालतालहितालकृत मालाविलासितम् ।

पर्यन्तदीघिकादीर्घपङ्कजश्रीपरिष्कृतम् ॥५४

वातपातचलच्चारुपल्लबोत्फुल्लपुष्पकम् ।

सन्तानप्रसवमोदसन्तानाधिकवासितम् ॥५५

तत्र सर्वत्र पुष्पाद्ये सर्वलोकमनोहरे ।

पारिजाततरोमूले कान्ता काचिदहशयत ॥५६

भगवान शिव ने भी सभी ओर अपनी हड्डि डालते हुए देखा था तो एक पहिले जो कभी भी नहीं देखा था ऐसा परम सुन्दर उद्यान देखा था । ५०। जो एसा था कि प्रसूत खिले हुए थे और उन पुष्पों पर मधुपों की श्रेणियाँ गुज्जार करती हुई आनन्द ले रही थीं । चम्पा के पुष्पों के स्तवनों की परम रमणीय गन्ध से सभी दिशाएँ सुगन्धित हो रही थीं । ५१। माकन्दों के वृन्द और माधवीक पर मदमस्त कोकिले उल्लसित हो रही थीं । अशोक वृक्षों के समुदायों में मधुरगण अपना अद्भुत ताण्डव नृत्य कर रहे थे । ५२। ऋग्मरों की पंक्तियों की गौज की झज्जार से बल्लभियों की छवनि भी वहाँ पर पराजित हो गयी थी । पाटलों की उदार सुगन्ध से पाटली कुसुमों की उज्ज्वलता वहाँ पर भरी हुई थी । ५३। ताल की सुखद मालाओं से वह शोभित था उस उद्यान के किनारों पर बड़े-बड़े सरोवर बने हुए थे जिनमें बड़ी विशाल कमलों की शोभा से वह आराम समलकृत था । ५४। वायु के मन्द झोंके से द्रुमों के पत्र हिल रहे थे और उन पत्रों के मध्य में विकसित पुष्पों की अपूर्व छटा विद्यमान थी । प्रसूत और कलों के आमोद के विस्तार से वह अभिराम उद्यान अधिक सुवासित हो रहा था । वहाँ पर सभी जगह विकसित पुष्पों की भरमार थी और वह सभी लोगों के लिए परम मनोहर था । वहाँ पर एक पारिजात के वृक्ष के नीचे कोई एक परमाधिक सुन्दरी दिखलाई दी थी । ५५-५६।

वालार्कपाटलाकारा नवयौवनदर्पिता ।

आकृष्णपद्मरागाभा चरणाद्वजनखच्छदा ॥५७

यावकश्रीविनिक्षेपपादलौहित्यवाहिनी ।

कलनिः स्वनमञ्जीरपादपद्ममनोहरा ॥५८

अनंगवीरतूणीरदर्पोन्मदनजंघिका ।

करिगामाकर्त्तिकाकान्तिकारोक्तमालिती ॥५९

अहणेन दुकूलेन सुस्पर्शेन तनीयसा ।  
 अलंकृतनितंबाढ्या जघनाभोगभासुरा ॥६०  
 नवमाणिक्यसन्नद्धेमकांचीविराजिता ।  
 नतनाभिमहावर्त्तत्रिवल्युमिप्रभाङ्गरा ॥६१  
 स्तनकुड्मलहिंदोलमुक्तादामशतावृता ।  
 अतिपीवरवक्षोजभारभंगुरमध्यभूः ॥६२  
 शिरीषकोमलभुजा कंकणांगदशालिनी ।  
 सौमिकांगुलिमन्मृष्टशंखसुन्दरकंधरा ॥६३

वह बाल सूर्य के समान पाटल की आकृति वाली थी और नूतन योवन के दर्पण से समन्वित थी । उसके चरण कमलोपम कोमल और नखछढ़ आकृष्ट पद्मराग की आभा वाले थे । ५७। यावक की श्री के विनिक्षेप से उसके चरणों में लालिमा थी जिसको वह वहन कर रही थी । उसके चरणों में परम मनोहर छ्वनि संयुक्त मञ्जीर थे । ५८। उसके जघन कामदेव वीर के तूणीर को उन्मादित करने वाले थे । उसके उपस्थल करिष्णुण्ड-कदली की कान्ति को भी शमन करने वाले थे । ५९। यह अरुण वर्ण का बहुत ही बारीक और सुख स्पर्श वाला बस्त्र पहिने हुई थी जिसस उसके नितम्ब समलंकृत थे और वह जघनों के आभोग से परम भासुर थी । ६०। नवीन माणिक्य से बैंधी हुई सुवर्ण की करधनी से विभूषित थी । उसकी नाभि नत महावर्त्त के समान थी उसके ऊपर त्रिवली की ऊमियों की प्रभा झलक रही थी । ६१। कलियों के आकार वाले स्तनों के हिण्डोलों पर सैकड़ों मोतियों के हार पहिले हुई थी । उसके उरोज अत्यधिक स्थूल थे और उनके भार से उसका कटिभाग झूका हुआ था । ६२। उसकी भुजाएँ शिरीष के सहश अतीव कोमल थीं जिनमें कङ्कण और अंगद धारण किये हुई थीं । उसकी अँगुलियाँ ऊमियों के समान प्रतीत हो रही थीं जो अत्यधिक पतली और कोमल थीं तथा उसकी ग्रीवा सुन्दर शंख के समान नतोन्नत थी । ६३।

मुखदर्पणवृत्ताभचुबुकापाटलाधरा ।

शुचिभिः पक्तिभिः शुद्धैविद्यारूपैविभास्वरैः ॥६४

कुन्दकुड्मलसच्छायदंतैर्दशितचन्द्रिका ।

स्थूलमौक्तिकसन्नद्वनासाभरणभासुरा ॥६५

केतकांतर्द्दलद्रोणिदीर्घदीर्घविलोचना ।

अर्धेन्दुतुलिताफाले सम्यक्क्लृप्तालकच्छटा ॥६६

पालीवतंसमाणिक्यकुन्डलामडितश्रुतिः ।

नवकपूरकस्तूरीसामोदितवीटिका ॥६७

गरच्चारुनिश्चानायमंडलीमधुरानना ।

स्फुरत्कस्तूरितिलका नीलकुन्तलसंहतिः ॥६८

सीमंतरेखाविन्यस्तसिंदूरश्रेणिभासुरा ॥६९

स्फुरच्चन्द्रकलोत्समदलोलविलोचना ।

सर्वशृङ्गारवेषाद्या सर्वभरणमंडिता ॥७०

उसका मुख दर्पण के सदृश वर्तुल आभा से युक्त था तथा चुबुक और अधर पाटल थे । उसकी दाँतों की पंक्ति परम शुचि-शुद्ध-विद्वा स्वरूप भास्वर थीं । उनकी कान्ति कुन्द की कलियों के समान थी जिनसे चन्द्रिका सी दिखलायी दे रही थी । का आभरण स्थूल मोती से खचित नासिका था । इससे यह परमाधिक भासुर प्रतीत हो रही थी । ६४-६५। केतक के अन्तर दल के सदृश शोभित बड़े-बड़े उसके नेत्र थे । अर्ध चन्द्र की तुलना वाले मुख पर विखरी हुई अलकों की छटा थी । ६६। पालीवतंस माणिक्य के कुण्डलों से उसके दोनों कर्ण विभूषित हो रहे थे । उसके मुख में ताम्बूल की वीटिका थी जो नव कपूर और कस्तूरी के रस से आयोदित थी । ६७। शरकालीन चन्द्रमा के मण्डल के समान उसका परम मधुरमुख था । उसके भाल पर स्फुरित कस्तूरी का तिलक था और ऊपर शिर पर नीलाभ केशों का जूँड़ा था । ६८। वह सीमान्त रेखा से विन्यस्त सिन्दूर की श्रेणी से परम भासुर भी अर्थात् मध्य में सीधी केशों में सिन्दूर की रेखा विराजमान थी । ६९। स्फुरित चन्द्र की कला के उत्तंस मद से चञ्चल नेत्रों वाली थी । वह सम्पूर्ण शृंगार के वेष से समन्वित तथा अंगों के समस्त आभरणों से समलकृत थी । ७०।

तामिमां कंदुकक्रीडालोलामालोलभूषणम् ।

दृष्ट्वा क्षिप्रमुमां त्यक्त्वा सोऽन्वधावदथेष्वरः ॥७१

उमापि तं समावेक्ष्य धावतं चात्मणः प्रियम् ।

स्वात्मानं स्वात्मसौन्दर्यं निदंती चातिविस्मिता ।

तस्थावाङ् मुखी तूष्णीं लज्जासूयासमन्विता ॥७२

गृहीत्वा कथमप्येनामालिलिग मुहुर्मुहुः ।

उद्घूयोद्घूय साप्येवं धावति स्म सुदूरतः ॥७३

पुतर्गृहीत्वा तामीशः कामं कामवशीकृतः ।

आश्लिष्टं चातिवेगेन तद्वीर्यं प्रच्युतं तदा ॥७४

ततः समुत्थितो देवो महाशास्ता महावलः ।

अनेककोटिदैत्येद्रगर्वनिविष्णक्षमः ॥७५

तद्वीर्यं विदुसंस्पर्शतिसा भूमिस्तत्र तत्र च ।

रजतस्वर्णवणभूलक्षणादिष्यमर्दन ॥७६

तथैवांतर्दधे सापि देवता विश्वमोहिनी ।

निवृत्तः स गिरीशोऽपि गिरि गोरीसखो ययौ ॥७७

वह एक कन्दुक से क्रीड़ा कर रहो थी अर्थात् बार-बार गेंद को उछाल रही थी जिससे उसके सर्वाङ्ग भूषण भी समालोचित हो रहे थे । ऐसी उस रूप लावण्य एवं मादक यौवन से मुसम्पन्ना सुन्दरी को अवलोकित करके शिव ने पार्वती का त्याग कर दिया था और शीघ्र ही उस सुन्दरी को पकड़ कर आलिङ्गन करने के लिए उसके पीछे दौड़ पड़े थे । यद्यपि शिव अखिलेश्वर थे तो श्री उसके सौन्दर्य को निरख कर विमोहित हो गये थे ॥७१। उमा देवी ने जब अपने प्रिय पति को उसके पीछे दौड़ते हुए देखा था तो वह अपने आपको और अपनी सुन्दरता को भी हैय ममझते हुए वह बहुत ही विस्मित हो गयी थी । विस्मय यही था कि परम ज्ञानी योगेश्वर को यह क्या कामदेव का अद्भुत विकार उत्पन्न हो गया है जब कि मैं सुन्दरी पत्नी भी समीप मैं विद्यमान हूँ । उस समय मैं उमा देवी लज्जा और असूया से युक्त होकर चुपचाप नीचे की ओर मुख करके स्थित हो गयी थीं ॥७२। शिवजी ने किसी भी प्रकार से इसको पकड़ लिया था और बार-बार आलिङ्गन किया था किन्तु वह अपने आपको छुड़ा-छुड़ाकर बहुत दूर भागती चली जा रही थी ॥७३। काम के वश में पड़े हुए शिव ने फिर उसको अच्छी तरह से पकड़ लिया था । उन्होंने बहुत ही बेग से आश्लेषण किया था और

उसी समय में उनका वीर्यं स्खलित हो गया था । ७४। इसके अनन्तर महान बलवान और महान शासक देव उठकर खड़े हुए थे, जो कि बहुत से करोड़ों दैत्येन्द्रों के निर्विपण करने में समर्थ थे । ७५। शिवजी के वीर्यं के संस्पर्श से वहाँ-वहाँ पर जो विन्दुओं का पात हुआ था उससे है विन्ध्य मर्दन ! वह भूमि रजत और सुवर्ण के वर्ण वाली हो गयी थी । ७६। उसी समय में वहाँ पर वह विश्व मोहिनी देवता तिरोहित हो गयी थी । फिर निवृत्त हुए गिरीश भी अपनी गौरी के साथ कैलास पर चले गये थे । ७७।

**अथादभूतमिदं वक्ष्ये लोपामुद्रापते शृणु ।**

यन्न कस्यचिदाख्यातं मर्मेव हृदये स्थितम् ॥७८

पुरा भंडासुरो नाम सर्वदैत्यशिखामणिः ।

पूर्वं देवान्वहुविधान्यः शास्ता स्वेच्छया पदुः ॥७९

विशुक्रं नाम दंतेयं वर्गसंरक्षणश्चमम् ।

शुक्रतुल्यं विचारजं दक्षांशेन ससर्जं सः ॥८०

वामांसेन विषांगं च सृष्टवान्दुष्टशेखरम् ।

धूमिनीनामधीयां च भगिनीं भंडदानवः ॥८१

आतृभ्यामुग्रवीर्यभ्यां सहितो निहताहितः ।

ब्रह्मोडं खंडयामास शौर्यवीर्यं समुच्छितः ॥८२

ब्रह्मविष्णुमहेशाश्च तं हृष्ट्वा दीप्ततेजसम् ।

पलायनपराः सद्वा स्वे स्वे धाम्नि सदा वसन् ॥८३

तदानीमेव तद्बाहुसंमर्द्दनविमूर्च्छिताः ।

श्वसितुं चापि पटवो नाभवन्नाकिनां गणाः ॥८४

इसके अनन्तर है लोपा मुद्रापते ! मैं एक अति अद्भुत बात बतलाऊँगा । उसका आप श्वरण कीजिए । जिसको मैंने किसी को भी अब तक नहीं कहा था और यह मेरे हृदय में ही स्थित है । ७८। बहुत पुराने समय में भण्डासुर नामक दैत्य था जो समस्त दैत्यों का शिरोमणि था । वह इतना कुशल था कि उसने पहिले अपनी ही इच्छा से बहुत से देवों का शास्ता हुआ था । ७९। उसने विशुक्र नाम वाले दंतेय को जो सबके संरक्षण में समर्थ था ।

था । ८०। उसने बामांश से दुष्ट शिरोमणि विषाङ्ग को सृजित किया था । भण्ड दानव ने धूमिनी नाम वाली घेया भगिनी का भी सृजन किया था । ८१। उग्रवीर्य वाले भाइयों के साथ अपने अहित को निहित करने वाला था । शोर्य और वीर्य से समुचित उसने पूर्ण ब्रह्माण्ड को खण्डित कर दिया था । ८२। ब्रह्मा, विष्णु और महेश दीप्त तेज वाले उसको देखकर ही भागने में तत्पर हो गये थे और तुरन्त ही अपने-अपने धाम में ही उसकी भुजा के द्वारा संमर्दन से बेहोश हुए देवों के गण श्वास लेने में भी कुशल नहीं हुए थे । अर्थात् श्वास भी न ले सके थे । ८३-८४।

केचित्पातालगर्भेषु केचिद्बुधिवारिषु ।

केचिद्विगंतकोणेषु केचित्कुञ्जेषु भूभृताम् ॥८५

विलीना मृणवित्रस्तास्त्यक्तदारसुतस्त्रियः ।

ब्रह्माधिकारा ऋभवो विचेष्टष्ठन्नवेषकाः ॥८६

यक्षान्महोरगान्सिद्धान्साध्यान्समरदुर्मदान् ।

ब्रह्माणं पद्मनाभं च रुद्रं वज्रिणमेव च ।

मत्वा तृणायितान्सवैल्लोकान्भंडः शशास ह ॥८७

अथ भंडासुरं हंतुं त्रैलोक्यं चापि रक्षितुम् ।

तृतीयमुद्भूदूपं महायागानलान्मुने ॥८८

यद्वृपशालिनीमादुर्लितां परदेवताम् ।

पाणांकुशधनुर्बाणपरिष्कृतचतुर्भुजाम् ॥८९

सा देवी परमा शक्तिः परब्रह्मस्वरूपिणी ।

जघान भंडदैत्येन्द्रं युद्धे युद्धविशारदा ॥९०

जब स्वर्ग लोक में देवों में भगदड़ मची थी तो उनमें से कुछ तो पाताल लोक में भागकर जा छिये थे—कुछ महासागर के जल में चले गये थे—कुछ दूर दिशाओं के छोर में चले गये थे और कुछ पर्वतों की कुञ्जों में चले गये थे । ८५। वे सब बहुत ही भयभीत होते हुए अपने सुत दारा और स्त्रियों को वहाँ पर ही छोड़ कर परम समर्थ भी अधिकारों से अष्ट होकर छिये हुए वेष में इधर-उधर विचरण करने लगे थे । ८६। यक्ष-महोरग-सिद्ध-साध्य सबको जो समर के बड़े दुर्मद थे तथा ब्रह्मा-रुद्र और विष्णु को भी, समस्त लोकों को तिनके के समान समाचरण वाले समझकर वह भण्ड ही

सब पर जासन करने लगा था । ८७। हे मुने ! इसके अनन्तर उस महान बली भण्डासुर का हनन करने के लिए तथा तीनों लोकों की संरक्षा करने के बास्ते महायाग की अग्नि से एक तीसरा ही स्वरूप समुद्रभूत हुआ था । ८८। जिस स्वरूप के धारण करने वाली को ललिता नाम से लोग कहा करते थे जो पर देवता थी । उसके चारों करों में पाणि—अंकुण—धनुष और बाण ये आयुध थे । ८९। वह देवी परमाधिक शक्ति वाली थी और वह साक्षात् पर-जहाँ के स्वरूप वाली थी । युद्ध करने में महा विशारद उसने उस भण्ड दैत्येन्द्र को युद्ध में मार गिराया था । ९०।

### भण्डासुर प्रादुर्भाव वर्णन

अगस्त्य उवाच—

कथं भण्डासुरो जातः कथं वा त्रिपुरांविका ।

कथं बभंज तं संख्ये तत्सर्वं वद विस्तरात् ॥१॥

हयग्रीव उवाच

पुरा दाक्षायणीं त्यक्त्वा पितुर्यज्ञिनाशनम् ॥२॥

आत्मानमात्मना पश्यञ्जनानानन्दसात्मकः ।

उपास्यमानो मुनिभिरद्वगुणलक्षणः ॥३॥

गङ्गाकूले हिमवतः पर्यन्ते प्रविवेश ह ।

सापि शङ्करमाराध्य चिरकालं मनस्विनी ॥४॥

योगेन स्वां तनुं त्यक्त् वा सुतासीद्धिमभूभृतः ॥५॥

स शैलो नारदाच्छ्रुत्वा रुद्राणीति स्वकन्यकाम् ।

तस्य शुश्रूषणार्थयि स्थापयामास चांतिके ॥६॥

एतस्मिन्नन्तरे देवास्तारकेण हि पीडिताः ।

ब्रह्मणोक्ताः समाहृय मदनं चेदमब्रुवन् ॥७॥

अगस्त्य मुनि ने कहा—यह भण्डासुर कैसे समुत्पन्न हुआ था अथवा यह त्रिपुराम्बिका देवी कैसे प्रादुर्भूत हुई थी । उसने समरागण में उस महा-दैत्य को कैसे मारा था—यह सम्पूर्ण वृत्त मेरे सामने विस्तार के साथ वर्णन

कीजिए । १। हयग्रीव जी ने कहा—पहिले दाक्षायणी का त्याग करके पिता के यज्ञ का विष्ववंस हुआ था । २। अपनी आत्मा से आत्मा को देखते हुए ज्ञान और आनन्द के रस के स्वरूप वाले जो कि अद्वन्द्व गुण के लक्षण वाले थे—मुनिगणों के द्वारा उपास्यमान थे । ३। वे प्रभु उस समय में हिमवान् पर्वत के अन्दर एक भीतरी भाग में प्रवेश कर गये थे । उस मनस्त्वनी ने भी बहुत लम्बे समय तक भगवान् शंकर की समाराधना की थी । ४। उस जगदम्बा ने भी योग के द्वारा अपने कलेवर का त्याग कर दिया था और फिर वह हिमवान् गिरिराज की पुत्री होकर प्रादुर्भूत हुई थी । ५। उस शैल राज ने देवर्षि नारद जी से यह सुना था कि उसकी कन्या साक्षात् रुद्राणी होगी । अतएव उस हिमवान् ने उस अपनी कन्या को समीप में ही भगवान् शिवकी शुश्रूषा करने के लिए स्थापित कर दिया था । अर्थात् शिव की आराधना करने की आज्ञा दे दी थी । ६। इसी बीच में तारक नामक महा देत्य के द्वारा देवों को उत्पीड़ित किया गया था । बहाजी से जब देवों ने प्रार्थनाकी थी तो उन्होंने कामदेव को बुलाया था और उससे यह कहा था । ७।

सर्गदी भगवान्ब्रह्मा सृजमानोऽस्थिलाः प्रजाः ।

न निवृत्तिरभूतस्य कदाचिदपि मानसे ।

तपश्चचार सुचिरं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥८॥

ततः प्रसन्नो भगवान्सलक्ष्मीको जनार्दनः ।

वरेण च्छं दयामास वरदः सर्वदेहिनाम् ॥९॥

त्रह्मोवाच—

यदि तुष्टोऽसि भगवन्ननायासेन वै जगत् ।

चराचरयुतं चैतत्सृजामि त्वत्प्रसादतः ॥१०॥

एवमुक्तो विधात्रा तु महालक्ष्मीमुद्देशत ।

तदा प्रादुर्भूस्त्वं हि जगन्मोहनरूपधृक् ॥११॥

तवायुधार्थं दत्तं च पुष्पवाणेक्षुकामुकम् ।

विजयत्वमजेयत्वं प्रादात्प्रमुदितो हरिः ॥१२॥

असौ सृजति भूतानि कारणेन स्वकर्मणा ।

साक्षिभूतः स्वजनतो भवान्भजतु निवृतिम् ॥१३॥

एष दत्तवरो ब्रह्मा त्वयि विन्यस्य तदभरम् ।

मनसो निर्वृतिं प्राप्य वर्ततेऽद्यापि मन्मथ ॥१४

जब इस जगत् का सृजन आरम्भ किया था उसके आदि काल में भगवान् ब्रह्माजी ने समस्त प्रजाका सृजन करना चाहा था किन्तु उनके मन में किसी भी समय में सन्तोष नहीं हुआ था । तब उन्होंने बहुत समय पर्यन्त मन-वाणी और शरीर से तपश्चर्या की थी । एवं तब भगवान् उन पर परम प्रसन्न हुए थे जो कि जनादेन प्रभु अपनी प्रिया लक्ष्मी के ही साथ में आकर प्रसन्न हो गये थे । समस्त देहधारियों को वर देने वाले प्रभु ने उनको भी वरदान देकर सन्तुष्ट किया था । १५ ब्रह्माजी ने प्रार्थना की थी—हे भगवन् ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं तो मुझे यही वरदान दीजिए कि मैं विना ही किसी आयास के इस चराचर जगत् का आपकी कृपा से सृजन कर दूँ । १० जब इस रीति से ब्रह्माजी ने प्रार्थना की थी तो उन्होंने महालक्ष्मी की ओर देखा था । उसी समय में आप प्रादुर्भूत हुए थे जो कि इस जगत् को मोहित करने वाले स्वरूप को धारण करने वाले थे । ११ आपके आयुध के लिये उन्होंने आपको इक्षु का धनुष और पुष्पों का वाण प्रदान किया था । परम प्रसन्न हरि ने विजयो होना भी प्रदान किया था । १२ यही कामदेव भूतों का सृजन अपने ही कर्म के कारण के द्वारा किया करेगा । आप अपने जन से साक्षिभूत होकर निर्वृति का समाश्रय ग्रहण करें । कामदेव ही आपके सृजन का कार्य करता रहेगा । १३ ब्रह्माजी को यह वरदान जब दिया गया था तो उन्होंने सृजन का सब भार तुम पर छोड़कर हे मन्मथ ! ब्रह्माजी सन्तुष्ट होकर आज भी स्थित हैं । १४

अमोर्धं बलवीर्यंते न ते मोघः पराक्रमः ॥१५

सुकुमाराण्यमोघानि कुसुमास्त्राणि ते सदा ।

ब्रह्मदत्तवरोऽयं हि तारको नाम दानवः ॥१६

वाधते सकलांत्लोकानस्मानपि विशेषतः ।

शिवपुत्राऽतेऽन्यत्र न भयं तस्य विद्यते ॥१७

त्वां विनास्मिन्महाकार्यं न कश्चिच्चत्रवदेदपि ।

स्वकराच्च भवेत्कार्यं भवतो नान्यतः क्वचित् ॥१८

अन्तर्मैत्रयमानन्तिरतः शिवो गौरी सलिलितः ।

हिमाचलतले रम्ये वर्तते मुनिभिर्वृतः ॥१६

तं नियोजय गौया तु जनिष्यति च तत्सुतः ।

ईषत्कार्यमिदं कृत्वा त्रायस्वास्मान्महावल ॥२०

एवमध्यधितो देवैः स्तूयमानो मुहुर्मुहुः ।

जगामात्मविनाशाय यतो हिमवतस्तटम् ॥२१

आपका बलबीर्य तो अमोघ है और आपका पराक्रम भी मोघ नहीं है । १५। आपके अस्त्र भी कुसुम परम सुकुमार है तथा वे सदा ही अमोघ हैं । अब यह तारक नाम का दानव ब्रह्माजी के ही द्वारा वरदान प्राप्त कर लेने वाला है । १६। यह समस्त लोकों को बाधा दे रहा है और हमको तो विशेष रूप से सता रहा है । इसको भगवान् शिव के पुत्र के विना अन्य किसी से भी कुछ भय नहीं है अर्थात् इसका बध शिव का ही पुत्र कर सकता है । १७। यह एक महान् कार्य है । आपके विना कोई भी अन्य इसको नहीं कर सकता है चाहे किसी से भा कहा जावे । यह तो आपके ही अपने कर से होगा और अन्य किसी से भी कभी नहीं हो सकता है । १८। आत्मा की एकता के ध्यान में निरत भगवान् शिव इस समय में है और गौरी भी वहाँ पर विद्यमान हैं ये परम रम्य हिमाचल के तल में हैं और मुनिगण से घिरे हैं । १९। हे महान् बलवाले ! आप उन शिव को गौरी में नियोजित कर दो । उस का सुत जन्म धारण करेगा । यह एक छोटा सा हमारा कार्य है । इस को आप करके हमारी सुरक्षा कीजिए । २०। इस तरह से देवों के द्वारा कामदेव से बार-बार प्रार्थना की गयी थी और बहुत स्तवन भी उसका किया गया था । तब वह अपनी आत्मा के विनाश के लिए वहाँ से कामदेव हिमवान् के तट पर गया था । २१।

किमप्याराधयंतं तु ध्यानसंमीलितेक्षणम् ।

ददर्शेशानमासीनं कुसुमेषुरुदायुधः ॥२२

एतस्मिन्नन्तरे तत्र हिमवत्तनया शिवम् ।

आरिराधयिषुश्चागाद्विभ्राणा रूपमद्धुतम् ॥२३

समेत्य शम्भुं गिरिजां गंधपुष्पोपहारकः ।

शुश्रूषणपरां तत्र ददर्शीतिवलः रमरः ॥२४

अदृश्यः सर्वभूतानान्नातिद्वरेऽस्य सस्थितः । २५  
सुमनोभार्गणेरग्रथं स्स विद्यांध महेश्वरम् ॥२५

विस्मृत्य स हि कार्याणि वाणविद्वोऽतिके स्थिताम् ।  
गौरीं विलोकयामास मन्मथाविष्टचेतनः ॥२६  
धृतिमालंध्य तु पुनः किमेतदिति चितयन् ।  
ददश्याग्रे तु सन्नद्धं मन्मथं कुसुमायुधम् ॥२७  
तं दृष्ट्वा कुपितः शूली त्रैलोक्यदहनक्षमः ।  
तातीर्थं चक्षुरुचन्मील्य ददाह मकरध्वजम् ॥२८

कुसुमों के बाणों वाले आयुध लिये हुए कामदेव ने वहाँ पर भगवान् शिव को देखा था जो कुछ का समाराधना करके ध्यान में नेत्रों को बन्द किये हुए समाधिस्थ संस्थित थे । २२। इसी बीच में यह भी उसने देखा था कि हिमवान् की पुत्री पार्वती भी भगवान् शिव की प्राराधना की इच्छा वाली वहाँ पर आ गयी थी जो अत्यदभ्युत स्वरूप से सुसम्पन्न थी । २३। अति बलवान् मदन ने वहाँ देखा था कि यह पार्वती शम्भु के समीप में पहुँच कर गन्ध-पुष्प और उपहारों के द्वारा शिव की शुश्रूषा में संलग्न थी । २४। वह मदन समस्त प्राणियों के द्वारा अदृश्य था और उनके समीप में ही संस्थित होकर उसने अत्युत्तम पुण्यों के बाणों से महेश्वर के दृदय को बेघा था । २५। मन्मथ के द्वारा आविष्ट चेतना वाले उस भगवान् शिव ने समस्त ध्यान करने के कार्यों को भुलाकर काम के बाणों से विद्ध होकर समीप में स्थित गौरी की ओर देखा था । २६। फिर उन्होंने धैर्य का समाश्रय ग्रहण किया था और मन में चिन्तन कर रहे थे कि यह विकार क्यों और कैसे हो रहा है । उसी समय में उन्होंने देखा था कि कामदेव कुसुमों के आयुध वाला आगे सन्नद्ध है । २७। उसको देखकर त्रिशूली प्रभु बहुत ही क्रुद्ध हो गये थे जो कि तानों लोकों को दग्ध कर देने में समर्थ थे । उन्होंने अपना मस्तक में स्थित तीसरा नेत्र खोल दिया था और उसी क्षण में मकरध्वज को भस्मसान् कर दिया था । २८।

शिवेनैव मवजाता दुःखिता शैलकन्यका ।

अनुजया ततः पित्रोस्तपः कर्तुं मगाद्वनम् ॥२९

तदभस्मना तु पुरुष चित्राकार चकार सः ॥३०

तं विचित्रतनुं रुद्रो ददशग्ने तु पूरुषम् ।

तत्क्षणाज्जात जीवोऽभून्मूर्तिमानिव मन्मथः ।

महाबलोऽतितेजस्वी मध्याह्नार्कसमप्रभः ॥३१

तं चित्रकर्मा बाहुभ्यां समालिङ्ग्य मुदान्वितः ।

स्तुहि बाल महादेवं स तु सवर्थिसिद्धिदः ॥३२

इत्युक्त् वा शतरुद्रीयमुपादिशदमेयधीः ।

ननाम शतशो रुद्रं शतरुद्रियमाजपन् ॥३३

ततः प्रसन्नो भगवान्महादेवो वृषध्वजः ।

वरेण च्छुंदयामास वरं वन्ने स बालकः ॥३४

प्रतिद्वंद्विबलार्थं तु मद्बलेनोपयोक्ष्यति ।

तदस्त्रमुख्यानि वृथा कुर्वतु नो मम ॥३५

शिव के द्वारा अवज्ञात हुई शंल कन्या बहुत ही दुःखित हुई थी । फिर माता-सिता की आज्ञा से वह तपश्चर्या करने के लिए वन में चली गयी थी । इसके उपरान्त उस कामदेव की भस्म को देखकर गणेश्वर चित्रकर्मा उस भस्म से चित्र के आकार वाला पुरुष कर दिया था ॥३०। भगवान् रुद्र ने विचित्र शरीर वाले पुरुष को अपने आगे देखा था । उसी क्षण में समुत्पन्न जीव वाला होगया था और ऐसा सुन्दर था । वह उसी क्षण में समुत्पन्न जीव वाला होगया था और ऐसा सुन्दर था मूर्तिमान् साक्षात् मन्मथ ही होंगे । वह महान् बलवाला और अत्यन्त मध्याह्न के सूर्य की सी प्रभा वाला तेजस्वी था ॥३१। चित्रकर्मा ने उसका अपनो बाहुओं से आलिङ्गन किया था और बहुत प्रसन्न हुआ था । चित्रकर्मा ने उससे कहा था हे बाल ! भगवान् शिव की स्तुति करो क्योंकि वे समस्त अर्यों की सिद्धि के दाता है ॥३२। यह कहकर उस अमेय बुद्धि वाले ने उसको शतरुद्रीय का उपदेश दे दिया था उसने शतरुद्रिय का जाप करते हुए सौबार भगवान् रुद्र को प्रणाम किया था ॥३३। इसके अनन्तर वृषध्वज महादेव जी परम प्रसन्न हुए थे । उन्होंने वरमाँगने की आज्ञा दी थी और उस बालक ने यह वरदान माँगा

या । ३४। मेरे प्रतिद्वन्द्वी के बल के लिए मेरे बल से योजित करेंगे और उस मेरे प्रतिद्वन्द्वी के जो भी अस्त्र-शस्त्र होंगे वे व्यर्थ हो जायेंगे और मेरे नहीं होंगे । ३५।

तथेति तत्प्रतिश्रुत्य विचार्य किमपि प्रभुः ।

षष्ठिवर्षसहस्राणि राज्यमस्मै ददौ पुनः ॥ ३६

एतद्दृष्ट्वा तु चरितं धाता भंडिति भंडिति ।

यदुवाच ततो नाम्ना भंडो लोकेषु कथ्यते ॥ ३७

इति दत्त्वा वरं सर्वमुनिगणैवृतः ।

दत्त्वाऽस्त्राणि च ग्रस्त्राणि तत्रैवांतरधाच्च सः ॥ ३८

ऐसा ही सब होगा—यह कहकर फिर प्रभु ने कुछ विचार करके साथ सहस्र वर्ष तक इसको राज्य भी दे दिया था । ३६। इस चरित को देखकर धाता ने भण्डिति—भण्डिति—यह कहा था इसीलिये वह लोक में भण्ड—इस नाम से ही कहा जाया करता है । ३७। यह वरदान उस को देकर मुनिगणों से समावृत वह अस्त्र देकर वहाँ पर ही तिरोहित हो गये थे । ३८।

### ललिता प्रादुर्भाव वर्णन

रुद्रकोपानलाज्जातो यतो भण्डो महाबलः ।

तस्माद्रौद्रस्वभावो हि दानवश्चाभवत्ततः ॥ १

अथागच्छन्महातेजाः शुक्रो देत्यपुरोहितः ।

समायाताश्च शतशो दैतेयाः सुमहाबलाः ॥ २

अथाहूय मयं भंडो देत्यवंश्यादिशिल्पनम् ।

नियुक्तो भृगुपुत्रेण निजगादार्थं वद्वचः ॥ ३

यत्र स्थित्वा तु देत्येन्द्रैस्त्रैलोक्यं शासितं पुरा ।

तदगत्वा शोणितपुरं कुरुष्व त्वं यथापुरम् ॥ ४

तच्छ्रूत्वा वचनं शिल्पी स गत्वाथ पुरं महत् ।

चक्रेऽमरपुरप्रख्यं मनसैवेक्षणेन तु ॥ ५

अथाभिषिक्तः शुक्रेण दैतेयैश्च महाबलैः ।

मुण्डे पर्यानपान तेतु सा न लभन्निति ॥ ६

हिरण्याय तु यदत् किरीटं ब्रह्मणा पुरा ।  
सजीवमविनाशयं च दैत्येन्द्रैरपि भूषितम् ।  
दधो भृगुसुतोत्सृष्टं भंडो वालाकंसन्निभम् ॥७

क्योंकि भण्ड भगवान् रुद्र की कोपाग्नि से समुत्पन्न हुआ था अत एव वह महा बलवान् था और उसका स्वभाव भी परम रौद्र हुआ था । ऐसा ही यह दानव था । १। इसके पश्चात् महा तेजस्वी दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य वहाँ पर आये थे और सैकड़ों महाबली दैत्य भी समागत हुए थे । २। इसके उपरान्त भण्ड ने दैत्यों के वंश में होने वाले आदि शिल्पी मय को बुलाया था । भृगु के पुत्र के द्वारा नियुक्त होते हुए उसने उस शिल्पी से अर्थ युक्त वचन कहा था । ३। जहाँ पर स्थित होकर पहिले दैत्यों के स्वामी ने त्रैलोक्य का शासन किया था वहाँ पर जाकर जैसा भी पुर होता है वैसा शोणित पुर का निर्मण करे । ४। यह वचन श्रवण करके उस शिल्पी ने जाकर एक महान् पुर की रचना की थी । वह पुर मन से ही ईक्षण के द्वारा अमरपुर के समान था । ५। इसके अनन्तर शुक्राचार्य के द्वारा तथा महाबली दैत्यों के साथ अभिषेक किया गया था । वह परोष्ठकृष्ट लक्ष्मी से शोभित हुआ था तथा तेज से भी समन्वित था । ६। पहिले हिरण्य के लिए जो किरीट ब्रह्माजी ने प्रदान किया था वह सजीव और विनाशन होने के योग्य था तथा दैत्येन्द्रों के भी द्वारा भूषित था । उसको भृगु सुत के द्वारा उत्सृष्ट जो था भण्ड ने धारण किया था । यह किरीट बाल सूर्य के ही सहश था । इसके उपरान्त वह सिहासन पर समासीन हुआ था और सभी आभरणों से विभूषित हुआ था । ७।

चामरे चन्द्रसंकाशे सजीवे ब्रह्मनिर्मिते ।

न रोगो न च दुःखानि संदधौ यन्निषेवणात् ॥८

तस्यातपत्रं प्रददौ ब्रह्मणेव पुरा कृतम् ।

यस्य च्छायानिषण्णास्तु बाध्यते नास्त्रकोटिभिः ॥९

धनुश्च विजयं नाम शंखं च रिपुघातिनम् ।

अन्यान्यपि महार्हणि भूषणानि प्रदत्तवान् ॥१०

तस्य सिहासनं प्रादादक्षयं सूर्यसन्निभम् ।

ततः सिहासनासीनः सर्वाभिरणभूषितः ।

वभूवातीव तेजस्वी रत्नमुत्तेजितं यथा ॥११

वभूवुरथ देतेयास्तयाष्टो तु महावलाः ।  
 इन्द्रशत्रुरमित्रध्नो विद्युन्माली विभीषणः ।  
 उग्रकर्मांगधन्वा च विजयश्रुतिपारगः ॥ १२  
 सुमोहिनी कुमुदिनी चित्रांगी सुन्दरी तथा ।  
 चतुर्खो वनितास्तस्य वभूवुः प्रियदर्शनाः ॥ १३  
 तमसेवंत कालज्ञा देवाः सर्वे सवासवाः ।  
 स्यंदनास्तुरगा नागाः पादाताश्च सहस्रशः ॥ १४

दो चमर भी चन्द्रमा के समान थे जो सजीव थे और ब्रह्माजी के ही द्वारा निर्मित हुए थे । इसके निषेवण करने का यह प्रभाव था कि सेवन करने वाले कोई भी रोग और दुःख नहीं हुआ करता था । उनको भी इसने धारण किया था । तो उसका जो आतपत्र (छत्र) भी पहिले ही निर्मित किया हुआ ब्रह्माजी ने ही प्रदान किया था जिसकी छाया में जो भी उपविष्ट होते हैं उनको करोड़ों अस्त्र भी कुछ बाधा नहीं दिया करते हैं । १५ विजय नामक धमुष और रिपुओं का घात करने वाला शंख था । उनके अतिरिक्त अन्य-अन्य भी बहुत कीमती भूषण प्रदान किये थे । १०। उसको जो सिंहासन प्रदान किया था वह अक्षय था और सूर्य के समान था उस पर वह बैठकर उत्तेजित रत्न के ही सहश अतीव तेजस्वी हो गया था । ११। उसके आठ देतेय महा बलवान हुए थे—उनके नाम ये थे—इन्द्र शत्रु—अभित्रध्न—विद्युन्माली—विभीषण—उग्र कर्मा—उग्रधन्वा—विजय—श्रुतिपारग । १२। उसकी चार प्रिय दर्शन वाली पत्नियाँ थीं जिनके नाम ये हैं—सुमोहिनी—कुमुदिनी—चित्रांगी और सुन्दरी । १३। काल के ज्ञान रखने वाले इन्द्र के सहित सभी देवगणों ने उसकी सेवा की थी । उसके पास सहस्रों ही रथ—अश्व—गज और पदाति सैनिक थे । १४।

संबभूवुर्महाकाया महांतो जितकाशिनः ।  
 वभूवुर्दानवाः सर्वे भृगुपुत्रमतानुगाः ॥ १५  
 अर्चयंतो महादेवमास्थिताः शिवशासने ।  
 बभूवुर्दानवास्तत्र पुत्रपौत्रधनान्विताः ।  
 गृहे गृहे च यज्ञाश्च संबभूवुः समंततः ॥ १६

ऋचो यजून्निष सामानि मीमांसान्यायकादयः । १६  
 प्रवर्तते स्म देत्यानां भूयः प्रतिगृहं तदा ॥१७  
 यथा श्रमेषु मुख्येषु मुनीनां च द्विजन्मनाम् । १८  
 तथा यज्ञेषु देत्यानां बुभुजुर्हव्यभोजिनः ॥१९  
 एवं कृतवतोऽप्यस्य भंडस्य जितकाशिनः । २०  
 षष्ठिवर्षसहस्राणि व्यतीतानि क्षणार्थवत् ॥२१  
 वर्धमानमथो देत्यं तपसा च बलेन च । २२  
 हीयमानबलं चेन्द्रं संप्रेक्ष्य कमलापतिः ॥२३  
 ससर्ज गहसा कांचिन्मायां लोकविमोहिनीम् । २४  
 तामुवाच ततो मायां देवदेवो जनार्दनः ॥२५

उसके सभी दानव भृगुपुत्र के मत का अनुगमन करने वाले थे और इन सबके कलेवर बहुत विशाल थे और ये जितकाशी थे । १५। ये सबके सब महादेवजी का अर्चन किया करते थे और सर्वदा शिव के ही शासन में समाप्ति रहते थे । वहाँ पर जो भी दानव गण थे वे सब पुत्रों-पौत्रों और धन से सुम्पन्न थे और घर-घर में चारों ओर यज्ञ हुआ करते थे । १६। ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद-मीमांसा और न्याय शास्त्र आदि समस्त वेद और शास्त्र उस समय में प्रत्येक घर में पुनः प्रवृत्त हो गये थे । १७। मुनियों के और द्विजों के मुख्य आश्रमों में तथा यज्ञों में जो कि देत्यों के थे हव्य के भोजन करने वाले भोजन किया करते थे । १८। इस रीति से करने वाले जित काशी भंड के सहस्र वर्ष आधे क्षण के ही समान व्यतीत हो गये थे । १९। तप से और बल के द्वारा बढ़ते हुए इस भण्ड देत्य को और क्षीण होने वाले बल से मुक्त इन्द्र को देखकर कमलापति ने माया के रचना करने का विचार किया था । २०। और तुरन्त ही लोकों का विमोहन करने वाली कोई एक माया का सृजन किया था । फिर देवों के भी देव जनार्दन प्रभु ने उस माया से कहा था । २१।

त्वं हि सर्वाणि भूतानी मोहयन्ती निजीजसा ।  
 विचरस्व यथाकामं त्वां न ज्ञास्यति कश्चन ॥२२  
 त्वं तु गीव्रमितो गत्वा भंडं देतेयनायकम् ।

मोहयित्वाचिरेणैव विषयानुपभोक्ष्यसे ॥२३  
 एवं लब्ध्वा वरं माया तं प्रणम्य जनादनम् ।  
 ययाचेऽप्सरसो मुख्याः साहृद्यार्थं काश्चन ॥२४  
 तथा संप्राणितो भूयः प्रेषयामास काश्चन ।  
 ताभिविश्वाचिमुख्याभिः सहिता सा मृगेक्षणा ।  
 प्रथमौ मानसस्याग्रच तटमुज्ज्वलभूरुहम् ॥२५  
 यत्र कीडति दंत्येद्वो निजनारीभिरन्वितः ।  
 तत्र सा मृगशावाक्षी मूले चंपकशाखिनः ।  
 निवासमकरोद्रम्यं गायन्ती मधुरस्वरम् ॥२६  
 अथागतस्तु दंत्येद्वो बलिभिर्मत्रिभिर्वृतः ।  
 श्रुत्वा तु वीणानिनदं ददशं च वरांगनाप् ॥२७  
 तां हृष्ट्वा चाहसर्वांगीं विद्युल्लेखामिवापराम् ।  
 मायामये महागते पतितो मदनांभिष्ठे ॥२८

तू तो अतीव अद्भुत प्रभाव वाली है । तू अपने ही ओज से समस्त प्राणियों का मोहन किया करती है । अब तू अपनी ही इच्छा के अनुसार विचरण कर और तुमको कोई भी नहीं जान सकेगा । २२। अब तू यहाँ से शीघ्र ही जाकर देत्यों के नायक भण्ड के समीप में पहुँच जा । और तुरन्त ही उसको मोहित कर दे कि विषयों को उपयोग करेगा । २३। इस प्रकार का वरदान प्राप्त करके उस माया ने जनादन प्रभु को प्रणाम किया था । फिर उस माया ने भगवान् से सहायता करने के लिए कुछ प्रमुख अप्सराओं के प्राप्त करने की याचना की थी । २४। जब माया के द्वारा प्रार्थना की गयी थी तो प्रभु ने कुछ अप्सराएँ भेजी थीं उन अप्सराओं में विश्वाची आदि प्रमुख थीं । उस सबके साथ वह मृगेक्षण। माया वहाँ से प्रस्थान कर गयी थी । वह मानसरोवर के उत्तम तट पर गयी थी जहाँ पर उत्तम द्रुम लगे हुए थे । २५। वह ऐसा सुरम्य स्थल था कि वह देत्यराज वहाँ पर अपनी नारियों से युक्त होकर विहार की क्रीड़ा किया करता था । उसी स्थल में वह मृग के शावक के समान नेत्रों वाली माया एक चम्पक वृक्ष के मूल में

थी । २६। इसके अनन्तर वह देत्यराज अपने मन्त्रियों के सहित वहाँ पर आ गया था । उसने वीणा की परम मधुर छवनि का श्रवण किया था और फिर उस वराञ्जना को भी देखा था । २७। उस सुन्दर अंगों वाली को देख कर दूसरी विद्युत् की लेखा के ही समान थी वह मदन नामक माया से परिपूर्ण महान् गर्ते में गिर गया था । २८।

अथास्य मंत्रिणोऽभूवन्हृदये स्मरतापि ताः ॥२६

तेन दैतेयनाथेन चिरं संप्रार्थिता सती ।

तंश्च संप्रार्थितास्ताश्च प्रतिशुश्रुतुरंजसा ॥३०

यास्त्वलभ्या महायज्ञेरश्वमेधादिकैरपि ।

ता लब्ध्वा मोहिनीमुख्या निवृत्तिं परमां ययुः ॥३१

विसस्मरुस्तदा वेदांस्तथा देवमुमापतिम् ।

विजहुस्ते तथा यजक्रियाश्चान्याः शभावहाः ॥३२

अवमानहतश्चासीत्तेषामपि पुरोहितः ।

मुहूर्तंमिव तेषां तु ययावद्दायुतं तदा ॥३३

मोहितेष्वथ देत्येषु सर्वे देवाः सवासवाः ।

विमुक्तोपद्रवा ब्रह्मन्नामोदं परमं ययुः ॥३४

कदाचिदथ देवेऽद्र वीक्ष्य सिहासने स्थितम् ।

सर्वदेवैः परिवृतं नारदो मुनिराययौ ॥३५

इसके अनन्तर उसके मन्त्रीगण भी उनका स्मरण करने वाले के साथ ही थे । २६। उस देत्यों के स्वामी ने बहुत समय तक उस सती से प्रार्थना की थी । उनके द्वारा जब भली भाँति उनसे प्रार्थना की गयी थी तो उन्होंने भी तुरन्त ही प्रति श्रवण किया था । ३०। जो बड़े-बड़े यज्ञों के द्वारा जैसे अश्व मेधादिक यज्ञ हैं इनके द्वारा भी अलभ्य होती हैं उनको जिनमें मोहिनी मुख्य थी प्राप्त करके उनको बहुत ही अधिक आनन्द प्राप्त हुआ था । ३१। फिर तो उन सबने उस समय में भोग विलास के आनन्द में निमग्न होकर वेदों को भुला दिया था और उमापति देव का जो अर्चन था वह भी छोड़ दिया था । यज्ञादिक की जो भी अन्य परम शुभ के देने वाली क्रियाएँ थी उनका भी परित्याग कर दिया था । ३२। फिर तो उनके जो

पुरोहित थे उनका भी अपमान करके उन्हें छोड़ दिया था । उनके सहस्रों वर्ष एक मृहूत्तं के ही समान व्यतीत हो गये थे । ३३। उन समस्त देवतों के विमोहित हो जाने पर इन्द्रदेव के सहित सब देवगण हे ब्रह्मान् ! विमुक्त उपद्रव वाले होकर परम आनन्द को प्राप्त हो गये थे । ३४। इसके अनन्तर किसी समय में देवेन्द्र को अपने सिंहासन पर विराजमान देखकर जो कि समस्त देवों से धिरा हुआ अवस्थित था नारद मुनि वहाँ पर समागत हो गये थे । ३५।

**प्रणम्य मुनिशार्दूलं ज्वलंतमिव पावकम् ।**

**कृतांजलिपुटो भूत्वा देवेशो वाक्यमब्रवीत् ॥३६॥**

**भगवन्सर्वधर्मज्ञं परापरविदां वर ।**

**तत्रैव गमनं ते स्याद्यं धन्यं कर्तुं मिच्छुसि ॥३७॥**

**भविष्यच्छोभनाकारं तवागमनकारणम् ।**

**त्वद्वाक्यामृतमाकर्ण्य श्रवणानंदनिर्भरम् ।**

**अशेषदुःखान्युत्तीर्यं कृतार्थः स्याः मुनीश्वर ॥३८॥**

**नारद उवाच—**

**अथ संमोहितो भंडो दैत्येन्द्रो विष्णुमायया ।**

**तया विमुक्तो लोकांस्त्रीन्दहेताग्निरिवापरः ॥३९॥**

**अधिकस्तव तेजोभिरस्त्रैर्मयाबलेन च ।**

**तस्य तेजोऽपहारस्तु कर्तन्योऽतिवलस्य तु ॥४०॥**

**विनाराधनतो देव्याः पराणक्तेस्तु वासव ।**

**अशक्योऽन्येन तपसा कल्पकोटिशतैरपि ॥४१॥**

**पुरैवोदयतः शत्रोराराधयत बालिशाः ।**

**आराधिता भगवती सा वः श्रेयो विद्वास्यति ॥४२॥**

जाज्वल्यमान अग्नि के समान परम तेजस्वी मुनि शार्दूल को प्रणाम करके अपने दोनों हाथों को जोड़ कर देवेन्द्र ने यह वाक्य कहा था । ३६। हे भगवन् ! आप तो सभी धर्मों के ज्ञान रखने वाले हैं और आप परावर के ज्ञाताओं में भी परम श्रेष्ठ हैं । आपका गमन तो वहाँ पर हुआ करता है

जिसको आप धन्य बनाना चाहते हैं । ३७। आपके शुभ आगमन का कारण भविष्य को परम शुभ बताने वाला होता है । हे मुनीश्वर ! श्रवणों को परमानन्द उपजाने वाले आपके मुख से निःसृम वाक्य को सुनकर मैं समस्त दुःखों को पार करके परम कृतार्थ होऊँगा । ३८। श्री नारदजी ने कहा— देत्यों का स्वामी भण्ड विष्णु को माया से सम्प्रोहित हो गया है । उसके द्वारा विमुक्त हुआ वह तीनों लोकों को दूसरी अग्नि के ही समान दहन करता है । ३९। वह तेजों से-अस्त्रों से और मायाके बलसे आपसे भी अधिक है । उस अत्यधिक बलबान् के तेज का अपहरण अवश्य ही करना चाहिए । ४०। हे इन्द्र ! पराशक्ति देवी की आराधना के बिना किसी भी अन्य तप से सेकड़ों करोड़ कल्पों में भी उसके अति बल का अपहरण नहीं हो सकता है । ४१। हे मूर्खों ! उदीयमान शत्रु के पूर्व में ही आराधना करो अथति शत्रु जैसे ही बढ़ रहा हो उसी समय में पहिले ही आराधना करनी चाहिए । आराधना की हुई वह भगवती तुम्हारा श्रेय कर देगी । ४२।

एवं संबोधितस्तेन शको देवगणेश्वरः ।

तं मुनिं पूजयामास सर्वदेवैः समन्वितः ।

तपसे कृतसन्नाहो ययो हैमवतं तटम् ॥४३॥

तत्र भागीरथोतीरे सर्वंतुं कुसुमोजज्वले ।

पराशक्तेमंहापूजां चक्रेऽखिलसुरैः समम् ।

इन्द्रप्रस्थमभून्नाम्ना तदाद्यखिलसिद्धिदम् ॥४४॥

ब्रह्मात्मजोपदिष्टेन कुर्वतां विधिना पराम् ।

देव्यास्तु महतीं पूजां जपध्यानरतात्मनाम् ॥४५॥

उग्रे तपसि संस्थानामनन्यापितचेतसाम् ।

दण्वर्षसहस्राणि दण्वाहानि च संयुः ॥४६॥

मोहितानथ तान्वष्टवा भृगुपुत्रो महामतिः ।

भंडासुरं समध्येत्य निजगाद पूरोहितः ॥४७॥

त्वामेवाश्रित्य राजेंद्रं सदा दानवसत्तमाः ।

निर्भयालित्रषु लोकेषु चरंतीच्छाविहारिणा ॥४८॥

जातिमात्रं हि भवतो हंति सर्वान्सदा हरिः ।

तेनैव निर्मिता माया यया संमोहितो भवान् ॥४६

उस महामुनि के द्वारा इस प्रकार से जब देवगणों के स्वामी को सम्बोधित किया गया था तो उस इन्द्र ने सब देवों के सहित मुनि का पूजन किया था और तपश्चर्या करने के लिये तैयारी करने वाला वह हैमवान् के तट पर चला गया था । ४३। वहाँ पर सब ऋतुओं के कुसुमों से समुज्ज्वल भागीरथी गंगा के तीर पर समस्त सुरगणों के साथ उस इन्द्र ने उस पराशक्ति की महा पूजा की थी । उस समय से ही लेकर अखिल सिद्धियों का प्रदान करने वाला वह स्थल इन्द्रप्रस्थ नाम वाला हो गया था । ४४। ब्रह्माजी के पुत्र नारदजी के द्वारा उपदेश की गयी विधि से जप और ध्यान में निरत आत्मा वालों की उस देवी की महती परा पूजा करने वालों को बहुत समय व्यतीत हो गया था । ४५। वे सभी परम उग्र तप में संस्थित थे तथा अन्य किसी में भी उनका चित्त न लगकर उसी में निरत था । ऐसे उनको करते हुए दश सहस्र वर्ष और दश दिन बीत गये थे । ४६। इधर महामति भृगु के ने उन समस्त देव्यों को मोहित देखकर वह भण्डासुर के समीप में पहुँचे थे और उससे पुरोहित जी ने कहा था । ४७। हे राजेन्द्र ! आपका ही समाश्रय लेकर सदा ही सब दानव गण निर्भय होकर तीनों लोकों में चरण किया करते हैं और अपनी इच्छा से ही विहार करते हैं । ४८। हरि भगवान् तो आपकी पूर्ण जाति का ही हनन किया करते हैं और सदा सबका विनाश करते हैं । उन्हीं के द्वारा इस माया की रचना की गयी है जिसके द्वारा आप समोहित हो गये हैं । ४९।

भवतं मोहितं दृष्ट्वा रंधान्वेषणतत्परः ।

भवतां विजयार्थीय करोतीद्रो महत्तपः ॥५०

यदि तुष्टा जगद्वात्री तस्यैव विजयो भवेत् ।

इमां मायामयीं त्यक्त्वा मंत्रिभिः सहितो भवान् ।

गत्वा हैमवतं शैलं परेषां विघ्नमाचर ॥५१

एवमुक्तस्तु गुरुणा हित्वा पर्यंकमुत्तमम् ।

मंत्रिवृद्धानुपाहृय यथावृत्तांतमाह सः ॥५२

तत्त्वं त्वा त्रपति प्राप्त थत्यर्थं विमृश्य त ।

षष्ठिवर्षं सहस्राणां राज्यं तव शिवापितम् ॥५३

तस्मादप्यधिकं वीर गतमासीदनेकणः ।

अग्रवयप्रतिकार्योऽयं यः कालशिवचोदितः ॥५४

अग्रवयप्रतिकार्योऽयं तदभ्यर्चनतो विना ।

काले तु भोगः कर्त्तव्यो दुःखस्य च सुखस्य वा ॥५५

अथाह भीमकर्मण्यो नोपेक्ष्योऽरिर्यथाबलम् ।

क्रियाविघ्ने कृतेऽस्मामिर्विजयस्ते भविष्यति ॥५६

जब आप मोहित हो गये हैं तो ऐसी अवस्था में आपको देखकर छिद्रों की खोज में परायण इन्द्र आपके ऊपर विजय प्राप्त करने के लिये महान् तप कर रहा है । ५०। यदि जगत् की धात्री देवी प्रसन्न हो गयी तो फिर उसी की विजय होगी । इसलिए इस मायामयी को छोड़कर मन्त्रियों के साथ अन्य है मवन्त पर्वत पर जाओ और उन देवों के नृप में विघ्न पैदा करो । ५१। श्री गुरुदेव के द्वारा जब इस रीति से कहा गया था तब दैत्येन्द्र ने अपना उत्तम पर्यंक त्याग दिया था और वृद्ध मन्त्रियों को बुलाकर को भी वृत्त था वह सब कह सुनाया था । ५२। इसका श्रवण करके श्रुतवर्मा ने विचार करके राजा से कहा था । आपका राज्य शासन साठ हजार वर्षों तक ही शिव ने आपको प्रदान किया था । ५३। हे वीर ! अब तो उसने समय से भी अधिक समय व्यतीत हो चुका है और अनेकों वर्ष निकल गये हैं । यह समय तो भगवान् शिव के द्वारा ही दिया गया था । अब इसका कोई भी प्रतीकार नहीं किया जा सकता है । ५४। अब उनके ही अभ्यर्चना के बिना यह राज्य का रहना असम्भव है और इसका कोई भी प्रतिकार नहीं हो सकता है । यह तो काल है इसमें तो मुख और दुःख का भोग करना होगा । ५५। इसके अनन्तर जो भीमकर्मा नाम वाला मन्त्री था उसने कहा— जहाँ तक बल है शत्रु की कभी भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए । हम लोगों के द्वारा जब क्रिया का विघ्न किया जायेगा तो ऐसा करने पर आपका ही विजय होगा । ५६।

तव युद्धे महाराज परार्थं बलहारिणी ।

दत्ता विद्या शिवेनैव तस्मात्ते विजयः सदा ॥५७

अनुमेने च तद्वाच्यं भंडो दानवनायकः ।

निर्गत्य सह सेनाभिर्यौ हैमवतं तटम् ॥५८  
 तपोविघ्नकरान्दृष्ट्वा दानवाऽजगदंविका ।  
 अलंघ्यमकरोदग्रे महाप्राकारमुज्ज्वलम् ॥५९  
 तं दृष्ट्वा दानवेंद्रोऽपि किमेतदिति विस्मितः ।  
 संकुद्धो दानवास्त्रेण बंभजातिवलेन तु ॥६०  
 पुनरेव तदग्रेऽभूदलंघ्यः सर्वदानवैः ।  
 वायव्यास्त्रेण तं धीरो बभंज च ननाद च ॥६१  
 पौनः पुन्येन तद्भूस्म प्राभूत्पुनरूपस्थितम् ।  
 एतदृष्ट्वा तु दैत्येन्द्रो विषण्णः स्वपुरं ययौ ॥६२  
 तां च हृष्ट्वा जगद्वात्रीं हृष्ट्वा प्राकारमुज्ज्वलम् ।  
 भयाद्विव्यथिरे देवा विमुक्तसकलकियाः ॥६३

हे महाराज ! आपके युद्ध में परों के बल के हरण करने वाली विद्या भगवान् शिव ने ही प्रदान की है इसलिए आपकी सदा ही विजय होगी ।५७। दानवों के नायक भण्ड ने उसके बाक्य को मान लिया था और सेनाओं के साथ वह निकल कर हैमवत के तट पर चला गया था ।५८। जगम्बिका ने तपश्चर्या के अन्दर विघ्न डालने वालों को देखा था उसने आगे उज्ज्वल जो महा प्रकार था उसको न लाँघने के योग्य बना दिया था ।५९। उसको देखकर वह दानवेन्द्र भी यह क्या है—इस बात से अत्यधिक विस्मित हो गया था । वह अधिक क्रुद्ध होगया था और उसने दानवास्त्र के द्वारा उसको भंग करना चाहा था ।६०। वह फिर भी उसके आगे गया था किन्तु वह सभी दानवों के द्वारा न लाँघने के योग्य हो गया था । और उस धीर ने दानवास्त्र के द्वारा उसका भंग किया था और बड़ी गजना भी की थी ।६१। बारम्बार भी ऐसा करने से वह भस्म फिर समुत्पन्न हो गयी थी और उपस्थित हो गयी थी । यह देखकर वह दानवेन्द्र परम विषाद से युक्त होकर अपने पुर को चला गया था ।६२। देवों ने उस जगत् की धात्री का दर्शन किया था और उस उज्ज्वल प्राकार को भी देखा था । देवगण भय से बहुत ही व्यथित हो गये थे और उन्होंने समस्त क्रियाओं को छोड़ दिया था ।६३।

तानुवाच ततः शक्रो दैत्येन्द्रोऽयमिहागतः ।

अशक्यः समरे योद्धुमस्माभिरखिलैरपि ॥६४

पलायितानामपि नो गतिरन्या न कुत्रचित् ।

कुण्डं यीजनविस्तारं सम्यक्कृत्वा तु शोभनम् ॥६५

महायागविद्वानेन प्रणिधाय हुताशनम् ।

यजामः परमां शक्तिं महामासैर्वयं सुराः ॥६६

ब्रह्मभूता भविष्यामो भोक्यामो वा त्रिविष्टपम् ।

एवमुक्तास्तु ते सर्वे देवाः सेन्द्रपुरोगमाः ॥६७

विद्यिवज्जुहुवुर्मासा न्युत्कृत्योत्कृत्य मंत्रतः ।

हुतेषु सर्वगांसेषु पादेषु च करेषु च ॥६८

होतुमिच्छत्सु देवेषु कलेवरमशेषतः ।

प्रादुर्वंभूव परमन्तेजः पुंजो ह्यनुत्तमः ॥६९

तन्मध्यतः समुद्भूच्चकाकारमनुत्तमम् ।

तन्मध्ये तु महादेवीमुदयाकंसमप्रभाम् ॥७०

इसके पश्चात् इन्द्र देव ने उन देवगणों से कहा था कि यह दैत्येन्द्र यहाँ पर आ गया है और इसको इन सभी लोग भी जीतने में युद्ध में असमर्थ है । ६४। अगर हम सब लोग यहाँ से भागते भी हैं तो भी हमारी कहीं पर भी अन्य कोई गति नहीं है । एक योजनके विस्तार वाला कुण्ड बनाकर जो बहुत ही अच्छा और सुन्दर हो हम सब यज्ञ का कार्य सम्पन्न करें । ६५। महायाग का जो भी विद्वान है उसी से हुताशन का प्रणिधान करें । हम सब सुरगण महा मांसों से इस परमा शक्ति का ही इस समय में यजन करें । ६६। हम सब लोग ऐसा करने से ब्रह्मभूत हो जायेंगे अथवा स्वर्ग लोक का भोग करेंगे । इस प्रकार से जब सब देवों से कहा गया था तो इन्द्र ही जिनमें अश्रणी था वे सभी देवगण प्रस्तुत हो गये थे । ६७। फिर उन्होंने मन्त्रों के द्वारा काट-काट कर विद्यि पूर्वक मांसों से हवन किया था । शरीरों के समस्त मांस का हवन करने पर तथा चरणों और करों का भी होम करने पर जब उन्होंने अपना सम्पूर्ण शरीर ही हवन कर देने की इच्छा की थी तो उसी समय एक परम उत्तम तेज का पुञ्ज प्रादुर्भूत हुआ था । ६८-६९।

उस तेज के पुञ्ज के मध्य से एक चक्र के समान आकार का पदार्थ समुत्पन्न हुआ था और उसके मध्य में समुदित सूर्य के सहश प्रभा से समन्वित देवी प्रकट हुई थी । ७०।

जगदुज्जीवनकरीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम् ।

सौन्दर्यसारसीमां तामानन्दरससागराम् ॥७१॥

जपाकुसुमसंकाशां दाढिमीकुसुमांबराम् ।

सवभिरणसंयुक्तां शृङ्गारंकरसालयाम् ॥७२॥

कृपातरंगितापांगनयनालोककीमुदीम् ।

पाशांकु शेख्कोदंडपंच बाणलसत्कारम् ॥७३॥

तां विलोक्य महादेवी देवाः सर्वे सवासवाः ।

प्रणेमुमुदितात्मानो भूयोभूयोऽखिलात्मिकाम् ॥७४॥

तथा विलोकिताः सद्यस्ते सर्वे विगतज्वराः ।

सम्पूर्णांगा दृढतरा वज्रदेहा महाबलाः ।

तुष्टुवुश्च महादेवीमंबिकामखिलार्थदाम् ॥७५॥

अब उस महादेवी के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—वह देवी इस जगत् के उज्जीवन करने वाली थी और ब्रह्मा—विष्णु और शिव के स्वरूप वाली थी । उसका स्वरूप सौन्दर्य के सार की सीमा ही था । और वह आनन्द के रस का सागर थी । ७१। उसका कलेवर जपा के पुष्पों के सहश था और उसके वस्त्र दाढिमी के कुसुमों के समान वर्ण वाले थे । वह सभी आभरणों से भूषित थी तथा शृङ्गार रस का एक स्थल स्वरूप वह थी । ७२। कृपा से तरंगित अपांगों वाले नेत्रों से प्रकाश करने वाली वह कोमुदी थी । उसके करों में पाश—अंकुश—इक्षु—को दण्ड और पाँच बाण थे जिससे वह परम सुशोभित थी । ७३। उस महादेवी का दर्शन करके इन्द्र के सहित समस्त देवगणों ने बारम्बार प्रसन्न मनों वाले होकर उस अखिलात्मिका के चरणोंमें प्रणाम किया था । ७४। उसके द्वारा अवलोकित होकर सभी देवगण दुःख रहित हो गये थे । उनके सब अंग पूर्ण हो गये थे और बहुत अधिक सुदृढ़—वज्र के समान देहों वाले तथा महान् बल से सम्पन्न हो गये थे । सब कुछ देने वाली उस अम्बिका महादेवी का उन्होंने स्तबन किया

## ॥ ललिता स्तवराज वर्णन ॥

देवा ऊचुः-

जय देवि जगन्मातर्जय देवि परात्परे ।

जय कल्याणनिलये जय कामकलात्मिके ॥१

जयकारि च वामाक्षि जय कामाक्षि सुन्दरि ।

जयाखिलसुराराध्ये जय कामेशि मानदे ॥२

जय ब्रह्मामये देवि ब्रह्मात्मकरसात्मिके ।

जय नारायणि परे नन्दिताशेषविष्टपे ॥३

जय श्रीकण्ठदयिते जय श्रीललितेंविके ।

जय श्रीविजये देवि विजयश्रीसमृद्धिदे ॥४

जातस्य जायमानस्य इष्टापूर्तस्य हेतवे ।

नमस्तस्य त्रिजगतां पालयित्र्ये परात्परे ॥५

कलामुहूर्तकाष्टाहर्मासतुं शरदात्मने ।

नमः सहस्रशीषयि सहस्रमुखलोचने ॥६

नमः सहस्रहस्ताब्जपादपंकजशोभिते ।

अणोरणुतरे देवि महतोऽपि महीयसि ॥७

देवों ने कहा—हे परसे भी परे ! हे देवि ! आप तो इस समस्त जगत् की माता हैं, आपकी जय हो । आप तो सबके कल्याण करने का स्थल हैं और आप काम कला का स्वरूप वाली हैं, आपकी जय हो ॥१। हे परम सुन्दर नेत्रों वाली ! हे कागाक्षि ! हे सुन्दरि ! आप जय करने वाली हैं । आप समस्त सुरों की आराधन करने के योग्य हैं । हे कामेशि ! आप मान देने वाली हैं आपकी जय हो—जय हो ॥२। हे ब्रह्मामये ! हे देवि ! आप तो ब्रह्मात्मक रस के स्वरूप वाली हैं । हे नारायणि ! आप परा हैं जो सम्पूर्ण स्वर्ग वासियों के द्वारा बन्दित हैं ॥३। आप श्री कण्ठ (शिव) की दायिता हैं आपकी जय हो । हे श्री ललिताम्बिके ! हे देवि ! आप श्री की विजय तथा श्री की समृद्धि का प्रदान करने वाली हैं ॥४। हे पर से भी परे ! जो जन्म आरण कर चुका है और जन्म लेने वाला है आप उसके इष्टा पूत्त की हेतु

हैं। तीनों जगतों की पालन करने वाली उन आपके लिए हमारा सबका नमस्कार है ।५। कला—काष्ठा—मुहूर्त—दिन—मास—ऋतु और वर्षों के स्वरूप वाली आप हैं। सहस्र शीर्ष—मुख और लोचनों वाली आपके लिए हमारा प्रणाम है ।६। आप सहस्र हाथ—चरण कमलों से परम शोभित हैं। आप अणु तथा महान् से भी अधिक महान् से भी अधिक महान् हैं। हे देवि ! आपके लिए हमारा नमस्कार है ।७।

परात्परतरे मातस्तेजस्तेजीयसामपि ।

अतलं तु भवेत्पादौ वितलं जानुनी तव ॥८॥

रसातलं कटीदेशः कुक्षिस्ते धरणी भवेत् ।

हृदयं तु भुवलोकः स्वस्ते मुखमुदाहृतम् ॥९॥

दृश्यश्चन्द्राकंदहना दिशस्ते बाहूवोंविके ।

मरुतस्तु तवोच्छ्वासा वाचस्ते श्रुतयोऽखिलाः ॥१०॥

क्रीडा ते लोकरचना सखा ते चिन्मयः शिवः ।

आहारस्ते सदानन्दो वासस्ते हृदये सताम् ॥११॥

दृश्यादृश्यरूपाणि स्वरूपाणि भुवनानि ते ।

शिरोरुहा घनास्ते तु तारकाः कुसुमानि ते ॥१२॥

धर्मद्या बाहूवस्ते स्युरधर्मद्यायुधानि ते ।

यमाश्च नियमाश्चैव करपादरुहास्तथा ॥१३॥

स्तनो स्वाहास्वधाकरी लोकोऽजीवनकारकी ।

प्राणायामस्तु ते नासा रसना ते सरस्वती ॥१४॥

हे माता ! आप पर से भी पर हैं और जो भी तेज धारण करने वाले हैं उनका भी तेज आप ही हैं। यह अतल लोक आपके दोनों चरण हैं और वितल लोक आपके दोनों जानु हैं ।८। रसातल आपका कटिभाग है और यह धरणी आपकी कुक्षि हैं। आपका मुख स्वलोक है तथा भुवलोक आपका हृदय है ।९। चन्द्र—सूर्य और अग्नि आपके नेत्र हैं। वायु आपके अच्छ्वास हैं और श्रुति (कान) आपकी वाणी है ।१०। यह समस्त लोकों की रचना आपकी क्रीड़ा है और ज्ञान से परिपूर्ण भगवान् शिव ही आपके सखा हैं। सर्वदा आनन्द का रहना हो आपका आहार है तथा आपका

निवास स्थल सत्पुरुषों का हृदय है । ११। ये समस्त भुवन ही आपके देखने के योग्य और अदृश्य रूप हैं । ये घन ही आपके केश हैं तथा तारागण आपके केशों में लगे हुए पुष्प हैं । १२। ये धर्म आदि सब आपकी भुजाएँ हैं और अधर्म आदि सब आपके आयुध हैं । समस्त यम और नियम आपके कर और पाद के । १३। स्वाहा और स्वधा के आकार वाले ही आपके दो स्तन हैं जो लोकों के उज्जीवन करने वाले हैं । प्राणायाम ही आपकी नासिका है तथा सरस्वती देवी ही आपकी रचना है । १४।

**प्रत्याहारस्त्वद्वियाणि ध्यानं ते धीस्तु सत्तमा ।**

**मनस्ते धारणाशक्तिहृदयं ते समाधिकः ॥ १५ ॥**

**महीरुहास्तेंगरुहाः प्रभातं वसनं तव ।**

**भूतं भव्यं भविष्यच्च नित्यं च तव विग्रहः ॥ १६ ॥**

**यज्ञरूपा जगद्वात्री विश्वरूपा च पावनी ।**

**आदी या तु दयाभूता ससर्ज निखिलाः प्रजाः ॥ १७ ॥**

**हृदयस्थापि लोकावामदृश्या मोहनात्मिका ॥ १८ ॥**

**नामरूपविभागं च या करोति स्वलीलया ।**

**तान्यधिष्ठाय तिष्ठन्ती तेष्वसत्त्वार्थकामदा ।**

**नमस्तस्यै महादेव्यै सर्वशक्तयै नमोनमः ॥ १९ ॥**

**यदाज्ञया प्रवर्तते वह्निसूर्येदुमारुताः ।**

**पृथिव्यादीनि भूतानि तस्यै देव्यै नमोनमः ॥ २० ॥**

**या ससर्जदिधातारं सर्गदावादिभूरिदम् ।**

**दधार स्वयमेवैका तस्यै देव्यै नमोनमः ॥ २१ ॥**

आपका प्रत्याहार ही इन्द्रियाँ हैं और ध्यान ही परम श्रेष्ठ बुद्धि है । आपकी धारणा शक्ति ही मन है और आपका हृदय समाधिक है । १५। पर्वत ही आपके अज्ञरुह हैं और प्रभात आपका वसन है । भूत-भव्य-भविष्य और नित्य आपका विग्रह है । १६। जगत् की धात्री आप यत्र स्वरूप वाली हैं और परम पावनी विश्व के रूप वाली हैं । जिसने आदि काल में दया के स्वरूप वालों होकर इन समस्त प्रजाओं का सृजन किया था । १७। आप सबके हृदयों में स्थित भी रहती हुई मोहन रवरूप वाली लोकों के लिए

अदृश्य हैं। १८। आप अपने नामों का और रूप का विभाग अपनी ही लीला से किया करती है। आप उनमें अधिष्ठित रहकर ही स्थित रहा करती है और उनमें जो असक्त हैं उनके अर्थी और कामनाओं के प्रदान करने वाली हैं। उन महादेवी के लिए बारम्बार नमस्कार है और सर्वशक्ति को बार-बार प्रणाम है। १९। जिसकी आज्ञा से ही ये अग्नि—सूर्य तथा चन्द्रमा अपने-अपने कार्यों में प्रवृत्त हुआ करते हैं और पृथिवी आदि ये भूत भी कार्यरत रहा करते हैं उस देवी के लिये बारम्बार प्रणाम है। २०। जिसने आदि धाता का सृजन किया था और जिसने सर्ग के आदि काल में आदि भू का रूप धारण किया था तथा इस सबको स्वयं एक ही ने धारण किया था उस देवी के लिए अनेक बार प्रणाम है। २१।

यया धृता तु धरणी यथाकाशमभेययः ।

यस्यामुदेति सविता तस्यै देव्यै नमोनमः ॥२२॥

यत्रोदेति जगत्कृत्स्नं यत्र तिष्ठति निर्भरम् ।

यत्रांतमेति काले तु तस्यै देव्यै नमोनमः ॥२३॥

नमोनमस्ते रजसे भवायै नमोनमः सात्त्विकसंस्थितायै ।

नमोनमस्ते तमसे हरायै नमोनमो निर्गुणतः शिवायै ॥२४॥

नमोनमस्ते जगदेकमात्रे नमोनमस्ते जगदेकपित्रे ।

नमोनमस्तोऽखिलरूपतंत्रे नमोनमस्तोऽखिलयन्त्ररूपे ॥२५॥

नमोनमो लोकगुरुप्रधाने नमोनमस्तोऽखिलबाग्विभूत्यै ।

नमोऽतु लक्ष्म्यै जगदेकतुष्ट्यै नमोनमः ॥२६॥

शांभवि सर्वशक्त्यै ॥२६॥

अनादिमध्यांतमपाञ्चभौतिकं ह्यवाङ्मनोगम्यमतकर्यवैभवम्

अरूपमद्वंद्वमद्विगोचरं प्रभावमग्रयं कथमंव वर्णये ॥२७॥

प्रसीद विश्वेश्वरि विश्ववंदितो प्रसीद विद्येश्वरि वेदरूपिण

प्रसीद मायामयि मंत्रविग्रहे प्रसीद सर्वेश्वरि सर्वरूपिणि ॥२८॥

जिसने इस धरणी को धारण किया है और जिस अमेया ने इस

यह अन्त का प्राप्त हो जाता है उस देवा के लिए बार-बार नमस्कार निवेदित है । २३। आप रजो रूपा भवा के लिए मेरा नमस्कार है तथा सात्त्विक संस्थिता के लिए नमस्कार है । तमोरूपहरा आपको नमस्कार है । निर्गुण स्वरूपा शिवा आपको प्रणाम है । २४। आप इस सम्पूर्ण जाति की एक ही माता हैं ऐसी आपको बारम्बार नमस्कार है । इस जगत् की आप ही एक-मात्र पिता अर्थात् जनक हैं ऐसी आपके लिए अनेक बार नमस्कार हैं । आपका यह सम्पूर्ण स्वरूप तन्त्र है तथा आप अखिल यन्त्र रूपा हैं ऐसी आप की सेवा में अनेकशः हमारा प्रणाम निवेदित है । २५। आप लोक गुरु की प्रधान हैं ऐसी अखिल वाग् की विभूति के लिए हमारा बार-बार प्रणाम है । लक्ष्मी के लिए तथा जगत् की एक तुष्टि के लिए हमारा बारम्बार नमस्कार है । हे शाम्भवि ! सर्वशक्ति आपको प्रणाम है । २६। हे अम्ब ! आपका प्रभाव अत्युत्तम है तथा अनादि मध्यान्त है—अपाञ्च भौतिक है—वाणी मन से अगम्य है और अप्रतक्यं वैभव वाला है । वह रूप तथा द्वन्द्व से रहित है एवं हृष्टिगोचर नहीं है, मैं किस प्रकार से इसका वर्णन करूँ । २७। हे विश्वेश्वरि ! हे विश्व वन्दिते ! हे वेदों के स्वरूप वाली ! आप प्रसन्न होइये । हे मायामयि ! हे मन्त्रों के विग्रह वाली ! हे सर्वेश्वरि ! हे सर्वरूपिणि ! आप प्रसन्न होइए । २८।

इति स्तुत्वा महादेवीं देवाः सर्वे सवासवाः ।  
भूयोभूयो नमस्कृत्य शरणं जग्मुरञ्जसा ॥२९  
ततः प्रसन्ना सा देवी प्रणतं वीक्ष्य वासवम् ।  
वरेणाच्छन्दयामास वरदाखिलदेहिनाम् ॥३०

इन्द्र उवाच—

यदि तुष्टासि कल्याणि वरं दैत्येद्रं पीडितः ।  
दुर्धरं जीवितं देहि त्वां गताः शरणार्थिनः ॥३१

श्री देव्युवाच—

अहमेव विनिजित्य भंडं दैत्यकुलोद्भवम् ।  
आहरात्तव तास्यामि त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥३२

निर्भया मुदिताः सन्तु सर्वे देवगणास्तथा ।

ये स्तोष्यन्ति च मां भक्त्या स्तवेनानेन मानवाः ॥३३

भाजनं तो भविष्यन्ति धर्मश्रीयशसां सदा ।

विद्याविनयसंपन्ना नीरोगा दीर्घजीविनः ॥३४

पुत्रमित्रकलत्राद्या भवन्तु मदनुग्रहात् ।

इति लब्धवरा देवा देवेन्द्रोऽपि महाबलः ॥३५

आमोदं परमं जगमुस्तां विलोक्य मुहुमुहुः ॥३६

इस प्रकार से बहुत से बहुत लम्बी स्तुति करके इन्द्र के सहित समस्त देवगण महादेवी को बार-बार प्रणाम करके तुरन्त ही जगदम्बा के शरण में चले गये थे ।२६। फिर वह देवी परम प्रसन्न हो गयी थी और उसने इन्द्र को अपने चरणों में प्रणत देखा था । फिर समस्त देहणारियों को वरदान देने वाली देवी ने उसको वरदान देने के लिए कहा था ।२०। इन्द्र ने कहा—हे कल्याणि ! यदि आप मुझ पर सुप्रसन्न हैं तो मैं तो देत्येन्द्र से पीड़ित हूँ । मुझे यही वरदान देवें कि मेरा दुर्घट जीवित होवे । हम लोग आपकी शरण में समागत हैं ।२१। श्री देवी ने कहा—मैं स्वयं ही देत्य कुल में समुत्पन्न भण्ड को विनिजित करके धरा से लेकर तीनों लोकों को जिसमें सभी चर-अचर है तुझको दे दूँगी ।२२। फिर समस्त देवगण निर्भय और प्रसन्न होंगे और जो मनुष्य सदा ही धर्म-श्री और यश के भाजन होंगे तथा वे नीरोग-विद्या तथा विनय से सम्पन्न और दीर्घ जीवन होंगे ।२४। वे मेरे अनुग्रह से पुत्र-मित्र और कलत्र से सुसम्पन्न होंगे । इस रीति से देवगण और महान बलदान देवेन्द्र भी वर प्राप्त करने वाले होगये थे और बारम्बार उस जगदम्बा का दर्शन करके परमाधिक आनन्द को प्राप्त हो गये थे ।३५-३६।

— X —

॥ मदन कामेश्वर प्रादुर्भाव वर्णन ॥

हयग्रीव उवाच—

एतस्मिन्नेव काले तु ब्रह्मा लोकपितामहः ।

आजगामाथ देवेशीं द्रष्टुकामो महर्षिभिः ॥१

आजगाम ततो विष्णुराहृढो विनतासुतम् ।  
 शिवोऽपि वृषमाहृढः समायातोऽखिलेश्वरीम् ॥२  
 देवर्षयो नारदाद्याः समाजग्मुर्महेश्वरीम् ।  
 आययुस्तां महादेवीं सर्वे चाप्सरसां गणाः ॥३  
 विश्वावसुप्रभृतयो गन्धवश्चिव यक्षकाः ।  
 ब्रह्मणाथ समादिष्ठो विश्वकर्मा विशांपतिः ॥४  
 चकार नगरं दिव्यं यथामरपुरं तथा ।  
 ततो भगवती दुर्गा सर्वमन्त्राधिदेवता ॥५  
 विद्याधिदेवता श्यामा समाजग्मतुरंविकाम् ।  
 ब्राह्म्याद्या मातरश्चैव स्वस्वभूतगणावृताः ॥६  
 सिद्ध्यो ह्यणिमाद्याश्च योगिन्यश्चैव कोटिशः ।  
 भैरवाः क्षेत्रपालाश्च महाशास्ता गणाग्रणीः ॥७

हययीव ने कहा—इसी समय में लोकों के पितामह—ब्रह्माजी उस देवेशी के दर्शन करने की इच्छा वाले महर्षियों के साथ वहाँ पर समागत हो गये थे । इसके पश्चात् भगवान विष्णु की गहड़ पर समाख्य होकर वहाँ पर आ गये थे । भगवान शिव भी वृष पर सवार होकर अखिलेश्वरी के दर्शनार्थ आ गये थे ।१-२। नारद आदि देवर्षिगण महेश्वरी के समीप में समागत हो गये थे । सभी अप्सराओं के समुदाय भी महादेवी के दर्शनार्थ आ गये थे ।३। विश्वावसु आदि गन्धवं और यक्ष भी वहाँ पर आये थे । ब्रह्माजी के द्वारा आदेश पाकर विशांपति विश्वकर्मा ने एक दिव्य नगर की रचना की थी जैसा कि साक्षात् अमर पुर ही होवे । इसके पश्चात् सब मन्त्रों की अधिदेवता श्यामा ये सब अम्बिका के समीप में समागत हुए थे । ब्राह्मी आदि समस्त मातृगण अपने-अपने भूतगणों के साथ समावृत होकर वहाँ पर आयी थीं ।४-६। अणिमा-महिमा आदि आठ सिद्धियाँ और करोड़ों योगिनियों वहाँ पर आ गयी थीं । भैरव और क्षेत्रपाल-महाशास्ता गणों के अग्रणी वहाँ समागत हुए ।७।

महागणेश्वरः स्कन्दो वटुको वीरभद्रकः ।

आगत्य ते महादेवीं तुष्टुवुः प्रणतास्तदा ॥८

तत्राथ नगरीं रम्यां साटप्राकारतोरणाम् ।  
 गजाश्वरथशालाद्यां राजवीथिविराजिताम् ॥६  
 सामन्तानाममात्मानां सैनिकानां द्विजन्मनाम् ।  
 वेतालदासदासीनां गृहाणि रुचिराणि च ॥१०  
 मध्यं राजगृहं दिव्यं द्वारगोपुरभूषितम् ।  
 शालाभिर्बहुभिर्युक्तं सभाभिरुपशोभितम् ॥११  
 सिहासनसभां चंब नवरत्नमयीं मुभाम् ।  
 मध्ये सिहासनं दिव्यं चितामणिविनिमितम् ॥१२  
 स्वयं प्रकाशमद्वद्मुदयादित्यसंनिभम् ।  
 विलोक्य चितयामास ब्रह्मा लोकपितामहः ॥१३  
 यस्त्वेतत्समविष्टाय वर्तते बालिशोऽपि वा ।  
 पुरस्यास्य प्रभावेण सर्वलोकाधिको भवेत् ॥१४

महान् गणों के ईश्वर स्वामी कात्तिकेय-वटुक-बीरभद्र-इन सबने आकर उस समय में प्रणत होकर महादेवी का स्तवन किया था । वहाँ पर जो एक नगरी की थी वह नगरी परमाधिक सुरम्य थी उसमें बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ—प्राकार और विणाल तोरण थे । उसमें गजअश्व और रथ शालाएँ थीं । तथा राज वीथियाँ भी विद्वमान थीं । जिनसे वह परम शोभित हो रही थी । ६। उसमें सभी के पृथक्-पृथक् परम सुन्दर गृह बने थे—सामन्तों के—अमात्यों के—सैनिकों के और ब्राह्मणों के एवं वेताल के—दासों के और दासियों के गृह निमित थे । १०। उस नगरी के मध्य में द्वारों और गोपुरों से समन्वित परम दिव्य राजगृह था । जिसमें बहुत सी शालायें और सभाएँ बनी हुई थीं । जिससे वह राजगृह उपशोभित था । ११। उसमें एक सिहासन सभा थी जो नी प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण और परम शुभ थी । उसके मध्य में एक दिव्य सिहासन था जो चिन्ता मणियों के द्वारा ही निमित था । जिस मणि के समक्ष मैं जो चिन्तन किया जावे वही प्राप्त हो जाता है उसी को चिन्तामणि कहा जाता है । १२। वह सिहासन स्वयं प्रकाश करने वाला—अद्वन्द्व और उदित सूर्य के समान प्रभा वाला था । लोकों के पितामह ब्रह्माजो ने जब उसका अवलोकन किया तो वे मन में

न हो, इस पर अविषित होता है वह इस परम मुरम्यपुर के प्रभाव से सभी लोकों से अधिक होता है । १४।

न केवला स्त्री राज्याहार्षी पुरुषोऽपि तथा विना ।

मंगलाचार्यसंयुक्तं महापुरुषलक्षणम् ।

अनुकूलांगनायुक्तमभिषिचेदिति श्रुतिः ॥ १५ ॥

विभातीयं वरारोहा मूर्ता शृङ्गारदेवता ।

वरोऽस्यास्त्रिषु लोकेषु न चान्यः शङ्करादृते ॥ १६ ॥

जटिलो मुण्डधारी च विरूपाक्षः कपालभृत् ।

कल्माषी भस्मदिग्धांमः श्मशानास्थिविभूषणः ॥ १७ ॥

अमंगलास्पदं चैनं वरयेत्सा सुमंगला ।

इति चितयमानस्य ब्रह्मणोऽग्ने महेश्वरः ॥ १८ ॥

कोटिकन्दपंलावण्ययुक्तो दिव्यगरीरवान् ।

दिव्यांबरघरः स्त्रवी दिव्यगत्वानुलेपनः ॥ १९ ॥

किरीटहारकेयूरकुण्डलाद्यैरलंकृतः ।

प्रादुर्बभूव पुरतो जगन्मोहनरूपधृक् ॥ २० ॥

तं कुमारमथालिंग्य ब्रह्मा लोकपितामहः ।

चक्रे कामेश्वरं नाम्ना कमनीयवपुर्धरम् ॥ २१ ॥

केवल स्त्री तो इस राज्य के योग्य नहीं है और केवल पुरुष भी स्त्री से रहित जो हो वह भी इसके योग्य नहीं है । श्रुति का कथन तो यही है कि—मञ्जुल भय आचार्य से संयुत और महापुरुषों के लक्षण वाला तथा जो अनुकूल अञ्जना से युक्त हो उसीका राज्यासन पर अभिषेक करना चाहिए । १५। यह वरारोहा शोभित होती है जो मूर्तिमती शृङ्गार की देवता है । इसका वर भी तीनों लोकों में भगवान् शिव के अतिरिक्त अन्य कोई भी नहीं है । १६। किन्तु शङ्कर तो जटा जूट धारीमुण्डों की माला धारण करने वाले-विरूप नेत्रों से युक्त और हाथ में कपाल प्रहण करने वाले हैं वे तो कल्माषी-भस्म से भूषित अञ्जों वाले और श्मशान की अस्थियों के भूषणों वाले हैं । १७। शिव तो पूर्णतया अमञ्जुलों के स्थान हैं । क्या यह सुमञ्जला उनका वरण करेगी यही इस प्रकार से ब्रह्माजी मन में विचार कर रहे थे

कि उसी समय में ब्रह्माजी के आगे महेश्वर प्रकट हो गये थे । १८। उनका स्वरूप उस समय में करोड़ों कामदेवों के लावण्य से युक्त था और परम दिव्य शरीर से वे युक्त थे । उनके वस्त्र भी परम दिव्य थे तथा मालाएँ धारण किये हुए दिव्य सुगन्धित अनुलेपन वाले थे । १९। वे किरीट—कुण्डल—केयूर और हार आदि आभरणों से समलङ्घित थे । इस प्रकार का जगत् के तोहन करने वाले स्वरूप को धारण किये हुए ब्रह्माजी के सामने प्रादुर्भूत हुए थे । २०। लोक पितामह ब्रह्माजी ने उस कुमार का आलिङ्गन करके उनका नाम कामेश्वर रखा दिया था क्योंकि वे परम कमनीय को धारण करने वाले थे । २१।

तस्यास्तु परमाशक्तेरनुरूपो वरस्त्वयम् ।

इति निश्चिय तेनैव सहितास्तामथाययुः ॥२२

अस्तुवंस्तु परां शक्तिं ब्रह्मबिष्णुमहेश्वराः ।

तां हृष्ट्वा मृगशावाक्षीं कुमारो नीललोहितः ।

अभवन्मन्मथाविष्टो विस्मृत्य सकलाः क्रियाः ॥२३

सापि तं वीक्ष्य तन्वंगीमूर्तिमंतमिव स्मरम् ।

मदनाविष्टसर्वांगी स्वात्मरूपममन्यत ।

अन्योन्यालोकनासौ तावुभौ मदनातुरौ ॥२४

सर्वभावविशेषज्ञौ धृतिमंतौ मनस्विनौ ।

परेज्ञातचारित्रौ मुहूर्तस्वस्थचेतनौ ॥२५

अथोवाच महादेवीं ब्रह्मा लोकेनकनायिकाम् ।

इमे देवाश्र ऋषयो गन्धर्वाप्सरसां गणाः ।

त्वामीशां द्रष्टुमिच्छन्ति सप्रियां परमाहवे ॥२६

को वानुरूपस्ते देवि प्रियो धन्यतमः पुमान् ।

लोकसंरक्षणार्थाय भजस्व पुरुषं परम् ॥२७

राज्ञी भव पुरस्यास्य स्थिता भव वरासने ।

अभिषिक्तां महाभागदेवं विभिरकलमषैः ॥२८

साम्राज्यचिह्नसंयुक्तां सर्वाभिरणसंयुताम् ।

सप्रियामासनगतां द्रष्टुमिच्छामहे वयम् ॥२९

उन्होंने कहा था कि यह तो उस परमा शक्ति के सर्वथा अनुकूलवरग है—ऐसा निश्चय करके शिव के ही साथ वे वहाँ देवी के समीप में समागत हो गये थे । २२। उन ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर ने उस पराशक्ति का स्तब्न किया था । उस शक्ति का अवलोकन करके ही जो मृगशावक के समान परम सुन्दर नेत्रों वाली थी वे नोललोहित कुमार समस्त क्रियाओं को भुला कर कामासक्त हो गये थे । २३। वह तन्वज्ञी भी मूर्तिमान् कामदेव के सहस्र उनको देखकर मदन से आविष्ट अज्ञ वाली उसने भी उसको अपने ही अनुरूप मान लिया था । परस्पर में एक दूसरे के देखने में आसक्त दोनों ही काम से आतुर हो गये थे । ये दोनों ही सक्त भावों की विशेषता के ज्ञाता-धृति (धीरज) मान् और परम मनस्वी थे । दूसरों के द्वारा इनका चरित्र ज्ञात नहीं हो सकता है ऐसे ये दोनों ही एक मुहूर्त मात्र समय तक तो चेतना से शून्य हो गये थे । २४। इसके उपरान्त ब्रह्मा जी उस लोकों की एक नायिका से बोले—ये देवगण—शृणि लोग—गन्धर्व और अप्सराओं का समुदाय स्वामिनी आपको इस परमाहृत्व में अपने प्रिय के ही साथ में समन्वित देखने की इच्छा रखते हैं । २५। हे देवि ! अब आप यही कृपया बतलाइए कि आपका अनुरूप प्रिय कौनसा धन्यतम पुरुष है ? अब आप लोकों के सरक्षण के लिए परम पुरुष का सेवन करिए । २६। आप इस नगर की महारानी बनिए और इस वरासन पर विराजमान होइए । इन कल्मष रहित देवियों के द्वारा ही हे महाभागे आप अभिषिक्त हो जाइए । २७। हम तो अब यही अपने नेत्रों से देखने की अभिलाषा रखते हैं कि आप साम्राज्य के चिह्नों से समन्वित होवें और सभी आभरणों से समलड़कृत होवें । आप अपने परम प्रिय के साथ आसन पर स्थित होवें । २८।

— X —

### वैवाहिकोत्सव वर्णन

तच्छ्रुत्वा वचनं देवी मंदस्मितमुखांबुजा ।

उवाच स ततो वाक्यं ब्रह्मविष्णुमुखान्सुरात् ॥ १ ॥

स्वतंत्राहं सदा देवाः स्वेच्छाचारविहारिणी ।

ममानुरूपचरितो भविता तु मम प्रियः ॥ २ ॥

तथेति तत्प्रतिश्रुत्य सर्वेऽद्वैः पितामहः ।

उवाच च महादेवीं धर्मर्थसहितं वचः ॥ ३ ॥

कालक्रीता क्रयक्रीता पितृदत्ता स्वयंयुता ।

नारीपुरुषयोरेवमुद्वाहस्तु चतुर्विधः ॥४

कालक्रीता तु वेश्या स्यात्क्रयक्रीता तु दासिका ।

गन्धवोद्धाहिता युक्ता भार्या स्यात्पितृदत्तका ॥५

समानधर्मिणी युक्ता पितृवशंवदा ।

यदद्वैतं परं ब्रह्म सदसद्भाववर्जितम् ॥६

चिदानन्दात्मकं तस्मात्प्रकृतिः समजायत ।

त्वमेवासीन्च तद्ब्रह्म प्रकृतिः सा त्वमेव हि ॥७

यह श्रवण करके देवी के मुख कमल पर मन्द सी मुस्कान रेखा दौड़ गयी थी । इसके अनन्तर उस देवी ने उन ब्रह्मादिक जिनमें प्रमुख थे उन देवों से कहा था—हे देवगणो ! मैं परम स्वतन्त्र हूँ और सदा ही अपनी ही इच्छा से विहार करने वाली हूँ । मेरे ही अनुरूप चरित वाला ही मेरा प्रिय होगा । १-२। ऐसा ही होगा—यह प्रतिज्ञा करके सब देवों के साथ पितामह ने उस देवी से धर्मर्थ के सहित वचन कहा था । ३। विवाह तो चार प्रकार का हुआ करता है—नारी और पुरुष का विवाह होता है—एक तो काल क्रीता नारी होती है—एक क्रय क्रीतानारी है—एक पितृदत्ता है और एक स्वयं युता होती है । काल क्रीता वेश्या होती है जो कुछ काल तक उपभोग के काम आती है । क्रयक्रीता दासी होती है जिसको जीवन भर भोग के लिए खरीद लिया जाया करता है । गान्धवं विवाह से अर्थात् दोनों ही रजा मन्दी से प्रेम करके नारी बना लेते हैं यह स्वसंयुता होती है और जो भार्या होती है वह तो कन्या को पिता दान किया करता है, यही पितृदत्ता है । ४। समान धर्म वाली भार्यायुक्त होती है जो पिता के वशंवदा होती है और पिता जिसको भी योग्य वर समझता है उसे ही अपनी कन्या को दे दिया करता है । जो ब्रह्म अद्वैत है और सदसद्भाव से वर्जित है वह चिदानन्द स्वरूप वाला है । उसे प्रकृति समुत्पन्न हुआ करती है । आप ही तो वह ब्रह्म हैं और आप ही प्रकृति हैं । ६-७।

त्वमेवानादिरखिला कायंकारणरूपिणी ।

त्वमेव सिद्धिप्राप्ति योगिना तत्कामा ॥

सदसत्कर्मरूपां च व्यक्ताव्यक्तो दयातिमकाम् ।

त्वामेव हि प्रशंसंसंति पञ्चब्रह्मस्वरूपिणीम् ॥६

त्वामेव हि सृजस्यादौ त्वमेव ह्यवसि क्षणात् ।

भजस्व पुरुषं कंचिल्लोकानुग्रहकाम्यया ॥७

इति विज्ञापिता देवी ब्रह्मणा सकलैः सुरे: ।

सृजमुद्यम्य हस्तेन चिक्षेप गगनांतरे ॥८

तयोत्सृष्टा हि सा माला शोभयन्ती नभःस्थलम् ।

पपात् कण्ठदेशे हि तदा कामेश्वरस्य तु ॥९

ततो मुमुदिरे देवा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ।

ववृषुः पुष्पवर्षाणि मन्दवातेरिता घनाः ॥१०

अथोवाच विधाता तु भगवंतं जनार्दनम् ।

कर्तव्यो विधिनोद्वाहस्त्वनयोः शिवयोहंरे ॥११

हे देवि ! आप ही अखिला-अनारादि और कायं का रण दोनों के स्वरूप वाली हैं । सनकादि योगीजन आपको ही खोजा करते हैं । ८। सत् और असत् कर्मों के स्वरूप वाली—व्यक्त तथा अव्यक्त-दया से स्वरूप वाली आप ही की पर ब्रह्म स्वरूप वाली की सब प्रशंसा किया करते हैं । आप ही आरम्भ में सृजन किया करती हैं और आप ही क्षण भर में परिपालन किया करती हैं । अब लोकों पर अनुग्रह करने की आकाढ़क्षा से ही आप किसी भी पुरुष का सेवन करिये ॥६-१०। इस प्रकार से ब्रह्माजी तथा समस्त सुरों के द्वारा जब वह देवी विज्ञापित की गयी थी तो उसने अपने हाथ से एक माला उठाकर नभ मण्डल के मध्य में प्रक्षिप्त कर दी थी ॥११। उस देवी के द्वारा ऊपर की ओर प्रक्षिप्त की हुई वह माला आकाश मण्डल को सुशोभित करती हुई उस समय में कामेश्वर प्रभु के कण्ठ भाग में आकर गिर गयी थी ॥१२। फिर तो ब्रह्मा और विष्णु जिनमें अग्रणी थे ऐसे समस्त देवगण बहुत प्रसन्न हुए थे और मन्द वायु से सम्प्रेरित मेघों ने पुष्पों की वर्षा की थी ॥१३। इसके अनन्तर विधाता ने भगवान् जनार्दन से कहा—हे हरे ! अब इन दोनों शिव और शिवा का उद्वाह वैदिक विधान से करा देना चाहिए । ॥१४।

मुहूर्तो देवसम्प्राप्तो जगन्मंगलकारकः ।

त्वद्गूपा हि महादेवी सहजश्च भवानपि ॥१५

दातुमहंसि कल्याणीमस्मे कामशिवाय तु ।

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य देवदेवस्त्रिविक्रमः ॥१६

ददौ तस्यै विधानेन प्रीत्या तां शङ्कराय तु ।

देवषिपितृमुख्यानां सर्वेषां देवयोगिनाम् ॥१७

कल्याणं कारयामास शिवयोरादिकेशवः ।

उपायनानि प्रददु सर्वे ब्रह्मादयः सुराः ॥१८

ददौ ब्रह्मेकुचापं तु बज्रसारमनश्वरम् ।

तयोः पुष्पायुधं प्रादादम्लानं हरिरव्ययम् ॥१९

नागपाशं ददौ ताभ्यां वरुणो यादसांपतिः ।

अङ्गकुशं च ददौ ताभ्यां विश्वकर्मा विशांपतिः ॥२०

किरीटमग्निः प्रायच्छत्ताटंकौ चन्द्रभास्करौ ।

नवरत्नमयीं भूषां प्रादाद्रत्नाकरः स्वयम् ॥२१

अब देव से सम्प्राप्त जगत् का मङ्गल करने वाला मुहूर्त् प्राप्त हो गया है । यह महादेवी आपके ही स्वरूप वाली है और आप भी सहज ही हैं । १५। इस कल्याणी को आप देने के योग्य होते हैं और इन काम रूप शिव के लिये प्रदान कर दीजिए । देवों के देव त्रिविक्रम भगवान् ने यह श्रवण करके उस देवी का दान करने का उपक्रम किया था । १६। उन देवगण योगिगण सब देव-ऋषि और पितृगणों के मध्य में भगवान् विष्णु ने उस देवी को वैदिक विधि से भगवान् शङ्कर को प्रदान किया था और बड़ी प्रसन्नता से वह कन्यादान किया था । १७। आदि केशव प्रभु ने उन दोनों शिवा और शिव का कल्याण करा दिया था और समस्त ब्रह्मादिक सुरगणोंने बहुतसे उपायन समर्पित किये थे । १८। ब्रह्माजी ने तो इक्षु चाप दिया था श्री अविनाशी और बज्र के समान सार वाला था । भगवान् श्रीहरि ने उन दोनों पति-पत्नी को अविनाशी और अम्लान कुसुमों का आयुध समर्पित किया था । १९। जल सागरों के स्वामी वरुण ने उन दोनों के लिए नाग पाश दिया था और निशापति विश्वकर्मा ने उन दोनों के लिए अंकुश अपित किया था । २०।

अग्नि देव ने किरीट समर्पित किया था और चन्द्र तथा भास्कर देवों ने दो ताटक दिये थे। रत्नाकर ने स्वयं समुपस्थित होकर नौ प्रकार के रत्नों से परिपूर्ण भूषा प्रदान की थी । २१।

ददौ सुराणामधिष्ठो मधुपात्रमथाक्षयम् ।

चिन्तामणिमयीं मालां कुवेरः प्रददौ तदा ॥ २२ ।

साम्राज्यसूचकं छत्रं ददौ लक्ष्मीपतिः स्वयम् ।

गङ्गा च यमुना ताम्यां चामरे चन्द्रभास्वरे ॥ २३ ।

अष्टी च वसवो रुद्रा आदित्याश्चाश्विनो तथा ।

दिक्पाला मरुतः साध्या गन्धवीः मथेश्वराः ।

स्वानिस्वान्यायुधान्यस्यै प्रददुः परितोषिताः ॥ २४ ।

रथाश्व तुरगान्नागान्महावेगान्महावलान् ।

उष्ट्रानरोगानश्वांस्तान्कुतृष्णापरिवर्जितान् ।

ददुर्वज्रोपमाकारान्सायुधान्सपरिच्छदान् ॥ २५ ।

अथाभिषेकमातेनुः साम्राज्ये शिवयोः शिवम् ।

अथाकरोद्दिमानं च नाम्ना तु कुसुमाकरम् ॥ २६ ।

विधाताम्लानमालं वै नित्यं चाभेद्यमायुधैः ।

दिवि भूव्यंतरिक्षे च कामगं सुसमृद्धिमत् ॥ २७ ।

यद्गन्धद्वाणमात्रेण भ्रांतिरोगक्षुधार्तयः ।

तत्कषणादेव नश्यन्ति मनोहृलादकरं शुभम् ॥ २८ ।

सुरगणों के अधिष्ठ महेन्द्र ने उस समय में एक अक्षय मधुपात्र दिया था। उस समय में कुवेर ने एक माला दी थी जो चिन्तामणियों से निर्मित की हुई थी। २१। लक्ष्मी के स्वामी नारायण ने स्वयं ही एक साम्राज्य का सूचक छत्र अर्पित किया था। गङ्गा और यमुना ने उनको चन्द्र के ही समान भास्कर दो चमर दिए थे। २३। आठ वसुगण रुद्रगण-आदित्य-अश्विनी-कुमार-दिक्पाल-मरुदगण-साध्य-गन्धवी-प्रमथेश्वर-इन सभी ने परम परितोषित होते हुए अपने-अपने आयुध उस महादेवी के लिए समर्पित किये थे। २४। और रथ—तुरग तथा नाग जो महान बली और अधिक वेग से समन्वित थे एवं नीरोग उष्ट्र (ऊंट) और अश्व जो क्षुधा और प्यास से रहित

ये एवं वज्र की उपमा के आकार वाले ये तथा आयुधों के सहित एवं परिच्छदों से युक्त थे दिए थे । २५। इसके अनन्तर उन दोनों शिवा और शिव का परम मंगल अभिषेक किया था । इसके उपरान्त एक विमान बनवाया था जिसका नाम कुसुमाकर था । २६। इसकी रचना विद्याता ने की थी जो कि अम्लान मालाओं वाला था तथा नित्य ही आयुधों के द्वारा अभेद्य था । यह इच्छा के अनुरूप दिवलोक और भूलोक में गमन करने वाला तथा सुसमृद्धि से समन्वित था । २७। जिसके केवल गन्ध से ही ऋत्निक्षुधा-रोग और आत्ति सब नष्ट हो जाया करती हैं और यह मन के आट्टलाद को करने वाला तथा परम शुभ था । २८।

तद्विमानमथारोप्य तावुभी दिव्यदंपती ।

चामरव्यजनच्छत्रध्वजयश्मिनोरहरम् ॥२६॥

वीणावेणुमृदंगादिविविद्यस्तौर्यवादनैः ।

सेव्यमाना सुरगणनिर्गत्य नृपमन्दिरात् ॥३०॥

ययौ वीथीं विहारेणा शोभायन्ती निजौजसा ।

प्रतिहम्यग्रिसंस्थाभिरप्सरोभिः सहस्रः ॥३१॥

सलाजाक्षतहस्ताभिः पुरंधीभिऽच वर्षिता ।

गाथाभिर्मगलार्थाभिर्वीणावेण्वादिनिस्वनैः ।

तुष्यन्ती वीथिवीथीषु मन्दमन्दमथाययौ ॥३२॥

प्रतिगृह्याप्सरोभिस्तु कृतं नीराजनाविधिम् ।

अवरुद्ध विमानाग्रात्प्रविवेश महासभाम् ॥३३॥

सिंहासनमधिष्ठाय सह देवेन शम्भुना ।

यद्यद्वांछंति तत्रस्था मनसैव महाजनाः ।

सर्वज्ञा साक्षिपातेन तत्तत्कामानपूरयत् ॥३४॥

तददृष्ट्वा चरितं देव्या ब्रह्मा लोकपितामहः ।

कामाक्षीति तदाभिख्यां ददौ कामेश्वरीति च ॥३५॥

उस विमान पर ये दोनों शुभ दम्पती समारूढ होकर नृप मन्दिर से

मनोहरता विद्यमान थी । २६। उस समय में बीणा —बैणु-मृदङ्ग प्रभृति अनेक प्रकार के तौरें बादनों से ये सेव्यमान हो रहे थे । सब सुरगण भी इनकी सेवा में समुपस्थित थे । ३०। बिहार की स्वामिनी अपने ओज से शोभित करती हुई बीयी में गयी थी । वहाँ पर बड़े-बड़े धनियों के हम्ख्य बने हुए थे । प्रत्येक हम्ख्यों की छत पर सहस्रों अप्सरायें बंठी थीं । ३१। वहाँ पर जो पुरन्धियाँ थीं उनके हाथों में लाजा और अक्षत थे जिनकी वे वर्षा कर रही थीं । परम मंगल अर्थों वाली गाथायें करती हुई थीं तथा बीणा-बैणु आदि की इवनियों से परम तोष को प्राप्त होती हुई बीयियों से अन्य बीयियों में धीरे-धीरे समागत हो रही थी । ३२। अप्सरायें जो मार्ग में आरती का विधान कर रही थीं उसका प्रति ग्रहण करके उस देवी ने विमान से अवरोहण करके सदा सभा में प्रवेश किया था । ३३। फिर देव शम्भु के ही साथ सिंहासन पर समधिष्ठित हुई थीं । वहाँ पर स्थित महाजन समुदाय ने जो भी इच्छा की थी और मन में ही कामना की थी उस सबका ज्ञान रखने वाली महादेवी ने अपनी हृष्टि के पात के ही ढारा उन-उन सब कामनाओं को पूरा कर दिया था । ३४। लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने उस चरित को देवकर ही उस देवी का उस समय में काँमाक्षी और कामेश्वरी यह नाम रख दिया था । ३५।

ववर्षश्चिर्यमेघोऽपि पुरे तस्मस्तदाज्या ।

महाहर्णि च वस्तूनि दिव्यान्याभरणानि च ॥ ३६ ॥

चितामणिः कल्पवृक्षः कमला कामधेनबः ।

प्रतिवेशम ततस्तस्थुः पुरो देव्या जयाय ते ॥ ३७ ॥

तां सेवैकरसाकारां विमुक्तान्यक्रियागुणाः ।

सर्वकामार्थसंयुक्ता हृष्यतः सार्वकालिकम् ॥ ३८ ॥

पितामहो हरिष्चैव महादेवश्च वासवः ।

अन्ये दिशामधीशास्तु सकला देवतागणाः ॥ ३९ ॥

देवर्षयो नारदाद्याः सनकाद्याश्च योगिनः ।

महर्षयश्च मन्वाद्या वशिष्ठाद्यास्तपोधनाः ॥ ४० ॥

गन्धवर्णिसरसो यक्षा याश्चान्या देवजातयः ।

दिवि भूम्यंतरिक्षेषु ससंबाधं वसन्ति ये ॥४१

ते सर्वे चाप्यसंबाधं निवसन्ति स्म तत्पुरे ॥४२

उसकी आज्ञा से उस पुर में आश्चर्य मेघ ने भी वर्षा की थी और उस वर्षा में बहुत अधिक मूल्यवान वस्तुयें तथा परम दिव्य आभरण वरसे थे । ३६। चिन्तामणि-कस्प वृक्ष-कमला और कामधेनु ये सब प्रति गृह में देवी के नगर में उसकी जय के लिए उपस्थित हो गये थे । ३७। सभी उसकी सेवा में ही तत्पर थे और उसकी सेवा का रस ही उनका सबका आकार था तथा अन्य क्रियाओं के गुणों का परित्याग कर दिया था । ये सभी समस्त कामों के अर्थ से संयुक्त थे तथा सर्व काल में प्रसन्न ही रहा करते थे । ३८। पिता-मह-थीहरि-महादेव-महेन्द्र—अन्य दिशाओं के स्वामी—सब देवगण-नारद आदि महर्षि—वसिष्ठ आदि तपस्वीगण-गन्धर्व—अप्सरायें—यक्ष और जो भी अन्य देवों की जातियाँ हैं जो भी दिव लोक भूमि और अन्तरिक्ष में बाधा-सहित निवास किया करते थे । ३९-४१। वे सभी उसके पुर में बिना ही किसी बाधा के निवास किया करते थे । ४२।

एवं सद्वत्सला देवी नान्यत्रैत्यखिलाज्जनात् ।

तोषयामास सततमनुरागेण भूयसा ॥४३

राजो महति भूलोके विदुषः सकलेप्सिताम् ।

राजी दुदोहाभीष्टानि सर्वभूतलवासिनाम् ॥४४

त्रिलोकैकमहीपाले सांबिके कामशङ्करे ।

दशवर्णसहस्राणि ययुः क्षण इवापरः ॥४५

ततः कदाचिदागत्य नारदो भगवानृषिः ।

प्रणम्य परमां शक्ति प्रोवाच विनयान्वितः ॥४६

परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमेश्वरि ।

सदसद्दावसंकल्पविकल्पकलनात्मिका ॥४७

जगदभ्युदयार्थाय व्यक्तभावमुपागता ।

असज्जनविनाशार्थी सज्जनाभ्युदयार्थिनी ।

प्रवृत्तिस्तव कल्याणि साधूनां रक्षणाय हि ॥४८

अयं भंडोऽसुरो देवि बावते जगतां त्रयम् ।

त्वयैक्यैव जेतव्यो न शक्यस्त्वपरे: सुरः ॥४६

इस प्रकार से सब पर स्नेह एवं प्यार करने वाली वह देवी थी और अन्यत्र ऐसा कहीं भी नहीं था । उस देवी ने समस्त जनों को निरन्तर अत्यधिक अनुराग से सन्तुष्ट कर रखा था । ४३। इस महान् भूलोक में वह राज्ञी राजा हों चाहे विद्वान् हों वे सकल की ईप्सा रखने वाले समस्त भूतल के निवासीजनों के अभीष्ट पदार्थों का दोहन किया करती थी । ४४। तीनों लोकों के एक ही महीपाल अम्बिका के सहित काम शङ्खा के होने पर दश सहस्र वर्ष एक ही क्षण के समान व्यतीत हो गये थे । ४५। इसके अनन्तर देवर्षि नारद जो भगवान् किसी समय में वहाँ पर समागत हुए थे और उस परमा शक्ति को प्रणाम करके उन्होंने विनय से समन्वित होकर कहा था था । ४६। आपतो परब्रह्म-परधाम और पवित्र हैं । हे परमेश्वर ! आप सद-असत् भावों के कलन के स्वरूप वाली हैं । ४७। इस जगत् के अभ्युदय के ही लिए आप इस व्यक्तभाव को प्राप्त हुईं हैं । आप इस लोक में असज्जनों के विनाश के लिए और सज्जनों के अभ्युदय करने वाली हैं । हे कल्याण ! आपकी जो प्रवृत्ति है वह साधु पुरुषों के रक्षण के ही लिए हैं । ४८। यह एक भण्डासुर है हे देवि ! यह तीनों लोकोंको बाधा दे रहा है । यह केवल आप ही के द्वारा जीता जा सकता है ऐसी एक ही आप हैं और दूसरे सुरों के द्वारा तो यह कभी भी जीता नहीं जा सकता है । ४९।

त्वत्सेवकपरा देवाश्चिरकालमिहोषिताः ।

त्वदाज्ञाया गमिष्यन्ति स्वानि स्वानि पुराणि तु ॥५०॥

अमंगलानि शून्यानि समृद्धार्थानि संत्वतः ।

एवं विज्ञापिता देवी नारदेनाखिलेश्वरी ।

स्वस्ववासनिवासाय प्रेषयामास चामरान् ॥५१॥

ब्रह्माणं च हरिं शम्भुं वानवादीन्दिशां पतीन् ।

यथार्हं पूजयित्वा तु प्रेषयामास चांबिका ॥५२॥

अपराधं ततस्त्यक्तुमपि संप्रेषिताः सुराः ।

स्वस्वांशेः शिवयोः सेवामादिपित्रोरकुर्वत ॥५३॥

एतदाख्यानमायुष्यं सर्वमंगलकारणम् ।

आविभविं महादेव्यास्तस्या राज्याभिषेचनम् ॥५४

यः प्रातरुत्थितो विद्वान्भवितश्चद्वासमन्वितः ।

जपेद्धनसमृद्धः स्यात्सुधासंमितवाग्भवेत् ॥५५

नाशुभं विद्यते तस्य परत्रेह च धीमतः ।

यशः प्राप्नोति विपुलं समानोत्त मतामपि ॥५६

ये समस्त देवगण चिरकाल से यहाँ पर ही निवास किये हुए हैं और ये आपकी सेवा में तत्पर हो रहे हैं। ये आपकी ही आज्ञा से अपने-अपने पुरों में जायेंगे ।५०। इनके सब पुर इस समय में शून्य और मङ्गल से रहित हो रहे हैं। ऐसी कृपा कीजिए कि ये सब समृद्ध अर्थों वाले हो जावे। इस रीति से जब नारद मुनि के द्वारा देवी को बताया गया था तो उस अखिलेश्वरी देवी ने देवों को अपने-अपने निवास स्थानों को भेज दिया था ।५१। फिर उस अभिवक्ता ने ब्रह्मा—श्री हरि-शम्भु-इन्द्र आदिक और दिक्पाल देवों का कथोचित पूजन करके विदा कर दिया था ।५२। फिर अपराध का त्याग करने के भी लिए सुरगण प्रेषित किए थे आदि पिता-माता-शिवा-शिव की अपने-अपने अंशों से सेवा भी करते थे ।५३। यह आख्यान आयु की वृद्धि करने वाला है—यह सभी प्रकार के मङ्गलों की कारण है—उस महादेवी का आविभवि का होना तथा उसके राज्यासन पर अभिषेचन का होना मङ्गल प्रद है ।५४। जो कोई पुरुष प्रातःकाल में उठकर भक्तिभाव से संयुत होकर विद्वान् श्रद्धालु बनकर इसका जाप किया करता है वह धन से समृद्ध हो जाता है और उसकी बाणी सुधा के सहश ही परम मधुर हो जाया करती है ।५५। उस धीमान का इस लोक में और परलोक में कहीं पर भी कुछ भी अशुभ नहीं होता है। वह विपुल यश को प्राप्त किया करता है—उसका मान बढ़ता है तथा वह उत्तमता का लाभ किया करता है ।५६।

अचला श्रीर्भवेत्तस्य श्रेयश्चैव पदे पदे ।

कदाचिन्न भयं तस्य तेजस्वीं वीर्यवान्भवेत् ॥५७

तापत्रयविहीनश्च पुरुषार्थेश्च पूर्यते ।

प्रियं योगेन्द्रियं इवासा सिंहासने शशीम् ॥५८

पण्मासान्महतीं लक्ष्मीं प्राप्नुयाऽजापकोत्तमः ॥५६

उसकी श्री चञ्चल होते हुए भी अचल हो जाती है और उसको पद-पद पर श्रेय होता है। उसको भय तो किसी भी समय में होता ही नहीं है और बहुत तेजस्वी लक्ष्मी वीर्य वाला हो जाता है । ५७। उसको तीनों प्रकार के ताप नहीं रहा करते हैं। आध्यात्मिक-आधिभौतिक और आधिदेविक—ये तीन ताप होते हैं और वह पुरुष पुरुषार्थों से परिपूरित होता या करता है। तीनों समयों में (प्रातः-मध्याह्न-सायम्) जो नित्य ही इसका जाप किया करता है और सिंहासनेश्वरी का ध्यान करता है वह उत्तम जापक छै मास में ही महती लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है । ५८-५९।

— X —

### सेना सहित विजय यात्रा

अथ सा जगतां माता ललिता परमेश्वरी ।

त्रैलोक्यकंटकं भंडं दैत्यं जेतुं विनिर्ययौ ॥१

चकार मर्दलाकारानंभोराशींस्तु सप्त ते ।

प्रभूतमद्दर्दलघ्वानैः पूर्यामासुरंबरम् ॥२

मृदंगमुरजाश्चैव पटहोऽतुकुलीगणाः ।

सेलूकाङ्गलरीरांघाहुण्डुकाहुण्डकाघटाः ॥३

आनकाः पणवाश्चैव गोमुखाश्चार्धचंद्रिकाः ।

यवमध्या मुष्टिमध्या मद्दर्दलाङ्गिमा अपि ॥४

झर्णराश्च वरीताश्च इग्यालिग्यप्रभेदजाः ।

उद्धैकाश्चतुहुण्डाश्च निःसाणा बबंराः परे ॥५

हुकारा काकतुण्डाश्च वाद्यभेदास्तथापरे ।

दध्वनुः शक्तिसेनाभिराहताः समरोद्यमे ॥६

ललितापरमेशान्या अंकुशास्त्रात्समुद्गता ।

संपत्करी नाम देवी चचाल सह शक्तिभिः ॥७

इसके अनन्तर वह जगतों की माता परमेश्वरी ललिता तीनों लोकों के कण्टक भण्ड दैत्य को जीतने के लिए वहाँ से विर्गत हुई थी । १। बढ़ा

हुआ जो मद्दंदलों का घोष था उसने उससे आकाश को भी पूरित कर दिया था ।२। मृदंग-मुरज-पटह-अनुकुलीगण-सेलुका-झल्लरी-रघा-हुड़ुक घटा-आनक-पणव-गोमुख-अर्धं चन्द्रिका-तममध्य मद्दंदल-डिण्डम - झर्णर-बरीत-इर्यातिंश्च भेदज-उद्धक-एउ हुण्ड-निःसाण-बर्वर-हैकार-काकतुण्ड तथा ये सब बाढ़ और अन्य बाढ़ों को उस समर के आरम्भ में शक्ति की सेनाओं के द्वारा आहृत किया गया था और ये सभी बजाये गये थे ।३-६। परमेशानी ललिता के अंकुश स्त्र से समुद्रगता सम्पत्करी नाम की देवी अपनी शक्तियों के साथ चलित हो गयी थी ।७।

अनेककोटिमातंगतुरंगरथपत्तिभिः ।

सेविता तरुणादित्यपाटला संपदीश्वरी ॥८

मत्तमुद्दंसंग्रामरसिक शैलसन्निभम् ।

रणकोलाहलं नाम सारुरोह मतंगजम् ॥९

तामन्वगा ययौ सेना महती घोरराविणी ।

लोलाभिः केतुमालाभिरुलिखन्ती घनाघनात् ॥१०

तस्याश्च संपन्नाथायाः पीनस्तनसुसंकटः ।

कंटको घनसंनाहो रुचे वक्षसि स्थितः ॥११

कंपमाना खड़गलता व्यरुचत्तत्करे धृता ।

कुटिला कालनाथस्य भृकुटीव भयंकरा ॥१२

उत्पातवातसंपाताच्छलिता इव पर्वताः ।

तामन्वगा ययुः कोटिसंख्याकाः कुञ्जरोत्तमाः ॥१३

अथ श्रीललितादेव्या श्रीपाशायुधसंभवा ।

अतित्वरितविक्रातिरश्वारुदाचलत्पुरः ॥१४

अनेकों करोड़ गज—अश्व और रथों की पंक्तियों के द्वारा सेवित सम्पदीश्वरी तरुण सूर्य के समान पाटल थी ।८। शैल के सहश मत्त सुदण्ड संग्राम में रसिक रण कोलाहल नामक एक गज पर वह समा रुड़ हुई थी ।९। परम घोर राग बाली बड़ी भारी सेना उसके पीछे अनुगमन करने वाली थी और परम चञ्चल केतुओं की मालाओं से वह सेना घनों को उल्लिसित करती हुई जा रही थी ।१०। उस सम्पदा की स्वामिनी का पीन

(स्थूल) स्तनों में सुसंकट घन के समान कंटक वक्षः स्थल में स्थित शोभित हो रहा था । ११। उसके कर में धरी हुई काँपती हुई खदगलता शोभायुक्त हो रही थी जो कान नाथ की परम भयंकर कुटिला भृकुटी के ही समान थी । १२। उत्पातों के बात की सम्पात वाली चलायमान पर्वतों के ही सहश करोड़ों की संख्या वाले उत्तम कुञ्जर उस सम्पत्करी के पीछे अनुगमन करने वाले थे । १३। इसके अनन्तर श्रीललिता देवी के श्रीपाशायुध से समुत्पन्न अतीव जीव विकान्ति युक्त अश्व पर समाझूँ आगे चल रही थी । १४।

तथा सह हयप्रायं सैन्यं हेषातरंगिर्म् ।

व्यचरत्खुरकुद्वालविदारितमहीतलम् ॥ १५ ॥

वनायुजाश्च कांबोजाः पारदाः सिंधुदेशजाः ।

टकणाः पर्वतीयाश्च पारसीकास्तथा परे ॥ १६ ॥

अजानेया घट्टधरा दरदाः कालवंदिजाः ।

वाल्मीक्यावनोद्भूता गान्धर्वश्चाथ ये हयाः ॥ १७ ॥

प्राग्देशजाताः कैराता प्रांतदेशोद्भवास्तथा ।

विनीताः साधुवोढारो वेगिनः स्थिरचेतसः ॥ १८ ॥

स्वामिचित्तविशेषज्ञा महायुद्धसहिष्णवः ।

लक्षणैर्बहुभियुक्ता जितक्रोधा जितश्रमाः ॥ १९ ॥

पञ्चधारासु शिक्षाद्या विनीताश्च प्लवान्विता ॥ २० ॥

फलशुक्तिश्रिया युक्ताः एवेतशुक्तिसमन्विताः ।

देवपदम् देवमणि देवस्वस्तिकमेव च ॥ २१ ॥

उस देवी के साथ ऐसी सेना थी जिसमें प्रायः अश्व ये जिनकी हिनहिनाहट से वह तरञ्जित थी । उन अश्वों के खुरों की टापों से सम्पूर्ण महीतल विदीर्ण हो रहा था । ऐसी सेना चली थी । १५। उस सेना में विभिन्न प्रकार की जाति के अश्व विद्यमान थे । उनमें वनायुज-काम्बोज-पारद-सिन्धु देश में उत्पन्न होने वाले-टकण-पर्वतीय-पारसीक थे । १६। अजानेय-घट्टधर-दरद-कालवन्दिज-वाल्मीक-यावनोद्भूत और गान्धर्व हूँ थे । १७। उन अश्वों में कुछ प्राग्देशज ये कैरात तथा प्रान्त देशोद्भव

थे । ये सब अश्व बड़े ही विनीत-अच्छी तरह से बहन करने वाले—वेगगति से समन्वित और स्थिर चित्तों वाले थे । १८। वे अश्व सभी ऐसे थे जो अपने स्वामी के मन का भाव जानने वाले थे और महान् युद्ध में परम सहिष्णु रहने वाले थे । उनमें बहुत से अच्छे-अच्छे लक्षण विद्यमान थे तथा ये सभी क्रोध को जीत लेने वाले और परमाधिक परिश्रमी थे । १९। पञ्च धाराओं में शिक्षित—विनीत और प्लवन से संयुत थे । २०। ये फल शुक्ति की श्री से सम्पन्न तथा श्वेत शुक्ति से समन्वित थे । उनमें देव पद्म—देव मणि और देव स्वस्तिक ये सुन्दर लक्षण विद्यमान थे । २१।

अथ स्वस्तिकशुक्तिः गदुरं पुष्पगंडिकाम् ।

एतानि शुभलक्ष्माणि जयराज्यप्रदानि च ।

वहंतो वातजवना वाजिनस्तां समन्वयः ॥२२

अपराजितनामानमतितेजस्तिवनं चलम् ।

अत्यंतोत्तुगवष्मणिं कविकाविलसन्मुखम् ॥२३

पार्श्वद्वयेऽपि पतितस्फुरत्केसरमंडलम् ।

स्थूलबालधिविक्षेपक्षिप्यमाणपयोधरम् ॥२४

जंघाकांडसमुन्नद्धमणिकिङ्किणभासुरम् ।

वादयंतमिवोच्चण्डैः खुरनिष्टुरकुट्टनैः ॥२५

भूमंडलमहावाञ्च विजयस्य समृद्धये ।

घोषमाणं प्रति मुहुः संदर्शितगतिक्रमम् ॥२६

आलोलचामरव्याजाद्वहंतं पक्षती इव ।

भाँडैर्मनोहरैर्युक्तं वर्धरीजालमंडितम् ॥२७

एषां घोषस्य कपटाद्बुकुवंतीमिवासुरान् ।

अश्वारुद्धा महादेवी समारुद्धा हयं ययौ ॥२८

इसके उपरान्त उनमें स्वस्तिक शुक्ति—गदुर और पुष्प गणिका—ये परम शुभ चिह्न विद्यमान थे जो जय और राज्य के प्रदान कराने वाले थे । ऐसे अश्व गण थे जो बहन करने वाले—वायु के समान वेग वाले थे । ऐसे अश्व उस देवी के पीछे गमन करने वाले थे । २२। वह देवी एक ऐसे

एवं बड़ा चञ्चल था । उस अश्व का कलेवर बहुत ही ऊँचा था और उसके मुख में लगाम शोभित हो रही थी । २३। उस अश्व के दोनों ओर केशरों का मण्डल स्फुरित हो रहा था । उसकी पूँछ बहुत ही स्थूल थी जिसके दिक्षेप से पयोधर क्षिप्यमाण हो रहे थे । २४। जंघाओं के भाग में समुन्नद मणियों की धीमी किन किनाहट की ध्वनि से भासुर था । उसके खुरों के निष्ठुर कुहनों से जो बहुत ही तेज थे वादन सा कर रहा था । २५। मानों ऐसा प्रतीत हो रहा था कि विजय की समृद्धि के ही लिए यह महान् वात्स बजाया जा रहा था बार-बार गति के क्रम से छोटा करता हुआ वह संदर्शित हो रहा था । २६। चञ्चल पूँछ जो उसकी बार-बार ऊपर की ओर उठ रही थी वह ऐसी ही प्रतीत हो रही थी मानों दोनों ओर चमर ढुराये जा रहे हों । वह अश्व मनोहर भाण्डों से युक्त था और घर्षणी के जाल से समलंकृत था । २७। इनकी जो महाध्वनि हो रही थी उससे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वह सभी असुरों को हँकार की तर्जना दे रही थी । यह महा देवी अश्व पर समारूढ़ होकर वहाँ से गमन कर रही थी । २८।

चतुर्भिवहुभिः पाशमंकुशं वेत्रमेव च ।

हयवलगां च दधती बहुविक्रमशोभिनी ॥२६॥

तरुणादित्यसङ्घाशा ज्वलस्काञ्चीतरंगिणी ।

सञ्चचाल हयारुद्धा नर्तयन्तीव वाजिनम् ॥३०॥

अथ श्रीदण्डनाथाया निर्यणिपटहृष्वनिः ।

उद्दंडसिन्धुनिस्वानश्चकार बधिरं जगत् ॥३१॥

वज्रबाणः कठोरैश्च भिदंत्यः ककुभो दण ।

अत्युद्धतभुजाश्मानः शक्तयः काश्चिदुच्छ्रुताः ॥२२॥

काश्चिच्छ्रीदण्डनाथायाः सेनानासीरससङ्गताः ।

खड्गं फलमादाय पुण्डुवुश्चंडशक्तयः ॥३३॥

अत्यंतसेन्यसम्बाधं वेत्रसंताडनैः शतैः ।

निवारयन्त्यो वेत्रिण्यो व्युच्चलंति स्म शक्तयः ॥३४॥

अथ तुंगध्वजश्रेणीर्महिषांको मृगांकिकाम् ।

सिहांकाशचैव विभ्राणाः शक्तयो व्युचलन्पुरा ॥३५॥

ततः श्रीदण्डनाथायाः श्वेतच्छत्रं सहस्रशः ।

स्फुरत्ककराः प्रचलिताः शक्तियः काश्चिदाददुः ॥३६

अत्यधिक विक्रम की जोभा वाली वह महा देवी अपने चारों करों में पाश—अंकुश—नेत्र और अश्व की बलगा को लिये हुई थीं ।२१। तरुण सूर्य के समान जाजवल्यमान चमकती हुई काञ्ची की तरज्जु वाली वह अपने अश्व को नचाती हुई-सी अश्व पर समाहृड़ वह वहाँ से चली थी ।२०। इसके अनन्तर श्री दण्ड स्वामिनी की जो निर्माण के पटहकी ध्वनि हो रही थी वह परम उद्दण्ड सागर के घोष के ही समान थी जो कि सम्पूर्ण जगत् को वधिर कर रही थी ।२१। बहुत सी शक्तियाँ उसके आगे चल रही थीं जो कठोर वज्रोपम वाणों के द्वारा दशों दिशाओं का विहनन कर रही थीं । उनकी भुजाएँ अतीव उद्धत अश्व के समान थीं और परम उच्चिष्ठत कोई अद्भुत शक्तियाँ थीं ।२२। कुछ शक्तियाँ उस श्री दण्ड नाथा के सेना नासीर के साथ थीं । ये परम चण्ड शक्तियाँ खद्ग को और फलक को लेकर उछाल खा रही थीं ।२३। संकड़ों ही नेत्रों के सन्ताड़नों से उस सेना की जो सम्बाधा थी उसका क्षेत्रिणी निवारण करती हुई शक्तियाँ ऊपर की ओर चल रही थीं ।२४। इसके पश्चात् ऐसी शक्तियाँ आगे चली थीं जो तुङ्ग ध्वजाओं की श्रेणी और महिष के चिन्हों वाली थीं तथा मृगों के चिन्हों को और सिंह के अञ्जों को धारण करने वाली थीं ।२५। इसके पश्चात् कुछ ऐसी शक्तियाँ थीं जो श्रीदण्ड नाथा के सहस्रों छत्रों को जो श्वेत ये धारण करके चल रहीं थीं जिन छत्रों से उनके कर कमल स्फुरित हो रहे थे ।२६।

## ॥ दण्डनाथा श्यामला सेना यात्रा ॥

दण्डनाथाविनियणे संख्यातीतैः सितप्रभैः ।

छत्रैर्गंगनमारेजे निःसंख्यशशिमण्डितम् ॥१

अन्योन्यसकतैर्धंवलच्छत्रैरंतर्धनीभवत् ।

तिमिरं नुनुदे भूयस्तत्काण्डमणिरोचिषा ॥२

वज्रप्रभाद्वग्धगच्छायापूरितदिङ्मुखाः ।

तालवृन्ताः शतविधाः क्रोडमुख्या बलेऽचलद् ॥३

चण्डो चण्डादयस्तीव्रा भेरवा: शूलपाणयः ।

ज्वलत्केशपिशङ्गाभास्तदिङ्गासुरदिङ्गमुखाः ॥४

दहत्य इव दैत्यौघांस्तीक्ष्णं मर्गिणवह्निभिः ।

प्रचेलुदंडनाथायास्सेना नासीधाविताः ॥५

अथ पोत्रीमुखीदेवीसमानाकृतिभूषणाः ।

तत्समानायुधकरास्तत्समानस्ववाहनाः ॥६

तीक्ष्णदंष्ट्रविनिष्ठयूतवह्निभूमामितांवराः ।

तमालश्यामलाकाराः कपिलाः क्रूरलोचनाः ॥७

इस दण्डनाथा का जो विशेष निर्मण हुआ था उसमें संख्यातीत अथति अगणित छत्र थे जिनकी श्वेत प्रभा थी । उनसे नभोण्डल ऐसा शोभित हो रहा था मानों उसमें अगणित चन्द्रमा उदित हो गये होवें । १। वे परम धबल छत्र एक दूसरे से परस्पर में सट से रहे थे जिनसे उनका अन्तर बहुत ही घना हो गया था । उनके समुदाय में जो मणियाँ थीं उनकी कान्ति से अन्धकार का विनाश हो गया था । २। उस बल में वज्र की प्रभा को भी पराजित करने वाली कान्ति से समस्त दिशाओं के मुखों को पुरित करने वाले सेकड़ों ही प्रकार के क्रोड मुख्य ताल वृन्त चले थे । ३। उस दण्डनाथा की सेनाएँ नासीर से धावित होती हुई वहाँ से चली थीं उसमें जो सैनिक थे वे चण्ड दण्ड आदिक थे तथा परम तीव्र—भेरव और हाथों में शूल लिये हुए थे । वे जलते हुए केशों के समान पिण्डंग आभा से समन्वित थे तथा तडित के समान भासुर थे जिनसे सभी दिशाएँ भी मासुर हो रही थीं । अपनी परम तीक्ष्ण बाणों की अग्नि से देत्यों के समूहों को दग्ध कर रहीं थीं । ४-५। इसके अनन्तर बहुत-सी शक्तियाँ भी उसमें चली थीं जो पोत्री मुखों वाली थीं और उसी के समान आकृति और भूषणों से संयुत थी । उसी के समान उनके करों में आयुध थे तथा उसी के तुल्य उनके अपने बाहन भी थे । ६। उनकी बहुत तीक्ष्ण दाढ़ों थीं जिनसे वे वह्नि और धूम को निकाल रहीं थीं जिससे सम्पूर्ण आकाश परिवृत हो गया था । तमाल वृक्ष के समान उनका श्यामल आकार था तथा कपिल और क्रूर नेत्रों वाली थीं । ७।

सहस्रमहिषारूढाः प्रचेलुः सूकराननाः ।  
 अथ श्रीदंडनाथा च करिचक्ररथोत्तमात् ॥८  
 अवरुद्ध महासिंहमाहरोह स्ववाहनम् ।  
 वज्रघोष इति ख्यातं धूतकेसरमंडलम् ॥९  
 व्यक्तास्य विकटाकारं विशंकटविलोचनम् ।  
 दण्डाकटकट्टकारबधिरीकृतदिवतटम् ॥१०  
 आदिकूर्मकठोरास्थि खर्परप्रतिमेर्नखैः ।  
 पिवंतमिव भूचक्रमापतालं निमज्जिभिः ॥११  
 योजनब्रयमुत्तुंगं वेगादुद्भूतवालधिम् ।  
 सिंहवाहनमारुद्ध व्यचलदंडनायिका ॥१२  
 तस्यामसुरसंहारे प्रवृत्तायां ज्वलत्कुधि ।  
 उद्गें बहुलं प्राप त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१३  
 किमसौ धक्ष्यति रुषा विश्वमद्यैव पोत्रिणी ।  
 किं वा मुसलधातेन भूमि द्वेधा करिष्यति ॥१४

सूकर के समान जिनका मुख था ऐसी अनेक शक्तियाँ सहस्रों महिषों पर समारूढ़ होकर वहाँ पर चली थीं। इसके अनन्तर वह श्रीदण्डनाथा देवी अपने करिचक्र उत्तम रथ से नीचे उतरीं औप अपने प्रमुख वाहन महासिंह के ऊपर समारूढ़ हो गयी थीं। उसका नाम वज्र घोर प्रसिद्ध था जो अपने केसरों के मण्डल को कम्पित कर रहा था। इसका मुख खुला हुआ था तथा परम भीषण आकार वाला था एवं उसके लोचन विशंकट थे। वह अपनी दाढ़ों को कटकटा रहा था जिसकी कटकटा हट से सभी दिशाएँ बधिरीभूत हो गयी थीं ।८-१०। उसकी अस्थियाँ आदि कूर्म के सहश कठोर थीं और उसके नख खर्पर के समान विशाल थे। जो पाताल तक निमज्जित होकर इस भूमण्डल को पी से रहे थे ।११। यह तीन योजन तक ऊँचा था और बड़े वेग से अपनी पूँछ को हिला रहा था। ऐसे अपने सिंह के वाहन पर समारूढ़ होकर वह महादेवी दण्ड नायिका चली थीं ।१२। समस्त असुरों के संहार करने में जब वह प्रवृत्त हुई थी तो उस समय में उसकी क्षेत्र प्रकटित हो गया था और उसके प्रभाव से विशाला दीपि नामी

लोक बड़े भारी उद्धेग को प्राप्त हो गये थे । १३। सभी लोग यह कह रहे थे किया यह पोत्रिणी अपने क्रोध से आज ही सबको दग्ध कर देगी अथवा अपने मुसल की चोट से इस भूमण्डल के दो टुकड़े कर देगी ? । १४।

अथ वा हलनिर्धातेः क्षोभयिष्यति वारिधीन् ।

इति अस्तहृदः सर्वे गगने नाकिनां गणाः ॥ १५ ॥

द्वारादद्रुतं विमानैश्च सत्रासं ददृशुर्गताः ।

ववंदिरे च तां देवा वद्वाजलिपुटान्विताः ।

मुहुद्वादशनामानि कीर्तयंतो नभस्तले ॥ १६ ॥

अगस्त्य उवाच—

कानि द्वादशनामानि तस्या देव्या वद प्रभो ।

अश्वानन महाप्राज्ञ येषु मे कौतुकं महत् ॥ १७ ॥

हयग्रीय उवाच—

शृणु द्वादशनामानि तस्या देव्या घटोद्भूव ।

यदाकर्णनमात्रेण प्रसन्ना सा भविष्यति ।

पञ्चमी दंडनाथा च संकेता समयेश्वरी ॥ १८ ॥

तथा समयसंकेता वाराही पोत्रिणी तथा ।

वातली च महासेनाप्याज्ञा चक्रेश्वरी तथा ॥ १९ ॥

अरिघ्नी चेति सम्प्रोक्तं नामद्वादशकं मुने ।

नामद्वादशकाभिरुद्यवज्जपञ्जरमध्यगः ।

संकटे दुःखमाप्नोति न कदाचन मानवः ॥ २० ॥

एतैर्नामिभिरभ्यस्थाः संकेतां बहु तुष्टुवुः ।

तेषामनुग्रहार्थाय प्रचचाल च सा पुनः ॥ २१ ॥

अथवा यह अपने हल के निधाति से समुद्रों को क्षुब्ध कर देगी । इस प्रकार से सभी स्वगे वासियों के गण डरे हुए हृदय वाले गगन मण्डल में संस्थित थे । १५। बड़े ही श्वास के साथ शीघ्र ही दूर से विमानों के द्वारा गये हुओं ने देखा था । फिर उन देवगणों ने दोनों करों को जोड़कर उसके लिए

वन्दना की थी । वे बार-बार उसके द्वादश नामों का नभस्तल में कीर्त्तन कर रहे थे । १६। अगस्त्य जी ने कहा—हे प्रभो ! वे उस देवीके बारह नाम कौन से हैं उनको कृपया बतलाइए । हे अश्वानन ! आप तो महाकृ विद्वान् हैं । मेरे हृदय में इनके ज्ञान प्राप्त करने का बड़ा भारी कौतुक विद्यमान है । १७। श्री हयग्रीवजी ने कहा—हे घटोदध्वनि ! अब आप उस देवी के द्वादश नामों का श्रवण कीजिए जिन नामों के केवल श्रवण करने ही से वह परम प्रसन्न हो जाया करती है । पञ्चमी—दण्डनाथा—संकेता—समयेश्वरी—समय संकेता—वाराही—पोत्रिणी—वात्सली—महासेना—आज्ञा—चक्रेश्वरी—और अरिष्वनी—हे मुने ! ये ही उस देवी के द्वादश नाम हैं जिनको मैंने आपके सामने कहकर बता दिया है । यह द्वादश नामों का एक वज्र का पञ्जर है । इसके मध्य में रहने वाला अर्थात् इन बारह नामों का पाठ करने वाला बहुत ही सुरक्षित रहता है जैसे मानों वह वज्र निर्मित पञ्जर में बैठा होवे । वह मानव संकट में भी कभी दुःख नहीं पाता है । इन्हीं नामों के द्वारा गगन में संस्थित देवों ने उस देवी संकेता की बहुत स्तुति की थी । उन सब पर अनुग्रह करने के लिए उसका हृदय पसीज गया था और फिर वह प्रचलायमान हो उठी थी । १८-२१।

अथ संकेतयोगिन्या मंत्रनाथा पदस्पृशः ।

निर्णिणसूचनकरी दिवि दध्वान काहली ॥२२॥

शृङ्गारप्रायभूषाणां शादूलश्यामलत्विषाम् ।

बीणासंयतपाणीनां शक्तीनां निर्यंयौ बलम् ॥२३॥

काश्चिद्गायन्ति नृत्यंति मत्तकोकिलनिः स्वनाः ।

बीणावेणुमृदं गाद्याः सविलासपदक्रमाः ॥२४॥

प्रचेलुः शक्तयः श्यामा हर्षयंत्यो जगज्जनान् ।

मयूरवाहनाः काश्चित्कतिचिद्द्वस्वाहनाः ॥२५॥

कतिचिन्नकुलारुढाः कतिचित्कोकिलासनाः ।

सर्वाश्रि श्यामलाकाराः काश्चित्कर्णीरथस्थिता ॥२६॥

कादंबमधुमत्ताश्च काश्चिदारुढसंन्धवाः ।

मंत्रनाथां पुरस्कृत्य संप्रचेलुः पुरः पुरः ॥२७॥

अथाह्य समृतं गधवजचकं महारथम् ।

बालार्कवर्णकवचा मदालोलविलोचना ॥२८

इसके उपरान्त संकेत योगिनी की मन्त्र नाथा चरणों के स्पर्श करने वाली तथा नियर्ण की सूचना करने वाली दिवलोक में काहली बजी थी । १२२। शृङ्खार प्राय भूषा वाली—शादूल श्यामल कान्ति वाली—बीणा से संयत करों वाली शक्तियों की सेना निकल गयी थी । १२३। उनमें कुछ तो गान करती हैं जिनकी छवनि मत्त कोकिलों के समान थी—कुछ नृत्य करती हैं । बीणा-त्रेणु और मृदंग आदि लिये हुई थीं और उनका चरणों का विन्यास का क्रम विलास से युक्त था । १२४। जगत के जनों को हृषित करती हुई श्यामा शक्तियाँ वहाँ से चल दी थीं । कुछ का बाहन मयूर था और कुछ हँसों को बाहन बनाये हुईं थीं । १२५। कुछ नकुल पर समारूढ़ थीं और कुछ कोकिलों पर विराजमान थीं । ये सभी श्यामल आकार वाली थीं । इनमें कुछ कर्णी रथों पर सब संस्थित थीं । १२६। ये कादम्ब मधु मत्ता थीं और कुछ संघवों पर समारूढ़ थीं । मन्त्रनाथ को अपने आगे करके ही वहाँ से रवाना हो गयी थीं । १२७। इसके उपरान्त समुत्तु गध्वजा वाले रथ पर आरूढ़ होकर बाल सूर्य के वर्ण के समान कवच वाली तथा मद से आलोल लोचनों वाली थीं । १२८।

ईष्टप्रस्वेदकणिकामनोहरमुखांवजा ।

प्रेक्षयन्ती कटाक्षोऽवैः किञ्चिदभ्युवल्लितांडवैः ॥२६

समस्तमपि तत्सेन्यं शक्तीनामुद्धतोद्धतम् ।

पिच्छत्रिकोणच्छत्रेण विरुद्देन महीयसा ॥३०

आसां मध्ये न चान्यासां शक्तीनाभज्जवलोदया ।

निर्जगम घनश्यामश्यामला मन्त्रनायिका ॥३१॥

तां तुष्टवः पोडशभिनमिभिर्नाकवासिनः ।

तानि षोडशनामानि शृण कम्भसमद्भव ॥३२

संगीतयोगिनी श्यामा श्यामला मन्त्रनायिका ।

मन्त्रिणी मन्त्रिवेशी च प्रधानेशी शक्तिमा ॥३३

दीपावली दैशिकी त महिला पियकपिया ।

दीपिया कहने से कह बदलवासिनी ॥३५॥

सदामदा च नामानि षोडशेतानि कुम्भज ।

एतैयं सचिवेशानीं सकृतस्तौति शरीरवाद् ।

तस्य त्रैलोक्यमखिलं हस्ते तिष्ठत्यसंशयम् ॥३५

षोडशी २ प्रस्वेद की कणिकाओं से मनोहर मुख कमल वाली-कुछ चुकटियों को नचाकर कटाक्ष पातोंसे प्रेक्षण करती हुईथीं ॥३१। उन शक्तियों का सम्पूर्णउद्घत भी उद्घत सैन्यबल था जो पिछल त्रिकोण महान् विरुद वाले छत्र से संयुत था ॥३०। इनके और अन्यों के मध्य में अर्थात् शक्तियों के बीच में उज्ज्वल उदय वाली-घन के समान श्यामला मन्त्र नायिका निकली थी । ॥३१ स्वर्गवासियों ने उसका भी सोलह नामों के द्वारा स्तवन किया था । हे कुम्भोदभव ! उन सोलह नामों का भी अब मुझसे श्रवण कर लो ॥३२। संगीत योगिनी-श्यामा-श्यामल-मन्त्र नायिका—मन्त्रिणी—सचिवेशी—प्रधानेशी—शुक्र प्रिया—दीणावती—वैणिकी—मुद्रिणी—प्रियकप्रिया—नीप प्रिया—कदम्बेशी—कदम्ब वन वासिनी—सदामदा—हे कुम्भज ! ये ही सोलह नाम हैं । इनके द्वारा जो सदा शरीरधारी एक बार सचिवेशानी की स्तुति किया करता है उसके हाथ में सम्पूर्ण त्रैलोक्य निःसंशय स्थित रहा करता है ॥३३-३५।

मन्त्रिनाथा यत्र यत्र कटाक्षं विकिरत्यसौ ।

तत्र तत्र गताशंकं शत्रुसैन्यं पतत्यलम् ॥३६

ललितापरमेशान्या राज्यचर्चा तु यावती ।

शक्तीनामपि चर्चा या सा सर्वत्र जयप्रदा ॥३७

अथ संगीतयोगिन्याः करस्थाच्छुकपोतकात् ।

निर्जगाम धनुर्वेदो वहन्सज्जं शरासनम् ॥३८

चतुर्बहुयुतो वीरस्त्रिशिरास्त्रविलोचनः ।

नमस्कृत्य प्रधानेशीमिदमाह स भवितमात् ॥३९

देवि भंडासुरेन्द्रस्य युद्धाय त्वं प्रवत्तंसे ।

अतस्तव मया साहृं कर्तव्यं मन्त्रिनायिके ॥४०

चित्रजीवमिमं नाम कोदंडं सुमहत्तरम् ।

यहाण जसताम्ब दानवानां जिवर्हणम् ॥४१

इमौ चाक्षयवाणाढ्यो तूणीरौ स्वर्णचित्रितौ ।

गृहाण देत्यनाशाय ममानुग्रहहेतवे ॥४२

वह मन्त्रनाशा जहाँ-जहाँ पर अपने कटाक्ष को बिकीर्ण किया करती है वहाँ पर शत्रु को सेना गतांशंक होकर पूर्णतया पतन को प्राप्त हो जाया करती है । ३६। परमेशानी ललिता की जितनी भी राज्य चर्चा होती है और उसकी शक्तियों की जो चर्चा है वह सर्वत्र विजय के प्रदान करने वाली होती है । ३७। इसके अनन्तर संगीत योगिनी के कर में स्थित शुक पोत (शिशु) से सजिजत शरासन का बहन करता हुआ धनुर्वेद निकला था । ३८। वह चार बाहुओं से संयुत था—तीन उसके शिर थे और उस बीर के तीन ही नेत्र थे । उसने प्रधानेशी को प्रणिपात करके यह उस भक्तिमान ने प्रार्थना की थी । ३९। हे मन्त्रनायिके ! हे देवि ! इस समय में आप भण्डासुरेन्द्र के साथ युद्ध करने के लिए प्रवृत्त हो रही हैं । अतएव मेरे द्वारा आपकी सहायता करनी चाहिए । ४०। हे जगतों की जननि ! यह चित्र जीव नाम वाला को दण्ड बहुत ही अधिक महान् है । यह समस्त दानवों का निवर्हण करने वाला है । इसको आप ग्रहण कीजिए । ४१। ये दोनों तूणीर हैं जिनमें कभी भी वाणों का क्षय नहीं होता है और ये स्वर्ण से चित्रित हैं इनको भी आप केवल मुझ पर अनुग्रह करने के लिए ही ग्रहण कीजिए । ४२।

इति प्रणम्य शिरसा धनुर्वेदेन भक्तिः ।

अपितांश्चापतूणीराञ्जग्राह प्रियक्प्रिया ॥४३

चित्रजीवं महाचापमादाय च शुकप्रिया ।

बिस्फारं जनयामास मौर्वीमुद्वाद्य भूरिशः ॥४४

संगीतयोगिनी चापध्वनिना पूरितं जगत् ।

नाकालयानां च मनोनयनानंदसंपदा ॥४५

यंत्रिणी तंत्रिणी चेति द्वे तस्याः परिचारिके ।

शुकं बीणां च सहसा वहत्यी परिचेरतुः ॥४६

आलोलवलयवाणधिष्णुगुणनिस्वनम् ।

धारयंती घनश्यामा चकारातिमनोहरम् ॥४७

चित्रजीवशरासेन भूषिता गीतयोगिनी ।

कदंविनीव रुचे कदम्बच्छत्रकार्गुका ॥४८

कालीकटाक्षवत्तीक्षणो नृत्यद्भुजगभीषणः ।

उल्लसन्दक्षिणे पाणी विललास शिलीमुखः ॥४६

गेयचक्ररथारुढां तां पश्चाच्च सिषेवरे ।

तद्वच्छयामलशोभाहृषा देव्यो बाणधनुर्धराः ॥५०

सहस्राक्षौहिणीसंख्यास्तीव्रवेगा मदालसाः ।

आपूर्यंत्य ककुभं कलैः किलिकिलारवैः ॥५१

इस प्रकार से प्रार्थना पूर्वक धनुर्वेद ने भक्ति भाव से प्रार्थना की थी और शिर टेककर प्रणाम किया था तथा चाप और तूणीर समर्पित किये थे । उनको प्रियक प्रिया ने सादर ग्रहण कर लिया था । ४३। उस शुकप्रिया ने उस महाचाप को ग्रहण कर जिसका नाम चित्रग्रीव था उसका विस्फार समुत्पन्न किया था और विपुल रूप उसकी मुर्वी का उद्वादन किया था । ४४। उस संगीत योगिनी ने चाप की छवनि से सम्पूर्ण जगत् को पूरित कर दिया था । वह देवों के मन और नयनों के आनन्द की सम्पदा थी । ४५। मन्त्रिणी और तन्त्रिणी—ये दो उसकी परिचारिकाएँ थीं । वे शुक और वीणा का वहन करती हुई सहसा उसकी परिचर्या किया करती थीं । ४६। थोड़ा चञ्चल अर्थात् हिलने वाला जो बलय था उसके क्वणन से बढ़ने के स्वभाव वाला गुणों का निःस्वन था । वह धन के सदृश श्यामा उसको धारण करती हुई अति मनोहर छवनि कर रही थी । ४७। गीतयोगिनी चित्र जीव नामक शरासन से परम भूषित हो रही थी और कदम्ब छत्र कामुका कदम्बनी की ही भाँति शोभित हुई थी । ४८। काली के कटाक्ष के सदृश परम तीक्ष्ण नृत्य करता हुआ भुजंग भीषण दक्षिण कर में उल्लासित होता हुआ शिली-मुख विलास कर रहा था । ४९। गेय चक्र वाले रथ पर समारुढ़ उसका पीछे सेवा कर रहे थे । उसी के समान श्यामल और शोभा से समन्वित बाण और धनुष को धारण करने वाली देवियाँ थीं । ५०। ये तीव्र वेगवाली और महालसा थीं जिनकी संख्या एक सहस्र अक्षौहिणी थी । परम मधुर जो किल किल की छवनि थी उससे दिशा पूरित कर रहीं थीं । ५१।

## ललिता परमेश्वरी सेना जययात्रा

अथ राजनायिका श्रिता ज्वलितांकुशा फणिसमानपाशभृत् ।  
 कलनिक्वणद्वलयमैक्षवं धनुर्दधती प्रदीप्तकुसुमेषुपंचका ॥१  
 उदयत्सहत्सूमहसा सहस्रोऽप्यतिपाटलं निजवपुः प्रभाङ्गरम्  
 किरती दिशासु वदनस्य कांतिभिः सृजतीव  
 चन्द्रमयमभ्रमंडलम् ॥२

दशयोजनायतिमता जगत्त्रयीमभिवृण्वता  
 विशदमौकितकात्मना ।

धवलातपत्रवलयेन भासुरा शशिमंडलस्य सखितामुपेयुषा ॥३  
 अभिवीजिता च मणिकांतशोभिना  
 विजयादिमुख्यपरिचारिकागणैः ।

नवचन्द्रिकालहरिकांतिकंदलीचतुरेण चामरचतुष्टयेन च ॥४  
 शक्तये कराज्यपदवीमभिसूचयती साम्राज्य-  
 चिह्नशतमंडितसैन्यदेशा ।

संगीतवाद्यरचनाभिरथामरीणां संस्तूयमानविभवा  
 विशदप्रकाशा ॥५

वाचामगोचरमगोचरमेव बुद्धेरीहक्तया न  
 कलनीयमनन्यतुल्यम् ॥६

त्रैलोक्यगर्भपरिपूरितशक्तिचक्रसाम्राज्यसं-  
 पदभिमानमभिस्पृशांती ।

आबद्ध भक्तिविपुलांजलिशेखराणामारादहंप्रथमिका  
 कृतसेवनानाम् ॥७

इसके अनन्तर वह राज नायिका वहाँ पर विराजमान थी जिसका अंकुश ज्वलित था और जो सर्प के ही तुल्य पाश को धारण करने वाली थी । मधुर बवणन करने वाला बलय और इक्षु का धनुष धारण किये हुए थी । उसके बाण पाँच कुसुमों के थे । १। उदित सूर्य के तेज से भी अत्यधिक

पाटल उसका अपना कलेवर था जिससे प्रभा झर रही थी । वह अपने मुख की कान्तियों को दिशाओं में कीर्ण कर रही थी । ऐसा प्रतीत होता था मानो वह अध्रमण्डल को चन्द्रों से परिपूर्ण बना रही हो । २। शशि मण्डल की सखिता को प्राप्त होने वाला उसका परम धबल आतपत्र था जिसका आयतन दण्डोजन था और तीनों लोकों का अभिवरण करने वाला था । उसका स्वरूप परम स्वच्छ मौक्तिक के सहश था । ऐसे धबल छत्र से वह परमाधिक भासुर हो रही थी । ३। विजया आदि प्रमुख परिचारिकाओं के समुदाय के द्वारा चार चमरों से वह अभिवीजित हो रही थी जो चमर मणि के समान कान्त और शोभा वाले थे तथा नवीन चन्द्रिका की लहरी की कान्ति एवं चार कदालियों की कान्ति के समान थे । ४। वह अपनी शक्ति से एक ही राज्य की पद्धति को अभिसूचित कर रही थी और सेकड़ों साञ्चाज्य के चिन्हों से उसका संन्य देश मण्डित था । देवांगनाओं के संगीत और वाद्य रचनाओं के द्वारा उसके वैभव का संस्तवन किया जा रहा था एवं वह परम विशद प्रकाश वाली थी । ५। उसका शक्ति वैभव वाणी के तो अगोचर था ही किन्तु वह बुद्धि के भी अगोचर था । वह ऐसी है—इस तरह कथन के योग्य तथा बुद्धि में बैठने के योग्य नहीं है और उसकी तुल्यता रखने वाला कोई भी नहीं है । ६। तीनों लोकों के मध्य में परिपूरित शक्ति चक्र और साञ्चाज्य की सम्पदा है उसके अभिमान का अभिस्पर्शन करती हुई थी । पंक्तियों बढ़ तथा दोनों करों को विपुल भक्तिभाव में जोड़कर मस्तकों पर लगाने वाले देवगण समीप में प्रथम पहुँचाकर सेवा करूँ—ऐसी रीति से वह सेवमाना थी । ७।

**ब्रह्मेशविष्णुवृष्मुख्यसुरोत्तमानां ववत्राणि वर्षितनुतीति  
कटाक्षयन्ती ।**

**उद्दीप्तपुष्पशरपंचकतः समुत्थैज्योतिर्मयं त्रिभुवनं  
सहसा दधाना ॥८॥**

**विद्युत्समद्युतिभिरप्सरसां समूहैविक्षिप्य-  
माणजयमंगललाजवर्षा ।**

**कामेश्वरीप्रभृतिभिः कमनीयभाभिः**

**संसारेषु जनसुपर्वेषु रमि ॥९॥**

दीप्तायुधद्युतिरस्कृतभास्कराभिनित्याभिरंघ्रिसविधे  
समुपास्यमाना ।

श्रीचक्रनामतिलकं दण्डयोजनातितुं गद्वजोल्लिखितमेध-  
कदंबमुच्चैः ॥१०

तीव्राभिरावणमुशक्तिपरंपराभियुक्तं रथं  
समरकर्मणि चालयन्ती ।

प्रोद्यतिपशंगरुचिभागमलांशुकेन वीतामनोहररुचिस्समरे  
व्यभासीत् ॥११

पंचाधिकैविशतिनामरत्नैः प्रपञ्चपापप्रशमातिदक्षैः ।

संस्तूयमाना ललिता महदिभः संग्रामुद्दिश्य समुच्चचाल ॥१२  
अगस्त्य उवाच-

वाजिवक्त्र महाबुद्धे पञ्चविशतिनामभिः ।

ललितापरमेशान्या देहि कर्णरसायनम् ॥१३

हयग्रीव उवाच-

सिंहासना श्रीललिता महाराजी परांकुशा ।

चापिनी त्रिपुरा चैव महात्रिपुरसुन्दरी ॥१४

त्रहा—विष्णु और शम्भु जिनमें प्रमुख थे ऐसे देवों के मुखों को जो बराबर स्तुति कर रहे थे अपने कृपा कटाक्ष से देख रही थी । अतीव उदीप कुसुमों के पाँच शरों से समुत्थित प्रकाशों से सहसा ज्योतिमेय त्रिभुवन को धारण करने वाली है । विद्युल्लता के समान कान्तिमती अप्सराओं के समुदाय के द्वारा जय और मङ्गल के लिए लाजाओं की वर्षा जिसके ऊपर हो रही थी । कामेश्वरी आदि—परम कमनीय आभा वाली और संग्राम के वेषकी रचना में सुमनोहर—दीप आयुधों की दीप्ति से भास्कर की आभा को तिरस्कृत कर देने वाली ऐसी नित्या परिचारिकाओं के द्वारा चरणों के समीप में भलो भाँति उपास्यमाना थी । श्रीचक्र नाम वाले रथ पर विराजमान होकर समर में उसको चला रही थी । वह रथ ऐसा था जिसकी छवजा दश योजन से भी अधिक ऊँची थी और ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो वह आकाश को उल्लिखित कर रही हों जिसमें मेघों का समुदाय

या । १०। वह रथ परम तीव्र रावण की सुणकियों की परम्पराओं से समन्वित था । वह रथ उस समर में परम शोभित हो रहा था जिसमें उदित पिण्ठांग रुचि के भागसे युक्त वस्त्रसे वह संबोत था और परम मनोहर कान्ति वाला था । ११। ललितादेवी मरुदगणों के द्वारा संस्तूयमान होती हुई संग्राम करने के उद्देश्य से तेजी से चली थी । मरुदगण उसके पच्चीस नाम रत्नों को कहकर ही उसका संस्तवन कर रहे थे जो नाम प्रपञ्चों के पापों के प्रशमन करने में परम दक्ष थे । १२। अगस्त्य जी ने कहा—हे वाजि वक्त्र ! आप तो महती बुद्धि वाले हैं । आप उन पच्चीस ललिता परमेशानी के नामों से हमारे कानों के लिये रसपान कराइए । १३। हयग्रीवजी ने कहा—उनके पच्चीस नाम ये हैं—सिंहासना-महाराज्ञी—परंकुशा-चापिनी-त्रिपुरा-महात्रिपुर सुन्दरी । १४।

सुन्दरी चक्रनाथा च साम्राज्ञी चक्रिणी तथा ।

चक्रेश्वरी महादेवी कामेशी परमेश्वरी ॥ १५ ॥

कामराजप्रिया कामकोटिगा चक्रवत्तिनी ।

महाविद्या शिवानंगवल्लभा सर्वपाटला ॥ १६ ॥

कुलनाथाम्नायनाथा सर्वाम्नायनिवासिनी ।

शृङ्गारनायिका चेति पचविंशतिनामभिः ॥ १७ ॥

स्तुवन्ति ये महाभागां ललितां परमेश्वरीम् ।

ते प्राप्नुवन्ति सौभाग्यमष्टौ सिद्धीर्महद्यशः ॥ १८ ॥

इत्थं प्रचंडसंरंभं चालयन्ती महद्वलम् ।

भंडासुरं प्रति कुद्धा चचाल ललिताविका ॥ १९ ॥

सुन्दरी-चक्र नाथा-साम्राज्ञी-चक्रिणी-चक्रेश्वरी-महादेवी-कामेशी—परमेश्वरी । १५। कामराज प्रिया—कामकोटिगा—चक्र वत्तिनी—महाविद्या-शिवा—अनंग वल्लभा—सर्वपाटला—। १६। कुलनाथा—आम्नाय नाथा—सर्वाम्नाय निवासिनी और शृङ्गार नायिका—ये ही पच्चीस नाम हैं । १७। जो महाभाग पुरुष इन उपर्युक्त नामों से परमेश्वरी ललिता की स्तुति किया करते हैं वे परम सौभाग्य—आठों अणिमादिक सिद्धियाँ और महान् यश को प्राप्त किया करते हैं । १८। इस प्रकार से परम प्रचण्ड के साथ अपनी महती सेना का सञ्चालन कर रही थी और भण्डासुर के प्रति अत्यधिक कुद्ध होकर वह ललिताम्बिका वहाँ से रवाना हुई थी । १९।

## ॥ चक्ररथ पर्वस्थ देवता नाम प्रकाशन ॥

अगस्त्य उवाच—

चक्रराजस्थेऽस्य याः पर्वणि समाश्रिताः ।

देवता प्रकटाभिष्यास्तासामाख्यां निवेदय ॥१॥

संख्याश्च तासामखिला वर्णभेदांश्च शोभनान् ।

आयुधानि च दिव्यानि कथयस्व हयानन ॥२॥

हयग्रीव उवाच—

नवमं पर्वं दीप्तस्य रथस्य समुपस्थिताः ।

दश प्रोक्ता सिद्धिदेव्यस्तासां नामानि मच्छृणु ॥३॥

अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा ।

ईशिता वशिता चैव प्राप्तिः सिद्धिश्च सप्तमी ॥४॥

प्राकाप्यमुक्तिसिद्धिश्च सर्वकामाभिधापरा ।

एता देव्यश्चतुर्बाह्यचो जपाकुसुमसंनिभाः ॥५॥

चितामणिकपालं च त्रिशूलं सिद्धिकज्जलम् ।

दधाना दयया पूर्णा योगिभिश्च निषेविताः ॥६॥

तत्र पूर्वद्विभागे च ब्रह्माद्या अष्ट शक्तयः ।

ब्राह्मी माहेश्वरी चैव कौमारी वैष्णवी तथा ।

बाराही चैव माहेंद्री चामुण्डा चैव सप्तमी ॥७॥

श्री अगस्त्य जी ने कहा—जो देवता पर्व में चक्रराज रथेन्द्र के समाश्रित थे जिनका जो नाम प्रकट था उनका आख्यान कृपाकर बतलाइए ॥१॥ हृहयानन ! उन सब देवों की संख्या और उनके परम शोभन वर्णों के भेद तथा उनके दिव्य आयुध यह सभी वर्णन कीजिए ॥२॥ हयग्रीव जी ने कहा—उस दीप्त रथ के नवम पर्व में समुपस्थित ये दश सिद्धि देवियाँ कही गयी हैं । उनके नाम भी आप मुझसे श्रवण कीजिए ॥३॥ अणिमा-लघिमा-गरिमा-ईशिता-वशिता-सातवीं प्राप्ति सिद्धि होती है । आठवीं प्राकाप्य सिद्धि होती है जो सर्वकांता नाम बाली होती है । ये आठों देवियाँ चार-

चार भुजाओं वाली हैं और इनका वर्ण जपा के कुसुम के तुल्य होता है । ५-५। ये चारों करों में चिन्तामणि-कपाल-त्रिशूल और सिद्धि कज्जल धारण किये रहा करती हैं । ये दया से परिपूर्ण होती हैं और योगिजनों के द्वारा सर्वदा सेवित रहा करती हैं । ६। वहाँ पर पूर्वार्ध भाग में ब्राह्मी आदि आठ शक्तियाँ हुआ करती हैं । उनके नाम ये हैं—ब्राह्मी—माहेश्वरी—कौमारी—बैष्णवी—वाराही—माहेन्द्री और सातवीं चामुण्डा है । ७।

**महालक्ष्मीरक्षमी च द्विभुजाः शोणविग्रहाः ।**

**कपालमुत्पलं चैव विभ्राणा रक्तवाससः ॥८**

**अथ वान्यप्रकारेण केचिद्ध्यानं प्रचक्षते ।**

**ब्रह्मादिसहशाकारा ब्रह्मादिसहशायुधाः ॥९**

**ब्रह्मादीनां परं चिट्ठनं धारयन्त्यः प्रकीर्तिताः ।**

**तासामूर्धवस्थानगतां मुद्रा देव्यो महत्तराः ॥१०**

**मुद्राविरचनायुक्तंहेस्तेः कमलकांतिभिः ।**

**दाढिमीपुष्पसङ्काशाः पीतांबरमनोहराः ॥११**

**चतुर्भुजा भुजद्वन्द्वधृतचर्मकृपाणकाः ।**

**मदरक्तविलोलाक्ष्यस्तासां नामानि मच्छृणु ॥१२**

**सर्वसंक्षोभिणी चैव सर्वविद्राविणी तथा ।**

**सर्वाकर्षणकृन्मुद्रा तथा सर्ववशङ्करी ॥१३**

**सर्वोन्मादनमुद्रा च यष्टिः सर्वमहाङ्कुशा ।**

**सर्वखेचरिका मुद्रा सर्वबीजा तथापरा ॥१४**

महालक्ष्मी आठवीं शक्ति है । इन सबकी दो-दो भुजाएँ होती हैं और इनके कलेवर का वर्ण शोण होता है । ये कपाल और उत्पल करों में लिये रहा करती हैं । इनके बस्त्र रक्त वर्ण के होते हैं । ८। अथवा अन्य प्रकार से कुछ लोग इनका ध्यान कहा करते हैं । ये सब ब्रह्मा आदि के सहृण ही आयुधों वाली होती हैं । ९। ये सब ब्रह्मादिक के ही परम चिट्ठों को धारण करती हुई कीर्तित की गयी हैं । उनके ऊपर स्थान में रहने वाली मुद्रा देवियाँ इनसे भी अधिक महान् हैं । १०। कमल के समान कान्ति वाले मुद्रा तिरान्ते भुजत हाथों से भुजत होती है । इनका उपर्यांत रात्रियों के पुरुषों

के सहश होता है और ये सब पीत अम्बर धारण करके परम मनोहर होती हैं । ११। इनकी चार-चार भुजाएँ होती हैं । ये दो-दो भुजाओं में चर्म (ढाल) और कृपाण धारण किये रहा करती हैं । मद से इनके लोचन चड्ढल और रक्त हुआ करते हैं । अब उनके भी नामों का श्रवण कीजिए । १२। सर्वसंक्षेपिणी—सर्व विद्वाविणी—सर्वकिर्णणकृन्मुद्रा—सर्ववशङ्कुरी—सर्वोभ्यादन मुद्रा यष्टिसर्व महाकुशा—सर्वसेचरिका मुद्रा—तथा अपरासर्व-बीजा है । १३-१४।

सर्वयोनिश्च नवमी तथा सर्वत्रिखण्डिका ।

सिद्धिद्वाह्यादिमुद्रास्ता एताः प्रकटशक्तयः ॥ १५ ॥

भंडासुरस्य संहारं कर्तुं रक्तरथे स्थिताः ।

या गुप्ताख्याः पूर्वमुक्तास्तासां नामानि मच्छृणु ॥ १६ ॥

कामाकर्षणिका चैव बुद्ध्याकर्षणिका कला ।

अहङ्काराकर्षणी च शब्दाकर्षणिका कला ॥ १७ ॥

स्पर्शाकर्षणिका नित्या रूपाकर्षणिका कला ।

रसाकर्षणिका नित्या गन्धाकर्षणिका कला ॥ १८ ॥

चित्ताकर्षणिका नित्या धैर्यकर्षणिका कला ।

स्मृत्याकर्षणिका नित्या नामाकर्षणिका कला ॥ १९ ॥

बीजाकर्षणिका नित्या चात्माकर्षणिका कला ।

अमृताकर्षणी नित्या शरीराकर्षणी कला ॥ २० ॥

एताः षोडश शीतांशुकलारूपाश्च शक्तयः ।

अष्टमं पर्वसम्प्राप्ता गुप्ता नाम्ना प्रकीर्तिताः ॥ २१ ॥

और सर्वयोनि नवमी तथा सर्वत्रिखण्डिका है । सिद्धि द्वाही आदि मुद्रा ये हैं—इतनी शक्ट शक्तियाँ हैं । १५। भण्डासुर के संहार करने के लिये वह रक्त रथ में संस्थित हुई थी । जो गुप्ता नाम वाली पूर्व में कही थीं उनके भी नामों का श्रवण अब आप मुझसे कीजिए । १६। कामकर्षणिका और बुद्ध्या—कर्षणिका कला—अहङ्कारा कर्षणिका—शब्दाकर्षणिका कला है । १७। स्पर्शा कर्षणिका नित्या—रूपा कर्षणिका कला । रसा कर्षणिका नित्या—गन्धाकर्षणिका कला— । १८। चित्ताकर्षणिका नित्या—धैर्य-

कर्षणिका कला—स्मृत्याकर्षणिका नित्यानामाकर्षणिका कला । १६। बीजा-  
कर्षणिका नित्या—आत्माकर्षणिका कला—अमृतकर्षणी नित्या—शरीराकर्षणी  
कला । २०। ये षोडश रूप वाली शीतांशु कलारूपा शक्तियाँ हैं । अष्टम पर्व  
को सम्प्राप्त ये गुप्त नामों से कीर्तित की गयी है । २१।

**विद्रुमद्रुमसङ्काशा मन्दस्मित मनोहराः ।**

**चतुर्भुजास्त्रिनेत्राश्च चन्द्राकंमुकुटोज्ज्वलाः ॥२२**

**चापबाणी चर्मखण्डगी दधाना दिव्यकान्तयः ।**

**भण्डारसुरवधार्थी प्रवृत्ताः कुम्भसम्भव ॥२३**

**सायंतनज्वलदीपप्रख्यचक्ररथस्य तु ।**

**सप्तमे पर्वणि कृतावासा गुप्ततराभिधाः ॥२४**

**अनञ्जमदनानञ्जमदनातुरया सह ।**

**अनञ्जलेखा चानञ्जवेगानञ्जांकुणापि च ॥२५**

**अनंगमालिग्यपरा एता देव्यो जपात्विषः ।**

**इक्षुचापं पुष्पशरान्पुष्पकन्दुकमुत्पलम् ॥२६**

**बिघ्रत्योऽदध्रिविक्रांतिशालिन्यो ललिताज्ञया ।**

**भण्डासुरमभिकृद्वाः प्रज्वलंत्य इव स्थिताः ॥२७**

**अथ चक्ररथेऽद्रस्य षष्ठं पर्वसमाश्रिताः ।**

**सर्वसंक्षोभिणीमुख्याः सम्प्रदायाख्यया युताः ॥२८**

हे कुम्भ सम्भव ! जो भण्डासुर के वध के लिए प्रवृत्त हुईं वे विद्रुम  
के द्रुम के सट्टश हैं तथा मन्दस्मित से मनोहर हैं । इनकी चार भुजाएँ हैं  
और तीन नेत्र हैं एवं चन्द्र और सूर्य इनके उज्ज्वल मुकुट हैं । चाप—बाण—  
चर्म और खञ्ज को धारण करने वाली तथा दिव्यकान्ति से सुसम्पन्न हैं  
। २२-२३। सायन्तन के जलते हुए दीप के समान चक्र रथ के सप्तम पर्व में  
आवास करने वाली गुप्ततरा नाम वाली है । २४। अनञ्जमदनातुरा के साथ  
अनञ्जमदना—अनञ्ज लेखा—अनञ्ज वेगा—अनञ्जांकुणा—अनञ्ज का  
आलिङ्गन में परायणा—ये देवियाँ जपा के कुसुम की कान्ति वाली हैं । ये  
इक्षु चाप, पुष्प बाण, पुष्पों का कन्दुक और उत्पल धारण करती हुईं—  
अध्र की विक्रान्ति वाली हैं और ललिता की आज्ञा से भण्डासुर के प्रति

अत्यन्त क्रोध से प्रज्वलित होती हुईं सी स्थित हैं । २५-२७। इसके अनन्तर चक्र रथेन्द्र के पष्ठ पर्व पर समाधित हैं। सर्व संक्षोभिणो मुख्य हैं और सम्प्रदाय की आख्या से युत हैं । २८।

**वेणीकृतकचस्तोमाः सिद्धरतिलकोज्ज्वलाः ।**

**अतितीव्रस्वभावाश्च कालानलसमत्विषः ॥२९॥**

**वह्निवाणं वह्निचापं वह्निरूपमर्सि तथा ।**

**वह्निनचकाख्यफलकं दधाना दीप्तविग्रहाः ॥३०॥**

**असुरेन्द्रं प्रति क्रुद्धाः कामभस्मसमुद्ध्रवाः ।**

**आज्ञाशक्तय एवैता ललिताया महौजसः ॥३१॥**

**सर्वसंक्षोभिणी चैव सर्वविद्राविणी तथा ।**

**सर्वकिर्षणिका शक्तिः सर्वाह्लादिनिका तथा ॥३२॥**

**सर्वसंमोहिनी शक्तिः सर्वस्तम्भनशक्तिका ।**

**सर्वजृभणशक्तिश्च सर्वोन्मादनशक्तिका ॥३३॥**

**सर्वार्थसाधिका शक्तिः सर्वमप्तिपूरणी ।**

**सर्वमन्त्रमयी शक्तिः सर्वद्वन्द्वक्षयद्वारी ॥३४॥**

**एवं तु सम्प्रदायानां नामानि कथितानि वै ।**

**अथ पञ्चमपर्वस्थाः कुलोत्तीर्ण इति स्मृताः ॥३५॥**

वेणीकृत हैं कचों के स्तोम जिनके ऐसी—सिद्धूर के तिलक से समु-  
ज्ज्वल—अतीव तीव्र स्वभाव से युक्त—कमल और अनल के समान कान्ति  
बाली हैं । २६। इनके कलेवर परम दीप्त हैं तथा वह्निवाण—वह्निचाप—  
वह्निरूप असि और वह्नि चक्रारख्य फलक को धारण करने वाली हैं । ३०।  
असुरेन्द्र के प्रति क्रोध से युक्त और कामदेव की भस्म से समुत्पन्न ये सब  
महान् ओज वाली ललिता देवी की आज्ञा शक्तियाँ हैं । ३१। सर्व संक्षोभिणी  
सर्वविद्राविणी—सर्वकिर्षणिका शक्ति—सर्वाह्लादिनिका—सर्व संमोहिनी  
शक्ति—सर्व स्तम्भन शक्ति—सर्वजृभण शक्ति—सर्वोन्मादन शक्ति—  
सर्वार्थसाधिका शक्ति—सर्व सम्पत्ति पूरणी—सर्व मन्त्रमयी शक्ति—सर्वद्वन्द्व  
क्षयकरी—इस प्रकार से सम्प्रदाय के ये नाम कहूँ दिये गये हैं ये पञ्चम  
पर्व में स्थित हैं और कुलोत्तीर्ण कही गयी हैं । ३२-३५।

तारच स्फटिकसङ्काशः परशुं पाशमेव च ।

गदां घण्टां मणि चैव दधाना दीप्तिविग्रहाः ॥३६

देवद्विषामति कुद्धा भ्रुकुटीकुटिलाननाः ।

एतासामपि नामानि समाकर्णय कुम्भज ॥३७

सर्वसिद्धिप्रदा देवी सर्वसम्पत्प्रदा तथा ।

सर्वप्रियंकरी देवी सर्वमंगलकारिणी ॥३८

सर्वकामप्रदा देवी सर्वदुःखविमोचिनी ॥३९

सर्वमृत्युप्रशमिनी सर्वविघ्ननिवारिणी ।

सर्वांगसुन्दरी देवी सर्वसौभाग्यदायिनी ॥४०

दशेताः कथिता देव्यो दयया पूरिताशयाः ।

चक्रे तुरीयपर्वस्था मुक्ताहारसमत्विषः ॥४१

निगर्भयोगिनी नाम्ना प्रथिता दश कीर्तिताः ।

सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वेश्वर्यप्रदा तथा ॥४२

सर्वज्ञानमयी देवी सर्वव्याधिविनाशिनी ।

सर्वधारस्वरूपा च सर्वपापहरा तथा ॥४३

और इसके अनन्तर स्फटिक मणि के सहश हैं और परशु-पाश—गदा-घण्टा और मणि को धारण करने वाली हैं और परम दीप्ति विग्रह वाली हैं । ३६। वे सब देवों के शत्रु के प्रति अत्यन्त कुद्ध थीं और उनके मुख तथा भ्रुकुटियाँ कुटिल हैं । हे कुम्भज ! अब उनके भी नामों का श्रवण कीजिए । ३७। सर्व सिद्धि प्रदा देवी—सर्व सम्पद प्रदा—। ३७-३९। सर्व प्रिय-कुरी देवी—सर्व मञ्जल कारिणी । सर्वकामप्रदा देवी—सर्व दुःख विमो-चिनी—सर्व मृत्यु प्रशमनी—सर्व विघ्न निवारिणी—सर्वांग सुन्दरी देवी—सर्व सौभाग्य दायिनी है । ४०। ये दश देवियाँ वतलायी गयी हैं जिनके आशय दया से पूरित हैं । ये चक्र में चतुर्थ पर्व में संस्थित हैं और मुक्ताओं के हार के समान कान्तिमती हैं । ४१। ये दश निगर्भयोगिनी के नाम से प्रसिद्ध कही गयी हैं । सर्वज्ञा सर्वशक्तिश्च सर्वेश्वर्यप्रदा है । ४२।

सर्वनिन्दमयी देवी सर्वरक्षास्वरूपिणी ।

दशमी देवता ज्येया सर्वेषितफलप्रदा ॥४४

एताश्चतुभूंजा ज्येया वज्रं शक्तिं च तोमरम् ।

चक्रं चैवाभिविभ्राणा भण्डासुरवधोद्यताः ॥४५

अथ चक्ररथेन्द्रस्य तृतीयं पर्वसंश्रिताः ।

रहस्ययोगिनी नाम्ना प्रख्याता वागधीश्वरा ॥४६

रक्ताशोकप्रसूनाभा वाणकामूर्कपाणयः ।

कवचच्छन्नसर्वाङ्गो वीणाप्रस्तकशोभिताः ॥४७

वज्ञिनी चैव कामेशी भोगिनी विमला तथा ।

अरुणा च जविन्याख्या सर्वेशी कौलिनी तथा ॥४८

अष्टावेताः स्मृता देव्यो दैत्यसंहारहेतवः ।

अथ चक्ररथेन्द्रस्य द्वितीयं पर्वसंश्रिताः ॥४९

सर्वज्ञान से परिपूर्ण देवी—सर्व व्याधि विनाशिनी—सर्वाधार स्वरूपा—सर्व पाप हरा है ॥४३। सर्वनिन्दमयी देवी—सर्व रक्षा स्वरूपिणी—और इनमें जो दशमी देवी है वह सर्वेषित फल प्रदा जानने के योग्य हैं ॥४४। इनकी चार-चार भूजाएँ हैं ये वज्र—शक्ति—तोमर और चक्र को धारण करने वाली हैं तथा ये सभी उसी भण्डासुर के वध करने के लिए समुदायत हैं ॥४५। ये सब चक्र रथेन्द्र के तीसरे पर्व में संश्रय करने वाली हैं। ये वागधीश्वरा रहस्य योगिनी के नाम से प्रख्यात हैं ॥४६। इनकी आभा रक्ताशोक के पुसून के तुल्य है और इनके करों में धनुष वाण रहा करते हैं। इनके सम्पूर्ण अंग कवचों से संच्छन्न रहते हैं तथा ये वीणा और प्रस्तकों के धारण करने वाली है ॥४७। वज्ञिनी—कामेशी—भोगिनी—विमला—अरुणा—जाविनी—सर्वेशी—कौलिनी—ये आठ देवियाँ असुर के संहार की हेतु कहो गयी हैं और चक्ररथेन्द्र के द्वितीय पर्व में समाधित हैं ॥४८-४९।

चापवाणो पानपात्रं मातुलुंगं कृपाणिकाम् ।

तिस्रस्त्रिपीठनिलया अष्टबाहुसमन्विताः ॥५०

पलकं नागपाशं च घंटां चैव महाष्वनिम् ।

विभ्राणा मदिरामत्ता अतिगुप्तरहस्यकाः ॥५१

कामेशी चैव वज्रेशी भगमाक्षिन्यथापरा ।

तिस्र एताः स्मृता देवयो भण्डे कोपसमन्विताः ॥५२

ललितासममाहात्म्या ललितासमतेजसः ।

एतास्तु नित्यं श्रीदेव्या अन्तरञ्जाः प्रकीर्तिताः ॥५३

अथानन्दमहापीठे रथमध्यमपर्वणि ।

परितो रचितावासाः प्रोक्ताः पञ्चदशाक्षराः ॥५४

तिथिनित्याः कालरूपा विश्वं व्याप्त्यैव संस्थिताः ।

भण्डासुरादिदेत्येषु प्रक्षुब्धभृकुटीतटा ॥५५

देवीसमनिजाकारा देवीसमनिजायुधाः ।

जगतामुपकाराय वर्तमाना युगेयुगे ॥५६

ये चाप—वाण—पान पात्र—मातुलुंग और कृपाणिका धारण करने वाली हैं । ये तीन हैं और तीन पौठों पर इनका निलय है एवं आठ बाहुओं से संयुक्त है ॥५०। पलक-नागपाश महाघ्वनि घण्टा को धारण करने वाली हैं । ये मदिरा के पान से मत रहा करती है तथा अति गुप्त रहस्य वाली हैं ॥५१। कामेशी-वज्रेशी-भगमालिनी—ये तीन देवियाँ कही गयी हैं जो भण्डासुर देत्य पर अत्यधिक क्रोध से समन्वित थीं ॥५२। इनका माहात्म्य भी ललिता देवी के ही समान था तथा ललिता देवी के ही समान ही इनका ओज महान् था । ये देवियाँ नित्य ही श्री देवी की अन्तरंग बतायी गयी हैं ॥५३। इसके अनन्तर रथ के मध्य के पर्वं पर आनन्द महापीठ पर सब ओर रचित आवास वाली पञ्चदशाक्षरा कही गयी हैं ॥५४। ये तिथि नित्या-कालरूपा और विश्वको व्याप्त करके ही संस्थित रहा करती हैं । भण्डासुर आदि जो भी देत्य हैं इनको उन पर प्रक्षुब्ध भृकुटियाँ रहा करती हैं ॥५५। ये सभी देवी के ही तुल्य आकार वाली हैं और श्रीदेवी के ही समान अपने आयुधों वाली हैं । ये प्रत्येक युग में जन समूहों के उपकार के ही लिए वर्तमान रहा करती हैं ॥५६।

तासां नामानि मत्तस्त्वमवधारय कुम्भज ।

कामेशी भगमाला च नित्यविलन्ना तथैव च ॥५७

भेरुडा वहिनवासिन्यो महावज्रेश्वरी तथा ।

द्रुती च त्वरिता देवी नवमी कुलसुन्दरी ॥५६

नित्या नीलपताका च विजया सर्वमंगला ।

ज्वालामालिनिकाचित्रे दश पञ्च च कीर्तिताः ॥५७

एताभिः सहिता देवी सदा सेवैकबुद्धिभिः ।

दुष्ट भंडासुरं जेतुं निर्ययौ परमेश्वरी ॥६०

मन्त्रिनाथा महाचक्रे गीति चक्रे रथोत्तमे ।

सप्तपर्वाणि चोक्तानि तत्र देव्याश्च ताः शृणु ॥६१

गेयचक्ररथे पर्वमध्यपीठनिकेतना ।

संगीतयोगिनी प्रोक्ता श्रीदेव्या अतिवल्लभा ॥६२

तदेव प्रथमं पर्व मन्त्रिप्यास्तु निवासभूः ।

अथ द्वितीयपर्वस्था गेयचक्रे रथोत्तमे ॥६३

हे कुम्भज ! अब उनके शुभ नाम भी मुझ से आप अवधारित कर लीजिए । कामेशी-भगमाला-नित्य किलना ॥५७। मेरुण्डा-बहिनवासिनी—महावज्रे पवरी—द्रुती—त्वरिता—देवी नवमी कुल सुन्दरी है ॥५८। नित्या—नीलपताका—विजया—सर्वमंगला—ज्वालामालिका—चित्रा—ये पञ्चह कही गयी हैं ॥५९। ये सदा ही सेवा की ही बुद्धिवाली रहती है और इनको ही साथ में रखकर वह परमेश्वरी भंडासुर पर विजय प्राप्त करने के लिए वहाँ से निर्गत हुई थी ॥६०। महाचक्र में मन्त्रि नाथा और रथोत्तम चक्र में गीति थी । ये वहाँ पर सात पर्व हैं जो आपको बतला दिए गए हैं । वहाँ पर जो श्री देवी की हैं उनका भी शब्दण करिए ॥६१। गेय चक्र रथ में पर्व के मध्य में पीठ और निकेतन वाली संगीत योगिनी कही गयी है जो श्री देवी की अत्यधिक बल्लभा (प्रिया) है ॥६२। वह ही प्रथम पर्व है जो मन्त्रिणी की निवास की भूमि है । इसके उपरान्त गेयचक्र रथोत्तम में द्वितीय पर्व में स्थित ये हैं—॥६३।

रतिः प्रीतिर्मनोजा च वीणाकामुं कपाणयः ।

तमानश्यामलाकाशा दानवोन्मूलनक्षमाः ॥६४

तृतीयपर्वसंरुढा मनोभूवाणदेवता ।

द्राविणी शोषिणी चैव बंधिनी मोहिनी तथा ॥६५

उन्मादिनीति पंचेता दीप्तकामुकपाणयः ।  
 तत्र पर्वण्यथस्तात् वर्तमाना महीजसः ॥६६  
 कामराजश्च कंदपो मन्मथो मकरध्वजः ।  
 मनोभवः पंचमः स्यादेते त्रैलोक्यमोहनाः ॥६७  
 कस्तूरीतिलकोल्लासिभालामुक्ताविराजिताः ।  
 कवचच्छन्नसर्वांगाः पलाशप्रसवत्त्विषः ॥६८  
 पंचकामा इमो प्रोक्ता भंडासुरवधायिनः ।  
 जेयचक्ररथेन्द्रस्य चतुर्थं पर्वसंश्रिताः ॥६९  
 ब्राह्मीमुख्यास्तु पूर्वोक्ताश्चंडिका त्वष्टमी परा ।  
 तत्र पर्वण्यथस्ताच्च लक्ष्मीश्चैव सरस्वती ॥७०

रति-प्रीति-मनोज्ञा हैं जिनके करों में वीणा और कामुक हैं। इनका वर्ण तमाल के तुल्य श्यामल है और ये दानवों के उन्मूलन करने में परम समर्थ हैं। ६४। तीसरे पर्व में संरूढ़ मनोभूवाण देवता हैं। द्राविणी-शोषणी-बंधिनी-मोहिनी हैं। ६५। उन्मादिनी ये पाँच हैं जिनके करों में दीप्त कामुक हैं। वहाँ पर पर्व में नोचे की ओर महान् ओज वाले वर्तमान हैं। ६६। कामराज-कन्दप-मन्मथ-मकरध्वज और मनोभव—ये पाँच हैं जो त्रैलोक्य के मोहन करने वाले हैं। ६७। ये कस्तूरी के तिलक से उल्लासित भाल वाले तथा मुक्ताओं के तुल्य शोभित हैं। इनके सभी अंग कवचों से ढके हुए हैं और ये पलाश के पुष्पों के समान कान्ति वाले हैं। ६८। ये पाँच काम बताये गये हैं जो भंडासुर के वध के लिए होते हैं। जय चक्र रथेन्द्र के चतुर्थं पर्वमें संश्रय वाले हैं। ६९। ब्राह्मो जिनमें प्रमुख है पूर्व में वर्णित चन्डिका अष्टमी परा है। वहाँ पर पर्व में नोचे लक्ष्मी और सरस्वती हैं। ७०।

रतिः प्रीतिः कीर्तिशांती पुष्टिस्तुष्टिश्च शक्तयः ।  
 एताश्च क्रोधरक्ताक्ष्यो देत्यं हंतु महाबलम् ॥७१  
 कुन्तचक्रधराः प्रोक्ताः कुमार्यः कुम्भसंभव ।  
 पंचमं पर्वं संप्राप्ता वामाद्याः षोडशापराः ॥७२  
 गीर्तिं चक्ररथेन्द्रस्य तामां नामानि मञ्जरा ।

वामा ज्येष्ठा च रौद्री च शांतिः श्रद्धा सरस्वती ॥७३  
 श्री भूशवितश्च लक्ष्मीश्च सृष्टिश्चैव तु मोहिनी ।  
 तथा प्रमायिनी चाश्वसिनी वीचिस्तथैव च ॥७४  
 विद्युन्मालिन्यथ सुरानन्दाथो नागबुद्धिका ।  
 एतास्तु कुरविदाभा जगत्क्षोभणलंपटाः ॥७५  
 महासरसमन्नाहमादधानाः पदे पदे ।  
 वज्रकंटकसंछन्ना अट्टहासोज्ज्वलाः परे ।  
 वज्रदंडौ शतघ्नीं च संविभ्राणा भुशुण्डिकाः ॥७६  
 अथ गीतिरथेन्द्रस्य षष्ठुं पर्वं समाश्रिताः ।  
 असितांगप्रभृतयो भैरवाः शस्त्रभीषणाः ॥७७

रति-प्रीति-कीर्ति-शान्ति-पुष्टि-तुष्टि—ये शक्ति रक्त नेत्रों वाली हैं । ७१। हे कुम्भ सम्भव ! ये कुमारियाँ कुन्त चक्रधर कही गयी हैं । पाँचवों पर्व में वामा आदिक दूसरी सोलह सम्प्राप्त हैं । ७२। गीति चक्र रथेन्द्र की हैं । उनके भी नामों का श्रवण कीजिए जिनको मैं बता रहा हूँ । वामा-ज्येष्ठा-रौद्री-शान्ति-श्रद्धा-सरस्वती-श्री-भूशक्ति-लक्ष्मी-सृष्टि-मोहिनी - प्रमायिनी-अश्वसिनी-वीचि-विद्युन्मालिनी-सुरानन्दा-नाग बुद्धिका—ये सब कुरविन्दकी आभा वाली हैं और सम्पूर्ण जगत् के क्षोभण करने में संलग्न हैं । ७३-७५। ये पद-पद में महा सरसमन्नाह को धारण करने वाली हैं । ये वज्र कंट से संचलन हैं और अट्टहास करने से उज्ज्वल हैं । ये वज्र-दन्ड-शतघ्नी और भुशुण्डिकाओं को धारण करने वाली हैं । ७६। इसके पश्चात् गीतिरथेन्द्र के षष्ठ पर्व में समाश्रित है । असितांग प्रभृति शस्त्रों से महान भीषण भैरव हैं । ७७।

विशिखं पानपात्रं च विभ्राणा नीलवर्चसः ।

असितांगो रुहश्चंडः क्रोध उन्मत्तभैरवः ॥७८

कपालीभीषणश्चैव संहारश्चाष्ट भैरवाः ।

अथ गीतिरथेन्द्रस्य सप्तमं पर्वं संश्रिताः ॥७९

मातंगी सिद्धलक्ष्मीश्च महामातंगिकापि च ।

महती सिद्धलक्ष्मीश्च ज्ञोणा वाणधनुर्धरा ॥८०

तस्यैव पर्वणोऽधस्तादगणपः शेवपस्तथा ।

दुर्गां वा बटुकश्चैव सर्वे ते शस्त्रपाणयः ॥८१

तत्रैव पर्वणोऽधस्तालक्ष्मीश्चैव सरस्वती ।

शंखः पद्मो निश्चिश्चैव ते सर्वे शस्त्रपाणयः ॥८२

लोकद्विषं प्रति कुद्धा भंडं चंडपराक्रमम् ।

शकादयश्च विष्णवंतां दश दिवचक्रनायकाः ॥८३

शक्तिरूपास्तत्र पर्वण्यधस्तात्कृतसंश्रया ।

वज्रे शक्ति कालदंडमसि पाणं ध्वज तथा ॥८४

त्रिशिखा-पानपात्र कोधारण करने वाले तथा नील वरचस हैं ।

असिताङ्ग-रुह-चण्ड-क्रोध-उन्मत्त भैरव-कपाली-भीषण और संहार-ये आठ भैरव हैं और गीति रथेन्द्र के सप्तम पर्व में संशय वाले हैं । ७८-७९। मातंगी सिद्ध लक्ष्मी-महामातंगिका-महती-सिद्ध लक्ष्मी-भूज्ञोणा-वाणधनुर्धरा है । ८०।

उसी पर्व के नीचे गणप तथा क्षेत्रप हैं—दुर्गा अम्बा और बटुक हैं । ये सब करों में शस्त्र धारण करने वाले हैं । ८१। बहाँ पर ही पर्व के नीचे लक्ष्मी और सरस्वती हैं । शंख-पद्म-निधि हैं । ये सब प्राणियों में शस्त्र वाले हैं । ८२। ये सब लोकों के शत्रु चण्ड पराक्रम वाले भंड के प्रति कुद्ध हैं । शक से आदि लेकर विष्णु भगवान् के अन्त पर्यन्त दश दिशाओं के चक्रनायक हैं । ८३। बहाँ पर्व के नीचे शक्ति रूप वाले संश्रय लेने वाले हैं । ये वज्र-शक्ति-कालदंड-अमि-पाणध्वज के धारण करने वाले हैं । ८४।

गदां त्रिशूलं दर्भस्त्रं वज्रं च दधतस्त्वमी ।

सेवन्ते मन्त्रिनाथां तां नित्यं भक्तिसमन्विताः ॥८५

भंडासुरागदुर्दुर्घटान्हन्तु विश्वकंटकान् ।

मन्त्रिनाथाश्रयद्वारा ललिताज्ञापनोत्सुकाः ॥८६

गीतिचक्ररथोपांते दिवपालाः संश्रयं ददुः ।

सर्वेषां चैव देवानां मन्त्रिणी द्वारतः कृतः ॥८७

विज्ञापना महादेव्याः कार्यसिद्धि प्रयच्छति ।

राक्षो विज्ञापना चेति प्रधानद्वारतः कृता ॥६८  
 यथा खलु फलप्राप्तिः सेवाकानां हि जायते ।  
 अन्यथा कथमेतेषां सामर्थ्यं ज्वलितौजसः ॥६९  
 अपघृष्यप्रभावायाः श्रीदेव्या उपसर्पणे ।  
 सा हि संगीतविद्येति श्रीदेव्याः अतिबलभा ॥७०  
 नातिलंघति च क्वापि तदुक्तं कार्यसिद्धिषु ।  
 श्रीदेव्याः शक्तिसाम्राज्ये सर्वकर्माणि मन्त्रिणी ॥७१

य गदा-त्रिशूल-दर्भस्त्र और वज्र को धारण किए हैं। ये सब उस मन्त्रनाथा का भक्तिभाव से संयुत होते हुए नित्य ही सेवन किया करते हैं । ६५। दुदुं रुढ़—विश्व के कंटक भंडासुरों का निहनन करने के बास्ते मन्त्रिनाथा के आश्रय के द्वारा ललिता बाज्ञापन के उत्सुक रहा करते हैं । ६६। गीति चक्ररथ के उपान्त में दिक्पालों ने इनको संश्रय दिया था । ६७। समस्त देवों की मन्त्रिणी द्वार से को गयो थी । ६८। विज्ञापना यह महादेवी के कार्य की सिद्धि किया करती है । राजी और विज्ञापना ये दो प्रधान द्वार पर की गयी हैं । ६९। जंसी भी फल की प्राप्ति होती है । अन्यथा इनकी क्या सामर्थ्य है । जो ज्वलित ओज वाली और अपघृष्य प्रभाव वाली श्री देवी के समीप में सर्पण किया जा सके । वह निश्चय ही संगीत विद्या है जो श्री देवी की अतिबलभा है । ७०-७१। कार्यों की सिद्धियों में कहीं पर भी उसके कथित का अतिलंघन नहीं करती है । श्रीदेवी के शक्ति के साम्राज्य में वह मन्त्रिणी ही सब कर्मों को किया करती है । ७१।

अकर्तुं मन्यथा कर्तुं कर्तुं चैव प्रगल्भते ।  
 तस्मात्सर्वेऽपि दिक्पालाः श्रीदेव्या जय कांक्षिणः ।  
 तस्याः प्रधानभूतायाः सेवामेव वितन्वते ॥७२  
 इति श्रीललितादेव्याश्चक्रराजरथोत्तमे ।  
 पर्वस्थितानां देवीनां नामानि कथितान्यलम् ॥७३  
 भंडासुरस्य संहारे तस्या दिव्यायुधान्यपि ।  
 प्रोक्तानि गेयचक्रस्य पर्वदेव्याश्च कीर्तिताः ॥७४

इमानि सर्वदेवीनां नामान्याकर्णयंति ये ।

सर्वपापविनिमूकतास्ते श्रुविजयिनो नराः ॥६५

जो भी कुछ करने का अथवा नहीं करने का है उस सभी को करने में प्रगल्भ होती है । कारण से सभी दिक्षाल श्री देवीकी ही जय की कांक्षा वाले रहा करते हैं । प्रधानभूता उसकी ही सेवा का विस्तार किया करते हैं । ६२। यह श्री ललिता देवी के चक्रराज रथोत्तम में पवों में संस्थित देवियों के नाम वर्णित कर दिए गए हैं । ६३। भंडासुर के संहार में उसके परम दिव्य आयुधों का भी वर्णन कर दिया है । गेय चक्र और पवभी देवी के वर्णित किए गए हैं । इन समस्त देवियों के नामों का जो भी कोई श्रवण किया करते हैं वे नर समस्त पापों से छुटकारा पाकर विजयी हो जाते हैं । ६४-६५

### किरिचकरथ देवता प्रकाशन

हयग्रीव उवाच-

किरिचक रथेन्द्रस्य पंचपर्वसमाश्रिताः ।

देवताश्च शृणु प्राज्ञ नाम यच्छृण्वतां जयः ॥१

प्रथमं पर्वविद्वाख्यं संप्राप्ता दंडनायिका ।

सा तत्र जगदुददंडकण्टकव्रातघस्मरी ॥२

नानाविधाभिज्वलाभिनर्तयंती जयश्रियम् ॥३

उद्ददन्डपोत्र निधीतनिभिन्नोद्घतदानवाः ।

दंष्ट्रावालमृगांकांशुविभावनविभावरी ॥४

प्रावृषेण्यपयोवाहव्यूहनीलवपुल्लंता ।

किरिचकरथेन्द्रस्य सालंकारायते सदा ।

पोत्रिणी पुत्रिताशेषविश्वावर्तकदंविका ॥५

तस्येव रथनाभस्य द्वितीयं पर्वं संश्रिताः ।

जूभिनी मोहिनी चैव स्तंभिनी तिस्रं एव हि ।

तप्तुनवात्प्रियसं गर्वदग्नवर्तमाः ॥

मुसलं च हलं हालागात्रं मणिगणापितम् ।

जवलन्माणिक्यवलयैविभ्राणः पाणिपल्लवैः ॥७

श्री हयग्रीव जी ने कहा—किरि चक्र रथेन्द्र के पाँच वर्षों में समाप्ति जो देवता हैं उनके नामों का भी श्रवण कीजिए। हे प्राज्ञ ! जिनके श्रवण करने वालों का जय ही हुआ करता है। १। प्रथम पर्व बिन्दु नामक है। जिसमें दंड नायिका सम्प्राप्त है। वहाँ पर वह जगत के उदंडों के समुदाय की विनाशिका है। २। यह नाना प्रकार की ज्वालाओं से जय श्री को नतंन कराया करती है। ३। उद्ददन्ड पौत्र के निर्घाति से जिसने उद्धत दानवों को निभिन्न कर दिया है। दंष्ट्रा से गल मृगाङ्गाशु के विभावन करने वाली विभावरी है। वर्षा कानीन मेघों के समूह के समान नील वपु वाली लता है। वह किरि चक्र रथेन्द्र की वह सदा अलंकार के समान है। पोत्रिणी पुत्रिता के अशेष विश्वके आवत्ति की कदम्बिका है। ४-५। उसी रथनाम के द्वितीय पर्व में संत्रय लेने वाली है। दम्भिनी-मोहिनी और स्तम्भिनी—ये तीन ही हैं। विकसित दाढ़िमी के समान और सभी दानवों के मर्दन करने वाली हैं। ६। ये अपने कर पल्लवों द्वारा जिसमें देवीप्रयमान मणियों के बलय है—मुसल-हल और हाला पात्र मणिगणों से समर्पित धारण करने वालों हैं। ७।

अतितीक्षणकरालाक्ष्यो ज्वालाभिर्दत्यसेनिकान् ।

दहूत्य इव निःशंकं सेवते सूकराननाम् ॥८

किरिचक्ररथेद्रस्य तृतीयं पर्वं संश्रिताः ।

अंधिन्याद्याः पञ्च देव्यो देवीयंत्रकृतास्पदाः ॥९

कठोरेणाट्टहासेन भिदंत्यो भुवनत्रयम् ।

वाला इव तु कल्पाग्नेरंगनावेषमाश्रिताः ॥१०

भंडासुरस्य सर्वेषां संन्यानां सूधिरप्लुतिम् ।

लिलिक्षमाणा जिह्वाभिलेलिहानाभिरुज्जवलाः ॥११

सेवते सततं दंडनाथामुद्दण्डविक्रमाम् ।

किरिचक्ररथेन्द्रस्य चतुर्थं पर्वं संश्रिताः ॥१२

ब्रह्माद्याः पञ्चमीवज्या अष्टमीवज्जिता अपि ।

पठेव देव्यः पट्चक्रुवलज्जवालाकलेवरा: ॥१३

महता विक्रमैषेण पिबन्त्य इव दानवान् ।

आज्ञया दण्डनाथायास्तं प्रदेशमुपासते ॥१४

इनके नेत्र अत्यधिक तीक्ष्ण एवं करात हैं । जिनकी ज्वालाओं से देत्यों के सेनिकों को दग्धसी कर रही है और निःशक होकर सूकरानना की सेना किया करती है । ८। ये किरचक रथेन्द्र के तीसरे पर्व में समाश्रय लेने वाली हैं । अन्धिनी आदि पाँच देवियाँ देवी के यन्त्र में अपना आस्पद करने वाली हैं । ९। इनका इतना कठोर अद्भुत होता है जिससे ये तीनों भुवनों का भेदन किया करती हैं । अङ्गना के वेष का आश्रय ग्रहण कर कल्पाग्नि की ज्वालाओं के ही तुल्य होती हैं । १०। भण्डासुर की समस्त सेनाओं की रुद्धि के प्लावन को चाटने की इच्छा करती हुई लेलिहान ज्वालाओं की जिह्वाओं से उज्ज्वल । ११। ये सभी अतीव उद्दण्ड विक्रम वाली दण्डनाथा का निरन्तर सेवन किया करती हैं । किरचक रथेन्द्र के चौथे पर्व में इनका संश्रय होता है । १२। ग्राह्णी आदि पाँचबीं से रहित तथा आठबीं से रहित ये छँ ही देवियाँ षट्चक्र की जलती हुई ज्वालाओं के कलेवर वाली हैं । १३। महान विक्रम के समुदाय के द्वारा दानवों का पान सा करने वाली हैं । दण्डनाथा की ही आज्ञा से ये उसी प्रदेश की उपासना किया करती हैं । १४।

तस्यैव पर्वणोऽधस्तात्त्वरिताः स्थानमाश्रिताः ।

यक्षिणी शंखिनी चैव लाकिनी हाकिनी तथा ॥१५

शाकिनी डाकिनी चैव तासामेक्यस्वरूपिणी ।

हाकिनी सप्तमीत्येताश्चंडदोर्दंडविक्रमाः ॥१६

पिबन्त्य इव भूतानि पिबन्त्य इव मेदिनीम् ।

त्वचं रक्तं तथा मांसं मेदोऽस्थि च विरोधिनाम् ॥१७

मज्जानमथ शुक्रं च पिबन्त्यो विकटाननाः ।

निष्ठुरैः सिंहनादैश्च पूरयन्त्यो दिशो दश ॥१८

धातुनाथा इति प्रोक्ता अणिमाद्यष्टसिद्धिदाः ।

मोहने मारणे चैव स्तंभने ताङ्गने तथा ॥१९

भक्षणे दुष्टदेत्यानामामूलं च निकृत्तने ।

पंडिताः खंडिताशेषविपदो भक्तिशालिषु ॥२०॥

धातुनाथा इति प्रोक्ताः सर्वधातुषु संस्थिताः ।

सर्वापि वारिधीनूमिमालासंचुम्बितांबरान् ॥२१॥

उसी पवं के नीचे त्वरिता स्थान के समाश्रित हैं । यक्षिणी-शंखनी-लाकिन-हाकिनी । १५। शाकिनी-डाकिनी—उनकी एकता के स्वरूप वाली हाकिनी सातवीं हैं—ये प्रचंड दोदैन्डों के विक्रम वाली हैं । १६। ये समस्त भूतों को पान सा करती हैं तथा सम्पूर्ण मेदिनी का पान सा करती हुई हैं । त्वचा-रक्त-मौसि-मेद और विरोधियों की अस्थियों को तथा मज्जा और शुक्र को विकट मुखों वाली पान सा करती हुई थीं । उनके अत्यधिक कठोर सिहनाद ये जिनसे वे दणों दिणाओं को पूरित कर रही थीं । १७-१८। अणिमा आदि आठों सिद्धियों को प्रदान करने वाली वे धातुनाथा कही हैं । दुष्ट दैत्यों के मोहन-मारण-स्तम्भन-ताङ्गन भक्षण और आमूल निकृत्तन में परम पंडित और भक्ति शालियों के विषय में समस्त विपदाओं का खंडन करने वाली थीं । १९-२०। समस्त धातुओं में संस्थित वे धातुनाथा बतायी गयी हैं । अपनी तरङ्गों की मालाओं से अम्बर को चुम्बित करने वाले सातों सागरों में संस्थित थीं । २१।

क्षणाध्येन्व निष्पातु निष्पन्नवहुसाहसाः ।

शकटाकारदन्ताश्च भयंकरविलोचनाः ॥२२॥

स्वस्वामिनीद्रोहकृतां स्वकीयसमयद्रुहाम् ।

वंदिकद्रोहणादेव द्रोहिणां वीरवंरिणाम् ॥२३॥

यज्ञद्रोहकृतां दुष्टदेत्यानां भक्षणे समाः ।

नित्यमेव च सेवन्ते पोत्रिणीं दण्डनायिकाम् ॥२४॥

तस्यैव पर्वणः पाश्वे द्वितीये दिव्यमन्दिरे ।

क्रोधिनी स्तंभिनी छ्याते वर्तते देवते उभे ॥२५॥

चामरे वीजयन्त्यौ च लोलकंकणदोलंते ।

देवद्विषां च मूररक्तहालापानमहोद्धते ॥२६॥

सदा विघूर्णमानाक्ष्यौ सदा प्रहसितानने ।

अथ तस्य रथेन्द्रस्य किरिचकाश्रितस्य च ॥२७

पाश्वंद्वयकृतावासमायुधद्वंद्वमुत्तमम् ।

हलं च मुसलं चैव देवतारूपमास्थितम् ॥२८

इन सब समुद्रों को आधे ही क्षण में पान करने में इनका बहुत अधिक साहस निष्पन्न था । इनके दाँत शकट के समान आकार वाले थे और इनके मुख बहुत ही विकराल थे एवं परम भीषण लोचन थे । २१ ये अपनी स्वामिनी से द्रोह करने वाले और अपने समय के द्वोहियों के तथा वैदिक द्वोहण से द्रोही बीर वैरियों के एवं यज्ञों से द्रोह करने वाले परम दुष्ट देत्यों के भक्षण करने में ये सब समान थीं । ये नित्य ही पोत्रिणी दण्ड नायिका का सेवन किया करती हैं । २३-२४ उसी पर्व के पाश्वे में द्वितीय दिव्य मन्दिर में क्रोधिनी और स्तम्भिनी प्रसिद्ध हैं और ये दो देवता वर्तमान रहती हैं । २५ ये दोनों चमरों को हुराया करती हैं जिससे इनकी दो भुजाएँ हिलती हैं जिनमें उनके कङ्कण भी हिलते रहा करते हैं । ये देवों के शत्रुओं की सेना के रक्त और हाला के पान करने में मदोद्धत हैं । २६ इनके नेत्र दित्य ही विधूणित हैं और इनके मुखों पर प्रहास रहा करता है । इसके अनन्तर रथेन्द्र के किरि के दोनों पाश्वों में आवास करने वाला उत्तम आयुष्ठों का द्वन्द्व-हल-मुसल देवता के रूप में समाप्ति है । २७-२८

स्वकीयमुकुटस्थाने स्वकीयायुधविग्रहम् ।

आविभ्राणं जगद्वेषिघस्मरं विकुद्धैः स्मृतम् ॥२९

एतदायुधयुग्मेन ललिता दंडनायिका ।

खण्डयिष्यति संग्रामं विषंगं नाम दानहम् ॥३०

तस्येव पर्वणो दण्डनाथाया अग्रसीमनि ।

वर्तमानो महाभीमः सिंहो नादैर्वनन्नभः ॥३१

दंडाकटकटात्कारवधिरीकृतदिङ्गमुखः ।

चंडोच्चंड इति ख्यातश्चतुर्हस्तस्त्रिलोचनः ॥३२

शूलखड्गप्रेतपाशान्दधानो दीप्तविग्रहः ।

सदा संसेवते देवीं पश्यन्नेव हि पोत्रिणीम् ॥३३

किरिलक्षणेन्द्रस्य दण्डनाथाया ।

वात्तलियाद्या अष्ट देव्यो दिक्ष्यष्टासूषपविश्रुताः ॥३४  
अष्टपवंतनिष्पातघोरनिधत्तिनिः स्वनाः ।

अष्टनागस्फुरद्भूषा अनष्टबलतेजसः ॥३५

अपने मुकुट के स्थान में स्वकीय आयुधों के विग्रह को धारण करते हुए जगत् के नाशक का देवगणों ने स्मरण किया था । २६। इसको आयुधों के जोड़े से दण्ड नायिका ललिता विषञ्ज नामदानह संग्राम का खण्डन कर देगी । ३०। दण्डनाथा के उसी पर्व की अग्र सीमा में वर्तमान महान् भीम-सिंह वर्तमान है जो अपनी गर्जना से नभो मण्डल को ध्वनित कर रहा था । ३१। वह अपने दर्तों को कटकटा रहा था जिस कट कटाहटसे सब दिशाओं में विघ्रहता छा गयी थी यह चंडोच्चंड—इस नाम ने विख्यात था और यह हाथ का तथा तीन लोचनों वाला था । ३२। यह शूल-खंग-प्रेत और पाणों को धारण करने वाला तथा परम दीप्त विग्रह था । यह सदा ही पोत्रिणी की ओर ही देखता हुआ देवी की सेवा किया करता है । ३३। किरिचक्र रथेन्द्र के पष्ठ पर्व पर समाश्रय लेने वाली वात्तली—आदि आठ देवियाँ हैं जो आठों दिशाओं में उपविश्रुत हैं । ३४। ये आठ पर्वतों के निष्पात से परम घोर निधत्ति के घोष वाली थीं । आठ नागों के स्फुरित भूषा से संयुत तथा न नष्ट होने वाले बल और तेज वाली थी । ३५।

प्रकृष्टदोष्प्रकांडोष्महुतदानवकोटयः ।

सेवंते ललितां देव्यो दंडनाथामहर्निशम् ॥३६

तासामाख्याश्र विख्याताः समाकर्णय कुम्भज ।

वात्तली चैव वाराही सा वाराहमुखी परा ॥३७

अंधिनी रोधिनी चैव जूङ्भिणी चैव मोहिनी ।

स्तंभिनीति रिपुक्षोभस्तंभनोच्चाटनक्षमाः ॥३८

तासां च पर्वणो वामभागे सततसंस्थितिः ।

दंडनाथोपवाह्यस्तु कासरो धूसराकृतिः ॥३९

अर्धक्रोशायतः शृंगद्वितये क्रोशविग्रहः ।

खड्गवन्निष्ठुरैर्लोमजातेः संवृतविग्रहः ॥४०

कालदंडवदुच्चंडबालकांगभयंकरः ।

नीलांजनाचलप्रख्यो विकटोन्तरुष्टभूः ॥४१॥

महानीलगिरिशेषुगरिषुस्कन्द्यमंडलः ।

प्रभूतोष्मलनिश्वासप्रसराकंपितांबुधिः ॥४२॥

परम प्रकृष्ट बाहुओं की प्रकांड ऊर्जा में करोड़ों दानव हुत हो रहे थे । ऐसी ये देवियाँ अहनिश दण्डनाथा श्री ललिता देवी की सेवा किया करती हैं । उनकी आख्या तो परम विख्यात है । हे कुम्भज ! उसका आप श्रवण कीजिए । वात्तली-वाराही-बाराह मुखी—अन्धिनी—जृमिभणी—मोहिनी—स्तम्भिनी—ये हैं जो शत्रुओं के क्षोभ और स्तम्भन तथा उच्चाटन करने में परम समर्थ हैं । ३६-३८। इनकी संस्थिति पर्व के बाम भाग में निरन्तर रहा करती है । उस दण्डनाथा का उप बाह्य कासर हैं जिसको धूसर आकृति हैं । ३९। यह आधे कोण के बराबर आयत है । इसके दो सींग हैं और एक कोण के बराबर विग्रह बाला है । इसके जो केश हैं वे खद्दग के समान कठोर हैं जिनसे इसका कलेवर ढका हुआ है । ४०। कालडंड के तुल्य उच्चांड बालों के कांड से बढ़ा ही भयंकर है । यह नीले आनन के पर्वत के समान परम विकट और उन्नत रुष्ट भू बाला है । ४१। महानील गिरि के समान गरिषु एवं श्रेष्ठ स्कन्द्यों के मंडल बाला है । प्रभूत ऊर्जा से युक्त निश्वास के प्रसार से सागर को भी प्रकम्पित करने बाला है । ४२।

घर्घरध्वनिना कालमहिषं विहसन्निव ।

वर्त्तते खुरविक्षित्पुरुक्लावर्त्तवारिदः ॥४३॥

तस्यैव पर्वणोऽधस्ताच्चित्रस्थानकृतालयाः ।

इन्द्रादयोऽनेकभेदा दिशामष्टकदेवताः ॥४४॥

ललितायां कार्यसिद्धि विज्ञापयितुमागताः ।

इन्द्रश्चाप्सरसश्चैव स चतुर्षष्टिकोटयः ॥४५॥

सिद्धाअग्निश्च साध्याश्च विश्वेदेवास्तथापरे ।

विश्वकर्मा मयश्चैव मातरश्च बलोन्नताः ॥४६॥

रुद्राश्च परिचाराश्च रुद्राश्चैव पिण्डाचकाः ।

कन्दति रक्षसां नाथा राक्षसा बहवस्तथा ॥४७॥

मित्राश्च तत्र गन्धवाः सदा गानविशारदाः ।

विष्वावसुप्रभृतयो विष्ण्यातास्तत्पुरोगमाः ॥४८॥

तथा भूतगणाश्चान्ये वरुणो वासवः परे ।

विद्याधराः किन्नराश्च मारुतेश्वर एव च ॥४९॥

इसकी ध्वनि धर्षराहट कालरूपी महिष का भी उपहास सा कर रही थी । इसके खुरों के निक्षेप से पुष्कल आवर्त्त वारिद हो गये थे । ४३। उसके ही पवं के नीचे की ओर चित्रालयों में संस्थिति करने वाले इन्द्र आदि अनेक भैदों वाले दिशाओं के आठ देवता थे । ४४। ये सबललिता में कायों की सिद्धि के ही विज्ञापन करने के लिये वहाँ पर समागम हुए थे । इन्द्र और अप्सराएँ सब चौसठ करोड़ थे । ४५। सिद्ध-अग्नि-साध्य-विश्वेदेवा—विश्वकर्मा-भय—बलोन्त मातृगण--रुद्र--परिचार—रुद्र--पिशाचराक्षसों के नाम तथा बहुत राक्षस क्रन्दन करते हैं । ४६-४७। वहाँ पर मित्र-गम्धर्व सदा ही गान करने में परायण थे । विष्वा वसु आदि सब जो विष्ण्यात हैं उसके आगे गमन करने वाले थे । ४८। उसी भौति से भूतगण—अन्य थे तथा वरुण और वासव—विद्याधर—किन्नरगण और मारुतेश्वर थे जो आगे-आगे गमन कर रहे थे । ४९।

तथा चित्ररथश्चैव रथकारककारकाः ॥५०॥

तु द्वुरुनरिदो यक्षः सोमो यक्षेश्वरस्तथा ॥५०॥

देवैश्च भगवांस्तत्र गोविदः कमलापतिः ।

ईशानश च जगच्चक्रभक्षकः शूलभीषणः ॥५१॥

बह्या चवाश्वनीपुत्रो वैद्यविद्याविशारदौ ।

धन्वंतरिश्च भगवानथान्ये गणनायकाः ॥५२॥

कटकाण्डगलदान संतर्पितमधुव्रताः ।

अनंतो वासुकिस्तक्षः कर्कोटिः पद्म एव च ॥५३॥

महापद्मः शंखपालो गुलिकः सुबलस्तथा ।

एते नागेश्वराश्चैव नागकोटिभिरावृताः ॥५४॥

एवंप्रकारा वहवो देवतास्तत्र जाग्रति ।

पूर्वादिदिग्मारभ्य परितः कृतमंदिराः ॥५५॥

तत्रैव देवताश्चक्रे चक्राकारा महदिशः ।

आश्रित्य किल वर्त्तते तदधिष्ठातृदेवताः ॥५६

उसी भाँति से चित्ररथ—रथकारक—तुम्बर—नारद—यज्ञ-सोम—  
यज्ञेश्वर—समस्त देवगणों के सहित कमला के स्वामी भगवान् गोविन्द—  
जगत् चक्र के भक्षण करने वाले भीषण शूलपाणि ईशान—ब्रह्मा—अश्विनी  
कुमार जो कि वौच के विशारद थे—भगवान् धन्वन्तरि और अन्य गणों के  
नायक भी पुरोगामी थे । ५०-५२। इनके कटस्थलों से जो मद गिर रहा था  
उस पर भ्रमर झूम रहे थे । अनन्त—वासुकि—तक्षक—कर्कोट—पद्म—  
महापद्म—शंखपाल—गुलिक—सुबल—ये सब नागेश्वर थे जो करोड़ों  
नागों से समावृत होते हुए पुरोगमन कर रहे थे । ५३-५४। इस प्रकार वाले  
बहुत—से देवगण जाग्रत हो रहे थे । और पूर्व आदि दिशाओं से समारम्भ  
करके चारों ओर अपना निवास स्थल बनाये हुए थे । ५५। वहीं पर देवताओं  
ने महत् दिशा को चक्राकार कर दिया था । और उस दिशा का समाख्यण  
करके वे सब अधिष्ठान देवता हो रहे थे । ५६।

जूम्भिणी स्तंभिनी चैव मोहिनी तिस्र एव च ।

तस्यैव पर्वणः प्रांते किरिचक्षस्य भास्वतः ॥५७

कपालं च गदां बिश्रदूर्धर्वकेणो महावपुः ।

पातालतलजंबालबहुलाकारकालिमा ॥५८

अट्टहासमहावज्रदीर्णब्रह्मांडमण्डलः ।

भिन्दन्दृढमस्कृद्वानै रोदसीकन्दरोदरम् ॥५९

फूल्कारीत्रिपुरायुक्तं फणिपाशं करे वहन् ।

थेत्रपालः सदा भाति सेवमानः किटीश्वरीम् ॥६०

तस्यैव च समीपस्थस्तस्या वाहनकेसरी ।

यमाहृह्य प्रवद्यते भंडासुरवर्द्धिणी ॥६१

प्रागुक्तमेव देवेशीवाहसिहस्य लक्षणम् ।

तस्यैव पर्वणोऽधस्तादृणनाथसमत्विषः ॥६२

दंडिनीसहशाशेषभूषणायुधमंडिताः ।

तथा कोवाननां चोषेषां चित्रुनला ॥६३

जम्भणी—स्तम्भनी—मोहिनी ये तीनों ही उसी पर्व के प्रान्त में जो कि भासुर किरि चक्र रथ था, विद्यमान थे ।५३। अब क्षेत्र पाल के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—क्षेत्रपाल कपाल और गदा को करों में धारण किये हुए है—इसके केश ऊपर की ओर उठे हुए हैं तथा इसका वपु महान् है । पाताल तल में जो जम्बाल है उसके समान आकार वाली इसमें कालिमया है ।५४। इसका अद्वाहास वज्र के ही तुल्य है जिससे पूर्ण ब्रह्मांड मंडल विदीर्ण हो जाता है । यह अपने डमरू के घोषों से रीढ़ी की कन्द-राओं के उदर को भेद रहा है ।५५। फूटकार (फुसकार) करने वाली त्रिपुरा से युक्त नागों के पाणि को कर में वहन कर रहा था । ऐसा क्षेत्रपाल किटीश्वरी की सेवा करता हुआ सदा ही शोभित होता है ।५६। उसके ही सभीप में स्थित उसका वाहन के सरी था जिस पर समारोहण करके भंडासुर के वध की इच्छा वाली प्रवृत्त हुई थी ।५७। देवी के वाहन सिंह का लक्षण तो पूर्व में ही कह दिया गया है । उसी पर्व के नीचे दण्डनाथा के समान ही कान्ति वाली सहस्रों अन्य देवियाँ तथा देवता थे ।५८। ये सभी दण्डनाथा के ही तुल्य समस्त भूषणों और आयुधों से मंडित थे । ये शम्ब्या-क्लोडानना-चन्द्ररेखा और उत्तंसित कुन्तका थीं ।५९।

हलं च मुसलं हस्ते धृण्यन्त्यो मुहुर्मुहः ॥ ५६ ॥

ललिताद्रोहिणां श्यामाद्रोहिणां स्वामिनीद्रहाम् ॥ ६० ॥

रक्तन्नोतोभिरुत्कलैः परयन्त्यः कपालकम् ।

निजभक्तद्रोहकृता मन्त्रमालाविभूषणां ॥ ६५ ॥

स्वगोष्ठीसमयाक्षेपकारिणां मुण्डमंडलैः ।

अखण्डरक्तविच्छदैविभ्रत्यो वक्षसि वज्रः ॥ ६६ ॥

सहस्र देवताः प्रोक्ताः सेवमानाः किटीश्वरीम् ॥ ६७ ॥

तासां नामानि सवसां दण्डिन्याः कुम्भसंभव ।

सहस्रनामाध्याये तु वक्ष्यते नाधुना पुनः ॥ ६८ ॥

अथ तासां देवतानां कोलास्यानां समीपतः ।

वाहनं कृष्णसारंगो दण्डिन्याः समये स्थितः ॥ ६९ ॥

क्रोशाधर्द्धियतः शृंगे तदव्याधियितो मुखे ।

क्रोशप्रमाणपादश्च सदा चोदधूतवालधिः ॥ ७० ॥

इसके कर में हल और मुसल था तथा ये बार-बार धूर्णन कर रही थीं जो भी ललिता देवी के द्वोही—श्यामा के द्वोही और स्वामिनी के साथ द्वोह करने वाले थे उन्हीं को धूर रहीं थीं । ६४। उमड़े हुए रक्त के स्रोतों से कपालों को भर रहीं थीं । इनके भूषण अपने भक्तों के साथ द्वोह करने वालों की मन्त्रों की मालाएँ ही थे । ६५। अपनी गोष्ठी के समय पर आक्षेप करने वालों के मुख मंडलों अर्थात् मुँडों से जिनसे रक्त स्राव हो रहा है अपने उरःस्थल पर मालाएँ धारण कर रहीं थीं । ६६। ऐसे उस किटीश्वरी की सेवा करते हुए सहस्रों ही देवता बताये गये हैं । ६७। हे कुम्भ सम्भव ! दंडिनी की उनके सबके नाम सहस्र नामाघ्याय में कहेंगे अतः अब फिर नहीं कहते हैं । ६८। कोलास्य उन देवताओं के समीप में ही कृष्ण सारंग वाहन दंडिनी के समय में स्थित था । यह आधे कोण तक तो आयत था शृंग में और उससे आधा आयत मुख में था और एक कोण के प्रमाण वाले पाद थे और उसकी पूँछ तो सदा ही उद्धत रहा करती थी । ६८-७०।

उदरे ध्वलच्छायो हुंकारेण महीयसा ।

हसन्मारुतवाहस्य हरिणस्य पराक्रमम् ॥७१॥

तस्यैव पर्वणो देशे वर्तते वाहनोत्तमम् ।

किरिचक्ररथेन्द्रस्य स्थितस्तत्रैव पर्वणि ॥७२॥

वर्तते मदिरासिधुर्देवतारूपमास्थिता ।

माणिक्यगिरिवच्छोणं हस्ते पिशितपिङ्कम् ॥७३॥

दधाना धूर्णमानाक्षी हेमाभोजस्त्रगावृता ।

मदणवयचा समाशिलष्टा धृतरक्तसरोजया ॥७४॥

यदा यदा भंडदैत्यः संग्रामे संप्रवर्तते ।

युद्धस्वेदमनुप्राप्ताः शक्तयः स्युः पिपासिताः ॥७५॥

तदा तदा सुरासिधुरात्मानं बहुधा क्षिपन् ।

रणे खेदं देवतानामंजसापाकरिष्यति ॥७६॥

तदप्यद्भुतमे वर्षे भविष्यति न संशयः ।

तदा श्रोष्यसि संग्रामे कथ्यमानं मथा मुदा ॥७७॥

महान् हुङ्कार से उसके उदर में धवल कान्ति होती थी। हंसेते मारुत के वाहन हरिण का पराक्रम था । ७१। उसी पर्व के भाग में वह उत्तम वाहन रहता है जिस पर्व में किरिचक्र रथेन्द्र की स्थिति थी । ७२। वहाँ पर मदिरा का सिन्धु भी एक देवता के स्वरूप में समाप्ति होकर विद्यमान था। जो माणिक्य के समान शोण था तथा उसके हाथ में मास का एक ढेला । ७३। उसकी अँखें विशेष धूणित थीं सुनहरी कमल के सदृश रुधिर से समावृत थीं। रक्त सरोज धारण करने वाली के द्वारा यह की शक्ति से समाप्तिलष्ट थी । ७४। जब-जब भंड देत्य संग्राम में प्रवृत्त होता है। युद्ध के स्वेद को अनुप्राप्त जकितयाँ पिपासित हो जाती हैं । ७५। उसी-उसी समय में सुरा का सागर बहुधा अपने आपको क्षिति करता हुआ देवों के रण के सेद को तुरन्त ही दूर कर देता है । ७६। वह भी अद्भुतम् वर्ष में होगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उम समय में मेरे द्वारा कहा जाने वाला संग्राम में बड़े ही आनन्द से तुम श्रवण करोगे । ७७।

तस्यैव पर्वणोऽधस्तादष्टदिक्षवध एव हि ।

उपर्यपि कृतावासा हेतुकाञ्चा दश स्मृताः ॥७८॥

महांतो भैरवश्रेष्ठाः ख्याता विपुलविक्रमाः ।

उद्दीप्तायुततेजोभिर्द्वा दीपितभानवः ॥७९॥

कल्पांतकाले दंडिन्या आज्या विश्वघस्मराः ।

अत्युदग्रप्रकृतयो रददृष्टसंपुटाः ॥८०॥

त्रिशूलाग्रविनिभिन्नमहावारिदमंडलाः ।

हेतुकस्त्रिपुरारिश्च तृनीयश्चाग्निभैरवः ॥८१॥

यमजिह्वैकपादौ च तथा कालकरालकौ ।

भीमरूपो हाटकेशस्तथैवाचलनामवान् ॥८२॥

एते दशैव विख्याता दशकोटिभटान्विताः ।

तस्यैव किरिचक्रस्य वर्तते पर्वसीमनि ॥८३॥

एवं हि दंडनाथायाः किरिचक्रस्य देवताः ।

जूँभिष्याद्यचलेद्रांताः प्रोक्तास्त्रैलोक्यपावनाः ॥८४॥

उस ही पर्व के नीचे शाठों दिशाओं में नीचे ही ऊपर-ऊपर आवास करने वाले हेतुक आदि दश कहे गये हैं । ७४। विपुल विक्रम से समन्वित महात् श्रीरवा विद्यात् हैं सहस्रों लेजों से ये उट्टीस हैं जैसे दिन में वीषित सूर्य होते । ७५। कल्याणे अन्त समय में दंडिनी देवी की आज्ञा से हृष्ट सम्पूर्ण विश्व के विनाशक जिनकी अत्यन्त उद्ग्रास्त्रभाव हैं और जो अपने हाँतों और होठों को पीसने वाले हैं । ८०। ये त्रिशूलों के अग्रभाग से महात् मेघों के मंडल को भी निभिन्न कर रहे हैं—एक हेतुक है त्रिपुरारिण है और तीसरा जुम्लुभेद है । ८१। यस जिह्वा और एक पाद है और चाल के ही समान किंडाल हैं । भीम स्वरूप से युक्त तथा हाटकेश हैं और उसी अचल के नाम त्रिला है सुपराये के बल दश ही विद्यात् हैं जो कि दश करोड़ भट्टों से संयुक्त हैं । उसी किरिचक के पर्व की सीमा में रहा करते हैं । ८३। इस रीति से उस दंडनाथा के किरिचक के देवता हैं । जूमिभणी से आदि लेकर अचलेन्द्र के अन्त तक हैं—ऐसे कहे गये हैं जो त्रैलोक्य के पावन हैं । ८४। तत्र त्र्यदेवतावृन्दं बर्वहस्तत्र संगरे ।

दानवा मारयिष्यते पास्यते रक्तवृष्टयः ॥८५॥

इत्थं बहुविधत्राणं पर्वस्थैर्देवतागणः ।

किरिचकं दंडनेत्र्या रथरतनं च चाल ह ॥८६॥

चक्रराजरथो यत्र तत्र गेयरथोत्तमः ।

यत्र गेयरथस्तत्र किरिचकरथोत्तमः ॥८७॥

एतद्रथत्रयं तत्र त्रैलोक्यमिव जंगमम् ।

शक्तिसेनासहस्रस्यातश्चार तदा शुभम् ॥८८॥

मेरुमन्दरविद्यानां समवाय इवाभवत् ।

महाधोषः प्रवृत्ते शक्तीनां संन्यमडले ।

चचाल वसुधा सर्वा तच्चक्ररवदारिता ॥८९॥

ललिता चक्रराजाख्या रथनाथिस्य कीर्तिताः ।

पट्सारथय उद्दण्डपाशग्रहणकोविदाः ॥९०॥

यत्र गेयरथस्तत्र किरिचकरथोत्तमम् ॥९१॥

द्वितीयात्मानशां चित्तुर्यात्मनी ॥९२॥

संहारभैरवश्चान्यो रक्तयोगिनिवल्लभः ॥६१॥  
सारसः पञ्चमश्चैव चामुण्डा च तथा परा ॥६२॥

उस संग्राम में वहाँ के देवताओं के समूहों के द्वारा बहुत से दानव मारे जायेंगे और उधिरु की दृष्टि का पान किया जायगी । इस प्रकार से पर्वत में स्थित देवताओं के गणों के द्वारा बहुत तरह का परिक्षण होगा तथा दंड नेत्री किरिचक्र चला था । देखा जहाँ पर चक्र राज रथ था वहाँ पर ही गेय रथोत्तम था और जहाँ जहाँ पर गेय रथोत्तम था वहाँ पर ही किरिचक्र रथोत्तम था । ६१। इन प्रकार से वहाँ पर तीन रथ थे । ऐसा प्रतीत होता था मानों त्रिलोक का ही ब्रंगम है । इसके अन्दर सहस्रों शक्ति सेनाओं का शुभ संचार उस समय में हो रहा था । ६२। ऐसा मालूम होता था मानों मेरु-मन्दर और विन्ध्य पर्वतों का समवाय ही हो गया होता । उस शक्तियों के सेन्य भंडल में उस समय में महान धोष प्रवृत्त हो गया था । उस समय में उत्तरथों के चक्रों की घटना से सम्पूर्ण वसुधा हिल गयी थी । ६३। रथवाक की चक्रराज नाम वाली ललिता ही कोत्तित की गयी है । उनमें छं सारथि थे जो उद्दृष्ट पाशों के श्रहण में बड़े कोविद थे । ६४। जहाँ पर ही गेय रथ था वहाँ-वहाँ पर किरिचक्र उत्तम रथ था । प्रथम तो देवी श्री किर उसी भाँति त्रिपुर भैरवी थी । ६५। और अन्य संहार भैरव था जो रक्त योगिनी का वल्लभ था । सारस पांचवाँ था तथा अपरा चामुण्डा थी । ६६।

एतासु देवतास्तत्र रथसारथयः स्मृताः ।  
गेयचक्ररथेन्द्रस्य सारथिस्तु हस्तिका ॥६३॥  
किरिचक्ररथेन्द्रस्य स्तंभिनी सारथः स्मृता ।  
दशयोजनमुन्नम्रो ललितारथपुङ्गवः ॥६४॥  
सप्तयोजनमुच्छ्रायो गीतचक्ररथोत्तमः ॥६५॥  
षड्योजनसमुन्नम्रो किरिचक्ररथो मुनेऽपि ॥६६॥  
महामुक्तातपत्रं तु दशयोजनविस्तृतम् । उत्तीर्ण विश्वास  
वर्तते ललितेशान्यारथ एव न चान्यतः ॥६७॥  
तदेव शक्तिसाम्राज्यसूचकं परिकीर्तितम् ॥६८॥  
सामान्यमातपत्रं तु रथदुष्टो पि वर्तते ॥६९॥

अथ सा ललितेशानी सर्वशक्तिमहेश्वरी ।

महासाम्राज्यपदवीमारुढा परमेश्वरी ॥६५

चचाल भंडदैत्यस्य क्षयसिद्धचभिकांक्षिणी ।

शब्दायंते दिगः सर्वाः कंपते च वसुन्धरा ॥६६

इनमें वहाँ पर देवता ही उन रथों के सारथि थे ऐसा बताया गया है। जो गेय रथचक्र था उसकी सारथि हसन्तिका थी । ६३। किरिचक्र रथेन्द्र की स्तम्भिनी सारथि कही है। ललिता का उत्तम श्रेष्ठ रथ दश योजन ऊँचा था । ६४। गोत्रचक्र हयोत्तम सात योजन उच्छ्राय वाला था। षट् योजन ऊँचा है मुने ! किरिचक्र रथ था । ६५। महान् मुक्ताओं से विनिमित आतपत्र (छत्र) दशयोजन विस्तार वाला था। ललितेशानी का रथ ही ऐसा था और अन्य का वहाँ था । ६६। और वह ही शक्ति के साम्राज्य का सूचक कीर्तित किया गया है। सामान्य छत्र तो अन्य दोनों पर भी थे । ६७। वह ललिता ईशानी समस्त शक्तियों की महेश्वरी थी। वह पश्चमेश्वरी महान् साम्राज्य की पदवीं पर समारूढ़ थी । ६८। वह चंड दैत्य के क्षय की सिद्धि की अभिकांक्षा वाली वहाँ से नली थी। सभी दिशाएँ उस समय में शब्दायमान हो रही थीं और वसुधा प्रकम्पित हो रही थी । ६९।

क्षुभ्यति सर्वभूतानि ललितेशाविनिर्गमे ।

देवदुन्दुभयो नेदुनिपेतुः पुष्पवृष्टयः ॥१००

विश्वावसुप्रभृतयो गन्धर्वाः सुरगायकाः ।

तुम्बुरुर्नारिदश्चैव साक्षादेव सरस्वती ॥१०१

जयमंगलपद्मानि पठंतः पदुगीतिभिः ।

हर्षसंफुल्लवदनाः स्फुरत्पुलकभूषणाः ।

मुहुर्जयेत्येवं स्तुवाना ललितेश्वरीम् ॥१०२

हर्षेणाह्या मदोन्मत्ताः प्रनुत्यंतः पदे पदे ।

सप्तर्षयो वशिष्ठाद्या क्रग्यजुः सामरुपिभिः ॥१०३

अथर्वरूपर्मन्त्रैश्च वर्धयन्तो जयश्रियम् ।

हविषेव महावह्निशिखामत्यंतपाविनीम् ॥१०४

आशीर्वदिन महता वर्धयामासुरुत्तमाः ।

ते स्तूयमाना ललिता राजमाना रथोत्तमे ॥१०५

भंडासुरं विनिर्जेतुमुदण्डः सह सेनिकैः ॥१०६

जिस समय ईशानी ललिता देवी का विनिर्गम हुआ था उस समय में सभी प्राणी महान क्षुब्ध हो गये थे । देवगण दुन्दुभियाँ बजाने लगे थे तथा पुष्पों की वर्षा कर रहे थे । १००। विश्वावगु प्रभृति गन्धर्वगण जो सुरों के यहाँ गायक थे—तुम्बह और नारद तथा साक्षात् सरस्वती देवी सब विजय के मंगल पद्मों का बहुत सुन्दर गीतों में पाठ कर रहे थे । सबके हर्ष से मुख खिले हुए थे तथा रोमाञ्चों के भूषण स्फुरित हो रहे थे । सभी बारम्बार जय हो—जय हो—इस प्रकार से ललितेश्वरी का स्तवन कर रहे थे । १०१-१०२। सभी कदम कदम पर हर्ष से युक्त और मद से उन्मत्त हो रहे थे तथा नृत्य कर रहे थे । सप्तर्षिगण जिनमें वसिष्ठ आदि महा मुनिगण थे वे ऋग्वेद-यजुर्वेद-सामवेद और अथर्वावेद के मन्त्रों से जय श्री का वर्णन कर रहे थे । जिस तरह से हवि से महा वट्टिन को शिखा अत्यन्त पाविनी होती है वैसे ही ये सभी उत्तम ऋषिगण महान आशीर्वाद से वर्धन कर रहे थे । उनके द्वारा इस प्रकार से स्तवन की गयी ललिता उस उत्तम रथ में विराजमान हो रही थीं । वह देवी परम उद्दण्ड सेनिकों के साथ भंडासुर पर विजय प्राप्त करने को रवाना हुई थी । १०३-१०६।

—X—

### भंडासुर अहंकार वर्णन

आकर्णं ललितादेव्या यात्रानिगमनिस्वनम् ।

महातं क्षोभमायाता भंडासुरपुरालयाः ॥१

यत्र चास्ति दुराशस्य भंडदेत्यस्य दुर्धियः ।

महेन्द्रपर्वतोपांते महार्णवतठे पुरम् ॥२

तत्तु शून्यकनाम्नेव विख्यातं भुवनश्रये ।

विषं गायजदेत्यस्य सदावासः किलाभवत् ॥३

तस्मिन्नेव पुरे तस्य शतयोजनविस्तरे ।

वित्रेसुरसुराः सर्वे श्रीदेव्यागमसंच्रमात् ॥४

शतयोजनविस्तीर्णं तत्सर्वं पुरमासुरम् ।

धूमंरिवावृतमभूदुत्पातजनितैमुंहुः ॥५

अकाल एवं निर्मित्वा भित्तयो देत्यपत्तने ।

धूर्णमाना पतन्ति सम महोल्का गगनस्थलात् ॥६

उत्पातानां प्राथमिको भूकंप पर्यवर्तत ।

मही जज्वाल सकला तत्र शून्यकपत्तने ॥७

श्री ललिता देवी की यात्रा के निगम के घोष का अवण करके भंडासुर के पुर में निवास करते वाले बड़े भारी शोभ को प्राप्त होगये थे । १ जहाँ पर दुराश और दुष्ट मति वाले भंड का नगर है वह महेन्द्र पर्वत के जपान्त में ओर महारांक के लट पर है । २। वह तो शून्यक के नाम से ही तीनों भुक्तों में विरुद्धत है । वहाँ पर विष्णग्राम देत्य का सदा ही आवास हुआ था । ३। सो योजन के विस्तार वाले उसके उसी पुर में विश्वेसुर सुर सब श्री देवी के आगम के संध्रम से सी योजन विस्तीर्ण वह सम्पूर्ण असुरों का पुर बार-बार उत्पातों से समुत्पन्न धूमों से आवृत के ही समान हो गया था । ४। अकाल में ही उस देत्य के नगर में भित्तियाँ निर्मित होगयी थीं । गगन स्थल से धूर्णमान महोल्का गिरा करते थे । ५। उत्पातों का सबसे प्रथम होने वाला भूकंप हुआ था । वहाँ पर उस शून्यक पत्तन में सम्पूर्ण भूमि ज्वलित हो गयी थी । ६।

अकाल एव हृत्कंप भेखुदेत्यपुरोक्तः ।

ध्वजाग्रवर्तिनः कंकगृध्राश्चन्व वकाः खगाः ॥८

आदित्यमंडले दृष्ट्वा दृष्ट्वा चक्र दुरुच्चकैः ।

कव्यादा वहवस्त्रत्वलोचनैर्नविलोकिता ॥९

मुहुराकाशवाणीभिः परुषाभिर्बभाषिरे ।

सर्वतो दिक्षु दृश्यते केतवस्तु मलीमसाः ॥१०

धूमायमानाः प्रक्षोभजनका देत्यरक्षसाम् ।

देत्यस्त्रीणां च विभ्रष्टा अकाले भूषणसूजः ॥११

हाहेति दूरं कन्देत्यः पर्यश्रु समरोदिषुः ।

दर्पणानां वर्षणां च ध्वजानां खड़गसंपदाम् ॥१२

मणीनामंवराणां च मालिन्यमभवन्मुहुः ।

सौभेषु चन्द्रगानाम् केतिवेष्मत् सर्वतः ॥१३

अट्टालकेषु गोष्ठेषु विपणेषु समासु च ।  
चतुष्कास्वलिदेषु प्रग्रीवेषु वलेषु च ॥ १४

उस देत्य के पुर में निवास करने वाले लोग अकाल में ही हृदय के कम्प से संयन होगये थे । छवजाओं के आगे रहने वाले कंक-गृध्र-वक और पक्षी आदित्य मंडल में देख-देखकर बढ़े ऊने स्वर से क्रन्दन करने लगे । वहाँ पर बहुत से (क्रव्याद राशस) गण थे जो नित्रों के द्वारा दिखलाई नहीं दिये गये थे । ८-९। बार-बार आकाश वाणियों के द्वारा बोलते थे और सभी ओह दिशाओं में केतु बहुत ही मलिन दिखलाई दे रहे थे । १०। वे सब धूमायमान हो रहे थे और देत्यों तथा राशों के हृदयों में बड़े भारी क्षोभ को उत्पन्न करने वाले थे । और असमय में ही देत्यों की स्त्रियों के भूषण और मालाएँ छाड़ होकर गिर रहे थे । ११। हा-हा—छवनि करके अश्रुपात करती हुई इदन की छवनि में सब रो रहीं थीं । वहाँ पर दर्पण-वर्म-छवजाखंग और सम्पदाएँ एवं मणि तथा वस्त्रों में बार-बार मलिनता ही गयी थी । सौधों में-नन्द जालओं में और सभी ओर केलि करने के गृहों में महात् भीषण घोष सुनाई दिया करता था । १२-१३। अट्टालिकाओं में—गोष्ठों में—विपणों में और सभा भवनों में—चतुष्कास्वलिदेषु में—प्रग्रीवों में और वलों में सर्वत्र महात् अशुभ एवं कठोर घोष सुनाई देता था । १४।

सर्वतोभद्रवसिषु नन्दावतेषु वेशमसु ।  
विच्छ दकेषु सक्तुव्यववरोधनपालिषु ।  
स्वस्तिकेषु च सर्वेषु गर्भागारपुटेषु च ॥ १५

गोपुरेषु कपाटेषु वलभीनां च सीमसु ।  
वातायनेषु कक्ष्यासु धिष्ठेषु च खलेषु च ॥ १६  
सर्वव देत्यनगरवासिभिर्जनमंडलः ।  
अश्रूयन्त महाधीषाः परुषा भूतभाविताः ॥ १७  
गिथिली सर्वतो जोता घोरपणी भयानका ।  
करटैः कटुकालापैरवलोकि दिवाकरः भूतानीष्ठिका ॥  
आराविषु करोटीनां कोट्यश्चापतन्मुवि ॥ १८

अपतन्वेदिमध्येष विदवः शोणितांभसाम् ।  
केशीघकाश्च निष्पेतुः सर्वतो धूमधूसराः ॥१६  
भौमांतरिक्षदिव्यानामुत्पातानामिति व्रजम् ।

अवलोक्य भृशं त्रस्ताः सर्वे नगरवासिनः ।  
निवेदयामासुरमी भंडाय प्रथितौजसे ॥२०

स च भंडः प्रचंडोत्थैस्तैरुत्पातकदंबकैः ।

असंजातधृतिभ्रंशो मन्त्रस्थानमुपागमत् ॥२१

सर्वतोभद्रवासो में—नन्द्यावत्तो—घरों में—विच्छिन्नकों में और अव-  
रोधन पालियों ये सर्वत्र विश्वोभ हो रहा था । स्वस्तिकों में और समस्त  
गर्भगार पुरों में—गो पुरों में—कपाटों में और बलभियों की सीमाओं में—  
बातायनों में—कक्ष्याओं में और खलों में—सभी जगह दैत्यों के नगर में  
निवासी जनों के मण्डलों के द्वारा भूतों द्वारा कहे हुए परम कठोर महान्  
घोष सुनाई दे रहे थे । १५-१७। शिथिली भूत होते हुए घोरपर्ण और भया-  
नक हो गये थे तथा कटु आलाप वाले करटों के द्वारा दिवाकर देखा गया  
था । आरावियों में करोटियों की कोटियाँ भूमि में गिर गई थी । १८।  
वेदियों के मध्य में शोणित मिश्रित जल की बिन्दुऐं गिर रहीं थीं और  
केशीघक सभी ओर धूम से धूसर होकर गिर गये थे । १९। भूमि में होने  
वाले—अन्तरिक्ष में और दिवलोक में होने वाले उत्पातों के समुदायों को  
देखकर सभी नगर के निवासीजन अत्यधिक भयभीत हो गये थे । इन सभी  
ने परम प्रसिद्ध ओज वाले भण्डासुर से इस हश्यमान भीषणता के विषय में  
निवेदन किया था । २०। और वह भण्डासुर को इन परम प्रचण्ड उत्पातों के  
समुदायों से भी धीरज का भ्रंश नहीं हुआ था और वह मन्त्र स्थान को  
सम्प्राप्त हो गया था । २१।

मेरोरिव वपुर्भेदं बहुरत्नविचित्रितम् ।

अद्यासामास दैत्येऽङ्गः सिहासनमनुत्तमम् ॥२२

स्फुरन्मुकुटलग्नानां रत्नानां किरणीघंनैः ।

दीपयन्नखिलाशान्तानद्युतदानवेश्वरः ॥२३

एकयोजनविस्तारे महत्यास्थानमंडपे ।

तुंगसिहासनस्थं तं सिषेवाते तदानुजी ॥२४

विशुक्रश्च विषगश्च महाबलपराक्रमौ ।

त्रैलोक्यकंटकीभूतभुजदंडभयंकरौ ॥२५

अग्रजस्य सदैवाजामविलंघ्य मुहुर्मुहुः ।

त्रैलोक्यविजये लब्धं वर्धयती महद्यथः ॥२६

न तेन शिरसा तस्य मृदनंती पादपीठिकाम् ।

क्रुतांजलिप्रणामौ च समुपाविगतां भुवि ॥२७

अथास्थाने स्थिते तस्मिन्नमरद्वेषिणां वरे ।

सर्वे सामंतदैत्येन्द्रास्तं द्रष्टुं समुपागताः ॥२८

वहाँ पर मेरु पर्वत के समान वपु वाले तथा बहुत से रत्नों से चित्रित अत्युत्तम सिहासन पर देत्येन्द्र संस्थित हो गया था । २२। वह दानवेश्वर स्फुरित मुकुटों में लगे हुए रत्नों की किरणों से सब दिशाओं को दीपित करता हुआ वहाँ पर समवस्थित हुआ था । २३। उस समय में उसके दो अनुजों के द्वारा वह सेवित हुआ था । वह आस्थान मण्डप महान् था तथा एक योजन के विस्तार से युक्त था । वहाँ पर एक बहुत ही ऊँचा सिहासन था जिस पर यह दानवेन्द्र विराज मान हुआ था । २४। विशुक्र और विषंग ये दोनों इसके छोटे भाई बड़े ही अधिक बल और पराक्रम वाले थे और ये दोनों तीनों लोकों के लिये कण्डक के ही समान भुजदण्ड वाले तथा भयङ्कर थे । २५। ये दोनों ही अपने बड़े भाई की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं किया करते थे और उन्होंने त्रैलोक्य के विजय करने में महान् यश प्राप्त किया था । २६। उन्होंने अपने शिर को शुकाकर उसकी पाद पीठिका को प्रणाम किया था और अपने दोनों करों को जोड़कर ये भूमि में बैठ गये थे । २७। इसके अनन्तर जब वह सुरों का महान् शत्रु उस आस्थान मण्डप में समवस्थित हो गया था तो उसका दर्शन करने के लिए उस समय में समस्त सामन्त देवतों के साथ वहाँ पर समुपस्थित हो गये थे । २८।

तेषामेकैकसैन्यानां गणना न हि विद्यते ।

स्वं स्वं नाम समुच्चार्यं प्रणेमुर्भृदकेश्वरम् ॥२९

स च तानसुरान्सर्वान्तिधीरकनीनकैः ।

संभावयन्समालोकैः कियंतं चित्क्षणं स्थितः ॥३०

अबोचत विशुक्रस्तमग्रजं दानवेश्वरम् ।  
 मथ्यमानमहासिध्गुसमानार्गलनिस्वनः ॥३१  
 देव त्वदीयदोद्दण्डविश्वस्तब्लविकमा: ।  
 पापिनः पामराचारा दुरात्मानः सुराधमाः ॥३२  
 शरण्यमन्यतः क्वापि नाप्नुवन्तो विषादिनः ।  
 ज्वलज्ज्वालाकुले वहनो पतित्वा नाशमागताः ॥३३  
 तस्माद्वात्समृत्पन्ना काचित्स्त्री बलगविता ।  
 स्वयमेव किलास्त्राक्षुस्ती देवा वासवादयः ॥३४  
 तैः पनः प्रबलोत्साहैः प्रोत्साहितपराकमाः ।

**बहुस्त्रीपरिवाराश्च विविधायुधमंडिताः ॥३५**

उन एक-एक की इतनी अधिक सेना थी जिसकी कोई गणना नहीं है। उनमें सबने अपने-अपने नाम का उच्चारण करके उस भण्डकेश्वर के लिये प्रणिपात किया था। ३१। उस देवेश्वर ने अत्यन्त धर्ययुक्त नेत्रों से उन समस्त अभुतों का समादर करते हुए कुछ क्षण तक चुप वह शान्त रहा था। फिर अग्रज दाननेश्वरों से विशुक्र बोला था—उस समय में उसका स्वर मथ्यमान मिन्दु के समान था। ३०-३१। हे देव ! आपकी भुजाओं से जिनका बल और विक्रम विश्वस्त हो गया है वे पापी, पामर आचरण वाले दुष्ट आत्मा अधम सुरगण विषाद युक्त होकर अन्य कहों पर भी शरण की प्राप्ति नहीं हुए थे। तथा जलती हुई ज्वालाओं से समाकुल वहन में गिर कर विनाश को प्राप्त हो गये थे। ३२-३३। उस देव से समुत्पन्न कोई स्त्री है जो अपने बल के अत्यधिक गर्व वाली है। वासव आदिक समस्त देवगण स्वयं ही उसकी शरण में गये हैं। ३४। उन्हीं के द्वारा जिन को परम प्रबल उत्साह हो रहा है उनके पराक्रम को प्रोत्साहन दिया है। उसके साथ बहुत सी स्त्रियों के परिवार भी विद्यमान हैं और वे सब अनेक प्रकार के आयुधों से भूषित हैं। ३५।

अस्माऽन्जेतुं किलायाति हा कष्टं विश्विवेशसम् ।  
 अबलानां समूहश्चेदबलिनोऽस्मान्विजेष्यते ॥३६  
 तहि पल्लवभंगेत पाषाणस्य विदारणम् ।  
 कहा पानगिरं हनुं परिहासम् कल्पयते ॥३७

विडवना न किमसौ लेञ्जाकरमिदानं किम् ॥४९॥  
 अस्मत्सैनिकनासीरभटेष्योऽपि भवेद्ग्रयम् ॥५०॥  
 कातरत्वं समापन्ना ग्रीष्मकाद्यास्त्रिदिवीकसः प्राप्तम् कृकैय  
 ब्रह्मादयश्च निविष्णविग्रहा मद्वलीयुथः ॥५१॥  
 विष्णोश्च का कथैवास्ते वित्रस्तः स महेश्वरः ।  
 अन्येषामिह का वार्ता दिवपालास्ते पलायिता ॥५०॥  
 अस्माकमिषुभिस्तीष्टणेरहृष्येरंगपातिभिः ।  
 सर्वत्र विद्ववर्मणो दुमंदा विवधाः कृता ॥५१॥  
 तादृशानामपि महापराक्रमभुजोऽमणाम् ।  
 अस्माकं विजयायाद्य स्त्री काच्चिदभिधावति ॥५२॥

वे सब हमें लोगों पर विजय प्राप्त करने के लिए आ रही हैं। हाँ !  
 बड़े ही कष्टकारी विषय है यह क्या विद्वाताकांचेष्टिते हैं यदि यह अवलाओं की समुदाय हमको जीत लेगा । ३६। तो फिर यिलों के अंग से प्राण का ही विदारण हो जायगा । जप इसी हेतु पिर विचार तकिया जाता है तो परिहास सा ही होता है । ३७। क्या यह विडवना मात्र नहीं है और क्या यह लेञ्जा उत्पन्न करने वालों वाला नहीं है ? जो हमारे सैनिकों की सेना से भी भय को प्राप्त होते हैं । ३८। वे शक्ति आदि देवगण कातरता को प्राप्त हुए हैं । हमारी सेना की आयुध शक्ति से ब्रह्मादिकांशीलनिविष्ण विग्रह वाले होते हैं । ३९। विष्णु के विषय में तो कहा ही क्या जावे साक्षात् महेश्वर भी भय भीत है । अन्यों की तो बात ही क्या है सब दिवपाल भी आग गये हैं । ४०। हमारे परमाधिक तीक्ष्ण वाणों से जो अहश्य हैं और अंग में गिरने वाले हैं सभी जगह वर्मों को भेदने वाले हैं ऐसे सब देवों को दुमंदत्तकर द्विष्ठा है । ४१। हम ऐसे हैं जिनके भुजों में महापराक्रम की छिपा है उनके ऊपर विजय प्राप्त करने के लिए इस समय में कोई स्त्री अभिधावन कर रही हैं । ४२। किंतु अल्पोऽपि रिपुरात्मज्जैनविमान्यो जिगीषुभिः ॥४३॥ ५३। हैं तिक तस्मात्तदुत्सारणीयं देष्यमीयास्तु किङ्कुराक अंगानी हैं सकचग्रहमाकृष्य । सानेतव्या मदोद्धतोऽपाहृण्णित्वीत

देव त्वदीय शुद्धांतवैर्तितीनां मृगीद्वशाम् ।

चिरेण चेटिकाभावं सा दुष्टा संशयिष्यति ॥४५

एकैकस्माद्गुटादस्मात्सैन्येषु परिपञ्चिनः ।

शङ्खते खलु वित्रस्तं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥४६

अन्यदेवस्य चित्तं तु प्रमाणमिति दानव ।

निवेद्य भण्डदैत्यस्य क्रोधं तस्य व्यवीकृधन् ॥४७

विषज्ञस्तु महासत्त्वो विचारज्ञो विचक्षणः ।

इदमाह महादैत्यमग्रजन्मानमुद्धतम् ॥४७

देव त्वमेव जानासि सर्वं कार्यमरिन्दम् ।

न तु ते क्वापि वक्तव्यं नीतिवत्मनि वर्तते ॥४८

यद्यपि वह स्त्री है तो भी उसका अपमान कभी भी नहीं करना चाहिए । जो आत्मज्ञानी हैं उनके द्वारा छोटा भी शत्रु जीतने की इच्छा वालों के द्वारा कभी भी अपमानित नहीं होना चाहिए । ४३। इसलिए उसके उत्सारण के बास्ते किञ्चुर अवश्य ही भेज देने चाहिए कि वे उस मदने उद्धता स्त्री के शिर के केशों को पकड़ कर उसे यहाँ ले आवें । ४४। हे देव ! आपके यहाँ अन्दर अवरोध में रहने वाली जो हरिण के समान नेत्रों वाली सुन्दरियाँ हैं उनकी दासी बनकर बहुत समय तक वह दुष्टा स्त्री उनको सेवा किया करेगी । ४५। हमारे एक-एक योद्धा से ही परिपन्थी की सेनाओं में त्रैलोक्य विशेष रूपसे त्रस्त होकर सम्पूर्ण चराचर शङ्खित होता है । ४६। हे दानव ! अन्य तो आपका चित्त ही प्रमाण है । ऐसा निवेदन करके उस भंडासुर का क्रोध और अधिक बढ़ा दिया था । ४७। महान् सत्व वाला जो विषंग वह विचक्षण और विचारों का जाता था । वह अपने बड़े भाई से यह बोला था जो कि उद्धत देत्य था । ४८। हे देव ! आप तो स्वयं शत्रुओं के दमन करने वाले हैं आप स्वयं ही सब कार्य को जानते हैं । आपको किसी को भी कुछ भी नहीं बताना चाहिए क्योंकि आप नीति के मार्ग में रहा करते हैं । ४९।

सर्वं विचार्यं कर्तव्यं विचारः परमा गतिः ।

अविचारेण चेत्कर्म समूलमवकृत्तति ॥५०

परस्य कटके चारा: षणीयाः प्रयत्नतः ।

तेषां बलाबलं ज्ञेयं जयसंसिद्धिमिच्छता ॥५१

चारचक्षुर्द्धप्रज्ञः सदाशंकितमानसः ।

अशंकिताकारवांश्च गुप्तमन्त्रः स्वमंत्रिषु ॥५२

षडुपायान्प्रयुञ्जानः सर्वत्राभ्यहिते पदे ।

विजयं लभते राजा जालमो मक्षु विनश्यति ॥५३

अविमृश्येव यः कश्चिदारम्भः स विनाशकृत् ।

विमृश्य तु कृतं कर्म विशेषजयदायकम् ॥५४

तिर्यगित्यपि नारीति क्षुद्रा चेत्यपि राजभिः ।

नावज्ञा वैरिणां कार्या शक्तेः सर्वत्र सम्मवः ॥५५

स्तंभोत्पन्नेन केनापि नरतिर्यग्वपुर्भृता ।

भूतेन सर्वभूतानां हिरण्यकणिपुर्हंतः ॥५६

जो कुछ भी करता है वह सब विचार करके ही करना चाहिए क्यों-कि भली भाँति विचार का करना ही परम गति है । विना भली भाँति से विचार के जो भी कुछ किया जाता है वह मूल के सहित ही सम्पूर्ण विनष्ट हो जाया करता है ।५०। शत्रु के कटक में दूत प्रयत्न पूर्वक भेजने चाहिए । अपनी विजय की सिद्धि को इच्छा रखने वाले को चाहिए कि शत्रु के बल और अबल का पहिले ज्ञान प्राप्त कर लेवे ।५१। जो दूतों के द्वारा ही देखने वाला है—जिसकी प्रतिज्ञा सुहड़ है—जो सदा ही शङ्कृत मन वाला है—जो अशङ्कृत आकार वाला है—जो अपने मन्त्रियों में गुप्त मन्त्रणा वाला होता है । ये छु उपाय हैं इनका प्रयोग करने वाला जो सदा अभ्यहित पद पर स्थित रहता है वही राजा विजय का लाभ प्राप्त किया करता है । जो जालम होता है उसका शीघ्र विनाश हो जाया करता है ।५२-५३। कोई भी कार्य का आरम्भ विना आगा-पीछा सोचे ही कर दिया जाया करता है वह विनाश करने वाला ही हुआ करता है । जिसका भली भाँति विचार करके पीछे जो कर्म किया गया है वह विशेष रूप से जय देने वाला ही हुआ करता है ।५४। यह तिर्यग है—यह नारी है अथवा यह क्षुद्रा है—इन बातों से भी राजाओं को कभी भी वैरिणों की अवज्ञा नहीं करनी चाहिए क्योंकि शक्ति तो ऐसी विलक्षण है कि वह सभी जगह हो सकती हैं । देखिये, ऐतिहासिक

घटना विद्यमान है—खम्भे से समुत्पन्न-निर और त्रियंग (पशु) का बपु धारण करने वाले समस्त प्राणियों का भूत नरसिंह ने हिरण्यकशिपु जैसे महान् बलवान् को मार डाला था । ५५-५६।

पुरा हि चंडिका नाम नारी मायाविजुभिण ।

निशुभ्यशुभ्यो महिष व्यापादितवतो रणे ॥५७॥

तत्प्रसगेन बहवस्तया देत्या विनाशितः ।

अतो वदामि नावजा स्त्रीमात्रे कियता क्वचित् ॥५८॥

शक्तिरेव हि सर्वत्र कारणं विजयश्रियः ।

शक्तेरावारतां प्राप्ते स्त्रीपुलिगेन तो भयम् ॥५९॥

शक्तिस्तु सर्वतो भाति संसारस्य स्वभावतः ।

तहि तस्या दुराशाया प्रवृत्तिज्ञयितां त्वया ॥६०॥

केयं कस्मात्समुत्पन्ना किमाचारा किमाश्रया ।

किवला किसहाया वा देवं तत्प्रविचार्यंताम् ॥६१॥

इत्युक्तः स विषयेण को विचारो महोजसाम् । उक्ति की उत्तरी अस्मद्दब्ले महासत्त्वा अक्षौहिण्यशिपाः शतम् ॥६२॥

पातु क्षमास्ते जलधीनलं दग्धु त्रिविष्टपम् । उक्ति की उत्तरी अरे पापसमाचार किं वृथा शङ्कसे स्त्रियः ॥६३॥

प्राचीन समय में भी चंडिका नाम वाली एक नारी ही तो यी जिसने रण में निशुभ्य-शुभ्य और महिष को मार डाला था । ५७। उसी के प्रसंग से उसने बहुत से देवयों का विनाश करा दिया था । इसी कारण से मैं यही बहलाता हूँ कि यह समझ करके केवल स्त्री ही तो है कभी भी अवज्ञानहीं करनी चाहिए । ५८। शक्ति ही सर्वत्र विजय की थी काकारण हुआ करती है स शक्ति के आधार को प्राप्त हैं उन स्त्री और पुरुषों से हम को भय नहीं है । ५९। इस संसार की स्वभाव से ही शक्ति ही सर्व ओर विभाव हुआ करती है । सो उस बुरे आशय वाली की क्या प्रवृत्ति है—आप को समझ लेना चाहिए । ६०। हे देव ! आपको इस सभी वालों का विचार करे लेना चाहिए कि यह कौन है—किससे यह सिमुत्पन्न हुई है—इसके आचार क्या है—

करने वाले कौन-कौन हैं । ६६। उस विषंग छोटे भाई के द्वारा जब इस रीति से भंडासुर से कहा गया था तो उसने कहा था कि जो महान् ओज वाले हैं उनके लिए विचार का करने की क्या आवश्यकता है । हमारी सेना में महान् सत्वधारी हैं और सैकड़ों तो अक्षीहिणी सेना के अधिप हैं । वे इतने समर्थ हैं कि जलधि के जल का भी पान कर सकते हैं और स्वर्ग को भी दग्ध कर सकते हैं । अरे ! पापसमाचार ! व्यर्थ ही स्त्रियों के विषय में तू क्या ऐसी शङ्खा कर रहा है । ६२-६३।

तत्सत्वं हि मया पूर्वं चारद्वारावलोकितम् ।

अग्रे समुदिता काञ्चिल्लितानामधारिणी ॥६४

यथार्थनामवत्येषा पुष्पवत्पेशलाकृतिः ।

न सत्त्वं न च वीर्यं वा न संग्रामेषु वा गतिः ॥६५

सा चाविचारनिवहा किंतु मायापरायणा ।

तत्सत्त्वेनाविद्यमानं स्त्रीकदम्बकमात्मनः ॥६६

उत्पादितवती कि ते न चौबं तु विचेष्टते ।

अथ वा भवदुक्तेन न्यायेनास्तु महदबलम् ॥६७

त्रैलोक्यलंघिमहिमा भण्डः केन विजीयते ॥६८

इदानीमपि मद्वाहुबलसंमर्दं मूर्च्छिताः ।

एवसितुं चापि पटवो न कदाचन नाकिनः ॥६९

केचित्पातालगर्भेषु केचिदम्बुद्धिवारिषु ।

केचिद्विग्रंतकोणेषु केचित्कुञ्जेषु भूभृताम् ॥७०

यह सब तो मैंने पहले ही दूतों के द्वारा देख लिया है । इसके आगे कोई ललिता नाम वाली स्त्री समुदित हुई है । ६४। यह यथार्थ नाम वाली है अर्थात् जो भी इसके नाम का अर्थ होता है वैसी ही है । पुष्प के समान तो इसका परम कोमल शरीर है । न तो उसमें कोई सत्त्व है और न वीर्य-पराक्रम ही । संग्रामों में ऐसी स्त्री की क्या गति हो सकती है । ६५। और वह तो अविचारों का समुदाय ही है किन्तु माया फैलाने में अवश्य ही वह परायणा है । उसके सत्त्व से ही उसका अपना स्त्रियों का समुदाय अविद्यमान है । ६६। उनसे उसने क्या उत्पादन किया है और न इस प्रकार से

विशेष चेष्टा ही करती है। अथवा आपके द्वारा कथित न्याय से महान् भी उसका बल होवे तो रहे। ६७। तीनों लोकों के द्वारा जिसकी महिमा का उल्लंघन नहीं होता है ऐसा यह भण्डासुर किसके द्वारा जीता जा सकता है अथवा इसको कोई भी पराजित नहीं कर सकता है। ६८। इस समय में भी देवगण मेरे बाहुबल के संमर्द्दन से मूच्छित किसी समय में भी श्वास लेने में भी समर्थ नहीं हैं। ६९। उनमें से कुछ तो पाताल के गभर्में में जा छिपे हैं और कुछ समुद्र के जलों में छिपे हुए हैं। कुछ दिशाओं के अन्त में कोणों में छिप रहे हैं तथा कुछ कुञ्जों में जाकर छिपाये हैं जो कि पर्वतों में है। ७०।

**विलीना भृशवित्रस्तास्त्यक्तदारसुतश्चियः ।**

**भ्रष्टाधिकाराः पशवश्छत्त्वेषाश्चरंति ते ॥७१॥**

**एतादृशं न जानाति मम बाहुपराक्रमम् ।**

**अबला न चिरोत्पन्ना तेनैषा दर्पमश्नुते ॥७२॥**

**न जानन्ति स्त्रियो मूढा वृथा कल्पितमाहसाः ।**

**विनाशगनुधावन्ति कायकार्यविमोहिताः ॥७३॥**

**अथ वा तां पुरस्कृत्य यद्यागच्छन्ति नाकिनः ।**

**यथा महोरगाः सिद्धाः साध्या वा युद्धदुर्मदाः ॥७४॥**

**ब्रह्मा वा पद्मनाभो वा रुद्रो वापि सुराधिपः ।**

**अन्ये वा हारितां नाथास्तान्सपेष्टु महं पदुः ॥७५॥**

**अथ वा मम सेनासु सेनान्यो रणदुर्मदाः ।**

**पक्वकर्करिकापेषमवपेक्ष्यंति वैरिणः ॥७६॥**

**कुटिलाक्षः कुरुंडश्च करंकः कालवाशितः ।**

**वज्रदंतो वज्रमुखो वज्रलोमा बलाहकः ॥७७॥**

ये सभी अपने दारा-पुत्र और श्री का त्याग करके अत्यधिक डरे हुए विलीन हो रहे हैं जिनके सब अधिकार भ्रष्ट हो गये हैं। एक पशु के समान ही अपना वेष छिपाये सब इधर-उधर विचरण कर रहे हैं। ७१। इस प्रकार के मेरा जो बाहुओं का पराक्रम है उसको वह नहीं जानती है कारण यही है कि एक तो वह स्त्री है दूसरे अभी-अभी उत्पन्न हुई है। इसी से वह इतना दंप करती है। ७२। स्त्रियाँ तो स्वभाव से ही मूढ़ हुआ करती हैं।

इनका तो जो भी कुछ साहस होता है वह वृद्धा ही कलिपत हुआ करता है । ये कार्य और अकार्य में मोहित ही हुआ करती हैं तथा ये विनाश की ओर अनुशावन किया करती हैं । ७३। अथवा ऐसा भी हो कि उस स्त्री को आगे करके ये देवगण यदि पीछे से आते हैं तो कोई भी क्यों न होवें—चाहे वे महोरग हों—साध्य हों या दुर्मद सिद्ध भी होवें । ब्रह्मा तथा पद्मनाभ और रुद्र भी क्यों न हों । या सुराखिप इन्द्र भी होवे और दिक्पाल होवें उन सबको पीस देने में मैं एक ही परम समर्थ हूँ । मुझे इन सबका कुछ भी भय नहीं है । ७५। अथवा मेरी सेनाओं में जो भी सेनानी हैं वे बड़े रण दुर्मद हैं । वे तो वैरियों को पक्षकर्किरिका के समान पीस देने की अवेक्षा ही कर रहे हैं । ७६। उन सेनानियों के कुछ प्रथित नाम मैं बतलाता हूँ—कुटिलाक्ष—कुरण्ड—कटंक—कालवाणित—वज्रदन्द—वज्रमुख—वज्रलोमा—बलाहक हैं । ७७।

**सूचीमुखः फलमुखो विकटो विकटाननः ।**

**करालाक्षः कर्कटको मदनो दीर्घजिह्वकः ॥७८**

**हुंवको हलमुल्लुचः कर्कशः कलिकवाहनः ।**

**पुल्कसः पुण्ड्रकेतुश्च चण्डबाहुश्च कुकुरः ॥७९**

**जंबुकाक्षो जृभणश्च तीक्ष्णशृंगस्त्रिकंटक ।**

**चतुरुप्तश्चतुर्बहुश्चकाराक्षश्चतुः शिराः ॥८०**

**वज्रघोषश्चोर्ध्वकेशो महामायो महाहनुः ।**

**मखगत्रुमेखारस्कन्दी सिंहघोषः शिरालकः ॥८१**

**अंधकः सिधुनेत्रश्च कूपकः कूपलोचनः ।**

**गुहाक्षो गंडगल्लश्च चण्डधर्मो यमांतकः ॥८२**

**लहुनः पट्टसेनश्च पुरजित्पूर्वमारकः ।**

**स्वर्गशत्रुः स्वर्गबलो दुर्गाख्यः स्वर्गकण्टकः ॥८३**

**अतिमायो वृहन्माय उपमाय उलूकजित् ।**

**पुरुषेणो विषेणश्च कुन्तिषेणः परुषकः ॥८४**

**सूचीमुख—फलमुख—विकट—विकटानन—करालाक्ष—कर्कटक—मदन—  
दीर्घजिह्वक—हुम्बक—हलमुल्लुच—कर्कश—कलिक—वाहन—पुल्कश—**

पुण्ड्रकेतु—चण्डवाहु—कुकुर—जम्बुकाक्ष—जूम्भण—तीक्ष्णभृङ्ग—त्रिक—  
टक—चतुर्गुप्त—चतुर्वहि—चकाराक्ष-चतुष्शिरा—वज्रघोष—ऊर्ध्वकेश—  
महामाया—महाहन—मखशत्रु—मरखास्कन्दी—। सहवोप—शिरालक—  
अन्धक—सिन्धु नेत्र—कूपक—कपलोचन—गुहाक—गणुगत्त्व-चण्डधर्म—  
यमान्तक—लडुन—पट्टसेन—पुरजित—पूर्वद्वारक—स्वर्गशत्रु—स्वर्गबल—  
दुर्गारथ्य—स्वगकण्टक—अतिमाय—वृहन्माय—उपमाय—उलूकजित—पुरु—  
षेण—विषेण—कुन्तिषेण—परुषक । ७८-८४।

भलकश्च कशूरश्च मंगलोद्रघणस्तथा ।

कोल्लाटः कुजिलाश्वश्च दासेरो वध्रुवाहनः ॥८५

दृष्ट्वासो हृष्टकेतुः परिक्षेप्तापकंचुकः ।

महामहो महादंष्ट्रो दुर्गतिः स्वर्गमेजयः ॥८६

षट्केतुः षड्वसुश्चैव षड् दन्तं षट्प्रियस्तथा ।

दुःशठो दुर्विनीतश्च छिन्नकर्णश्च मूषकः ॥८७

अट्टहासी महाशी च महाशीर्षो मदोत्कटः ।

कुम्भोत्कचः कुम्भनासः कुम्भग्रीवो घटोदरः ॥८८

अश्वमेद्रो महांडश्च कुम्भांडः पूतिनासिकः ।

पूतिदन्तः पूतिचक्षुः पूत्यास्यः पूतिमेहनः ॥८९

इत्येवमादयः शूरा हिरण्यकशिपोः समाः ।

हिरण्याक्षसमाश्चैव मम पुत्रा महाबलाः ॥९०

एकैकस्य सुतास्तेषु जाताः शूराः परशतम् ।

सेनान्यो मे मदोदवृत्ता मम पुत्रैरनुद्रुताः ॥९१

भलक—कशूर—मञ्जल—द्रघण—कोल्लाट—कुजिलाश्व—दासेर—  
वध्रुवाहन—दृष्ट्वास—दृष्टकेतु—परिक्षेप्ता—अपकञ्चुक—महामह—महा—  
दंष्ट्र—दुर्गति—स्वर्गमेजय—षट्केतु—षड्वसु—षड्दन्त—षट्प्रिय—दुःशठ—  
दुर्विनीत—छिन्न कर्ण—मूषक—अट्टहासी—महाशी—महाशीर्ष—मदोत्कट—  
कुम्भोत्कच—कुम्भनास—कुम्भग्रीव—घटोदर—अश्वमेद्रमहाण्ड—कुम्माण्ड—पूति—  
नासिक—पूतिदन्त—पूति चक्षु—पूत्यास्य—पूतिमेहन—इत्यादिक इस प्रकार

हिरण्याक्ष के तुल्य हैं । १५-१०। उनके एक-एक के सैकड़ों से भी अधिक पुत्र हैं बहुत ही शूर उत्पन्न हुए हैं । मेरे सेनानी मदोदत्त हैं और मेरे पुत्रों के पीछे दौड़ लगाने वाले हैं । ११।

नाशयिष्यन्ति समरे प्रोद्धतानमराधमात् ।

ये केचित्कुपिता युद्धे सहस्राक्षौहिणी वराः ।

भस्मशेषा भवेयुस्ते हा हन्त किमुताबला ॥१२॥

मायाविलासाः सर्वेऽपि तस्याः समरसीमनि ।

महामायाविनोदाश्च कुर्युस्ते भस्मसाद्वलम् ॥१३॥

तद्वृथा शंकया खिन्नं मा ते भवतु मानसम् ।

इत्युक्त्वा भंडदैत्येन्द्रः समुत्थाय नृपासनात् ॥१४॥

उवाच निजसेनान्यं कुटिलाक्षं महाबलम् ।

उत्तिष्ठ रे बलं सर्वं संनाहय समंततः ॥१५॥

शून्यकस्य समंताच्च द्वारेषु बलमर्पय ।

दुर्गाणि संगृहाण त्वं कुरु क्षेपणिकाशतम् ॥१६॥

दुष्टाभिचाराः कर्तव्या मन्त्रभिश्च पुरोहितैः ।

सज्जीकुरु त्वं शस्त्राणि युद्धमेतदुपस्थितम् ॥१७॥

सेनापतिषु ये केचिदग्रे प्रस्थापयाधुना ।

अनेकबलसंघातसहितं घोरदर्शनम् ॥१८॥

जब भी संग्राम होगा तब उसमें ये लोग प्रोद्धत और अधम अमरों का नाश कर देंगे । जो कोई भी युद्ध में कुपित होंगे परम श्रेष्ठ सहस्रों अक्षौहिणी सेनाएँ हैं वे सब भस्मीभूत ही हो जायंगे । हा ! हन्त ! विचारी स्त्रियाँ क्या हैं अर्थात् युद्ध में ये क्या ठहर सकती हैं । १२। उसके समर की सीमा में सभी माया के विलास वाले हैं तथा महामाया के विनोद से समन्वित हैं । जब वे मेरे शूर कोप करेंगे तब सम्पूर्ण बल भस्मसात् हो जायगा । १३। सो व्यर्थ ही शंका से तुम्हारा मन खिन्न नहीं होवे । इतना यह कहकर भण्डदैत्येन्द्र नृप के आसन से उठकर खड़ा हो गया था । १४। और महाबली कुटिलाक्ष सेनानी से बोला था । रे उठ जाओ और अपनी समस्त सेना को सब ओर से सज्जित करो । १५। और शून्य के सब ओर द्वारों पर सेना लगा

दो । तू दुगों को संग्रहण करो जहाँ पर सैकड़ों ही क्षेपणिकाएँ होवें ॥६६। मन्त्रियों और पुरोहितों के द्वारा दुष्ट अभिचार कर्मनिष्ठान करना चाहिए । तुम शस्त्रों को सजिज्जत करो क्योंकि यह युद्ध अब उपस्थित हो गया है ॥६७। सेनापतियों में जो कोई भी हैं उनको इसी समय हमारे सामने करो । जो अनेक बल के संघात के सहित घोर दर्शन वाले हैं ॥६८।

तेन संग्रामसमये सन्निपत्य विनिजितम् ।

केशेष्वाकृष्य तां मूढां देवसत्त्वेन दर्पिताम् ॥६६

इत्याभाष्य चमूनाथे सहस्रत्रितयाधिपम् ।

कुटिलाक्षं महासत्त्वं स्वयं चान्तःपुरं यथौ ॥१००

अथापतन्त्याः श्रीदेव्या यात्रानिःसाणनि.स्वनाः ।

अश्रूयंत च दैत्येन्द्रैरतिकर्णज्वरावहाः ॥१०१

उसने संग्राम के समय में आगे समाप्तित होकर विजय प्राप्त की है । देवों के सत्त्व से बहुत ही दर्प वाली उसको महामूढ़ा को चोटी खींचकर खींच लाओ ॥६६। तीन सहस्र के अधिप महान् सत्त्व वाले चमू के नाध कुटिलाक्ष से यह कहकर वह भण्ड अन्तःपुर में चला गया था ॥१००। इसके अनन्तर आकृमण करके आती हुई श्री देवी की यात्रा के निःसाथ महान् घोर ध्वनियाँ दैत्येन्द्रों के द्वारा सुनायी दी थीं जो कानों को बहुत ही दुःखद हो रही थीं ॥१०१।

— × —

### दुर्मद कुरुण वध वर्णन

अथ श्रीललितासेना निस्साणाप्रतिनिस्वनः ।

उच्चचालासुरेन्द्राणां योद्धतो दुन्दुभिध्वनिः ॥१

तेन मर्दितदिवकेन क्षुभ्यदगर्भपयोधिना ।

बधिरीकृतलोकेन चकम्ये जगतां त्रयी ॥२

मर्दयन्ककुभां वृन्दं भिन्दन्भूधरकन्दरा ।

पुत्रोथे गगनाभोगे दंत्यनिःसाणनिस्वना ॥३

महानरहरिक्रुद्धुङ्कारोद्धतिमद्धनिः ।

विरसं विररासोच्चैविद्युधद्वेषिङ्गलरी ॥४

ततः किलकिलारावमुखरा दैत्यकोट्यः ।

समनह्यन्त संक्रुद्धाः प्रति तां परमेश्वरीम् ॥५

कश्चिच्द्रत्नविचित्रेण वर्मणाच्छन्नविग्रहः ।

चकाशे जंगम इव प्रोत्तुङ्गो रोहणाचलः ॥६

कालरात्रिमिवोदग्रां शस्त्रकारेण गोपिताम् ।

अणुनीत भटः कश्चिदतिधीतां कृपाणिकाम् ॥७

इसके अनन्तर श्री ललिता देवी की सेना के निस्सरण की प्रतिष्ठवनि ने असुरेन्द्रों को उच्चालित कर दिया था जो कि दुन्दुभियों की अतीब उद्धत ध्वनि उस समय में हो रही थी । १। दिशाओं के मदित करने वाली उससे पयोधियों का गर्भ भी शुष्क हो गया था और समस्त लोक उस महान् भीषण एवं घोर ध्वनि से बहरा हो गया था । उस समय में तीनों भुवन काप उठे थे । २। इधर दैत्यों के निःसाण का घोष भी दिशाओं के समूह को मदित कर रहा था तथा पर्वतों की कन्दराओं का भेदन कर रहा था एवं नभो मण्डल में ऊपर उठ गया था । ३। महान् नरसिंह के क्रोध से निकलने वाली हुँकार के समान जो उद्धत ध्वनि थी वह देवों के शत्रुओं की झल्लरी बहुत ही अधिक विरसता उत्पन्न कर रही थी । ४। इसके उपरान्त किल-किल की ध्वनि से शब्दायमान दैत्यों को शोणियाँ हो रही थी । वे सभी परमेश्वरी उस देवी के प्रति बहुत ही कुछ होकर सन्नद्ध हुए थे । ५। वह बहुत ही ऊँचा रोहणाचल रत्नों से विचित्र कर्म (कवच) से ढके हुए शरीर वाला एक जङ्गम के ही समान शोभित हो रहा था । ६। कोई भट अपनी अतिधीत कृपाण को जो शस्त्रकार से गोपित थी कालरात्रि के ही समान उदग्र को हिला रहा था । ७।

उल्लासयन्कराग्रेण कुन्तपल्लवमेकतः ।

आहृढतुरगो वीथ्यां चारिभेदं चकार ह ॥८

केचिदारुहुर्योधा मातंगास्तुं गवध्मणः ।

उत्पातवातसंपातप्रेरितानिव पर्वतान् ॥९

पट्टिशैमुद्गरेश्चैव भिदुरेभिडिपालकः ।

द्रुहणेश्च भुशुण्डीभिः कुठारेमुसल्लरपि ॥१०

गदाभिश्च शतघ्नीभिस्त्रिशिखैविशिखैरपि ।

अर्धचक्रमहाचक्रवंकांगैरुगानन् ॥ ११

फणशीषं प्रभेदैश्च धनुभिः शार्गंधन्विभिः ।

दण्डः क्षेपणिकाशस्त्रैवंज्ञवाणैष्टद्वरैः ॥ १२

यवमध्यैमुष्टिमध्यैवललैः खंडलैरपि ।

कटारैः कोणमध्यैश्च फणिदन्तैः परः शतैः ॥ १३

पाशायुधैः पाशतुण्डैः काकतुण्डैः सहस्रशः ।

एवमादिभिरत्युग्रेरायुधैर्जीविहारिभिः ॥ १४

एक ओर अपने कर के अग्रभाग से भाला हाथ में लिये हुए अशव पर समारूढ़ होकर दीथी में चरण करने वालों को तितर-बितर कर रहा था । ८। कुछ योधागण बहुत ही ऊँचे वपु वाले हाथियों पर समारूढ़ थे जो कि उत्पात वाली वायु के सम्पात से प्रेरित पर्वतों के ही तुल्य दिखाई दे रहे थे । ९। उस समय में बड़े-बड़े आयुधों के द्वारा प्रहार किये जा रहे थे—उनमें कतिपय आयुधों के नाम ये हैं—पट्टिश-मुदगरभिदुर-भिण्डी पालक-द्रुहिण-भ्रुशुण्डी—कुठार—मुसल—गदा—शतघ्नी—त्रिशिख—विशिख—अर्धचक्र-महाचक्र—वकाङ्ग—उरगानन—फण—शीष—धनुष-दण्ड—क्षेपणिकाशत्र-वञ्जवाण—हृषद्वर—यवमध्य—मुष्टिमध्य—वलल—खण्डल—कटार—कोण-मध्य—सैकड़ों से भी अधिक फणिदन्त—पाशायुध—पाशतुण्ड—सहस्रों काकतुण्ड—इस प्रकार से जीवों के विनाशक आयुधों का प्रयोग किया जा रहा था । १०-१४।

परिकल्पितहस्ताग्रा वर्मिता देत्यकोटयः ।

अश्वारोहा गजारोहा गर्दभारोहिणः परे ॥ १५

उष्ट्रारोहा वृकारोहा शुनकारोहिणः परे ।

काकादिरोहिणो गृध्रारोहाः कंकादिरोहिणः ॥ १६

व्याघ्रादिरोहिणश्चान्ये परे सिंहादिरोहिणः ।

शरभारोहिणश्चान्ये भेरुण्डारोहिणः परे ॥ १७

सूकरारोहिणो व्यालारुढाः प्रेतादिरोहिणः ।

एवं तात्त्विभैर्वर्तमानितो ततितां प्रति ॥ १८

प्रचेलुः प्रबलक्रोधसंमूच्छतनिजाशयाः ।

कुटिलं सैन्यभत्तारं दुर्मंदं नाम दानवम् ।

दशाक्षीहिणिकायुक्तं प्राहिणोल्लितां प्रति ॥१६॥

दिधक्षुभिरिवाशेषं विश्वं सह बलोत्कटः ।

भट्टयुक्तः स सेनानी ललिताभिमुखे यथौ ॥२०॥

भिदन्पटहसंरागैश्चतुर्दश जगन्ति सः ।

अट्टहासान्वितन्वानो दुर्मदस्तन्मुखो यथौ ॥२१॥

परिकल्पिता हस्तों के अग्रवाली वर्भित देत्यों की कोटियाँ हैं । कुछ अश्वों पर सवार थे—कुछ हाथियों पर आरूढ़ थे—और कुछ गर्दभों पर बैठे हुए थे । १५। कुछ ऊँटों पर सवार—कुछ वृक्षों पर समारूढ़ तथा कुछ श्वानों पर सवार थे । काक आदिकों पर भी सवार थे तथा गृध्रों पर और कंकों पर सवार कुछ हो रहे थे । १६। कुछ व्याघ्र आदि पर सवार थे तथा कुछ सिंह आदि पर आरूढ़ थे । अन्य शरभों पर सवार थे सो कुछ मेरुण्डों पर समारूढ़ हो रहे थे । १७। सूकरों पर कुछ देत्य सवारी किये हुए थे एवं व्यालों पर और प्रेतों पर कुछ सवार थे । इस रोति से अनेक प्रकार के वाहनों पर बैठकर देत्यगण ललिता देवी के प्रति आकृमण कर रहे थे । १८। प्रबल क्रोध से उनका अपना आशय भी मूच्छत हो रहा था । परम कुटिल दुर्मंद नामक सेनापति को दण अश्वीहिणी सेना से संयुत करके ललितादेवी पर आकृमण करने के लिए भेजा था । १९। अपने अत्युत्कट बल के द्वारा सम्पूर्ण विश्व को दम्ध करने की इच्छा वाले की तरह ही भटों से युक्त वह सेनानी ललिता देवी के सामने गया था । २०। वह अपने पटहों के महाघोषों से चौदह भुवनों का भेदन करता हुआ गया था । वह दुर्मंद अट्टहास से समन्वित होकर उस देवी के समक्ष में प्राप्त हुआ था । २१।

अथ भंडासुराज्ञप्तः कुटिलाक्षो महाबलः ।

शून्यकस्य पुरद्वारे प्राचीने समकल्पयत् ।

रक्षणार्थं दशाक्षीहिण्युपेतं तालजंघकम् ॥२२॥

अर्वाचीने पुरद्वारे दशाक्षीहिणिकायुतम् ।

नाम्ना तालभुजं दैत्यं रक्षणार्थमकल्पयत् ॥२३॥

प्रतीचीने पुरद्वारे दशाक्षोहिणिकायुतम् ।

तालग्रीवं नाम देत्यं रक्षार्थं समकल्पयत् ॥२४

उत्तरे तु पुरद्वारे तालकेतुं महाबलम् ।

आदिदेशं स रक्षार्थं दशाक्षोहिणिकायुतम् ॥२५

पुरस्य सालबलये कपिशीर्षकवेशमसु ।

मण्डलाकारतो वस्तुं दशाक्षोहिणिमादिशत् ॥२६

एवं पञ्चाशता कृत्वाक्षोहिण्या पुररक्षणम् ।

शून्यकस्य पुरस्यैव तद्वृत्तं स्वामिनेऽवदत् ॥२७

कुटिलाक्ष उवाच—

देव त्वदाज्ञया दत्तं सैन्यं नगररक्षणे ।

दुर्मदः प्रषितः पूर्वं दुष्टां तां ललितां प्रति ॥२८

इसके पश्चात् भंडासुर की आज्ञा पाकर महान बलबान कुटिलाक्ष ने शून्यक के प्राचीन पुरद्वार पर रक्षा करने के लिए दश अक्षोहिणी सेना से समन्वित तालजंघ को कल्पित किया था ।२२। जो अवचीन नगर का द्वार था उस पर दश अक्षोहिणी सेना से संयुत तालभुज नामक देत्य को रक्षण के लिए नियुक्त किया था ।२३। पश्चिमके पुर द्वार पर भी दश अक्षोहिणियों से युक्त तालग्रीव नाम वाले देत्य को कल्पित किया था ।२४। उत्तर में जो पुर द्वार था उस पर महान बली तालकेतु को रक्षा के लिए उसने आज्ञा प्रदान की थी वह भी दश अक्षोहिणी सेना से समन्वित था ।२५। नगर के साल बलय में कपि शीर्षक गृहों में मण्डल के आकार से बास करने के लिये दश अक्षोहिणी सेना को आदेश दिया था ।२६। इस रीति से पाँच सौ अक्षोहिणी सेना को पुर की रक्षा के लिये नियुक्त किया था । उस नगर शून्यक को सुरक्षा के पूरे प्रबन्ध का समाचार अपने स्वामी से निवेदन कर दिया था ।२७। कुटिलाक्ष ने कहा—हे स्वामित् ! आपकी आज्ञा से नगर की सुरक्षा के लिए सेना नियुक्त करदी है और उस ललिता पर धावा करने के लिए जो कि बहुत ही दुष्टा स्त्री है पहिले ही दुर्मद को भेज दिया गया है ।२८।

अस्मत्किरमात्रेण सुनिराशा हि सावला ।

तथापि राज्ञामाचारं कर्तव्यं पुररक्षणम् ॥२९

इत्युक्त् वा भंडदैत्येद्रं कुटिलाक्षोऽतिगर्वितः । ३०  
 स्वसैन्यं सज्जयामास सेनापतिभिरन्वितः ॥ ३०  
 दूतस्तु प्रेवितः पूर्वं कुटिलाक्षेण दानवः । ३१  
 स ध्वनन्ध्वजिनीयुक्तो ललितासैन्यमावृणोत् ॥ ३१  
 कृत्वा किलकिलारावं भटास्तत्र सहस्रशः । ३२  
 दोधूयमानं रसिभिनिषेतुः शक्तिसैनिकं ॥ ३२  
 ताश्च शक्तय उद्दंडाः स्फुरितादृहासस्वनाः । ३३  
 देदीप्यमानशस्त्राभाः समयुध्यतं दानवैः ॥ ३३  
 शक्तीनां दानवानां च सशोभितजगत्त्रयः । ३४  
 समवर्तत संग्रामो धूलिग्रामतताम्बरः ॥ ३४  
 रथवंशेषु मूच्छंत्यः करिकंठः प्रपञ्चताः ।  
 अश्वनिःश्वासविक्षिप्ता धूलयः खं प्रपेदिरे ॥ ३५

हमारे किङ्करों से ही वह अबला तो बहुत ही निराश होगी फिर भी आपकी आज्ञा थी और राजाओं का यह आचार भी है कि अपने नगर की सुरक्षा करनी चाहिए । २६। भंडासुर से यह कहकर कुटिलाक्ष बहुत गर्व से युक्त हुआ था और सेनापतियों के साथ उसने अपनी सेना को सुसज्जित किया था । ३०। इसके अनन्तर कुटिलाक्ष ने एक दानव दूत को भेजा था । वह ध्वजिनी से संयुत ध्वनि करता हुआ आया था और उसने ललिता की सेना को आवृत कर लिया था । उसने किल-किल की ध्वनि की थी । वहाँ पर सहस्रों की संख्या में योद्धा थे और कम्पायमान असियों के द्वारा शक्ति के सैनिकों ने निपात किया था । ३१-३२। वे शक्तियाँ बहुत ही उद्घण्ड थीं तथा स्फुरित अदृहास के घोष वाली थीं । वे देदीप्यमान अस्त्रों की आभा से समन्वित थीं और उन्होंने दानवों के साथ भली भाँति से युद्ध किया था । ३३। उन शक्तियों का और दानवों का ऐसा अद्भुत संग्राम हुआ था जिससे ये तीनों लोक संशोभित थे तथा उस संग्राम में हतनी धूलि उड़ी थी वह नभोमण्डल तक छा गयी थी । ३४। रथों के बासों में छाई हुई उठकर गजों के कण्ठों तक फैल गई थी तथा अश्वों के निश्वासों से विक्षिप्त होकर वे धूलियाँ ऊपर आकाश में पहुँच गयी थीं । ३५।

तमापतन्तमालोक्य दशाक्षीहिणिकावृतम् ।  
 संपत्सरस्वती क्रोधादभिद्रुद्राव संगरे ॥३६  
 सम्पत्करीसमानाभिः शक्तिभिः समधिष्ठिताः ।  
 अश्वाश्च दंतिनो मत्ता व्यमर्दन्दानवीं चमूम् ॥३७  
 अन्योन्यतुमुले युद्धे जाते किलकिलारवे ।  
 धूलीषु धूयमानासु ताह्यमानासु भेरिषु ॥३८  
 इतस्ततः प्रवृथे रक्तसिन्धुर्महीयसी ।  
 शक्तिभिः पात्यमानानां दानवानां सहस्रशः ॥३९  
 ध्वजानि लुठितान्यासन्विलूनानि शिलीमुखैः ।  
 विस्तस्ततत्तच्चहनानि समं छत्रकदम्बकैः ॥४०  
 रक्तारुणायां युद्धोव्यां पतितैश्छत्रमण्डलैः ।  
 आलंभि तुलना संध्यारक्ताभ्रहिमरोचिषा ॥४१  
 ज्वालाकपालः कल्पाग्निरिव चारुपयोनिधौ ।  
 दैत्यसेन्यानि निवहाः शक्तीनां पर्यवारयन् ॥४२

उस दानव को अपने ऊपर चढ़कर आते हुए को देखकर जो कि दश अक्षीहिणी सेना से समावृत या सम्पत्सरस्वती देवी क्रोध से उस संग्राम में अभिद्रुत हो गयी थीं । ३६। सम्पत्करी के समान ही शक्तियों से वह समधिष्ठित थी । उसके अश्व और मदमत्त गज थे । उसने दानवों की उस सेना का विमर्दन कर दिया था । ३७। परस्पर में यह बहुत ही तुमुल युद्ध हुआ था जिसमें सभी और किल-किलाहट कीध्वनि होरही थी । धूलियाँ धूममान हो रही थीं और भेरियाँ बजायी जा रही थीं । ३८। इधर-उधर बहुत बड़ी रुधिर की नदी वह निकली थी । शक्तियों के द्वारा जो सहस्रों दानव मारकाट कर गिरा दिये थे उनके ही रुधिर की नदी बह चली थी । ३९। बाणों के द्वारा काटी गयी ध्वजाएँ पड़ी हुई थी जिनमें उन-उनके छिन विस्त हो गये थे तथा उनके ही साथ उन दानवों के छत्रों का समुदाय भी गिरा हुआ था । ४०। युद्ध की भूमि रुधिर से लाल हो गयी थी उसी में दानवों के

तुलना हो रही थी । ४१। जवालाओं का समुदाय वाला कल्पान्त की अग्नि के ही समान चार पयोनिधि में देत्यों की सेनाओं को शक्तियों के समूह ने परिवारित कर दिया था । ४२।

शक्तिच्छन्दोज्ज्वलच्छस्त्रधारानिष्कृतकन्धराः ।

दानवान रणतले निपेतुमुँडराशयः ॥ ४३

दुष्टौष्ठंभ्रुकुटीकूरैः क्रोधसंरक्तलीचनैः ।

मुण्डैरखण्डमभवत्संग्रामधरणीतलम् ॥ ४४

एवं प्रवृत्ते समये जगच्चक्रभयंकरे ।

शक्तयो भृशसंकुद्धा दैत्यसेनामर्दयन् ॥ ४५

इतस्ततः शक्तिशस्त्रैस्ताडिता मूर्जिता इति ।

विनेशुदनिवास्तत्र संपदे वीवलाहताः ॥ ४६

अथ भग्नं समाश्वास्य निजं बलमरिन्दमः ।

उष्ट्रमारुह्य सहसा दुर्मंदोऽभ्यद्रवच्चमूम् ॥ ४७

दीर्घंग्रीवः समुन्नद्धः पृष्ठे निष्ठुरतोदनः ।

अधिष्ठितो दुर्मदेन वाहनोष्ट्रश्चचाल ह ॥ ४८

तमुष्ट्रवाहनं दुष्टमन्वीयुः क्रुद्धचेतसः ।

दानावनश्वसत्सवीन्भीताऽङ्गकितयुयुत्सया ॥ ४९

शक्तियों के समुदाय के जाज्वल्यमान शस्त्रों की धारों से कटे हुए दानवों की कन्धराएं तथा मुण्डों की राशियाँ उस रणस्थल में भूमि पर पड़ी हुई थीं । ४३। उन मुन्डों में दाँतों से अपने होठों को चबाते हुए तथा भृकुटियाँ करते हुए और क्रोध से लाल नेत्र स्पष्ट दिखाई दे रहे थे और वे इतनी अधिक संख्या में थे कि समस्त धरणी तल एक समान हो गया था अर्थात् सर्वत्र नर मुन्ड ही मुन्ड दिखाई दे रहे थे । ४४। इस प्रकार से जब महान् भीषण एवं परम धोर युद्ध हो रहा था तो उस समय में जबकि सम्पूर्ण जगत् के लिए वह बहुत ही भयंकर था वे सब शक्तियाँ अत्यन्त कुद्ध हो गयी थीं और उन्होंने देत्यों की सेनाओं का विमर्दन कर दिया था । ४५। सम्पदेवी के सैनिकों से समाहत होकर वहाँ दानव इधर-उधर शक्तियों के

शस्त्रों से प्रताड़ित होकर मूर्च्छा को प्राप्त हो गये थे और अन्त में विनष्ट हो गये थे । ४६। इसके अनन्तर अरियों का दमन करने वाले दुर्मद ने भग्न हुए अपने सैनिकों को समाश्वासन दिया था और फिर एक झौंट पर चढ़कर वह तुरन्त ही सेना के ऊपर आक्रमण करने लगा था । ४७। दीर्घग्रीव निष्ठुर-तोदन वाला समुन्नद्ध होकर पीछे दुर्मद के साथ अधिष्ठित था और उसका वाहन वह झौंट वहाँ से चल दिया था । ४८। उस उष्ट्र के वाहन वाले दुष्ट के पीछे अन्य दानव भी बड़े ही क्रूर होकर अनुगमन कर रहे थे और वे अन्य दानवों को समाश्वासन देते जा रहे थे जो कि शक्ति के साथ युद्ध करने में डरे हुए थे । ४९।

अवाकिरद्विशो भल्लैहल्लसत्फलशालिभिः ।

संपत्करीचमूचक्रं वनं वाभिरिवांबुदः ॥५०॥

तेन दुःसहस्र्त्वेन ताडिता बहुभिः शरैः ।

स्तंभितेवाभवत्सेना संपत्कर्याः क्षणं रणे ॥५१॥

अथ क्रोधारुणं चक्षुद्ध्राना संपदम्बिका ।

रणकोलाहलगजमारुद्धायुद्यतामुना ॥५२॥

आलोलकंकणवाणरमणीयतरः करः ।

तस्याश्चाकृष्य कोदण्डमीर्वीमाकर्णमाहवे ॥५३॥

लघुहस्ततयापश्यन्नाकृष्टन्न च मोक्षणम् ।

दहशे धनुषश्वकः केवलं शरधारणे ॥५४॥

आश्वकांवरसंपर्कस्फुटप्रतिफलत्फलाः ।

शराः सम्पत्करीचापच्युताः समदहन्नरीन् ॥५५॥

दुर्मदस्याथ तस्याश्च समभूद्युद्धमुद्धतम् ।

अभूदन्योन्यसंघटाद्विस्फुलिंगशिलीमुखैः ॥५६॥

उल्लसित फलों वाले भालों से समस्त विशाखों को अवकीर्ण कर दिया था और सम्पत्करी देवी की सेना का जो समूह था उसको इसी तरह से ढक दिया था जैसे मंध जलों के द्वारा वन को आवृत कर दिया करता है । ५०। उस दुःसहस्र्त्व वाले के द्वारा बहुत से वाणों से ताड़ित हुई संपत्करी

देवी की सेना क्षण भर के लिए रणस्थल में स्तम्भित सी ही हो गयी थी । १५१। इसके अनन्तर महान क्रोध से लाल नेत्रों को धारण करती हुई सम्पदमिका रण कोलाहल नामक गज पर समारूढ़ होकर इस दानव के साथ युद्ध करने लगी थी । १५२। कुछ थोड़ा चंचल कद्धुण की ववणन की घनि से विशेष सुन्दर उसके करने उस युद्ध में धनुष की मौर्वी को कानों तक खींचा था । १५३। हाथ के हल्केपन से न तो मौर्वी को खींचते हुए देखा या और न उसके छोड़ने को ही देखा था केवल शर के धारण करते ही देखा गया था जो धनुष पर लगाया था । १५४। शीघ्र ही अकम्बर के सम्पर्क से प्रतिफलित फल वाले शरसंपत्करी के चाप से गिरे हुए शत्रुओं का सन्दाह कर देते थे । १५५। उस देवी का और दुर्मंद का अत्यन्त ही अद्भुत युद्ध हुआ था जो कि परस्पर में एक दूसरे के संघट से विस्फुलिग निकलने वाले वाणों के द्वारा किया गया था । १५६।

प्रथमं प्रसृतैवर्णिः सम्पदे वीसुरद्विषोः ।

अन्धकारः समभवत्तिरस्कुर्वन्नहस्करम् ॥५७

तदन्तरे च बाणानामतिसंघट्टयोनयः ।

विस्फुलिगा विदधिरे दधिरे भ्रमचातुरीम् ॥५८

तयाधिरूद्धः संश्रोण्या रणकोलाहलः करी ।

पराक्रमं बहुविधं दर्शयामास संगरे ॥५९

करेण कतिचिद्दैत्यान्पादधातेन कांशचन ।

उदग्रदन्तमुसलधातैरन्याश्च दानवान् ॥६०

बालकांडहतैरन्यान्फेत्कारैरपरानिपून् ।

गात्रव्यामद्दैरन्यान्तखधातैस्तथापरान् ॥६१

पृथुमानाभिधातेन कांशिचद्दैत्यान्व्यमर्दयत् ।

चतुरं चरितं चक्रे संपदे वीमतं गजः ॥६२

सुदुर्मंदः क्रुधा रक्तो द्वेनैकेन पत्रिणा ।

संपत्करीमुकुटगं मणिमेकमपाहरत् ॥६३

सम्पदे वी और उभ सुरों के शत्रु के प्रसुत बाणों से सर्व प्रथम ऐसा अन्धकार हो गया था जिसने सूर्य के तेज के आलोक को भी तिरस्कृत कर

दिया था ।५७। इसके पश्चात् वाणों के अत्यन्त संघट से समुत्पन्न विस्फुलिंग हो गये थे फिर वे विस्फुलिंग इधर-उधर ऋषण करने की चातुरी वाले हो गये थे ।५८। सुन्दर श्रोणी वाली उस देवी के द्वारा अधिरूढ़ गज जो रण कोलाहल नाम वाला था उसने उस संग्राम में बहुत प्रकार का पराक्रम प्रदर्शित किया था ।५९। उस गज ने भी कुछ असुरों को तो अपनी सूँड़ से और कुछ देत्यों को अपने पदों की चोट से तथा कुछ को अपने तीक्ष्ण दाँतों के मुसलों की चोटों से मार डाला था ।६०। बालकांड से अन्यों को चोट दी थी तथा अन्यों को फेटकारों के द्वारा शत्रु को निहत किया था । कुछ को अपने शरीर के द्वारा मर्दित किया था एवं अन्य शत्रुओं को अपने नखों के प्रहारों से मार डाला था ।६१। कुछ देत्यों को उस गज ने पृथुमानाभिघात से विमर्दित कर दिया था । इस तरह से उस सम्पदेवी के हाथी ने बहुत ही कौशल से पूर्ण अपना चरित दिखाया था ।६२। सुदुर्मद ने परमाधिक क्रोध से लाल होते हुए एक सुटूढ़ बाण से उस सम्पत्करी देवी के मुकट में स्थित एक मणि को गिरा दिया था ।६३।

अथ क्रोधारुणदज्ञा तया मुक्तैः शिलीमुखैः ।

विक्षतो वक्षसि क्षिप्रं दुर्मदो जीवितं जहो ॥६४

ततः किलकिलारावं कृत्वा शक्तिचमूवरैः ।

तत्सैनिकवरास्त्वन्ये निहता दानवोत्तमाः ॥६५

हतावशिष्टा देत्यास्तु शक्तिवाणैः खिलीकृताः ।

पलायिता रणक्षोण्याः शून्यकं पुरमाश्रयन् ॥६६

तद्वृत्तांतमथाकण्यं संकुद्धो दानवेश्वरः ॥६७

प्रचंडेन प्रभावेण दीप्यमान इवात्मनि ।

स पस्पर्शं नियुद्धाय खड्गमुग्रविलोचनः ।

कुटिलाक्षं निकटगं वभाषे पृतनापतिम् ॥६८

कथं सा दुष्टवनिता दुर्मदं वलशालिनम् ।

निपातितवती युद्धे कष्ट एव विधेः क्रमः ॥६९

न सुरेषु न यक्षेषु नोरगेद्रेषु यद्बलम् ।

अभ्यन्पतिहतं सोऽपि दुर्मदोऽन्यां हतः ॥७०

इसके अनन्तर क्रोध से लाल नेत्रों वाली उस देवी के द्वारा छोड़े हुए बाणों से शीघ्र ही वक्षः स्थल में विद्धात हुआ था और उस दुर्मंद ने अपने प्राणों को त्याग दिया था । ६४। इसके अनन्तर शक्ति की श्रेष्ठ सेनाओं ने किल-किल की छवनि की थी और उन्होंने उस दैत्य के जो परम श्रेष्ठ अन्य सैनिक दानव थे उन सबको मार गिराया था । ६५। मरने से बचे हुए जो भी दैत्य थे वे सब शक्ति के बाणों से कुट्टेल होकर उस रण की भूमि से भाग गये थे और शून्यक में जाकर छिप गये थे । ६६। उनके द्वारा शक्तिद्वारा किये हुए युद्धके वृत्तान्त का श्रवण करके वह दानवेश्वर बहुत ही क्रुद्ध होगया था । ६७। उदय नेत्रों वाला वह अपने प्रचण्ड प्रभाव से आत्मा से दीप्यमान जैसा हो गया था और उसने युद्ध करने के लिए अपने खड़ग को उठाया था । और उसने समीप में ही स्थित सेनापति कुटिलाक्ष से कहा था । ६८। किस प्रकार से उस महादुष्टा नारी ने बड़े भारी बल वाले दुर्मंद को युद्ध में मार गिराया है । यह विद्याता का क्रम बड़ा कष्ट दायक है । ६९। ऐसा महान बल तो न देवों में है और न यस्तों में है और उरगेन्द्रों में भी ऐसा बल विद्यमान नहीं है वह तो ऐसा बलवान था कि उसका मारने वाला कोई भी नहीं था, वह दुर्मंद भी उस अबला के द्वारा मारा गया है । ७०।

तां दुष्टवनितां जितुमाक्रष्टुं च कर्चं हठात् ।

सेनापति कुरंडाख्यं प्रेषयाहृवदुर्मंदम् ॥७१॥

इति संप्रेषितस्तेन कुटिलाक्षो महाबलम् ।

कुरंडं चंडदोर्दंडमाजुहाव प्रभोः पुरः ॥७२॥

स कुरंडः समागत्य प्रणामं स्वामिनेऽदिशत् ।

उवाच कुटिलाक्षस्तं गच्छ सज्जय संनिकान् ॥७३॥

मायायां चतुरोऽसि त्वं चित्रयुद्धविशारद ।

कूटयुद्धे च निपुणस्तां स्त्रियं परिमर्दय ॥७४॥

इति स्वामिपुरस्तेन कुटिलाक्षेण देशितः ।

निजंगाम पुरात्तूर्णं कुरंडंचण्डविक्रमः ॥७५॥

विशत्यक्षीहिणीभिश्च समंतात्परिवारितः ।

मर्दयन्स महीगोलं हस्तिवाजिपदातिभिः ।

दुर्मंदस्याग्रजश्चंडः कुरंडः समरं ययौ ॥७६॥

धूलीभिस्तुमुलीकुर्वन्दिगंतं धीरमानसः ।

शोकरोषग्रहग्रस्तो जवनाश्वगतो ययौ ॥७७

अब उस परम दुष्टा नारी को जीतने के लिए और उसकी चोटी बल पूर्वक खींचकर लाने के लिए युद्ध के परम दुर्मद कुटिलार्घ्य सेनापति को शीघ्र मेरे पास भेज दो ।७१। इस प्रकार से उसने कुटिलाक्ष को भेजा था । महान बलवान प्रचण्ड वाहूओं वाले कुरण्ड को स्वामी के सामने बुलाया था ।७२। उस कुरण्ड ने वहाँ आकर स्वामी के लिए प्रणाम किया था और कुटिलाक्ष ने उससे कहा था कि जाओ और सेनिकों को तैयार करो ।७३। आप तो माया के फैला देने में बहुत चतुर हैं और विचित्र प्रकार के युद्ध करने में महान पंडित हैं और आप कूट युद्ध करने में भी बहुत निपुण हैं । अब जाकर उस नारी का परिमद्दन करो ।७४। इस तरह से स्वामी के हीआगे उस कुटिलाक्ष के द्वारा उसको आदेश दिया गया था । फिर वह चण्ड विक्रम वाला कुरण्ड शीघ्र ही नगर से निकलकर चला गया था ।७५। वह बीस अशौहिणी सेना से परिवृत था और अपने हाथी-अश्व तथा पेंदल सेनिकों से इस भूमण्डल को वह मर्दित कर रहा था । दुर्मद का बड़ा भाई परम प्रचण्ड कुरण्ड युद्ध स्थल में गया था ।७६। वह धीर मन वाला जब युद्ध स्थल में गया तो इतनी धूलि उड़ने लगी थी कि सभी दिशाएँ उससे भर गयी थी । वह शोक और रोष से भरा हुआ था और बड़े वेग वाले अश्व पर समाझूढ़ होकर वहाँ पर गया था ।७७।

शाङ्गं धनुः समादाय घोरटंकारमुत्स्वनम् ।

ववर्षं शरधाराभिः संपत्कर्या महाचमूम् ॥७८

पापे मदनुजं हत्वा दुर्मदं युद्धदुर्मदम् ।

वृथा वहसि विकांतिलबलेशं महामदम् ॥७९

इदानीं चैव भवतीमेतैर्नाराचमंडलैः ।

अंतकस्य पुरीमत्र प्रापयिष्यामि पश्य माम् ॥८०

अतिहृद्यमतिस्वादु त्वद्वपुविलनिर्गतम् ।

अपूर्वमंगनारकतं पिबन्तु रणपूतनाः ॥८१

ममानुजवधोत्थस्य प्रत्यवायस्य तत्फलम् ।

अधुना भोक्ष्यसे दुष्टे पश्य मे भुजयोर्बलम् ॥८२

इति संतज्ज्यन्सप्तकरीं करिवरस्थिताम् ।  
 सैन्यं प्रोत्साहयामास शक्तिसेनाविमर्दने ॥८३  
 अथ तां पृतनां चण्डी कुरुणस्य महोजसः ।  
 विमर्दयितुमुद्युक्ता स्वसैन्यं प्रोदसीसहृत ॥८४

उसने परमाधिक ऊँची आवाज वाली टंकार से युक्त शाङ्क धनुष लेकर सम्पत्करी की बड़ी भारी सेना पर शरों की धाराओं की वर्षा की थी ।७८। उसने सम्पत्करी से कहा—हे पापे ! से युद्ध करने में दुर्मंद मेरे छोटे भाई को हनन करके विक्रान्ति के लबलेश वाले इस महान मद को व्यर्थ ही कर रही है ।७९। अब आपको मैं इन नाराचों के मन्डलों से यहाँ पर यमराज की पुरी को पहुँचा हूँगा—अब तू मुझको देख ले ।८०। ये रण पूतनाएँ तेरे अतीव स्वादिष्ट-रम्य-तेरे शरीर के बिलों से निकला हूआ—अपूर्व अज्ञना का रुधिर पान करें ।८१। मेरे छोटे भाई के वध से जो तूने बड़ा अनर्थ किया है उसका यही परिणाम है । हे दुष्टे ! अब तू उस फल को भागेगी और अब तू मेरी भुजाओं के बल को देख ले ।८२। करिवर विराज-माना उस सम्पत्करी को इस प्रकार फटकारते हुए उसने अपनी सेना को शक्ति की सेना के विमर्दन करने के लिए प्रोत्साहन दिया था ।८३। इसके पश्चात् उस चण्डी ने महान ओज वाले कुरुण की सेना का विमर्दन करने के लिए उच्चुक होकर अपनी सेना को उत्साहित किया था ।८४।

अपूर्वाहवसंजातकौतुकाथ जगाद ताम् ।  
 अश्वारुद्धा समागत्य मस्नेहाद्र्द्विमिदं यचः ॥८५  
 सखि संपत्करि प्रीत्या मम वाणी निशम्यताम् ।  
 अस्य युद्धमिदं देहि मम करुं गुणोत्तरम् ॥८६  
 क्षणं सहस्व समरे मयैवैष नियोत्स्यते ।  
 याचितासि सखित्वेन नात्र संशयमाचर ॥८७  
 इति तस्या वचः श्रुत्वा संपदेव्या शुचिस्मिता ।  
 निवर्त्यामास चमूं कुरण्डाभिमुखोत्थिताम् ॥८८  
 अथ बालाकंवणीभिः शक्तिभिः समधिष्ठिताः ।  
 तरंगा इव सैन्याद्वेस्तुरंगा वातरंहसः ॥८९

**खरः खुरपुटैः क्षोणीमुत्तिलखंतो मुहुमुहुः ।**

**पेतुरेकप्रवाहेण कुरण्डस्य चमूमुखे ॥६०**

**बलगाविभागकृत्येषु संवर्तनविवर्तने ।**

**गतिभेदेषु चारेषु पञ्चधा खुरपातने ॥६१**

उस अपूर्व युद्ध से समुत्पन्न कौतुक वाली अश्व पर समारूढ़ा होती हुई वही आकर स्नेह के सहित यह वचन उससे बोली थी । ६५। हे सखि ! हे सम्पत्करि ! प्रीति से मेरी वाणी का श्वरण करो । इसके साथ युद्ध मुझे करने दो । मेरा युद्ध करना गुणोत्तर है । ६६। क्षणभर के लिए तुम शान्त हो जाओ । यह मेरे ही द्वारा युद्ध करेगा आप मेरी सखी हैं इसीलिए यह याचना मैंने की है । इसमें कुछ भी संशय मत करना । ६७। इस प्रकार के सम्पद्वेषी के वचन का श्वरण कर उस शुचिस्मिता ने कुरुन्ड के समक्ष में उठी हुई सेना को वापिस कर दिया था । ६८। इसके उपरान्त बालसूर्य की आभा वाली शक्तियों से सम्प्रदिष्टि हुई थी । वायु के समान वेग वाले इसके अश्व समुद्र की तरङ्गों के ही समान थे । ६९। वे अश्व परम प्रखर खुरों के पुटों से भूमि को बार-२ उल्लिखित कर रहे थे और एक ही प्रवाह से उस कुरुन्ड की सेना के सामने आकर उपस्थित हो गये थे । ७०। बलगा (लगाम) के विभाग कृत्यों में-सम्बर्तन और निबर्तन में—गतिभेदों में—चारों में पाँच प्रकार का उनके खुरों का पातन था । ७१।

**प्रोत्साहने च संज्ञाभिः करपादाग्रयोनिभिः ।**

**चतुराभिस्तुरं गस्य हृदयज्ञाभिराहवे ॥६२**

**अश्वारूढां विकासंन्यशक्तिभिः सह दानवाः ।**

**प्रोत्साहिताः कुरण्डेन समयुध्यंत दुर्मदाः ॥६३**

**एवं प्रवृत्ते समरे शक्तीनां च सुरद्विषाम् ।**

**अपराजितनामानं हयमारुह्य वेगिनम् ।**

**अभ्यद्रवद्दु राचारमश्वारूढाः कुरण्डकम् ॥६४**

**प्रचलद्वेणिसुभगा शरच्चन्द्रकलोज्ज्वला ।**

**संध्यानुरक्तशीतांशुमंडलीमुन्दरानना ॥६५**

**स्मयमानेव समरे एहीतमणिकामुर्का ।**

अवाकिरच्छरासारेः कुरण्ड तुरगानना ॥६६

तुरगारूढयोत्थिप्ताः समाक्रामन्दिगंतरान् ।

दिशो दश व्यानशिरे रुक्मपुङ्खाः शिलीमुखाः ॥६७

दुर्मदस्याग्रजः कुरुद्धः कुरुद्धश्चण्डविक्रमः ।

विशिखैः शार्ङ्ग्निष्ठुच्यूतेरश्वारूढामवाकिरत् ॥६८

और नाम ले लेकर प्रोत्साहन देने में—कर पादाग्र योनियों से—  
चतुरा और अश्वों के हृदयों के ज्ञान रखने वाली उस युद्ध में विजयमान थीं । ६२। अश्व पर स्थित अम्बिका की सैन्य शक्तियों के साथ दानव करन्ड के द्वारा प्रोत्साहित दुर्मद दानव युद्ध कर रहे थे । ६३। इस प्रकार से शक्तियों का और सुरद्विषों का युद्ध प्रवृत्त होने पर अपराजित नाम वाले तथा अत्यधिक वेग य युक्त अश्व पर समारूढ़ होकर उस दुष्ट आचार वाले कुरन्ड के ऊपर अश्वारूढ़ा ने आक्रमण किया था । ६४। उसकी चोटी हिलने से परम सुभगा थी तथा शारत्काल के चन्द्रमा की कला के समान ही अत्यन्त उज्ज्वल थी । सन्ध्या के समय में अनुरक्त चन्द्र के मंडल के समान सुन्दर मुख वाली थी । ६५। वह समर में भी स्मित से समन्वित थी तथा उसने मणियों से विनिर्मित धनुष को ग्रहण कर रखा था । उस तुरगानना ने उस कुरन्ड के ऊपर बाणों की धाराओं से उसे अवकीर्ण कर दिया था । ६६। तुरगारूढ़ा के द्वारा प्रक्षिप्त बाणों ने दिशाओं के अन्तरों को भी समाक्रान्त कर दिया था । जिनमें सुवर्ण के पुङ्ख थे ऐसे शर दशों दिशाओं में फेल गये थे । ६७। परम प्रचन्ड विक्रम वाला वह कुरन्ड अपने छोटे भाई दुर्मद का जो अग्रज था उसने भी अपने शार्ङ्ग से फेंके हुए बाणों से उस अश्वारूढ़ा की ढक दिया था । ६८।

चण्डैः खुरपुटैः सैन्यं खडण्यन्तिवेगतः ।

अश्वारूढातुरुर्गोऽपि मर्दयामास दानवान् ॥६६

तस्य ह्लेषारवाद्वारमुत्पातांबुधिनिः स्वनः ।

अमूर्च्छ्यन्तनेकानि तस्यानीतानि वैरिणः ॥१००

इतस्ततः प्रचलितैर्दत्यचक्रे हृयासना ।

निजं पाशायुधं दिव्यं मुमोच ज्वलिताकृति ॥१०१

तस्मात्पाशात्कोटिशोऽन्ये पाशा भुजगभीषणाः ।

समस्तमपि तत्सैन्यं बद्धाबद्धा व्यमूर्ठयन् ॥ १०२

अथ सैनिकबन्धेन कुद्धः स च कुरुडकः ।

शरेणकेन चिच्छेद तस्या मणिधनुगुणम् ॥ १०३

छिन्नमौवि धनुस्त्यक्त्वा भृशं कुद्धा हयासना ।

अंकुशं पातयामास तस्य वक्षसि दुर्मतेः ॥ १०४

तेनांकुशेन ज्वलता पीतजीवितशोणितः ।

कुरण्डो न्यपतदभूमी वज्ररुण इव द्रुमः ॥ १०५

उस अश्वारुद्धा का जो अश्व था उसने भी अपने प्रचंड खुरों के पुटों के द्वारा अत्यन्त वेग से शत्रु की सेना का खंडन करते हुए दानवों का बहुत अधिक मर्दन किया था । ६६। उस अश्व की हिनहिनाहट की ध्वनि बहुत दूर तक उत्पात से समुद्र की ध्वनि के ही तुल्य थी । उस घोष ने भी वैरी के द्वारा लाये हुए सैन्यों को जो बहुत अधिक थे सबको मूर्च्छित कर दिया था । १००। उस हयासना ने उस दैत्यों के चक्र में जो भी इधर-उधर प्रचलित थे उन पर अपना पाशायुध जो जाऊल्यमान आकृति वाला तथा परम दिव्यथा छोड़ दियाथा । १०१। उस पाश से करोड़ों अन्य भुजङ्गोंके समान भीषण पाश निकले थे । जिन्होंने उस दैत्य की सम्पूर्ण सेना को बाँध-बाँध कर विशेष रूप से मूर्च्छित कर दिया था । १०२। इसके अनन्तर सैनिकों के बन्धन से वह कुरण्ड बहुत ही अधिक कुद्ध हो गया था और उसने अपने एक वाण से उस अश्वारुद्धा के मणियों के धनुष की मौर्च्छी को काट डाला था । १०३। जिस धनुष की मौर्च्छी कट गयी थी उस धनुष को उसने त्याग दिया था और वह हयानना अत्यन्त ही कुद्ध हो गयी थी । फिर उसने उस दुष्ट मति वाले के वक्षस्थल में अपना अंकुश डाला था । १०४। जलते हुए उस अंकुश से जिसके जीवित रहते हुए हो रुधिर पी लिया गया था वह कुरण्ड वज्र से छिन्न हुम के ही समान भूमि पर गिर गया था । १०५।

तदकुशविनिष्ठृचूताः पूतनाः काश्चिदद्भटाः ।

तत्सैन्यं पाशनिष्यद्भक्षयित्वा क्षयं गताः ॥ १०६

इत्थं कुरण्डे निहते विशत्यक्षीहिणीपतो ।

हतावशिष्टास्ते दैत्याः प्रपलायंत वै द्रुतम् ॥ १०७

कुरण्डं सानुजं युद्धे शक्तिसैन्यैनिपातितम् ।

श्रुत्वा शून्यकनाथोऽपि निशश्वास भुजंगवत् ॥१०८॥

उस अंकुर से निकली हुई कुछ परम उद्भट पूतनाएँ उसकी सेना के पाश से नियन्द भक्षण करके शय को प्राप्त हो गयी थीं ।१०६। बीस अक्षौहिणी सेनाओं के स्वामी उस कुरण्ड के इस प्रकार से निहत हो जाने पर जो भी मरने से बचे हुए देत्यगण थे वे शोष्ण ही बहाँ से भाग गये थे । उस युद्ध में छोटे भाई के साथ कुरण्ड को शक्ति की सेनाओं ने मार डाला था । जब यह वृत्तान्त शून्यक पुर के स्वामी ने सुना था तो वह भी भुजंग के ही तुल्य लम्बी श्वास लेने लगा था ।१०७-१०८।

### करंकादि पंच सेनापति वध

अथाश्वारूढया क्षिप्ते कुरंडे भंडदानवः ।

कुटिलाक्षमिदं प्रोचे पुनरेव युयुत्सया ॥१॥

स्वप्नेऽपि यन्न संभाव्यं यन्न श्रुतमितः पुरा ।

यच्च नो शंकितं चित्तो तदेतत्कष्टमागतम् ॥२॥

कुरंडदुर्मदी सत्त्वशालिनी भ्रातरौ हितौ ।

दुष्टदास्याः प्रभावोऽयं मायाविन्या महत्तरः ॥३॥

इतः परं करंकादीन्पंचसेनाधिनायकान् ।

शतमक्षौहिणीनां च प्रस्थापय रणांगणे ॥४॥

ते युद्धदुर्मदाः शूराः संग्रामेषु तनुत्यजः ।

सर्वथैव विजेष्यन्ते दुर्विदग्धविलासिनीम् ॥५॥

इति भंडवचः श्रुत्वा भृशं च त्वरयान्वितः ।

कुटिलाक्षः करंकादीनाजुहाव चमूपतीन् ॥६॥

ते स्वामिनं नमस्कृत्य कुटिलाक्षेण देशिताः ।

अग्नो प्रविष्णव इव क्रोधांधा निर्ययः पुरात् ॥७॥

इसके अनन्तर जब अश्वारूढ़ा के द्वारा कुरण्ड हत हो गया था तो भंड दानव ने पुनः युद्ध करने की इच्छा से कुटिलाक्ष से यह वचन कहा था ।

।१। जिसकी कभी स्वप्न में भी सम्भावना नहीं की जा सकती है और पहले इसके कभी जो सुना भी नहीं गया था और जिसकी चित्त में कभी शंका भी नहीं की गयी थी वही यह कष्ट इस समय में आ पड़ा है ।२। कुरुन्ध और दुर्मंद ये दोनों ही बहुत सत्त्व शाली भाई हैं । इस मायाविनी दुष्ट दासी का कितना अधिक बड़ा प्रभाव है ।३। अब रणाङ्गन में यहाँ से आगे कर के प्रभृति पाँच सेनाधिनायकों को और अक्षौहिणी सेना को रवाना कर दो ।४। वे शूर बहुत ही युद्ध में दुर्मंद हैं और संग्रामों में अपने शरीर का त्याग करने वाले हैं । ये लोग पूर्ण रूप से ही उस दुर्विदर्थ विलासिनी को अवश्य जीत लेंगे ।५। इस भंड के बचन को सुनकर अत्यन्त शीघ्रता से युक्त होकर कुटिलाक्ष ने कर के आदि सेनापतियों को वहाँ पर बुला लिया था ।६। कुटिलाक्ष के द्वारा देशित उन्होंने अपने स्वामी को प्रणाम किया था और फिर वे इतने अधिक क्रोधान्ध हो गये थे मानों अग्नि में ही से समुत्पन्न हुए होवें । वे सब फिर उस पुर से युद्ध के लिए निकल कर चले गये थे ।७।

तेषां प्रयाणनिः साणरणितं भृशदुः सहम् ।

आकर्ण्य दिग्गजास्तूर्ण शीर्णकर्णा जुघूर्णिरे ॥८

शतमक्षौहिणीनां च प्राचलत्केतुमालकम् ।

उत्तरं गतुरं गादि बभौ मत्तमतं गजम् ॥९

हेषमाणहयाकीर्णं क्रन्दद्धृटकुलोद्धवम् ।

वृंहमाणगजं गर्जद्रथचक्रं चचाल तत् ॥१०

चक्रनेमिहतक्षोणीरेणुक्षपितरोचिषा ।

बभूव तुहिनासारच्छन्नेनेव विवस्वता ॥११

धूलीमयमिवाशेषमभवद्विश्वमंडलम् ।

कवचिच्छब्दमयं चैव निःसाणकठिनस्वनैः ॥१२

उद्भूतेधूलिकाजालेराक्रांता दैत्यसेनिकाः ।

इयत्तयातः सेनायाः संख्यापि परिभाविता ॥१३

ध्वजा बहुविधाकारा मीनव्यालादिचित्रिताः ।

प्रचेलुधूलिकाजाले मत्स्या इव महोदधौ ॥१४

उनके प्रयाण का निःसाण रणित अत्यन्त ही दुस्सह था । दिग्गजों

ये ।८। सौ अक्षोहिणी सेनाओं के झण्डों की मालाएँ फहरा रही थीं और उस सेना में बड़े ऊँचे अश्व थे तथा मदमत्त हाथी भी उसमें थे ।९। वह सेना ऐसी थी कि उसमें हिनहिनाने वाले अश्वों की धूम थी तथा उसमें चीखते हुए भटों का समुदाय भी था—एवं बड़े-बड़े विशालकाय हाथी थे और गजना करते हुए रथों का समुदाय था ऐसी वह सेना वहाँ से रवाना हुई थी ।१०। रथों के पहियों से खुदी हुई पृथ्वी की रेणु से जिसकी कान्ति ढक गयी थी ऐसा सूर्य उस समय में ऐसा ही दिखलाई दे रहा था मानों तुहिनासार से ढक गया हो अर्थात् कुहरा में छिप गया होवे ।११। यह पूर्ण विश्व का मंडल ही धूलि से परिपूर्ण हो गया था । उस सेना के निर्गमन की कठोर छवनि से चारों ओर घोष ही घोष व्याप हो रहा था ।१२। उस समय में धूलि के ऐसे जाल छा गये थे कि समस्त दैत्यों के सैनिक इस धूलि से समाक्षान्त हो गये थे अर्थात् सभी धूलि से भर गये थे । अतएव इयत्ता से उसकी संख्या भी परिभावित थी ।१३। उस सेना में बहुत प्रकार की छवजायें थीं जो मीन तथा व्याल आदि से चित्रित हो रही थीं । वे सभी सेनाएँ उस धूलि से परिपूर्ण जाल में महोदधि में मत्स्यों के तुल्य चल रही थीं ।१४।

तानापतत आलोक्य ललितासैनिकं प्रति ।

वित्रेसुरमराः सर्वे शक्तीनां भज्जशङ्क्या ॥१५॥

ते करड्कमुखाः पञ्च सेनापतय उद्धताः ।

सर्पिणीं नाम समरे मायां चक्रुं मंहीयसीम् ॥१६॥

तैः समुत्पतिता दुष्टा सर्पिणी रणशांबरी ।

धूम्रवर्णा च धूम्रोष्टी धूम्रवर्णपयोधरा ॥१७॥

महोदधिरिवात्यंतं गंभीरकुहरोदरी ।

पुरञ्चचाल शक्तीनां त्रायग्रंती मनो रणे ॥१८॥

कद्रूरिवापरा दुष्टा बहुसर्पविभूषणा ।

सर्पणामुद्मवस्थानं मायामयशरीरिणाम् ॥१९॥

सेनापतीनां नासीरे वेल्लयंती महीतले ।

वेल्लितं बहुधा चक्रे घोरारावविराविणी ॥२०॥

तथैव मायया पूर्वं तेऽसुरेद्रा व्यजीजयन् ।

करंकाद्या दुरात्मानः पञ्चपञ्चत्वकामुकाः ॥२१॥

जिस सअय में इतनी विशाल सेनाएँ धावा करने के लिए ललिता देवी के सेनिक की ओर आ रही थीं तो सभी देवगण शक्तियों के भज्ज की शंका से डर गये थे । १५। वे करंक जिनमें प्रमुख था पाँचों सेनापति गण बहुत ही उद्धत थे । उन्होंने सपिणी नाम वाली एक महती माया को उस समर स्थल में किया था । १६। उनके द्वारा उठी हुई वह दुष्टा रणशाम्बरी सपिणी धूम्र वर्ण की थी । उसके होठ भी धूम्र वर्ण के ही थे और धूम्र ही उसके पयोधर थे । १७। वह महासागर के ही तुल्य अत्यन्त गम्भीर कुहर उदर वाली थी । वह रणस्थल में मन को भयभीत करती हुई ही शक्तियों के आगे चली थी । १८। वह बहुत से सर्पों के भूषण वाली दूसरी कद्दू के ही समान थी और बहुत ही दुष्टा थी । वह माया से परिपूर्ण सर्पों के जनन का स्थान थी । १९। सेनापतियों के नासीर में महीतल को बेलित करती हुई वह जा रही थी । उसका महान धोर शब्द था जिसको वह कर रही थी और प्रायः उसने उस चक्र को बेलित सा कर दिया था । २०। वे पाँचों सेनापति भी पञ्चत्व (मृत्यु) के ही कामुक थे और वे करंक आदि सब बहुत ही दुरात्मा थे । उसी भाँति से माया के साथ पूर्व में सब असुरेन्द्र अजित हो रहे थे । २१।

अथ प्रवृत्ते युद्धं शक्तीनाममरद्रुहाम् ।

अन्योन्यवीरभाषाभिः प्रोत्साहितघनक्रुधाम् ॥२२॥

अत्यंतसंकुलतया न विजातपरस्पराः ।

शक्तयो दानवश्चैव प्रजह्नुः गस्त्रपाणयः ॥२३॥

अन्योन्यशस्त्रसंघट्टसमुत्थितहुताशने ।

प्रवृत्तविशिखस्रोतः प्रचलन्नहरिदन्तरे ॥२४॥

बहुरक्तनदीपूरहियमाणमतंगजे ।

मांसकर्द मनिर्मिननिष्पद रथमंडले ॥२५॥

विकीर्णकेशशैवालविलसद्रक्तनिङ्गंरे ।

अतिनिष्ठुरविघ्वंसि सिहनादभयङ्ग्रे ॥२६॥

रजोऽन्धकारतुमुले राक्षसीतृप्तिदायिनि ।

शस्त्रीशरीरविच्छिन्न दैत्यकंठोत्थितासृजि ॥२७॥

प्रवृत्ते घोरसंग्रामे शक्तीनां च सुरद्विषाम् ।

अथ स्वबलमादाय पञ्चभिः त्रिरिता सती ।

सपिणी बहुधा सप्तन्विससर्ज शरीरतः ॥२८

इसके उपरान्त उन शक्तियों का और देव द्वोहियों का युद्ध प्रवृत्त हुआ था । वे परस्पर में सभी वीरों की भाषा में घने क्रोध को प्रोत्साहन दे रहे थे । २२। उस समय में अत्यधिक संकुलता थी और परस्पर में भी एक दूसरे का ज्ञान नहीं हो रहा था । दानव गण और शक्तियों ने अपने-अपने करों में हथियार ग्रहण करके मारकट की थी । २३। परस्पर में जो आयुधों का संघटन हो रहा था उस रगड़ से आंच निकल रही थी । समस्त दिशाएँ उस आयुधों की टक्कर से समुत्पन्न अग्नि के स्रोत से प्रचलन हो गयी थीं । २४। उस युद्ध में इतना रुधिरपात हुआ था कि उसकी नदियाँ वह निकली थीं और उसमें हाथी भी छिप गये थे । मास का तो इतना विशाल कीच हो गया था कि उसमें रथों का मंडल गतिहीन हो गया था । २५। वह युद्ध स्थल रुधिर-माव से पूर्ण था तथा उसमें जो केशों का जाल था वह शेवाल के ही सहश दिखाई दे रहा था । वह युद्धस्थल अतीव निष्ठुर एवं विद्वंस समन्वित था । वहाँ पर जो सैनिकों का सिंहनाद हो रहा था उससे वह बहुत ही भयावह हो रहा था । २६। उस समय जबकि शक्तियों का और असुरों का घोर संग्राम प्रवृत्त हुआ था तो वह बहुत ही तुमुल था और राक्षसियों को तृप्ति प्रदान करने वाला था । उस समय घोर जब अन्धकार छाया हुआ था और शस्त्रधारियों के शरों से निरन्तर देत्यों के कंठों से रुधिर निकल रहा था । इसके अनन्तर अपने दल को लेकर पाँचों सेनापतियों के द्वारा प्रेरित हुई सपिणी ने प्रायः शरीर से सर्पों का सृजन किया था । २७-२८।

तक्षकर्कोटसमा वासुकिप्रमुखत्विषः ।

नाताविधवपुर्वर्णा नानादृष्टिभयङ्कराः ॥२९

नानाविधविषज्वालानिर्दग्धभुवनत्रयाः ।

दारदं वत्सनाभं च कालकूटमथापरम् ॥३०

सौराष्ट्रं च विषं घोरं बह्यपुत्रमथापरम् ।

प्रतिपन्नं शीविलकेयमन्यान्यपि विषाणि च ॥३१

व्यालैः स्वकीयवदनैविलोलरसनाद्वयैः ।

विकिरंतः शक्तिसंन्ये विसस्तुः सर्पिणीतनोः ॥३२

धूम्रवर्णा द्विवदना सर्पा अतिभयंकराः ।

सर्पिण्या नयनद्वंद्वादुत्थिताः क्रोधदीपिताः ॥३३

पीतवर्णस्त्रिफणका दंष्ट्राभिर्विकटाननाः ।

सर्पिण्याः कर्णकुहरादुत्थिताः सर्पकोट्यः ॥३४

अग्रे पुच्छे च वदनं धारयंतः फणान्वितम् ।

आस्यादा नीलवपुषः सर्पिण्याः फणिनोऽभवन् ॥३५

वे सब सर्प भी तक्षक और कर्कोटक के सी सहश थे तथा वासुकि सर्प के समान कान्ति वाले थे । उनके वर्ण और शरीर भी अनेक वर्ण के थे तथा नाना भाँति की हड्डि से भयानक थे । २६। अनेक प्रकार के विषों की ज्वाला से तीनों लोकों के निर्दग्ध करने वाले थे । वह विष भी कितने ही प्रकार का था—दारद-वत्सनाभ-कालकूट-सौराष्ट्र-दोर विष तथा ब्रह्म पुत्र विष था । शौकिलकेय विष एवं अन्यान्य भी कई प्रकार के विष उनके प्रतिपन्न थे । ३०-३१। ये सभी तरह के विष उस सर्पिणी के शरीर से निकल रहे थे जो कि सर्प उस समय में समुत्पन्न हुए थे । उन सर्पों के मुख ऐसे थे जिनमें बहुत ही चञ्चल दो जीभें लपलपा रहा थी और वे विषों को उस शक्तियों की सेना में फेला रहे थे । ३२। उन सर्पों के दो-दो मुख धूम्रवर्ण के थे और वे सर्प बहुत ही अधिक भयंकर थे । उस सर्पिणी के दोनों नेत्रों से वे समुत्थित हुए थे और महान् क्रोध से दीपित थे । ३३। उन सर्पों के पीतवर्ण थे तथा तीन-तीन फण थे । उनकी दाढ़ों से उनके मुख बहुत ही विकट थे । उस सर्पिजी के कानों के कुहरों से करोड़ों ही सर्प उत्थित हो गये थे । ३४। वे आगे और पूछो में॒कणों से समन्वित मुखों को धारण करने वाले थे । आस्याद और नीले शरीरों वाले उस सर्पिणी के सर्प हुए थे । ३५।

अन्यैश्च बलवणश्च चतुर्बक्त्राश्चतुष्पदाः ।

नासिकाविवरात्तस्या उद्गता उग्ररोचिषः ॥३६

लम्बमानमहाचमर्वितस्थूलपयोधरान् ।

नाभिकुण्डाच्च बहवो रक्तवर्णा भयानकाः ॥३७

तुषारान्दं द्वान्तर्मनं विनिरात् ।

विदशंतः शक्तिसेनां दहन्तो विषवहिनभिः ॥३८

बहनंतो भोगपाशैश्च निधनंतः फणमण्डलैः ।

अत्यंतमाकुलां चक्रुलंलितेशीचमूममी ॥३९

खड्यमाना अपि मुहुः शक्तीनां शस्त्रकोटिभिः ॥४०

उपर्युपरि वर्धते सपिण्डप्रविसपिणः ।

नश्यन्त बहवः सर्पि जायन्ते चापरे पुनः ॥४१

एकस्य नाशसमये बहवोऽन्ये समुत्थिताः ।

मूलभूता यतो दुष्टा सपिणी न विनश्यति ॥४२

और अन्य-अन्य वर्ण तथा बल से युक्त—चार मुखों वाले—चार पदों वाले उस सपिणी के नासिका के विवर से अत्यन्त उग्र कान्ति वाले उद्गत हो गये थे । ३६। लम्बे महासर्प से समावृत स्थूल पयोधरों से और उसकी नाभि के कुण्ड से बहुत मेरक्त इर्ण वाले तथा भयानक उत्पन्न हुए थे । ३७। जो सर्प हालाहल को अपने मुखों से बहा रहे थे । ऐसे पन्नगाधिप समुत्पित हो गये थे । वे सब उस शक्तियों की सेना के सैनिकों का दर्शन कर रहे थे तथा विषों की अग्नियों से दहन कर रहे थे । ३८। वे अपने भोग के पाशों से सैनिकों को बाँध रहे थे और फणों के मण्डलों से निहनन भी कर रहे थे । ये ललिता की सेना को अत्यन्त ही समाकुल कर रहे थे । ३९। यद्यपि वे शक्तियों के शस्त्रों के द्वारा जो करोड़ों ही थे बारम्बार काटे भी जा रहे थे तो भी काम कर रहे थे । ४०। वे ऊपर-ऊपर में सपिण्ड प्रविसर्पि बढ़ रहे थे । उनमें बहुत से सर्प नष्ट हो जाया करते हैं तथापि वे पुनः समुत्पन्न हो जाते हैं और दूसरे भी पैदा हो जाया करते हैं । ४१। जब एक का नाश का समय होता है तो अन्य बहुत से पैदा हो जाया करते हैं । कारण यही था कि जो मूल भूता सपिणी थी जिससे वे सब पैदा होते थे वह नष्ट नहीं होती है । अतः उससे बराबर सर्प समुत्पन्न होते चले जाते थे । ४२।

अतस्तत्कृतसर्पाणां नाशे सर्पातरोद्भवः ।

ततश्च शक्तिसंन्यानां शरीराणि विषानलैः ॥४३

दह्यमानानि दुःखेन विष्लुतान्यभवनृणे ।

किकर्तव्यविमूढेषु शक्तिचक्रेषु भोगिभिः ॥४४

पराक्रमं बहुविधं चक्रुस्ते पञ्च दानवाः ।  
 करीन्द्री गदंभशतेर्युक्तं स्यन्दनमास्थितः ॥४५  
 चक्रेण तीक्ष्णधारेण शक्तिसेनाममर्दयत् ।  
 वज्रदंताभिधश्चान्यो भंडदंत्यचमूपतिः ॥४६  
 वज्रबाणाभिधातेन होष्ट्रतो हि रणं व्यधात् ।  
 अथ वज्रमुखश्चैव चक्रिवंतं महत्तरम् ॥४७  
 आहृष्टा कुन्धाराभिः शक्तिचक्रममर्दयत् ।  
 वज्रदंताभिधानोऽन्यश्चमूनामधिपो बली ॥४८  
 गृध्रयुग्मरथारूढः प्रजहार शिलीमुखैः ।  
 तैः सेनापतिभिर्दुष्टैः प्रोत्साहितमथाहवे ॥४९

इसीलिये उसके शरीर से समुत्पन्न सर्पों के नाश होने पर भी दूसरे अन्य सर्पों की समुत्पत्ति हो जाया करती थी । उनके विषागिन से शक्तियों की सेनाओं के शरीर दह्यमान हो रहे थे और रण में वे दुःख से विष्णुत थे । उन भोगियों के द्वारा शक्तियों के चक्र किंकर्तव्य विमूङ्गे हो गए थे । ४३-४४। उन पाँचों दानवों ने बहुत तरह का पराक्रम किया था । वह करीन्द्री सेनाओं गदंभों से युक्त एक रथ पर समाप्तिथा । ४५। उसने अपने चक्र के द्वारा जिसकी बहुत ही अधिक तीक्ष्णधार थी शक्ति सेना का मर्दन किया था । और एक अन्य वज्रदन्त नामक भण्डासुर का सेनापति था । ४६। वज्रबाण के अभिधात के द्वारा उष्ट्र से उसने रण किया था । इसके पश्चात् वज्रमुख एक अधिक बड़े चक्रिवान् पर समवस्थित था । ४७। वह समारोहण करके भाले की धाराओं से वह शक्तियों की सेना का मर्दन करता था । एक अन्य वज्रदन्त नामक सेनापति बहुत ही बलवान् था । ४८। दो गृध्रों के रथ पर वह समारूढ़ था और वाणों के द्वारा सेना का निहनन कर रहा था । वे सेनापति अत्यन्त दुष्ट थे और उनके द्वारा युद्ध में सेना को प्रोत्साहन दिया गया था । ४९।

शतभक्षीहिणीनां च निपपातैकहेलया ।

सर्पिणी च दुराचारा बहुमायापरिग्रहा ॥५०

क्षणे क्षणे कोटिसंख्यान्विससर्जं फणाधरात् ।

तथा विकलितं सैन्यमवलोक्य रुषाकुला ॥५१

नकुली गरुडारुढा सा पपात रणाजिरे ।

प्रतप्तकनकप्रख्या ललितातालुसम्भवा ॥५२

समस्तवाढ़मयाकारा दत्तैर्वज्रमयैर्यंता ।

सर्पिण्यभिमुखं तत्र विसर्ज निजं बलम् ॥५३

तयाधिष्ठिततुं गांसः पक्षविक्षिप्तभूधरः ।

गरुडः प्राचलद्युद्धे सुमेहरिव जङ्गमः ॥५४

सर्पिणीमायया जातान्सर्पन्दृष्ट्वा भयानकान् ।

क्रोधरक्तेक्षणं व्यात्तं नकुली विदधे मुखम् ॥५५

अथ श्रीनकुलीदेव्या द्वात्रिशद्दंतकोटयः ।

द्वात्रिशत्कोटयो जाता नकुलाः कनकप्रभाः ॥५६

सौ अक्षोहिणी सेना का एक ही हेला से निपतन हो गया था । वह सर्पिणी बहुत ही दुष्ट आचार वाली थी और बहुत-सी मायाओं के परिग्रह वाली भी थी । ५०। वह एक-एक क्षण में करोड़ों-करोड़ों सपों का सृजन कर रही थी । इसके पश्चात् वह सम्पूर्ण सेना बेचेन हो गयी थी । ऐसा देखकर वह—देवी बहुत ही रोष से युक्त हो गयी थी । ५१। वह नकुली गरुड़ पर समारुढ़ा उस रणाङ्गन में आ गयी थी । वह ललिता देवी के तालु से उत्पन्न हुई थी और तपे हुए सुवर्ण के समान थी । ५२। उसका समस्त वाढ़मय आकार था और उसके दाँत वज्रमय थे । उसने वहाँ पर अपना बल उस सर्पिणी के समक्ष में सृजन किया था । ५३। वह गरुड़ भी ऐसा था जिसके बहुत उच्च अंश थे और वह अपने पंखों से पर्वतों को भी विक्षिप्त कर रहा था । वह गरुड़ उस युद्ध में चल दिया था जो साक्षात् जङ्गम सुमेह के ही समान था । ५४। सर्पिणी की माया से ममुत्पन्न परमाधिक भयानक सपों को देखकर स नकुली ने क्रोध से लाल नेत्रों वाला अपना मुख खुला हुआ कर दिया था । ५५। इसके पश्चात् श्री नकुली देवी की बत्तीस करोड़ सेना नकुलों की समुत्पन्न हो गयी थी और सुवर्ण की प्रभा वाले नकुल उत्पन्न हो गये थे । ५६।

इतस्ततः खण्डयन्तः सर्पिणीसर्पमण्डलम् ।

निजदण्डाविमदेन नाशयन्तश्च तद्विषम् ।

व्यभ्रमन्समरे घोरे विषष्टाः स्वर्णब्रह्मवः ॥५७

उत्कर्णा क्रोधसम्पर्काद्धूनिताशेषलोमकाः ।

उत्फुल्ला नकुला व्यात्तवदना व्यदशन्नहीन् ॥५८

एकैकमायासर्पस्य ब्रह्मुरेकैक उदगतः ।

तीक्ष्णदंतनिपातेन खण्डयामास विग्रहम् ॥५९

भोगिभोगसृतै रक्तैः सृक्षिकणी शोणतां गते ।

लिहंतो नकुला जिह्वापल्लवैः पुप्लुवुमृधे ॥६०

नकुलैर्दश्यमानानामत्यन्तचटुलं वपुः ।

मुहुः कुण्डलितैर्भोगैः पन्नगानां व्यचेष्टत ॥६१

नकुलावलिदष्टानां नष्टासूनां फणाभृताम् ।

फणाभरसमुत्कीर्ण मणयो व्यरुचनृणे ॥६२

नकुलाधातसंशीर्णफणाचक्रैविनिर्गतैः ।

फणयस्तन्महोद्रोहवहिनज्वाला इवाबभुः ६३

वे नकुल सर्पिणी के सपों के मण्डल को अपनी दाढ़ों के विमदेन से उनके विषों का विनाश कर रहे थे तथा उस महान् घोर समर स्थल में इधर-उधर वे नकुल स्वर्ण के समान चमकते हुए विष का नाश करने वाले भ्रमण करने लगे थे । ५७। उन समस्त नकुलों के दोनों कान ऊपर की ओर उठे हुए थे और क्रोध के सम्पर्क से वे अपने लोमों को उद्धूलित कर रहे थे । इस तरह से फूले हुए अपने मुँहों को खोले हुए सपों का विनाश करने वाले हुए थे । ५८। एक-एक माया से निर्मित सर्प के लिये एक-एक ही नकुल उद्दगत हो गया था और ये अपने परमाधिक तीक्ष्ण दाँतों के द्वारा सपों के शरीरों का खण्डन कर रहे थे । ५९। सपों के फणों से निकले हुए रुधिर से नकुलों की सृक्षिकणियाँ लाल हो गयी थीं और वे अपनी जिह्वा से उस रुधिर को चाटते हुए स्वयं भी उस युद्ध में प्लावित हो गये थे । ६०। उन नकुलों के द्वारा काटे गये उनके शरीर अत्यन्त चटुल हो गये थे और बारम्बार सपों के कुण्डलित भोगों के साथ वे विचेष्टा कर रहे थे । ६१। नकुलों के समुदाय के द्वारा काटे गये सपों के प्राण जा चुके थे और उनके

रहीं थीं । ६२। उन नकुलों के प्रहारों के द्वारा सपों के फणों के समुदाय से निर्गंत मणियों के समूहों से वे समस्त सर्प उस समर स्थल में अग्नियों की ज्वालाओं के ही समान दिखलायी दे रहे थे । ६३।

एवं प्रकारतो बभ्रुमण्डलैरवखण्डते ।

मायामये सर्पजाले सर्पिणीकोषमादधि ॥ ६४ ॥

तथा सह महद्युद्धं कृत्वा सा नकुलेश्वरी ।

गरुडास्त्रमतिकूरं समाधत्त शिलीमुखे ॥ ६५ ॥

तदगरुडास्त्रमुद्वामज्वालादीपितदिङ्गमुखम् ।

प्रविश्य सर्पिणीदेहं सर्पमायां व्यशोषयत ॥ ६६ ॥

मायाशक्तेविनाशेन सर्पिणी विलयं गता ।

क्रोधं च तद्विनाशेन प्राप्ताः पञ्च चमूवराः ॥ ६७ ॥

यदवलेन सुरान्सवन्सेनान्यस्तेऽवमेनिरे ।

सा सर्पिणी कथाशेषं नीता नकुलवीर्यतः ॥ ६८ ॥

अतः स्वबलनाशेन भृशं कुद्राश्चमूचराः ।

एकोद्यमेन शस्त्रीघैर्नकुलीं तामवाकिरत ॥ ६९ ॥

एकैव सा ताक्षरथा पञ्चभिः पृतनेश्वरी ।

लघुहस्ततया युद्धं चक्रे वै शस्त्रविष्णी ॥ ७० ॥

इस प्रकार से नकुलों के समुदाय के द्वारा जब सपों के मंडल अवखण्डित हो गये थे तो मायामय सपों का समूह नष्ट हो जाने पर सर्पिणी को बड़ा भारी क्रोध हो गया था । ६४। उस सर्पिणी के साथ उस नकुलीश्वरी ने महान् युद्ध करके उसने अपने शिलीमुख में अत्यधिक कूर गरुडास्त्र धारण किगा था । ६५। उस गरुडास्त्र ने जिसमें अत्यधिक ज्वालाएँ निकल रहीं थीं और समस्त दिशाएँ जिनसे चमक रही थीं, सर्पिणी के देह में प्रवेश किया था और उस सपों की माया का शोषण कर दिया था । ६६। जब उसको उस माया की शक्ति का विनाश हो गया था तब वह सर्पिणी विलीन हो गयी थी और उसके विनाश हो जाने से वे जो पौच सेनापति थे उनको बहुत अधिक क्रोध हो गया था । ६७। वे सेनानी जिसके बल से समस्त सुरों का भी अपमान कर देते थे वह सर्पिणी के पराक्रम से विनष्ट हो गयी थी

और उसकी केवल कथा ही शेष रह गयी थी ।६८। इसीलिए अपने बल के विनाश हो जाने से वे चमूवर बहुत क्रोधित हुए थे और उन्होंने सबने मिलकर अपने शस्त्रों के समूह से उस नकुली पर प्रबल प्रहार किये थे ।६९। उस सेना की स्वामिनी अकेली ही थी और ताक्ष्य के रथ पर समाझूद थी । उस अकेली ही ने उन पाँचों सेनापतियों के साथ शस्त्रों की वर्षा करने वाली ने बहुत ही हल्के हाथ होने से युद्ध किया था ।७०।

**पटि॒ टशै॒ मू॑ सलै॒ शचौ॒ व भिन्दि॒ पालै॑ सहस्रशः ।**

**वज्रसारमयौ॑ दै॒ तै॒ व्यंदशन्मर्म॑ सीमसु ॥७१**

**ततो हाहारुतं घोरं कुर्वणा दैत्यकिङ्कराः ।**

**उदग्रद॑ शनकुलैर्नकुलैराकुलीकृता ॥७२**

**उत्पत्य गगनात्केचिदघोरचीत्कारकारिणः ।**

**दशंतस्तद्विषां सैन्यं सकुलाः प्रज्वलकृ॒ धः ॥७३**

**कर्णेषु हृष्टवा नासायामन्ये दष्टाः शिरस्तटे ।**

**पृष्ठतो व्यदशन्केचिदागत्य व्याकृतक्रियाः ॥७४**

**विकलाशिष्ठननवर्मणो भयविस्तस्तशस्त्रिकाः ।**

**नकुलैरभिभूतास्ते न्यपतन्नमरद्रुहः ॥७५**

**केचित्प्रविश्य नकुला व्यात्तान्यास्यानि वैरिणाम् ।**

**भोगिभोगानि वाकृष्य व्यदशनृसनातलम् ॥७६**

**अन्ये कर्णेषु नकुलाः प्राविशन्देववैरिणाम् ।**

**सूक्ष्मरूपा विशंति स्म नानारन्धाणि वभ्रवः ॥७७**

**पट्टिश—**मुसल और सहस्रों भिन्दिपालों से तथा वज्र की शक्ति से पूर्ण दाँतों से मर्मस्थलों में दंशन किया था प्रहार किया था ।७१। फिर तो समस्त दैत्यगण हाहाकार की ध्वनि करते हुए उन उदग्र दंशन करने वाले नकुलों के द्वारा बेचैन हो गये थे ।७२। उनमें कुछ तो आकाश से परम घोर चीत्कार करते हुए उत्पन्न कर रहे थे । अत्यन्त क्रोध से युक्त नकुल शशुओं की सेना का दंशन कर रहे थे ।७३। उन असुरों की उस समय में बहुत ही बुरी दशा हो गयी थी । कुछ तो कानों में काटे गये थे—कुछ नासिकाओं में और कुछ शिरों में दंशित किये गये थे एवं कुछ पीठ पर दंशन किये गये

थे—इस तरह से सब की क्रियाएँ विनष्ट हो गयी थीं । ७४। ऐसे सबके सब वे वेचैन हो गये थे और उनके कवच छिन्न हो गये थे । भय के कारण उन्होंने अपने शस्त्रों को छोड़ दिया था । वे समस्त असुर नकुलों से पराभव को प्राप्त होकर निमलित हो गये थे । ७५। कुछ नकुल तो शशुओं के खुले हुए मुखों में प्रवेश करके सपों के मुखों (फनों) को खीचकर उनके रसना के तलों को काट रहे थे । ७६। अन्य नकुल शशुओं के कानों के छिद्रों में प्रवेश करके उन्हें दंशित कर रहे थे तथा वे नकुल उनके अनेक छिद्रों में मैं सूक्ष्म रूपों वाले होकर प्रविष्ट हो रहे थे । ७७।

इति तेरभिभूतानि नकुलेरयलोकयन् ।

निजसैन्यानि दीनानि करङ्गः कोपमास्थितः ॥७८॥

अन्येऽपि च चमूनाथा लघुहस्ता महाबलाः ॥७९॥

प्रतिबध्रु शरस्तोमान्ववृषुवर्णरिदा इव ।

देत्यसैन्यपतिप्रौढकोदंडोत्थाः शिलीमुखाः ।

वध्रूणां दन्तकोटीषु कठोरघट्टनं व्यधुः ॥८०॥

चमूपतिशरव्यूहैराहतेभ्यः परःशतैः ।

वध्रूणां वज्रदंतेभ्यो निश्चक्राम हुताशनः ।

पञ्चापि ते चमूनाथाविसृष्टरेकहेलया ॥८१॥

स्फुरत्फलैः शरकुलौबंधुसेनां व्यमर्दयत् ।

इतस्ततश्चमूनाथविक्षिप्तशरकोटिभिः ।

विशीर्णगात्रा नकुला नकुलीं पर्यवारयन् ॥८२॥

अथ सा नकुली वाणी वाङ्मयस्यैकनायिका ।

नकुलानां परावृत्त्या महांतं रोषमाश्रिता ॥८३॥

अक्षीणनकुलं नाभ महास्त्रं सर्वतोमुखप् ।

वह्निज्वालापरीताग्र संदधे शांगधन्वन्ति ॥८४॥

इस प्रकार से अपनी सेनाओं को नकुलों के द्वारा अभिभूत हुई देख कर तथा अपने संनिकों को दीन अवलोकन करके करङ्ग को बहुत अधिक कोश हो गया था । ८५। अन्य भी जो सेनानी थे वे भी बहुत ही हल्के हाथों

बाले और महान बलवान थे । ७६। उनने प्रत्येक नकुल के ऊपर शरों के समूहों की मेघों की भाँति वर्षा की थी । दैत्यों के सेनापतियों के परम प्रीढ़ धनुषों से निकले हुए बाणों ने नकुलों के करोड़ों दाँतों पर अथवा दाँतों के कीर्तों पर अतीव कठोर घट्टन किया था । अथवा जोरदार प्रहार किये थे । ८०। संकड़ों से भी अधिक सेनानियों के बाणों के समुदायों से आहत नकुलों के वज्र के समान दाँतों से अग्नि की चिनगारियों निकल रही थीं । उन पाँचों सेनापतियों ने एक ही हृले में मिलकर सेना का विमर्दन कर दिया था । सेनानियों के द्वारा छोड़े हुए बाणों से जो करोड़ों की संख्या में थी विशीर्ण शरीरों बाले विचारे नकुल इधर-उधर घूमते गए नकुली के आस-पास धिरकर समागत हो गये थे । ८१-८२। इसके अनन्तर बाल्मीय की एक देवता वह नकुली नकुलों की परावृत्ति से बड़े भारी क्रोध में भर गयी थी । ८३। उस नकुली ने अक्षीण नकुल नामक महास्त्र को जिसका सभी ओर मुख था और जो वहिन की ज्वालाओं से घिरे हुए अग्रभाग बाला था उस को अपने धनुष पर चढ़ाया था । ८४।

तदस्त्रतो विनिष्ठ्यूता नकुलाः कोटिसंख्यकाः ।

वज्राङ्गा वज्रलोमानो वज्रदण्डा महाजवाः ॥८५

वज्रसाराश्च निविडा वज्रजालभयंकराः ।

वज्राकारैर्नछोस्तूर्णं दारयन्तो महीतलम् ॥८६

वज्ररत्नप्रकाशेन लोचनेनापि शोभिताः ।

वज्रसंपातसृशा नासाचीत्कारकारिणः ॥८७

मर्दयन्ति सुरारातिसौन्यं दशनकोटिभिः ।

पराक्रमं बहुविधं तेनिरे ते निरेनसः ॥८८

एव नकुलकोटीभिर्वज्रघोरमंहावलौः ।

विनष्टाः प्रत्यवयवं विनेशुदनिवाधमाः ॥८९

एवं वज्रमयैर्ब्रुमंडलौः खडिते बले ॥९०

शताक्षीहिणिके संख्ये ते स्वमात्रावशेषिताः ।

अतित्रासेन रोषेण गृहीताश्च चमूवराः ।

संगममधिकं तेनुः समाहृत्वा राजा ।

उसके अस्त्र से निकले हुए करोड़ों नकुल बाहिर हुए ये जिनके बज्जे के समान अङ्ग थे—बज्ज जैसे ही लोम थे और बज्ज के तुल्य दंष्टाएँ थीं तथा उनका महान् वेग था । ६५। वे सभी बज्ज के समसार वाले—निविड़ और बज्ज जाल के सदृश भयंकर थे । उनके नख भी बज्ज जैसे आकार वाले थे उनसे वे इस महीतल की विदीर्ण कर रहे थे । ६५-६६। वे बज्ज रत्न के समान प्रकाश वाले नेत्रों से भी शोभा वाले थे और जैसे बज्ज का पात होता है वैसा ही उनका सम्पात भी था । वे अपनी नासिकाओं से चीखें मारने वाले थे । ६७। वे अपने दाँतों के कौनों से असुरों के सेनाओं का मर्दन करते हैं । निरपराधी उन्होंने अनेक प्रकार के पराक्रम को प्रदर्शित किया था । ६८। इस रीति से महान बल वाले तथा बज्ज के तुल्य घोर नकुलों की कोटियों से वे अधम दानव अपने शरीरों के प्रत्येक अवयवों से विनष्ट हो गये थे । ६९। इस तरह बज्ज पूर्ण नकुलों के मण्डलों से दैत्यों की सेनाएँ छिन्न-भिन्न हो गयी थीं । ७०। सौ अक्षोहिणी की संख्या में वे केवल स्वयं ही बचे थे तब तो उनने बड़े क्रोध से और अत्यधिक त्रास से उन चमूरों को ग्रहण किया था । अपने धनुषों को खींच कर उन्होंने और अधिक संग्राम किया था । ७१।

तैः समं बहुधा युद्धं तन्वाना नकुलेश्वरी ।

पटिष्ठेन करंकस्य चिच्छेद कठिनं शिरः ॥६२॥

काकवाशितमुख्यानां चतुर्णामपि वौरिणाम् ।

उत्पत्योत्पत्य ताक्ष्येण व्यलुनादसिना शिरः ॥६३॥

तादृशं लाधवं दृष्ट्वा नकुल्या श्यामलांबिका ॥६४॥

बहु मेने महासत्त्वां दुष्टासुरविनाशिनाम् ।

निजांगदेवतत्वं च तस्यौ श्यामांबिका ददौ ॥६५॥

लोकोत्तरे गुणे दृष्टे कस्य न प्रीतिसंभवः ।

हतशिष्टा भीतभीता नकुलीशरणं गताः ॥६६॥

सापि तान्वीक्ष्य कृपया मा भैष्टेति विहस्य च ।

भवद्राजे रणोदंतमशेषं च निबोधत ॥६७॥

तयीवं प्रेषिताः शीघ्रं तदालोक्य रणक्षितिम् ।

मुदितास्ते पुनर्भीत्या शून्यकायां पलायिताः ॥६८

तदुदंतं ततः श्रुत्वा भंडश्चंडो रुषाभवत् ॥६९

उस नकुलेश्वरी ने उनके साथ अनेक प्रकार से संग्राम करते हुए पट्टिश से करङ्ग का शिर को काट दिया था जो महान कठिन था । ६२। वे चार शत्रु थे जिनमें काकवाशित प्रमुख था । ऊपर की ओर उछाल खाखाकर ताक्ष्यं खड़ग से उनका शिर काट दिया था । ६३। श्यामलाम्बिका ने उस तरह की हाथ की सफाई नकुली की देखी थी और उसको महान सत्त्व वाली और दुष्ट असुरों के विनाश करने वाली को बहुत मान लिया था । फिर उस श्यामाम्बिका ने अपने अंग का जो देव तत्त्व था वह उसको दे दिया था । ६४-६५। जब अलौकिक गुण दिखाई देता है तो किसके हृदय में प्रीति समुत्पन्न नहीं हुआ करती है । जो भी नकुल मरने से बचे हुए थे वे बहुत ही भयभीत होकर उन वकुली की शरण में गये थे । ६६। उसने भी उनको देखकर कि ये डरे हुए हैं कृपा करके कहा था—डरो मत—और वह हँस गयी थी । उसने कहा था कि आप अपने राजा को इस संग्राम का सब समाचार बतादो । ६७। इस रीति से बस देवी के द्वार भेजे गये उनने उस समय में युद्ध भूमि का अवलोकन किया था और वे भय से मुदित होकर फिर सब शून्य का नगरी में भाग कर चले गये थे । ६८। उस समाचार को सुनकर वह प्रचण्ड भण्डासुर बड़ा कुद्ध हुआ था । ६९।

—X—

### बलाहाकादि सप्त सेनापति वध वर्णन

हतेषु तेषु रोषांश्वो निश्वसञ्छृन्यकेश्वरः ।

कुजलाशमिति प्रोचे युयुत्साव्याकुलाशयः ॥१॥

भद्र सेनापतेऽस्माकमभद्रं समुपागतम् ।

करंकाद्याश्रमूनाथाः कन्दलद्भुजविक्रमाः ॥२॥

सपिणीमायया सर्वंगीर्वाणमदभंजनाः ।

पापीयस्या तया गृद्धमायया विनिपातिताः ॥३॥

बलाहकप्रभृतयः सप्त ये संनिकाशिपाः ।

तानुदग्रभुजासत्त्वान्प्राहिण् प्रधनं प्रति ॥४॥

श्रिशतं चाक्षोहिणीनां प्रस्थापय सहैय तैः ।  
 ते मदंयित्वा ललितासंन्यं मायापरायणाः ॥५  
 अये विजयमाहार्यं संप्राप्स्यंति ममांतिकम् ।  
 कीकसागर्भमंजातास्ते प्रचंडपराक्रमाः ॥६  
 बलाहकमुखाः सप्त भ्रातरो जयिनः सदा ।  
 तेषामवश्यं विजयो भविष्यति रणांगणे ॥७

उन सबके मर जाने पर वह शून्यक का स्वामी क्रोध से अन्धा हो गया था और लम्बी श्वास लेता हुआ युद्ध करने की इच्छा से पूर्ण अभिप्राय वाले ने कुजलाश से यह कहा था—।६। हे सेनापते ! आप तो परमभद्र हैं और हमारा इस समय अमंगल आकर उपस्थित हो गया है । देखो, बड़े भारी भुजाओं के विक्रम वाले करकं प्रभृति सेनापतिगण जो कि समस्त देवों के मद का भञ्जन करने वाले थे । सपिणी माया से पापिनी उसने परम गूढ़ माया के द्वारा सबको मार डाला है ।२-३। अब बलाहक आदि जो उदग्र भुजाओं के सत्व वाले भी हैं उनको युद्ध करने के लिए भेज दो ।४। उनके साथ तीन सौ अक्षोहिणी सेनाएँ भी भेज दो । वे माया में भी कुशल हैं । वे ललिता की सेनाओं का विमर्दन कर डालेंगे ।५। अये ! वे तो विजय करके ही मेरे समीप में वापिस प्राप्त होंगे । वे कीकसा के गर्भ से समुत्पन्न हुए हैं और अधिक प्रचण्ड पराक्रम से समन्वित हैं । जिनमें बलाहक प्रधान है वे सातों भाई हैं और हमेशा ही जयशील रहे हैं । मैं समझता हूँ कि इस युद्ध स्थल में उनकी तो ऋषय ही विजय होगी ।६-७।

इति भंडासुरेणोक्तः कुटिलाक्षः समाह्रयत् ।

बलाहकमुखान्सप्त सेनानाथान्मदोत्कटान् ॥८

बलाहकः प्रथमतस्तस्मात्सूचीमुखोऽपरः ।

अन्यः फालमुखश्चैव विकणो विकटाननः ॥९

करालायुः करटकः सप्तैते वीर्यशालिनः ।

भंडासुरं नमस्कृत्य युद्धकौतूहलोत्वणाः ॥१०

कीकसासूनवः सर्वे भ्रातरोऽन्योन्यमावृताः ।

अन्योन्यसुसहायाश्च निर्जमुर्नगरांतरात् ॥११

त्रिशताक्षीहिणीसेनासेनान्योऽन्वगमंस्तदा ।

उल्लिखन्ति केतुजालैरंवरे धनमण्डलम् ॥१२

धोरसंग्रामिणीपादाधातैर्मंदितभूतला ।

पिबन्ति धूलिकाजालैरशेषानपि सागरात् ॥१३

भेरीनिः साणतंपोट्टपणवानकनिस्वनैः ।

नभोगुणमयं विश्वमादधानाः पदे पदे ॥१४

इस रीति से भण्डासुर के ढारा कहने पर उस कुटिलाक्ष ने परमाधिक मदोत्कट बलाहक प्रमुख सात सेनापतियों को बुलाया था । वा प्रथम तो बलाहक था—दूसरा सूचीमुख था—अन्य कालमुख था—विकर्ण—विकटानन—करालायु और करकट—ये सात परमाधिक वीर्यशाली थे । उन्होंने भण्डासुर को प्रणाम किया था ये युद्ध के कौतूहल में बहुत उत्क्षण थे । ६-१०। ये सब कीकसा के पुत्र थे और सभी परस्पर में भाई थे । ये परस्पर में एक दूसरे के सहायक थे और फिर वे लड़ने के लिए नगर के अन्दर से निकलकर चले गये थे । ११। तीन सौ अक्षीहिणी सेनाओं के सेनानीगण भी उस समय में उनके पीछे गये थे । ये अपनी ध्वजाओं के जाल से धन मण्डल को उल्लिखित कर रहे थे । १२। इन संग्रामिणियों के पैरों ने जो धात हो रहा था उससे भूतल विमदित हो रहा था । उस समय में इनकी सेनाओं के निर्गमन से इतनी धूलि उड़ रही थी कि सभी सागरों का जल सूख गया था । इनके कदम-कदम पर भेरी-निःसाण-तम्पोट-पणव-आनक का परम घोर घोष हो रहा था और सम्पूर्ण विश्व को शंकायमान करते हुए गमन कर रहे थे । नभ का गुण शब्द है वह पूरा विश्व शक्तमण हो रहा था । १३-१४।

त्रिशताक्षीहिणीसेनां तां गृहीत्वा मदोद्धताः ।

प्रवेष्टुमिव विश्वस्मन्कैकसेयाः प्रतस्थिरे ॥१५

धृतरोषारुणाः सूर्यमंडलोदीप्तकंकटाः ।

उदीप्तशस्त्रभरणाश्चेलुदीप्तोष्वकेशिनः ॥१६

सप्त लोकान्प्रमथितुं पिताः पूर्वमुद्धताः ।

भण्डासुरेण मदता जगदिनमकारिणा ॥१७

सप्तलोकविमर्देन तेन हृष्ट्वा महाबलाः ।  
 प्रोषिता ललितासैन्यं जेतुकामेन दुर्धिया ॥१८  
 ते पतन्तो रणतलमुच्चलच्छत्रपाणयः ।  
 शक्तिसेनामभिमुखं सक्रोधमभिद्वृबुः ॥१९  
 मुहुः किलकिलारावैर्घोषयन्तो दिशो दश ।  
 देव्यास्तु संनिकं यत्र तत्र ते जमुरुद्धताः ॥२०  
 सैन्यं च ललितादेव्याः सन्नद्धं शस्त्रभीषणम् ।  
 अभ्यमित्रीणमभवद्वद्भ्रकुटिनिष्ठुरम् ॥२१

ये भद्र से उद्धत कंकसेय तीन सौ अक्षीहिणी उस सेना को लेकर इस सम्पूर्ण विश्व में प्रवेश मानों कर रहे थे वहाँ से रवाना हुए थे ।१५। ये धारण किए हुए क्रोध से लाल हो रहे थे और सूर्यमण्डल के समान उद्दीप्त कंकट थे । ये शस्त्रों के आभरणों से परम उद्दीप्त थे और इनके दीप्त एवं ऊर्ध्वर्केश थे ऐसे परम घोर ये वहाँ से चल दिये थे ।१६। सम्पूर्ण जगत के विजय करने वाले महान भण्डासुर के द्वारा परम उद्धत इनको समस्त सात लोकों का प्रमथन करने के लिए ही भेजा गया था ।१७। जीतने की कामना वाले सातों लोकों को विमर्दित करने वाले उसने अपनी दुष्ट वुद्धि से ही महान बलवान इनको ललिता देवी की सेना में भेजा था ।१८। ये हाथों में छत्रों को ऊपर उठाते हुए रणस्थल में जा रहे थे और फिर शक्ति सेना से सामने बढ़े ही क्रोध के साथ धावा बोल दिया था ।१९। बार-बार किल-कारियों की छवनियों से दशों दिशाओं को घोषित कर रहे थे तथा जहाँ पर देवी की सेना थी वहाँ पर उद्धत थे ।२०। ललिता देवी की सेना भी सन्नद्ध थी और शस्त्रास्त्रों से वह सेना परम भीषण थी । देवी की सेना भी अपनी भृकुटी तानकर कठोरता से शत्रु के समक्ष में हो गयी थी ।२१।

पाशिन्यो मुसलिन्यश्च चक्रिण्यश्चापरा मुने ।  
 मुदगरिण्यः पट्टिशिन्यः कोदंडिन्यस्तथापरा: ॥२२  
 अनेकाः शक्तयस्तीत्रा ललितासैन्यसंगताः ।  
 पिबन्त्य इव देत्याब्धि सन्निपेतुः सहस्रशः ॥२३  
 आयातायात हे दुष्टाः पापिन्यो वनिताध्यमाः ।

मायापरिग्रहैदूरं मोहयंत्यो जडाशयान् ॥२४

नेष्यामो भवतीरद्य प्रेतनाथनिकेतनम् ।

इति शक्तीर्भत्संयंतो दानवाश्चकुराहवम् ॥२५

काचिच्चिच्छेद देत्येन्द्रं कण्ठे पट्टिशपातनात् ।

तद्वगलोदगलितो रक्तपूर ऊर्ध्वमुखोऽभवत् ॥२६

तत्र लग्ना बहुतरा गृधा मण्डलतां गताः ।

तौरेव प्रेतनाथस्य च्छवच्छविरुद्धचिता ॥२७

काचिच्छक्तिः सुराराति मुक्तशक्तश्यायुधं रणे ।

लूनतच्छक्तिनैकेन बाणेन व्यलुनीत च ॥२८

हे मुने ! उनमें कुछ तो पाशधारिणी थीं—कुछ मुसलों को ग्रहण किये थीं—दूसरी चक्र धारिणी थीं—कुछ के पास मुद्गर थे तो कुछ पट्टिश लिये थीं तथा कुछ धनुष ग्रहण किये थीं । २२। ललिता की सेना में सगत अनेक प्रकार की शक्तियाँ थीं । वे सहस्रों की संख्या में वहाँ पर समाप्तित हो गयीं थीं मानो देत्यों के सागरों का पान ही कर रही थी । २३। देत्यगण कह रहे थे—हे दुष्टाओ ! तुम नारियों में महान अधम हो—आओ ! तुम पापिनी हो । जो जड़ आज्ञयों वाले हैं उनको ही तुम लोग अपनी माया के परिग्रहों से मोहित कर लिया करती हो । २४। आज तो हम लोग तुम सबको प्रमराज के घर पर पहुँचा देंगे । हमारे पास ऐसे अत्यन्त भीषण वाण हैं जो फूटकार मारते हुए भुजंगों के ही तुल्य हैं उन्हीं से तुम मृत्यु प्राप्त करोगी । इस तरह से शक्तियों को भत्संना देते हुए ही उन दानवों ने युद्ध किया था । २५। किसी शक्ति ने देत्येन्द्र के कण्ठ को पट्टिश के प्रहार से काट दिया था । काटने से जो उसके कण्ठ से रुधिर निकला था वह ऊपर की ओर गया था । २६। वहाँ पर बहुत से गिर्द लगे हुए थे जिन्होंने एक मण्डल सा बना लिया था । उन्हीं के द्वारा यमराज का एक छत्र सा बन गया था । २७। किसी शक्ति ने रण में मुक्त शक्त्यायुध देत्य को एक ही वाण के द्वारा काट दिया था । २८।

एका तु गजमारुढा कस्यचिद्देत्यदुर्मतेः ।

उरः स्थले स्वकरिणा वप्राधातमशिक्षयत् ॥२९

काचित्प्रतिभटारुदं दंतिनं कुम्भसीमनि ।

खड़ेगेन सहसा हृत्वा गजस्य स्वप्रियं व्यधात् ॥३०

करमुकतेन चक्रेण कस्यचिद्देववैरिणः ।

धनुर्दण्डं द्विधा कृत्वा स्वभ्रुवोः प्रतिमां तनोत् ॥३१

शक्तिरन्या शरैः शातौः शातयित्वा विरोधिनः ।

कृपाणपद्मा रोमाल्यां स्वकीयायां मुदं व्यधात् ॥३२

काचिन्मुदगरपातेन चूर्णयित्वा विरोधिनः ।

रथचकनितं बस्य स्वस्य तेनातनोन्मुदम् ॥३३

रथकूबरमुग्रेण कस्यचिद्दानवप्रभोः ।

खड़ेगेन छिन्दती स्वस्य प्रियमुव्यास्ततान ह ॥३४

अभ्यन्तरं शक्तिसेना देत्यानां प्रविवेश ह ।

प्रविवेश च देत्यानां सेना शक्तिबलांतरम् ॥३५

एक शक्ति हाथी पर समारुद्ध होकर युद्ध कर रही थी और उसने दुष्ट बुद्धि वाले देत्य के उरस्थल में अपने हाथी के द्वारा वप्राघात की शिक्षा दी थी ।२६। किसी शक्ति ने उस हाथी के जिस पर प्रतिभट बैठा हुआ था, कुम्भ स्थल में खग का प्रहार किया था और उस हाथी के स्वप्रिय को मार डाला था ।३०। अपने हाथ से छोड़े हुए चक्र के द्वारा किसी असुर के धनुष के दो टुकड़े करके स्वभ्र की प्रतिमा बना दी थी ।३१। अन्य शक्ति के तीक्ष्ण शरों से विरोधियों का वध कर दिया था । कृपाण पद्मा ने अपनी रोमालि में मुद किया था ।३२। किसी शक्ति ने मुदगर के प्रहार से विरोधियों का चूर्ण किया था । उस ने अपने रथ के पहिए के नितम्ब का उसके द्वारा मुद किया था अर्थात् आनन्द प्राप्त किया था ।३३। किसी दानवों के स्वामी के रथ के कूबर को अपने उग्र खग के द्वारा छेदन करती हुई अपनी प्रीति का विस्तार किया था ।३४। शक्ति की सेना देत्यों के अन्दर प्रवेश कर गयी थी और दुर्धंर वैत्यों की सेना भी शक्ति सेना के भीतर प्रवेश कर गयी थी ।३५।

नीरक्षीरवदत्यंताश्लेषं शक्तिसुरद्विषाम् ।

संकुलाकारतां प्राप्तो युद्धकालेऽभवत्तदा ॥३६

शक्तीनां खड्गपातेन लूनशुण्डारदद्वयाः ।

देत्यानां करिणो मत्ता महाक्रोडा इवाभवन् ॥३७

एवं प्रवृत्ते समरे वीराणां च भयंकरे ।

अशक्ये स्मर्तुं मायंतं कातरत्ववतां नृणाम् ।

भीषणानां भीषणे च शस्त्रव्यापारदुर्गमे ॥३८

बलाहको महागृधं वज्रतीक्ष्णमुखादिकम् ।

कालदण्डोपमं जंघाकांडे चंडपराक्रमम् ॥३९

संहारगुण्टनामानं पूर्वमग्रे समुत्थितम् ।

धूमवद्धूसराकारं पक्षक्षेपभयंकरम् ॥४०

आरुह्य विविधं युद्धं कृतवान्युद्धदुर्मदः ।

पक्षी वितस्य क्रोशार्थं स स्थितो भीमनिःस्वनैः ।

अगारकुण्डवच्चञ्चुं विदार्याभक्षयच्चमूम् ॥४१

संहारगुप्तं स महागृधः क्रूरविलोचनः ।

बलाहकमुवाहोच्चैराकृष्टधनुषं रणे ॥४२

नीर और क्षीर के ही समान शक्ति सेना और असुरों की सेना एक-दम मिल गयीं थीं । उस समय में युद्ध काल में संकुलाकारता को प्राप्त ही गया था । ३६। शक्तियों के खंगों के पात से देत्यों के गज कटी हुई सूँड और दांतों वाले हो गये थे और वे मत्त महान् क्रीड़ों के तुल्य ही हो गये थे । ३७। इस प्रकार से वीरों का युद्ध प्रवृत्त हुआ था जो कि कातरता को प्राप्त होने वाले मनुष्य तो उसका स्मरण करने में भी सर्वथा असमर्थ हैं और भीषणों का वह शस्त्रों का व्यापार भी महान् भीषण तथा दुर्गम था । ३८। बलाहक महागृध—वज्रतीक्ष्ण मुख आदिक-कालदण्डोपम—जंघा काण्ड में प्रचण्ड पराक्रम—संसार गुप्त नाम वाला आगे पूर्व में समुत्थित हुआ था । उसका धूम की तरह धूसर आकार था और पंखों को जब क्षेपण करता था तब बहुत भयंकर हो जाता था । ३९-४०। वह युद्ध करने में दुमंद अनेक प्रकार के वाहनों के ऊपर आरोहण करके उसने युद्ध किया था । वह दोनों पंखों को फैला कर भयानक घोषों के द्वारा आधे कोश तक स्थित हुआ

रण करके वह संहार गुप्त महागिद्ध था जिसके बहुत क्रूर नेत्र थे । रण में धनुष को खींचकर बलाहक को बहुत ऊँचा उठा लिया था । ४१-४२।

बलाहको वपुष्मून्वन्गृधपृष्ठकृतस्थितिः ।

सपक्षकूटशैलस्थो बलाहक इवाभवत् ॥४३॥

सूचीमुखश्च दैत्येन्द्र सूचीनिष्ठुरपक्षतिम् ।

काकवाहनमारुद्ध्य कठिनं समरं व्यधात् ॥४४॥

मत्तः पर्वतशृङ्गभश्चचूदण्डं समुद्धन् ।

कालदण्ड प्रमाणेन जंघाकाण्डेन भीषणः ॥४५॥

पुष्करावर्तकसमा जंबालसदृशदयुतिः ।

कोशगात्रायतो पक्षावुभावपि समुद्धन् ॥४६॥

सूचीमुखाधिष्ठितोऽसौ करटः कटुवासितः ।

मर्दयञ्चञ्चुधातेन शक्तीनां मण्डलं महत् ॥४७॥

अथो फलमुखः फालं गृहीत्वा निजमायुधम् ।

कंकमारुद्ध्य समरे चकाणे गिरिसन्निभम् ॥४८॥

विकणखियश्च दैत्येन्द्रश्चमूर्भर्ता महाबलः ।

भेहं ढपतनारुद्धः प्रचंदयुद्धमातनोत् ॥४९॥

एक गिद्ध की पीठ पर स्थिति करने वाला बलाहक शरीर को विधू-नित करता हुआ सपक्ष कूट शैल पर स्थित बलाहक के ही समान हो गया था । ४३। और सूची मुख दैत्येन्द्र सूची के तुल्य निष्ठुर पंखों वाले काक वाहन पर समारुढ़ हुआ था और उसने बड़ा ही कठोर युद्ध किया था । ४४। वह मत्त था और पर्वत की चोटी की भाँति उसकी आभा थी—वह चञ्चुदंड का उद्धन कर रहा था । वह कालदंड के प्रमाण वाले जंघा कांड से बहुत ही भीषण दिखाई दे रहा था । ४५। जंबाल के सदृश चुति वाला पुष्करवर्तक के समान था । उसके दोनों पंख एक कोश के बराबर आयत थे । ऐसे पंखों का उद्धन कर रहा था । ४६। सूची मुख पर अधिष्ठित कटुवासित करट शक्तियों के महान् मंडल को ऊँच के आधात से विमर्दन कर रहा था । ४७। इसके अनन्तर फलमुख अपने आयुध काल को ग्रहण करके कंक पर समारुढ़ हुआ था और पर्वत की भाँति प्रकाशित हो रहा था । विकण-

नामक दैत्येन्द्र सेनापति महान् वलवान् था । उसने भेषण्ड पतन पर समारोहण करके बड़ा भारी युद्ध किया था । ४८-४९।

**विकटानननामानं विलसत्पट्टिशायुधम् ।**

उवाह समरे चण्डः कुकुटोऽतिभयङ्करः ॥५०॥

गर्जन्कण्ठस्थरोमाणि हर्षयञ्जवलदीक्षणः ।

पश्यन्पुरः शक्तिसैन्यं चचाल चरणायुधः ॥५१॥

करालाक्षश्च भूभर्ता षष्ठोऽन्तन्तगरिष्ठदः ।

बज्जनिष्ठुरघोषश्च प्राचलतेतवाहनः ॥५२॥

श्मशानमन्त्रशूरेण तेन संसाधितः पुरा ।

प्रेतो भूतोसमाविष्टस्तमुवाह रणाजिरे ॥५३॥

अवाङ्मुखो दीर्घबाहुः प्रसारितपदद्वयः ।

प्रेतो वापनतां प्राप्तः करालाक्षनथावहत् ॥५४॥

अन्यः करटको नाम दैत्यसेनाशिखामणि ।

मद्यामासशक्तीनां सैन्यं वेतालवाहनः ॥५५॥

योजनायतमूर्तिः सन्वेतालः क्रूरलोचनः ।

श्मशानभूमौ वेतालो मंत्रेणानेन साश्रितः ॥५६॥

अतीव भयङ्कर प्रचण्ड कुकुट ने पट्टिश नामक आयुध को ग्रहण करने वाले विकटानन नाम वाले का वहन किया था । ५०। कंठ में रहने वाले रोमों को हवित करता हुआ और गर्जना करता हुआ वह शक्ति की सेना को देख रहा था तथा उसके नेत्र जाज्यल्वमान थे ऐसा चरणायुध वहाँ से चल दिया था । ५१। करालाक्ष नामक राजा जो छठवां था वह अत्यधिक गरिष्ठ था । बज्ज के समान ही उसका घोष निष्ठुर था और प्रेत के वाहन वाला था । वह भी चल दिया था । ५२। उसने पहिले ही श्मशान मन्त्र शूर ने उसको संसाधित कर लिया था । ऐसे भूत समाविष्ट प्रेत ने रण में उसका वहन किया था । नीचे की ओर मुख वाले—लम्बी भुजा वाले—दोनों परों को फैलाये हुए प्रेत के वाहनता को प्राप्त करके कुटिलाक्ष रखाना हुआ था । ५३-५४। अन्य जो करट नामक दैत्यों की सेना का स्वामी था वह वेताल के वाहन वाला था और शक्ति की सेना का मदन किया था । ५५। वह एक

योजन तक आयत था वह बेताल क्रूर नेत्रों वाला था । इस बेताल की भी सिद्धि शमशान की भूमि में समवस्थित होकर की थी और मन्त्र का जाप कर के ही की थी । ५६।

मर्द्यामास पृतनां शक्तीनां तेन देशितः ।

तस्य बेतालवर्यस्य वर्तमानोऽससीमनि ।

बहुधायुध्यत तदा शवितभिः सह दानवः ॥५७॥

एवमेते खलात्मानः सप्तसप्तार्णवोपमाः ।

शक्तीनां सैनिकं तत्र व्याकुलीचक्रुद्धत्ताः ॥५८॥

ते सप्त पूर्वं तपसा सवितारमतोषयन् ।

तेन दत्तो वरस्तेषां तपस्तुष्टेन भास्वता ॥५९॥

कैकसेया महाभागा भवतां तपसाद्युना ।

परितुष्टोऽस्मि भद्रं वो भवन्तो वृणुतां वरम् ॥६०॥

इत्युक्ते दिननाथेन कैकसेयास्तप कृशाः ।

प्रार्थयामासुरत्यर्थं दुर्दन्तं वरमीदग्नम् ॥६१॥

रणेषु सन्निधातव्यमस्माकं नेत्रकुशिषु ।

भवता घोरतेजोभिर्दहता प्रतिरोधिनः ॥६२॥

त्वया यदा सन्निहितं तपनास्माकमक्षिषु ।

तदाक्षिविषयः सर्वो निष्चेष्टो भवतात्प्रभो ॥६३॥

उसके द्वारा आदेशित होकर उसने शक्ति की सेना का मर्दन किया था । उस बेताल की सीमा में वर्तमान दानव ने शक्ति की सेना के साथ अनेक प्रकार से युद्ध किया था । ५७। इस प्रकार से महान् खल सात सागरों के समान उन सातों ने जो बहुत ही उद्धत थे शक्ति की सेनाओं को व्याकुल कर दिया था । ५८। उन सातों ने पहिले तप के द्वारा सविता को प्रसन्न कर लिया था । तपस्या से प्रसन्न होकर सविता ने उनको वरदान दिया था । ५९। हे कैकसेयो ! आप तहान् भाग वाले हैं अब मैं आपके तप से प्रसन्न हो गया हूँ । आपका कल्याण होगा । आप लोग कोई भी वरदान माँग लो । ६०। सूर्य देव के द्वारा इस भाँति कहने पर तप से अतिकृत हुए उन कैकसेयों ने अत्यन्त दुर्दन्त ऐसा वरदान माँगा था । ६१। आप युद्ध स्थल में

हमारे नेत्रों में और कुक्षियों में आकर विराजमान होवें जिससे शत्रुओं को घोर तेजसे दाह होजावे । हे प्रभो ! जब आप तपते हुए हमारी अँखों में सन्निधान करेंगे तो उससे हम जिसको भी देखें वही निश्चेष्ट हो जावे । ६२-६३।

**त्वत्सान्निध्यसमिद्धेन नेत्रेणास्माकमीक्षिताः ।**

**स्तब्धशस्त्रा भविष्यन्ति तिरोधकसैनिकाः ॥६३**

**ततः स्तब्धेषु शस्त्रेषु वीक्षणादेव नः प्रभो ।**

**निश्चेष्टा रिपवोऽस्माभिर्हृतव्याः सुकरत्वतः ॥६४**

**इति पूर्वं वरः प्राप्तः कैकसेयैदिवाकरात् ।**

**वरदानेन ते तत्र युद्धे चेरुमीदोद्धताः ॥६५**

**अथ सूर्यसमाविष्टनेत्रैस्तैस्तु निरीक्षिताः ।**

**शक्तयः स्तब्धशस्त्रीषा विफलोत्साहतां गताः ॥६६**

**कीकसातनयैस्तैस्तु सप्तभिः सत्वशालिभिः ।**

**विष्टभितास्त्रशस्त्राणां शक्तीनां नोद्यमोऽभवत् ॥६७**

**उद्यमे कियमाणेऽपि शस्त्रस्तम्भेन भूयसा ।**

**अभिभूताः सनिश्वासं शक्तयो जोषमासत ॥६८**

**अथ ते वासरं प्राप्य नानाप्रहरणोद्यताः ।**

**व्यमर्दयञ्छकितसैन्यं दैत्याः स्वस्वामिदेशिताः ॥६९**

विष्टक के योधा आपके सन्निधान वाले हमारे नेत्रों से देखे गये होने पर स्तब्ध शस्त्रों वाले हो जायगे । ६४। हे प्रभो ! फिर जब सभी शस्त्र स्तब्ध होंगे और हमारे देखने मात्र से ही अवरुद्ध हो जायगे तो फिर निश्चेष्ट शत्रु हमारे द्वारा आसानी से मारे जाने के योग्य हो जायगे । ६५। यह पूर्व में ही वर प्राप्त किया था और कैकसेयों ने सूर्य देव से ही ऐसा वरदान पा लिया था । इसी वरदान से मदोद्धत वे उस युद्ध में गये थे । ६६। इसके उपरान्त सभी शक्तियाँ सूर्य के समाविष्ट नेत्रों द्वारा देखी गयी थीं और स्तब्ध शास्त्रों वाली होकर उत्साह हीन हो गयीं थीं । ६७। कीकसा के पुत्र सातों के द्वारा जो कि बड़े ही सत्व थे शक्तियों की सेनाओं के शस्त्रास्त्र

अथत् शक्तियाँ कुछ भी न कर सकीं थीं । ६८। उद्यम किये जाने पर भी उसका कुछ भी प्रभाव नहीं हुआ था। क्योंकि बड़ा भारी शस्त्रों का स्तम्भन था। इस विष्टम्म से अभिभूत हुई शक्तियों को चुप ही रहना पड़ा था। ६९। फिर दिवस के होने पर वे सब अनेक आयुधों से संयुत होकर अपने स्वामी की आज्ञा से समन्वित होते हुए देव्यों ने शक्तियों की सेना का विमुदन किया था ॥७०।

**शक्तयस्तास्तु संन्येन निव्यपिरा निरायुधाः ॥ ७१ ॥**

अक्षुभ्यंत शरैस्तेषां वज्रकङ्कटभेदिभिः ॥ ७१ ॥

**शक्तयो देत्यशस्त्रोघ्विंद्रगात्राः सृतासृजः ॥ ७२ ॥**

सुपल्लवा रणे रेजुः कङ्कोललतिका इव ॥ ७२ ॥

**हाहाकारं वितन्वत्यः प्रपन्ना ललितेश्वरीम् ॥ ७३ ॥**

चुक्रुशः शक्तयः सवस्ति स्तंभितनिजायुधाः ॥ ७३ ॥

अथ देव्याज्ञया दण्डनाथा प्रत्यङ्गरक्षिणी ॥ ७४ ॥

तिरस्करणिका देवी समुत्तस्थो रणाजिरे ॥ ७४ ॥

**तमोलिप्ताहत्रयं नाम विमानं सर्वतोमुखम् ॥ ७५ ॥**

महामाया समारुद्धा शक्तीनामभयं व्यद्धात् ॥ ७५ ॥

**तमालश्यामलाकारा श्यामकंचुकधारिणी ॥ ७६ ॥**

श्यामच्छाये तमोलिप्ते श्यामयुक्ततुरङ्गमे ॥ ७६ ॥

**वासन्ती मोहनाभिष्ठयं धनुरादाय सस्वनम् ॥ ७७ ॥**

**सिंहनादं विनदयेषुनवर्षत्सर्पसन्निभान् ॥ ७७ ॥**

वे शक्तियाँ तो उस समय में शत्रु की सेना के द्वारा निरायुध और निव्यपिरा बाली हो गयी थीं तथा उन देव्यों के वज्र कङ्कट भेदी शरीरों के द्वारा लुभ्य हो गयी थीं ॥७१। देव्यों के शस्त्रों के समुदायों से विद्ध शरीरों वाली हो गयी थीं और उनके शरीरों से रुधिर बह रहा था। वे रण में सुन्दर पत्तों वाली कङ्कोल लताओं की भौति जोभित हो रही थीं ॥७२। वे समस्त शक्तियाँ हाहाकार करती हुई ललिता देवी की शरण में गयी थीं। ये सभी शक्तियाँ देव्यों के द्वारा स्तम्भित शस्त्रों वाली होकर रोते लगीं थीं ॥७३। इसके अनन्तर देवी की आज्ञा से प्रत्यङ्गरञ्जिणी दण्डनाथा तिरस्कर-

णिका देवी उस रण स्वल में समुत्थित हो गयी थी । ७४। तमोलिप्त तामक सर्वतोमुख विमान पर महामाया ने समारूढ़ होकर शक्तियों के भय को दूर किया था । ७५। वह रथ श्याम कान्ति वाला था-तम से लिप्त और श्याम तुरङ्गमों वाला था । उस पर तमाल के समान श्यामल आकार वाली तथा श्याम कञ्चु की को धारण करने वाली विराजमान थी । ७६। वासन्ती मोहन की अभिष्या वाले घनुष को ग्रहण करके छवनि के साथ सिहनाद करके सपों के सहश वाणों की वर्षी उस देवी ने की थी । ७७।

**कृष्णरूप भुजङ्गभानधोमुसलसंनिभाम् ॥७८॥**

**मोहनास्त्रविनिष्ठ्यूतान्वाणान्देत्या न सेहिरे ॥७८॥**

**इतस्ततो मद्यमाना महामायाशिलीमुखैः ॥७९॥**

**प्रकोपं परमं प्राप्ता बलाहकमुखाः खलाः ॥७९॥**

**अथो तिरस्करण्यं वा दण्डनाथानिदेशतः ॥८०॥**

**अन्धाभिधं महास्त्रं सा मुमोच द्विषतां गणे ॥८०॥**

**बलाहकाद्यास्ते सप्त दिनाथवरोद्धताः ॥८१॥**

**अन्धास्त्रेण निजं नेत्रं दधिरे च्छादितं यथा ॥८१॥**

**तिरस्करणिकादेव्या महामोहनधन्वनः ॥८२॥**

**उद्गतेनांधवाणेन चक्षुस्तेषां व्यधीयतः ॥८२॥**

**अन्धीकृताश्च ते सप्त न तु प्रेक्षन्त किञ्चन ॥८३॥**

**तद्वीक्षणस्य विरहाच्छस्तम्भः क्षयं गतः ॥८३॥**

**पुनः सर्सिहनादं ताः प्रोद्यतायुधपाणायः ॥८४॥**

**चकुः समरसन्नाहं देत्यानां प्रजिघांसया ॥८४॥**

वे दैत्यगण कृष्ण स्वरूप से संयुत भुजङ्गों के समान तथा मूसल के सहश मोहनास्त्र से निकाले गये वाणों को सहन न कर सके थे । ७८। इधर-उधर महामाया के वाणों से मदित होते हुए वे खल जिनमें बलाहक प्रधान था परमाधिक प्रकोप को प्राप्त हो गये थे । ७९। अनन्तर में दण्डनाथा के आदेश से तिरस्करणी अम्बा ने शत्रुओं के युद्ध में अन्धनामक महास्त्र को छोड़ा था । ८०। सूर्य देव के वर से बड़े ही उद्धत हुए वे बलाहक आदि सातों दैत्य उस अन्धास्त्र से अपने नेत्रों को छादित हुए ही धारण किये हुए थे ।

।८१। तिरस्करणी अम्बा के मोहनास्त्र धनुष से निकले हुए बाण के द्वारा उनके नैव बन्द हो गये थे ।८२। अन्धे बनाये गये वे सातों वहाँ पर कुछ भी नहीं देख पाते थे । उनके न देखने से वह शस्त्र का स्तम्भन भी क्षीण हो गया था ।८३। करों में आयुध लिये हुए उन्होंने फिर सिहनाद करके दैत्यों के हनन करने की इच्छा से युद्ध किया था ।८४।

तिरस्करणिकां देवीमग्रे कृत्वा महाबलाम् ।

सदुपायप्रसङ्गे न भृशं तुष्टा रणं व्यधुः ॥८५॥

साधुसाधु महाभागे तिरस्करणिकांबिके ।

स्थाने कृततिरस्कारा द्विषामेषां दुरात्मनाम् ॥८६॥

त्वं हि दुर्जननेत्राणां तिरस्कारमहोषधी ।

त्वया बद्धृशानेन दैत्यचक्रेण भूयते ॥८७॥

देवकार्यमिदं देवि त्वया सम्यग्नुष्ठितम् ।

अस्मादशामजय्येषु यदेषु व्यसनं कृतम् ॥८८॥

तत्त्वयैव दुराचारानेतान्सप्त महासुरान् ।

निहतांललिता श्रुत्वा सन्तोषं परमाप्स्यति ॥८९॥

एवं त्वया विरचिते दण्डनीप्रीतिमाप्स्यति ।

मंत्रिष्यपि महाभागा यास्यत्येव परां मुदम् ॥९०॥

तस्मात्वमेव सप्तैतान्निगृहाण रणाजिरे ।

एषां संन्यं तु निखिलं नाशयाम उदायुधाः ॥९१॥

उन शक्तियों ने महान् बल वाली उस तिरस्करणी देवी को अपने आगे करके उसके अन्धीकरण के उपाय के प्रसङ्ग से बहुत ही प्रसन्न होकर युद्ध किया था ।८५। वे सभी शक्तियाँ यह कह रही थीं—हे तिरस्कारिण ! अम्बिके ! हे महाभागे ! बहुत ही अच्छा किया । दुरात्मा इन शत्रुओं को आपने जो तिरस्कार किया है वह बहुत ही उचित किया है ।८६। आप ही इन दुष्टों के नेत्रों के तिरस्कार करने की महोषध हैं । आपके द्वारा हाटि के बन्द होने ही से यह दैत्यों का चक्र पराभूत हो रहा है ।८७। हे देवि ! यह तो देवकार्य है जो आपने भलीभांति किया है । हम जैसी शक्तियों के द्वारा अजेय इनमें जो आपने यह व्यसन उत्पन्न कर दिया है ।८८। अब आपके हो

द्वारा इन महान् सात अमुरों को निहत हुआ मुनकर ललिता देवी बहुत ही प्रसन्नता को प्राप्त हो गी । ६१। आपके द्वारा ऐसा करने पर दण्डनी देवी भी प्रीति को प्राप्त हो जायगी और महाभागा मन्त्रिणी देवी भी बहुत अधिक सन्तोष को प्राप्त हो जायगी । ६०। इस कारण से अब आप ही इन सातों का युद्धाङ्ग में वध कीजिए । इनकी जी सम्पूर्ण सेना है उसको आयुध ग्रहण कर हम विनष्ट कर देती हैं । ६१।

इत्युक्त्वा प्रेरिता ताभिः शक्तिभियुद्धं कौतुकान् ।

तमोलिप्तेन यानेन बलाहकबलं ययौ ॥६२॥

तामायांतीं समावेश्य ते सप्ताथ सुराध्माः ।

पुनरेव च सावित्रं वरं सस्मर्हरंजसा ॥६३॥

प्रविष्टमपि सावित्रं नाशकं तन्निरोधने ।

तिरस्कृतं तु नेत्रस्थं तिरस्करणितेजसा ॥६४॥

वरदानास्त्ररोषांधं महाबलपराक्रमम् ।

अस्त्रेण च रुषा चांधं बलाहकमहामुरम् ।

आकृष्य केशोष्वसिना चकर्त्तिर्धिदेवता ॥६५॥

तस्य वाहनगृधस्य लुनाना पत्रिणा शिरः ।

सूचीमुखस्याभिमुखं तिरस्करणिकावजत् ॥६६॥

तस्य पट्टिशपातेन विलूय कठिनं शिरः ।

अन्येषामपि पञ्चानां पञ्चत्वमकरोच्छनैः ॥६७॥

तेः सप्तदंत्यमुण्डेश्च ग्रथितान्योन्यकेशकैः ।

हारदाम गले कृत्वा ननादांतर्धिदेवता ॥६८॥

इस प्रकार से कहे जाने पर उन शक्तियों के द्वारा प्रेरित हुई उस तिरस्करणी देवी ने युद्ध कौतुक से तमोलिप्त यान के द्वारा बलाहक की सेना में गमन किया था । ६२। उस देवी को आती हुई देखकर उन सातों अध्यम अमुरों ने फिर भी उसी सूर्य देव के दिये हुए वरदान कर तुरन्त ही स्मरण किया था । ६३। वह सावित्र वरदान प्रविष्ट भी हुआ था जो कि उसके निरोध का विनाशक था किन्तु तिरस्करणी के तेज से वह भी तिरस्कृत हो गया था । ६४। वरदानास्त्र के रूप से अध्या तथा महान् बल और पराक्रम

बाला वह असुर था । अस्त्र से और रोष से अन्धे उस महासुर बलाहक के केशों को पकड़ कर उस देवी ने अपनी ओर खीच लिया था और अन्धे बना देने वाली देवी ने उसका शिर तलवार से काट डाला था । ६५। उसका जो बाहन गिर था उसका भी शिर पत्री के द्वारा काटकर वह तिरस्कारिणी देवी सूची मुख के सामने गयी थी । ६६। उसके शिर को पट्टिश के प्रहार से काट डाला था और शेष जो पाँच रहे थे उनके भी सबके शिर धीरे-धीरे उस देवी ने काटकर मीत के घाट सबको उतार दिया था । ६७। उन सातों असुरों के मुण्ड परस्पर में केशों के द्वारा बंधे हुए थे । उनका एक हार सा बनाकर गले में ढालकर तिरस्करिणी देवी गर्जना कर रही थी । ६८।

**मस्तमपि तत्सैन्यं शक्तयः क्रोधमूर्च्छिताः ।**

**हत्वा तद्रक्तसलिलैर्बृद्धीः प्रावाहयन्नदीः ॥६६**

**तत्राश्र्वर्यमभूदभूरि महामायांविकाकृतम् ।**

**बलाहकादिसेनान्यां हृष्टिरोधनवैभवात् ॥१००**

**हतशिष्यः कतिपयाबहु वित्त्रासन्सङ्कुलाः ।**

**शरणं जग्मुरत्यात्ता: क्रन्दत शून्यकेश्वरम् ॥१०१**

**दंडिनीं च महामायां प्रशंसन्ति मुहुर्मुहुः ।**

**प्रसादमपरं चक्षुस्तस्या आदाय पिप्रियुः ॥१०२**

**साधुसाधिवति तत्रस्थाः शक्तयः कम्पमौलयः ।**

**तिरस्करणिकां देवीमश्लाघंत पदे पदे ॥१०३**

क्रोध से मूर्च्छित उन शक्तियों ने उन असुरों की सम्पूर्ण सेना का हनन कर दिया था तथा उनके रुधिर की बहुत से नदियों को प्रवाहित कर दिया था । ६९। बलाहक आदि बड़े-बड़े सेनानियों की हृष्टि के रोधन करने के बंधव से जो कि महामाया अम्बिका के द्वारा किया गया था वहाँ पर उस समय में बड़ा आश्चर्य हो गया था । १००। मरने से जो भी कुछ बच गये थे वे सब बहुत ही भयभीत होकर असुर बहुत आत्त होकर शून्यकेश्वर की शरण में रुदन करते हुए पहुँच गये थे और वे महामाया दण्डिनों की बारम्बार प्रशसा कर रहे थे और उसको दूसरी प्रसन्नता से चक्षु प्राप्त करके वे प्रसन्न भी हुए थे । १०१-१०२। वहाँ पर जो शक्तियाँ थीं उनने बहुत अच्छा हुआ—यह कहकर अपना शिर हिलाते हुए पद-पद पर तिरस्करिणी देवी की प्लाघा की थी । १०३।

## विषंग पत्तायन वर्णन

ततः श्रुत्वा वधं तेषां तपोबलवतामपि ।

न्यश्वसत्कृष्णसर्पेन्द्र इव भंडो महासुरः ॥१॥

एकाते मंत्रयामास स आहूय महोदरौ ।

भण्डः प्रचंडशौँडीर्यः कांक्षमाणो रणे जयम् ॥२॥

युवराजोऽपि सक्रोधो विषंगेण यवीयसा ।

भंडासुरं नमस्कृत्य मंत्रस्थानमुपागमत् ॥३॥

अत्याप्तीमंत्रिभिर्युक्तः कुटिलाक्षपुरः सरैः ।

ललिताविजये मंत्रं चकार व्यथिताशयः ॥४॥

**भंडउवाच—**

अहो बत कुलभ्रंणः समायातः सुरद्विषाम् ।

उपेक्षामधुना कर्तुं प्रवृत्तो बलवान्विधिः ॥५॥

मदभृत्यनाममात्रेण विद्रवति दिवौकसः ।

ताहशानामिहास्माकमागतोऽयं विपर्ययः ॥६॥

करोति बलिनं क्लीबं धनिनं धनवर्जितम् ।

दीर्घयुषमनायुष्कं दुर्धाता भवितव्यता ॥७॥

इसके अनन्तर महासुर भंड ने जब महान बलवान और वरदानी उन सातों का वध सुना तो वह उस समय में काले सर्प के ही समान निश्वास लेने लगा था । १। महान शौँडीर्य वह रण में विजय की इच्छा वाला होकर एकान्त में महोदरों को बुलाते हुए उनके साथ भंडासुर ने मन्त्रणा की थी । २। युवराज भी क्रोध युक्त हुआ था और छोटे भाई विषङ्ग के साथ वहाँ उपस्थित हुआ था । उसने भंडासुर को नमस्कार किया था और फिर वह भी मन्त्रणा के स्थान पर प्राप्त हो गया था । ३। वे उसके मन्त्री बहुत ही विश्वास पात्र थे जिनमें कुटिलाक्ष आदि अग्रणी थे । बिगड़े हुए विचार वाले उस भंड ने उनके साथ ललिता के विजय करने की मन्त्रणा की थी । ४। भंड ने कहा—अहो ! अब तो असुरों के कुल का विनाश ही प्राप्त हो गया है । यह विधि बड़ा बलवान् है इसने हम लोगों की ओर में उपेक्षा ही करने में अपनी प्रवृत्ति करती है । ५। मेरे भृत्यों के नाम से ही देवगण आग जाया

करते हैं । ऐसे हमारा भी इस समय में विपरीत समय उपस्थित हो गया है । ६। यह होनहार ऐसी बलवान है कि यह बलवान को बलीब (नपुंसक) और धनवान को भी धनहीन कर दिया करती है । जो दीघं आयु वाला है उसको आयुहीन कर दिया करती है । इस होनो का प्रहार बड़ा ही कठिन है । ७।

क्व सत्त्वमस्मद्बाहूनां क्वेयं दुर्लिलिता वधूः ।

अकांड एव विधिना कृतोऽयं निष्ठुरो विधिः ॥८॥

सर्पिणीमाययोदग्रास्तया दुर्घटशौयंया ।

अधिसंग्रामभूचक्रे सेनान्यो विनिपातिताः ॥९॥

एवमुद्गमदर्पण्डिता वनिता कापि मायिनी ।

यदि संप्रहरत्यस्मान्तिर्गवलं नो भुजाजितम् ॥१०॥

इमं प्रसंगं वक्तुं च जिह्वा जिट्वेति मामकी ।

वनिता किमु मत्संन्यं मर्दयिष्यति दुर्मदा ॥११॥

तदत्र मूलच्छेदाय तस्या यत्नो विधीयताम् ।

मया चारमुखाज्ञाता तस्या वृत्तिर्महावला ॥१२॥

सर्वेषामपि सैन्यानां पश्चादेवावतिष्ठते ।

अग्रतश्चलितं सैन्यं पयहस्तरथादिकम् ॥१३॥

अस्मिन्नेव ह्यवसरे पार्षिणग्राहो विधीयताम् ।

पार्षिणग्राहमिमं कतुं विषं गश्चतुरो भवेत् ॥१४॥

हमारी भुजाओं का बल तो कहाँ अर्थात् उस कितना विशाल है और यह दुर्लिलिता वधू कहाँ है अर्थात् नारी की शक्ति हमारे सामने सर्वथा तुच्छ है । अनवसर में ही विधाता के ऐसा निष्ठुर विधान कर दिया है कि हमारा विनाश इन अबला नारियों द्वारा हो रहा है । ८। दुर्घट शूरता वाली सर्पिणी माया के द्वारा बड़े-बड़े उबग्र सेनानी गण संग्राम भूमि में मारे गये हैं । ९। इस रीति से उद्गम दर्पं से संयुत कोई माया वाली नारी यदि हमारा संहार कर देती है तो हमारी बाहुओं के द्वारा जो भी बल अजित किया गया है उसको विकार होती है । १०। इस प्रसङ्ग को कहने में भी मेरी जिह्वा लज्जित होती है । क्या यह दुर्मदा स्त्री हमारी सेना का मर्दन कर देगी

।११। इसलिए उसके मूल का उच्छेदन करने के लिए कोई यत्न करना ही चाहिए। मैंने दूतों के मुख से सुना है कि उसकी वृत्ति महा बलवती है ।१२। वह सब सेना के वह पीछे ही रहती है और उसके आगे हाथी-धोड़े और सेनाएँ सब चला करती हैं ।१३। अब इसी अवसर पर उसका पाण्डिग्राह करो। इस पाण्डिग्राह में अर्थात् पीछे पहुँचकर उसको पकड़ने में विषज्ञ बहुत कुशल है ।१४।

तेन प्रौढमदोन्मत्ता बहुसंग्रामदुर्मदाः ।

दण पञ्च च सेनान्यः सह यांतु युयुत्सया ॥१५॥

पृष्ठतः परिवारास्तु न तथा सन्ति ते पुनः ।

अल्पेस्तु रक्षिता वै स्यात्तेनैवासी सुनिग्रहा ॥१६॥

अतस्त्वं बहुसन्नाहमाविधाय मदोत्कटः ।

विषंग गुप्तरूपेण पाण्डिग्राह समाचर ॥१७॥

अल्पीयसी त्वया साद्व सेना गच्छतु विक्रमात् ।

सज्जाश्रलतु सेनान्यो दिवपालविजयोद्धताः ॥१८॥

अक्षीहिष्यश्च सेनानां दण पञ्च चलतु ते ।

त्वं गुप्तवेषस्तां दुष्टां सन्निपत्य दृढं जहि ॥१९॥

सेव निःशेषशक्तीनां मूलभूता महीयसी ।

तस्याः समूलनाशेन शक्तिवृन्द विनश्यति ॥२०॥

कंदच्छेदे सरोजिन्या दलजालमिवाभसि ।

सर्वेषामेव पश्चाद्यो रथश्चलति भासुरः ॥२१॥

उस विषंग के साथ युद्ध करने की इच्छा से बड़े प्रौढ़ और मदोन्मत्त दण पाँच सेनानी भी जावें ।१५। उनके पीछे की ओर कोई परिवार नहीं है। वह बहुत थोड़े से सेनिकों के द्वारा रक्षित है अतः सबका निग्रह आसान है ।१६। इसीलिए मदोत्कट तुम बहुत संग्राम न करके गुप्त रूप से विषंग को समाचरण करो ।१७। आपके साथ बहुत थोड़ी सेना जावे और सेनानी सज्जित होकर चलें जो विक्रम से दिवपालों के भी विजय करने से उद्धत हैं ।१८। पन्द्रह अक्षीहिणी सेनाएँ भी जावें और तुम गुप्त वेष बाले होकर

स्वरूप है। उसके समूल विनाश से ही सम्पूर्ण जक्तियों का समुदाय विनष्ट हो जायगा । २०। जिस प्रकार से सरोजिनी के कन्द के उच्छेदन करने पर जल में उसके दलों का विनाश हो जाया करता है। सबके पीछे ही जो एक बड़ा भासुर रथ चला करता है । २१।

**दशयोजनसंपत्तनिजदेहसमुच्छ्रयः ।**

महामुक्तातपत्रेण सर्वोद्धर्वं परिशोभितः ॥२२॥

वहन्मुहुर्वीज्यमानं चामराणा चतुष्थयम् ।

उत्तुं गकेतुसंघातलिखितावुदमंडलः ॥२३॥

तस्मिन्नृथे समायाति सा दृष्टा हरिणेक्षणा ।

निभृतं संनिपत्य त्वं चिह्ने नानेन लक्षिताम् ॥२४॥

तां विजित्य दुराचारां केशेष्वाकृष्य मदंय ।

पुरतश्चलिने सैन्ये सत्वणालिनि सा वधूः ॥२५॥

स्त्रीमात्ररक्षा भवतो वशमेष्यति सत्वरम् ।

भवत्सहायभूतायां सेनेन्द्राणामिहाभिधा ॥२६॥

शृणु ये भवतो युद्धे साह्यकार्यमतंद्रितेः ।

आद्यो मदनको नाम दीर्घजिह्वो द्वितीयकः ॥२७॥

हुबको हुलुमुलूश्च कवलसः कविलवाहनः ।

थुवलसः पुण्डकेतुश्च चंडवाहुश्च कुक्कुरः ॥२८॥

वह रथ दशयोजन से सम्पन्न अपने कलेवर की ऊँचाई वाला है। सबके ऊपर एक छत्र पर रहा करता है जो बड़े-बड़े मुक्ताओं से विनिमित है और परिशोभित है । २२। वह चार चमरों के द्वारा बार-बार वीज्यमान रहता है अर्थात् चार चमर उस पर दुराये जाया करते हैं। उस पर एक बहुत ऊँची छजा ढैंगी रहा करती है जो अम्बुदों के मण्डल तक पहुँचती है । २३। ऐसे ही उस रथ पर वह हरिण के समान सुन्दर नेत्रों वाली आया करती है। तुम चूपचाप इसी चिट्ठन से उसको लक्षित कर लेना और उस पर धावा करके उस दुराचारिणी को जीतकर उसके केश खींचकर मर्दन करना। आगे सत्वणाली सेना चलने पर वह वधू स्त्रियों के ही द्वारा रक्षित है । २४-२५। अतः आपके वश में शीघ्र ही आ जायगी। आपकी सहायता

करने वाले सेनानियों के ये नाम हैं । २६। सुनिए, आपकी सहायता के कार्य में जो भी हैं वे पूर्ण सावधान होंगे । पहिला मदनक नामक है—दूसरा दीर्घ जिह्वा है । २७। हुबक—हुलुमुलु—कक्लस—कल्कि वाहन—थुक्लस—पुण्ड्र—केतु चण्ड बाहु—कुक्कुर ये सब नामों वाले होंगे । २८।

जम्बुकाक्षो जंभनश्च तीक्ष्णशृङ्खस्त्रिकटकः ।

चन्द्रगुप्तश्च पञ्चते दश चोक्ताश्चमूवराः ॥२९॥

एकेकाक्षौहिणीयुक्ताः प्रत्येकं भवता सह ।

आगमिष्यन्ति सेनान्यो दमनाद्या महाबलाः ॥३०॥

परस्य कटकं नैव यथा जानाति ते गतिम् ।

तथा गुप्तसमाचारः पाण्डिग्राहं समाचर ॥३१॥

अस्मिन्कार्ये सुमहतां प्रौढिमानं समुद्धन् ।

विषंगं त्वं हि लभसे जयसिद्धिमनुत्तमाम् ॥३२॥

इति मंत्रितमंत्रोऽयं दुर्मन्त्री भंडदानवः ।

विषंगं प्रेषयामास रक्षितं सैन्यपालकीः ॥३३॥

अथ श्रीललितादेव्याः पाण्डिग्राहकृतोद्यमे ।

युवराजानुजे दैत्ये सूर्योऽस्तगिरिमाययौ ॥३४॥

प्रथमे युद्धदिवसे व्यतीते लोकभीषणे ।

अंधकारः समभवत्स्य वाह्यं चिकीर्षया ॥३५॥

जम्बुकाक्ष—जंभन—तीक्ष्णभृंग—त्रिकण्टक—और चन्द्रगुप्त ये पन्द्रह श्रेष्ठ सेनानी हैं । २६। ये सब एक-एक अक्षौहिणी सेना से समन्वित होकर आपके साथ रहेंगे । महान बल वाले दमन प्रभृति भी सेनानी गण आयेंगे । २७। तुम्हारी गति को शत्रु की सेना जिस तरह से न जान पावे उसी भाँति परम गुप्त समाचरण वाला होकर पाण्डिग्राह का समाचरण करो । २८। इस कार्य में महान पुरुषों की प्रौढता का उद्धन करते हुए ही है विषंग ! परम उत्तम जय सिद्धि को प्राप्त करोगे । २९। दुर्मन्त्रणा वाले उस भंड ने इस तरह से ऐसी मन्त्रणा करते हुए सैन्य पालकों के द्वारा रक्षित करके विषंग को भेजा था । ३०। इसके अनन्तर श्री ललिता देवी के पाण्डिग्राह के उद्घोग

में युवराजानुज देत्य के होने पर सूर्य अस्ताचल पर चला गया था । ३४। लोक भीषण प्रथम युद्ध के दिवस में पाणिग्राह के करने की इच्छा से उसको अन्धकार हो गया था । ३५।

**महिषस्कंधधूम्राभं वनक्रोडवपुदयुति ।**

**नीलकण्ठनिभच्छायं निविडं पप्रथे तमः ॥३६॥**

**कुञ्जेषु पिङ्डिनमिव प्रधावदिव सन्धिषु ।**

**उज्जिज्जहानमिव क्षोणीविवरेभ्यः सहस्रशः ॥३७॥**

**निर्गच्छदिव शेलानां भूरि कन्दरमंदिरान् ।**

**क्वचिद्दीपप्रभा जाले कृतकातरचेष्टितम् ॥३८॥**

**दत्तावलंवनमिव स्त्रीणां कणोत्पलत्विषि ।**

**एकीभूतमिव प्रौढदिङ्गागमिव कुञ्जले ।**

**आबद्ध मैत्रकमिव स्फुरच्छाद्वलमंडले ॥३९॥**

**कृतप्रियाश्लेषमिव स्फुरयंतीष्वसियलिंगु ।**

**गुप्तप्रविष्टमिव च श्यामासु वनपंक्तिषु ॥४०॥**

**क्रमेण बहुलीभूतं प्रससार महत्तमः ।**

**त्रियामावामनयना नीलकंचुकरोचिषा ॥४१॥**

**तिमिरेणावृतं विश्वं न किञ्चित्प्रत्यपद्यत ।**

**असुराणां प्रदुष्टानां रात्रिरेव बलावहा ॥४२॥**

अब उस अन्धकार के स्वरूप का धर्णन किया जाता है जो उस समय में वहाँ छाया हुआ था—वह अन्धकार महिष के स्कन्ध के तुल्य धूम्र आभा वाला था । उसकी कान्ति वन क्रोड के बंपु सहश थी—नीलकण्ठ पक्षी के समान उसकी कान्ति थी—ऐसा बहुत ही घना अन्धकार छा गया था । ३६। वह तम कुञ्जों में गिण्डित सा हो रहा था तथा सन्धियों में दौड़ सीलगा रहा था वह अन्धकार सहस्रों भूमि के विवरों से बाहिर की ओर निकल सा रहा था । ३७। पर्वतों की कन्दराओं से मानों वह अन्धकार बाहिर निकलकर आ रहा था । कहीं पर वह दीपों की प्रभा के जाल में कातर चेष्टित कर रहा था । ३८। स्त्रियों के कानों के उत्पल की कान्ति में मानों उस तम ने

समाथम् ग्रहण किया था। प्रौढ़ दिङ्गनाग की धाँति कज्जल में वह अन्धकार एकीभूत-सा हो रहा था और स्फुरित जादूल के मंडल में मिश्रता सी आवद्ध कर रहा था। ३६। स्फुरण करती हुई असियश्चियों में प्रिया के आश्लेष सा वह तम कर रहा था। श्याम बनों की पंक्तियों में गुप्त रूप से वह प्रविष्ट-सा हो रहा था। वह अन्धेरी रात्रि सुन्दर नेत्रों वाली रमणी है जो अपनी नीली कंचुकी की कान्ति से समन्वित है। ऐसे अन्धकार से सम्पूर्ण विश्व समावृत हो गया था और कुछ भी सूझ नहीं रहा था। पूरे दुष्ट असुरों को तो रात्रि ही बल देने वाली हुआ करती है। ४१-४२।

तेषां मायाविलासोऽयं तस्यामेव हि वर्धते ।

अथ प्रचलितं सैन्यं विषंगेण महीजसा ॥४३॥

धौतखड्गलताच्छायावधिष्णु तिमिरच्छटम् ।

दमनाद्वाश्र्व सेनान्यः श्यामकंकटधारिणः ॥४४॥

श्यामोऽणीषधराः श्यामवर्णसर्वपरिच्छदाः ।

एकत्वमिव संप्राप्तास्तिमिरेणातिभूयसा ॥४५॥

विषंगमनुसंचेलुः कृताग्रजनमस्कृतिम् ।

कूटेन युद्धकृत्येन विजिगीषुर्महेश्वरीम् ॥४६॥

मेघडंवरकं नाम दधे वशसि कंकटम् ।

यथा तस्य निशायुद्धानुरूपो वेषसंग्रहः ॥४७॥

तथा कृतवती सेना श्यामलं कंचुकादिकम् ।

न च दुःदुभिनिस्वानो न च मर्दलगजितम् ॥४८॥

पणवानकभेरीणां न च घोषविजृभणम् ।

गुप्ताचाराः प्रचलितास्तिमिरेण समावृताः ॥४९॥

उन असुरों का यह माया का विलास उस अंधेरी रात्रि में ही बढ़ा करता है। इसके उपरान्त महान् ओज वाले विषंग के साथ सेना रवाना हुई थी। ४३। दमन प्रभृति सेनानीगण श्याम कङ्कट के धारण करने वाले हैं और अन्धकार की छठा धौत खड्ग की कान्ति को बढ़ाने वाला था। ४४। वे सब श्याम पगड़ी के धारण करने वाले थे और उनके समस्त परिच्छद भी

प्राप्त जैसे हो गये थे। ४५। अपने बड़े भाई को नमस्कार करने वाले विषंग के पीछे चल दिये थे। वह विषंग कूट युद्ध के द्वारा महेश्वरी के जीतने की इच्छा बाला था। ४६। उसने मेघडम्बर नाम वाले कंकूट को बक्षः स्थल पर धारण किया था। उसके वेष का संग्रह भी निशा के युद्ध के ही अनुरूप था। ४७। उसी भाँति से सेना ने भी श्याम वर्ण के कंचुक आदि धारण किये थे। उस समय में न तो किसी दुन्दुभि का घोष था और न कोई मर्दल की ही गर्जना थी। ४८। प्रणव-जानक और भेरियों की भी उस समय में घ्वनि नहीं हुई थी। वे सबके सब गुप्त समाचरण वाले आकार से समावृत होते हुए रवाना हुए थे। ४९। ॥४९॥ सुरमूल के विष्वासनी द्वारा देखा गया

परंरटश्यगतयो विष्वकोशीकृतरिष्ट्यः ।

पश्चिमाभिमुखं यांति ललितायाः पताकितीम् ॥५०॥

आवृतोत्तरमार्गेण पूर्वभागमशिश्रियन् ॥५१॥

निश्वासमपि सस्वानमकुर्वतः पदे पदे ॥५२॥

सावधानाः प्रचलिताः पार्षिणग्राहाय दानवाः ।

भूयः पुरस्य दिग्भागं गत्वा मन्दपराक्रमाः ॥५३॥

ललितासैन्यमेव स्वान्सूचयंत प्रपृच्छतः ।

आगत्य निभृतं पृष्ठे कवचच्छन्तविग्रहाः ॥५४॥

चक्रराजरथं तु गं मेरुमंदरसंनिभ्रम् ।

अपश्यन्नतिदीप्ताभिः शक्तिभिः परिवारितम् ॥५५॥

तत्र मुक्तातपत्रस्य वर्तमानामधः स्थले ।

सहस्रादित्यसंकाणां पश्चिमामुखीं स्थिताम् ॥५६॥

कामेश्वर्यादिनित्याभिः स्वसमानसमृद्धिभिः ।

नभलिपविनोदेन सेव्यमानां रथोत्तमे ॥५७॥

ये सब ऐसे वहाँ से चले थे कि दूसरों के द्वारा न देखे जावें। इन्होंने रिष्टियों को म्यानों से निकाल लिया था। ललिता को सेना के पश्चिम की ओर मुह करके ही थे गमन कर रहे थे। ५०। आवृत उत्तर मार्ग से इन्होंने पूर्व भाग का समाश्रय ग्रहण किया था। ये पद-पद पर अपने निश्वासों की इवनि को भी चलने में नहीं कर रहे थे। ५१। दानवगण बहुत

ही सावधान होकर पाण्डिग्राह के लिए चल दिये थे । फिर पुर के दिग्भाग में जाकर मन्द पराक्रम वाले हो गये थे । ५२। ललिता देवी की सेना भी अपने लोगों को सूचना दे रही थी । वे कवचों से ढके हुए शरीरों वाले पीछे की ओर चृपचाप आ गये थे । ५३। और उन्होंने ऊँचे तथा मेरु गिरि के समान चक्रराज रथ को देखा था जो अत्यधिक प्रदीप्त शक्तियों से परिवारित था । ५४। वहाँ पर मुक्ता निमित्त आतपत्र (छत्र) के नीचे वह देवी विराजमान थी । सहस्रों सूर्यों के सट्टण कान्ति वाली और पश्चिम की मुख किये हुए स्थित थीं । ५५। उस उत्तम रथ में अपने ही समान समृद्धि से संयुत कामेश्वरी आदि नित्याओं के साथ नर्म आलाप के विनोद से सेव्यमान हो रहीं थीं । ५६।

तां तथाभूतवृत्तांतामतादशरणोद्यमाम् ॥५७॥  
 पुरोगतं महत्सैन्यं वीक्षीमाणं सकौतुकम् ॥५७॥  
 मन्वानश्च हि तामेव विषंगः सुदुराश्रयः ।  
 पृष्ठवंशे रथेन्द्रस्य घट्टयामास संनिकैः ॥५८॥  
 तत्राणिमादिगत्तीनां परिवारवरुचिनी ।  
 महाकलकलं चक्ररणिमाद्याः परः शतम् ॥५९॥  
 पटिटशेद्रुदण्डश्चौव भिदिपालैभुशुणिडभिः ।  
 कठोरवज्ञनिधत्तिनिष्ठुरैः शक्तिमंडलैः ॥६०॥  
 मर्दयंतो महासत्त्वाः समरं बहुमेनिरे ।  
 आकस्मिकरणोत्साहविपर्याविष्टविग्रहम् ॥६१॥  
 अकांडक्षुभितं चासीद्रथस्थं शक्तिमंडलम् ।  
 विपाटैः पाटयामासुरहश्यैरंधकारिणः ॥६२॥  
 ततश्चकरथेन्द्रस्य नवमे पर्वणि स्थिताः ।  
 अहृश्यमानशस्त्राणामहृश्यनिजवर्णाम् ॥६३॥  
 तिमिरच्छन्नरूपाणां दानवानां शिलीमुखैः ।  
 इतस्ततो बहु किलाटं छन्नवर्मितमर्मवत् ॥६४॥

उस प्रकार से बत्तमान तथा अताहांशों की शरणागति के उद्यम वाली को देखा था । उसके सामने महान् सेना कौतुक पूर्वक देख रही थी । ५७। बुरे आशय वाले विष्णु ने उसी को मान लिया था कि यही वह देवी है । उस रथेन्द्र के पीछे की ओर में सेनिकों द्वारा घट्टन किया था । ५८। वही पर अणिमा आदि शक्तियों के परिवार की सेनाओं ने महान् कलकल किया था अणिमा आदिक सैकड़ों से भी अधिक थीं । ५९। पट्टिश—दुघण—भिन्दि-पाल—भुशुण्डी—कठोर वज्र के समान निर्धारा से निष्ठुर शक्तियों के मण्डलों से युद्ध हुआ था । ६०। महान् सत्त्व वाले असुर मर्दन करते हुए उस समर को बहुत मानने लगे थे । उस रथ में संस्थित शक्तियों का मण्डल अचानक रणोत्साह के विषय से आविष्ट विग्रहों वाला हो गया था और अनवसर में चोभयुत हुआ था । अन्धकारों ने अट्टश्य विपाटों से पाटित कर दिया था । ६१-६२। इसके अनन्तर वे नवम चक्र रथेन्द्र के पर्व पर संस्थित थे । अट्टश्यमान निजवर्मों वाले—अट्टश्य शस्त्रों वाले तथा अन्धकार से छन्न स्वरूपों वाले दानवों के बाणों से शक्तियों का मण्डल छन्नवर्मित की भाँति इधर-उधर बहुत कष्टित हुआ था । ६३-६४।

शक्तीनां मण्डलं तेनै कन्दनं ललितां प्रति ।

पूर्वानुकमतस्तत्र संप्राप्तं सुमहद्वयम् ॥६६॥

कणकर्णिकयाकर्ण्य ललिता कोपमादधे ।

एतस्मिन्ननंतरे मण्डश्चडुर्मन्त्रिपंडितः ॥६६॥

दशाऽक्षीहिणिकायुक्तं कुटिलाक्षं महीजसम् ।

ललितासंन्यनाशाय युद्धाय प्रजिघाय सः ॥६७॥

यथा पश्चात्कलकलं श्रुत्वाग्रे वर्तिनी चमूः ।

नागच्छति तथा चक्रे कुटिलाक्षो महारणम् ॥६८॥

एवं चोभयतो युद्धं पश्चादग्रे तथाऽभवत् ।

अत्यन्ततुमुलं चासीच्छक्तीनां सैनिके महत् ॥६९॥

नवतसत्त्वाश्च देत्येन्द्रास्तिमिरेण समावृताः ।

इतस्ततः शिथिलतां कंटके निन्युरुद्धताः ॥७०॥

और उसने ललिता देवी के पास कन्दन किया था । वही पर पूर्व अनुक्रम से महान् भय प्राप्त हो गया था । ६५। कानों-कानों से ललिता देवी

ने सुना तो बड़ा ही अधिक कौप किया था। इसी बीच में दुष्ट मन्त्रियों से मन्त्रणा करके चण्ड भण्ड ने दश अक्षौहिणी से मंयुत—महसू ओज वाले कुटिलाक्ष को ललिता की सेना के विनाश करने के लिये भेजा था ।६६-६७। जिस रीति से पीछे की ओर कल-कल छवनि को सुनकर आगे आगे वाली सेना न आ सके इसी प्रकार से कुटिलाक्ष ने महान् संग्राम शुकिया था ।६८। इसी तरह से पीछे और आगे दोनों ओर वह युद्ध हुआ था और वह युद्ध शक्तियों के संन्याम में महान् तुमुल हुआ था ।६९। रात्रि में सत्त्व वाले दैत्येन्द्र थे जो तिमित में सपावृत थे और उद्धतों ने कण्टक में शिखिलता को आस कर दिया था ।७०।

**विष्णगेण दुराशेन धमनाद्यैश्च मूर्वरैः ॥**

**च मूर्भिश्च प्रणहिता न्यपतञ्जलिकोट्यः ॥७१॥**

**ताभिदैत्यास्त्रमालाभिश्चक्रराजरथो वृतः ।**

**बकावलीनिबिडतः शैलराज इवावभौ ॥७२॥**

**आकांतपर्वणाधस्ताद्विष्णगेण दुरात्मना ।**

**मुक्त एकः शरो देव्यास्तालवृत्तमचूर्णयत् ॥७३॥**

**अथ तेनाव्याहितेन संभ्रान्ते शक्तिमण्डले ।**

**कामेश्वरीमुखा नित्या महातं कोश्माययुः ॥७४॥**

**ईषद्भृकुटिसंसवतं श्रीदेव्या वदनांवुजम् ।**

**अवलोक्य भृशोद्विग्ना नित्या दधुरतिश्रमम् ॥७५॥**

**नित्या कालस्वरूपिण्यः प्रत्येकं तिथिविग्रहाः ।**

**क्रोधमुद्गीष्य सम्राज्या युद्धाय दधुरुद्यमम् ॥७६॥**

**प्रणिपत्य च तां देवीं महाराजीं महोदयाम् ।**

**ऊचुवर्चिमकांडोत्थां युद्धकौतुकगदगदाम् ॥७७॥**

वुरे आशय वाले विष्णग ने धमनादि श्रेष्ठ सेनापतियों के और सेनाओं के द्वारा प्रणहित शत्रु की कोटियाँ निपतित कर दी थीं ।७१। उन दैत्यों के अस्त्रों की मालाओं से वह चक्रराज रथ ढक गया था और वह बङ्गों की पंक्तियों से ढके हुए शैल राज की ही भौति जोभित हो गया था ।७२। आकांत पर्व के नीचे दुरात्मा विष्णग के द्वारा छोड़े हुए एक बाण ने देवी के

शक्तियों का मण्डल हो गया तो ऐसा होने पर कामेश्वरी प्रमुख जो नित्याएँ थीं उनको बड़ा भारी क्रोध हो गया था । ७४। थोड़ा-सा भृकुटियों से संसक्त श्री देवी के मुख कमल को देखकर नित्याओं को बहुत ही उद्देश हो गया था और उन्होंने अत्यधिक श्रम किया था । ७५। नित्याएँ काल के ही स्वरूप वाली थीं और प्रत्येक तिथि के विश्रह वाली थीं । उन्होंने साम्राज्ञी के क्रोध को देखकर युद्ध करने का विशेष उद्दय किया था । ७६। उनने महान् उद्यम से समन्विता उस महाराजी को प्रणिपात करके उस समय अनवसर में उत्थित और युद्ध के कौतुक से गदगद वाणी कही थी । ७७।

### तिथिनित्या ऊचुः—

देवदेवी महाराजी तवाग्रे प्रेक्षितां च मूरम् ।  
 दंडिनीमन्त्रनाथादिमहाशवतचभिपालिताम् ॥७८  
 धषितुं कातरा दुष्टा मायाच्छदमपरायणाः ।  
 पाण्डिण्याहेण युद्धेन वाधन्ते रथपुञ्जवम् ॥७९  
 तस्मात्तिमिरसंछन्नमूर्तीनां विबुधद्वहाम् ।  
 जमयामो वयं दर्पं क्षणमात्रं विलोक्य ॥८०  
 या वह्निवासिनी नित्या या ज्वालामालिनी परा ।  
 ताभ्यां प्रदीपिते युद्धे द्रष्टुं शक्ताः सुरद्विषः ॥८१  
 प्रशमय्य महादर्पं पाण्डिण्याहप्रवर्तिनाम् ।  
 सहस्रवागमिष्यामः सेवितुं श्रीपदांबुजम् ।  
 आज्ञां देहि महाराजि मर्दनार्थं दुरात्मनाम् ॥८२  
 इत्युक्ते सति नित्याभिस्तथास्त्वति जगाद सा ।  
 अथ कामेश्वरी नित्या प्रणम्य ललितेश्वरीम् ।  
 तया संप्रेषिता ताभिः कुण्डलीकृतकामुंका ॥८३  
 सा हन्तुं तान्दुराचारान्कूटयुद्धकृतक्षणान् ।  
 बालारुणमिव क्रोधारुणं वक्त्रं वितन्वती ॥८४

तिथि नित्याओं ने कहा था—हे देवदेवी ! आप तो महाराजी हैं । आपके आगे प्रेक्षित सेना है जो दण्डिनी और मन्त्रनाथा आदि महान्

शक्तियों से अभिपालित हैं । ७८। ये माया के कपट में परायण दुष्ट और कातर दैत्यगण पाणिग्राह युद्ध के द्वारा इस श्रेष्ठ रथ को ध्याति करने के लिए वाधा पहुँचा रहे हैं । ७९। इस कारण से अन्धकार से संचलन कलेवरों वाले असुरों के घमण्ड को हम एक ही अण में शमन करती हैं—आप देखिये । ८०। जो बहिनवासिनी देवी है और दूसरी जो ज्वालामालिनी है, उन दोनों के द्वारा प्रदीपित युद्ध में ये असुर देखे जा सकते हैं । ८१। पाणिग्राह में अथवा पीछे से घेरा डालकर युद्ध करने में प्रवृत्त हुए दैत्यों के महान् दर्प को प्रशान्त कर हम लोग तुरन्त ही आपके श्री चरण कमलों की सेवा करने के लिए वापिस आ जायेंगी । हे महाराजि ! आप हमको आज्ञा दीजिए कि हम उन दुष्टात्माओं का मदन कर डालें । ८२। नित्याओं के द्वारा इस प्रकार से कहने पर उस महादेवी ने कहा था—ऐसा ही करो । इसके पश्चात् नित्या कामेश्वरी ने ललितेश्वरी को प्रणाम किया था और उसके द्वारा भेजी हुई शक्तियों ने धनुष को खोंचकर कुण्डलीकृत बना दिया था । ८३। उसने बाल सूर्य के समान क्रोध से लाल अपने मुख करके क्रूर युद्ध करने वाले उन दुष्टात्माओं का हनन करने के लिए धावा बोल दिया था और उनसे कहा था । ८४।

रे रे तिष्ठत पापिष्ठा मायानिष्ठाशिष्ठनद्वि वः ।

अन्धकारमनुप्राप्य कूटयुद्धपरायणाः ॥८५

इति तान्धर्त्सर्यंती सा तूणीरोत्खातसायकात् ।

पर्वविरोहण चक्रे क्रोधेन प्रस्खलद्वगतिः ॥८६

सज्जकामुकहस्ताश्च भगमालापुरः सराः ।

अन्याश्च चलिता नित्याः कृतपर्वविरोहणाः ॥८७

ज्वालामालिनि नित्या च या नित्या बहिनवासिनी ।

सज्जे युद्धे स्वतेजोभिः समदीपयतां रणे ॥८८

अथ ते दुष्टदनुजाः प्रदीप्ते युद्धमण्डले ।

प्रकाशवपुषस्तत्र महांतं क्रोधमाययुः ॥८९

कामेश्वर्यादिका नित्यास्ताः पञ्चदश सायुधाः ।

सर्सिहनादास्तान्दैत्यानमूदनन्नेव हेलया ॥९०

महाकलकलस्तत्र समभूदयुद्धसीमनि ।

मन्दरक्षोभितां भोधिवेलत्कल्लोलमण्डलः ॥६१॥

हे पापियो ! ठहरो, माया में संस्थित तुमको मैं कभी छिन्न-भिन्न करे देती तुम लोग अन्धकार को प्राप्त करके इस क्रूर युद्ध में तत्पर हो रहे हो । ६५। इस रीति से उनको फटकारती हुई उससे अपने तूणीर से उत्खात सापक से पवरिवरोहण किया था और क्रोधावेश से उसकी गति प्रस्तुलित हो रही थी । ६६। वे कामुकों को हाथों में सजाये हुई थीं और उनके आगे भगमालायें थीं और अन्य नित्याएँ पर्वारोहण करके चल दी थीं । ६७। ज्वाला मालिनी नित्या और वह्निवासिनी नित्या ये दोनों ही युद्ध में सजिज्ञत हुईं थीं और इन्होंने अपने तेजों से रण में प्रदीपन कर दिया था । ६८। इसके अनन्तर युद्ध मण्डल के प्रदीप होने पर वे दुष्ट दनुज प्रकाशित कलेवरों वाले हो गये थे और उनको बड़ा क्रोध हो गया था । ६९। कामेश्वरी प्रभृति नित्याएँ आयुधों से सयुत पन्द्रह थीं । वे मिहनादों से ही उन दैत्यों का मदन सा ही कर रही थीं । इस समय में यहाँ युद्ध में महान् कल-कल हो गया था । वह कलकल ऐसा ही था मानों मन्दराचल से झोभित सागर के बिलोड़न से तरंगों के मण्डन का हो रहा हो । ६०-६१।

ताष्च नित्यावलत्कवाणकं कणीयुधि पाणिभिः ।

आकृष्य प्राणकोदंडास्तेनिरे युद्धमुद्धतम् ॥६२॥

यामत्रितयपर्यन्तमेवं युद्धमवर्त्तत ।

नित्यानां निशितैर्बाणेरक्षौहिण्यश्च संहृता ॥६३॥

जघान दमनं दुष्टं कामेशी प्रथमं शरैः ।

दीर्घजिट्वं चमूनाथं भगमाला व्यदारत् ॥६४॥

नित्यविलन्ना च भेषण्डा हुम्बेकं हुलुमल्लकम् ।

ककलसं वह्निवासा च निजघान शरैः शतैः ॥६५॥

महावज्रेश्वरी बाणेरभिनत्केकिवाहनम् ।

पुकलसं शिवदूती च प्राहिणोद्यमसादनम् ॥६६॥

पुण्ड्रकेतुं भुजोद्दं त्वरिता समदारयत् ।

कुलसुन्दरिका नित्या चंडबाहुं च कुकुरम् ॥६७॥

अथ नीलपताका च विजया च जयोद्धते ।

जम्बुकाक्षं जृभणं च व्यतन्वातां रणे बलिम् ।

सर्वमंगलिका नित्या तीक्ष्णशृङ्गमखंडयत् ।

ज्वालामालिनिका नित्या जघानोग्रं त्रिकर्णकम् ॥६८

उन नित्याओं ने बड़ा ही उद्धत युद्ध किया था । उन्होंने प्राण को दंड को आकर्षित किया था । प्रहार करने के समय में नित्याओं के करों के बलयों और कङ्कङ्कों का व्यवणन हो रहा था । ६२। तीन प्रहर तक ऐसा घोर युद्ध हुआ था । नित्याओं के तीक्ष्ण बाणों से अक्षौहिणियों का संहार हो गया था । ६३। सर्व प्रथम कामेशी ने शरों से दुष्ट दमन को निहत किया था भगमाला ने मेनापति दीघं जिह्वा को मार डाला था । ६४। नित्य क्लिन्ना और भेरण्डा ने हुम्बेक और हुल्लुमल्लक को वह्निवासा ने बलस को तीक्ष्ण शरों से निहत कर दिया था । ६५। महा वज्रेश्वरी ने बाणों से केकि बाहन को मार डाला था और शिव दूती ने पुलकस को यमपुर भेज दिया था । ६६। त्वश्चिता ने पुण्ड्रकेतु को पैने बाणों से मार डाला था । कुल सुन्दरिका नित्या ने चंड बाहु और कुक्कुर को मार दिया था । ६७। इसके अनन्तर नील पताका और विजया दोनों ही जय करने में उद्धत थीं इन्होंने जम्बुकाक्ष और जृभण को मार दिया था । सर्वमङ्गलिका नित्या ने तीक्ष्ण भृङ्ग का हनन किया था । ज्वाला मालिनिका नित्या ने उग्र त्रिकर्णक का हनन कर दिया था । ६८।

चन्द्रगुप्तं च दुःशीलं चित्रं चित्रा व्यदारत् ।

सेनानाथेषु सर्वेषु निहतेषु दुरात्मसु ॥६६

विषंगः परमः क्रुद्धश्चचाल पुरतो बली ।

अथ यामाव शेषायां यामिन्यां घटिकाद्वयम् ॥१००

नित्याभिः सद् संग्रामं विधाय स दुराशयः ।

अशवयत्वं समुद्दिश्य चक्राम प्रपलायितुम् ॥१०१

कामेश्वरीकराकृष्टचापोत्थैनिशितः शरैः ।

भिन्नवर्मा हृष्टरं विषंगो विह्वलाशयः ।

हलावशिष्टे गर्वेष्वर्त गार्भमेव मत्तागित ।

ताभिर्नि निहतो दुष्टो यस्माद्वयः स दानवः ।

दण्डनाथाशरेणैव कालदण्डसमत्विषा ॥ १०३

तस्मिन्पलायिते दुष्टे विषंगे भंडसोदरे ।

स विभाता च रजनी प्रसन्नाश्चाभवन्दिषः ॥ १०४

पलायितं रणे वीरमनुसर्त्तु मनौचिती ।

इति ताः समरान्नित्यास्तस्मिन्काले व्यरंसिषुः ॥ १०५

चित्रा ने चन्द्रगुप्त को और दुश्शील चित्र का विमर्दन किया था ।

सभी दुरात्मा सेनापतियों के निहत हो जाने पर विषज्ञ युद्ध के लिये चल दिया था । १०६। विषम बड़ा बलबान् था और बहुत क्रुद्ध होकर आगे गया था । इसके बाद रात्रि में एक प्रहर शेष रह गया था जो केवल दो घड़ी का समय था । १००। उस दुष्ट आशय वाले ने नित्याओं के साथ संग्राम किया था किन्तु जब उसने यह देखा था जीत नहीं हो सकती है तो उसने वहाँ से भाग जाने की ही इच्छा की थी । १०१। कामेश्वरी के हाथों से खींचे हुए धनुष से निकले हुए पैने बाणों से विषज्ञ का कवच छिन्न हो गया था और वह बहुत अधिक विह्वल हो गया था । वहाँ पर जो भी मरने से बचे थे उन सभी सेनिकों के ही साथ में भाग खड़ा हुआ था । १०२। उन्होंने उस दुष्ट का वध नहीं किया था क्योंकि वह दानव तो कालदण्ड की कान्ति वाले दण्डनाथा के ही शर से मारे जाने योग्य था । १०३। भण्ड के सहोदर उस दुष्ट विषंग के भाग जाने पर वह रात्रि विभात हो गयी थी और सब दिशाएँ प्रसन्न हो गयी थीं । १०४। रण में भागे हुए के पीछे गमन करना उचित नहीं था अतएव वे नित्याएँ उस संग्राम से उस समय विरत हो गयी थीं । १०५।

दंत्यशस्त्रब्रणस्यंदिशोणितप्लुतविग्रहाः ।

नित्याः श्रीललितां देवीं प्रणिपेतुर्जयोद्धताः ॥ १०६

इत्थं रात्रौ महद्युद्धं तत्र जातं भयकरम् ।

नित्यानां रूपजालं च शस्त्रक्षतमलोकयत् ॥ १०७

श्रुत्वोदन्तं महाराजी कृपापागेन सैक्षात् ।

तदालोकनमात्रेण व्रणो निर्व्वणतामगात् ॥ १०८

नित्यानां विक्रमैश्चापि ललिता प्रीतिमासदत् ॥ १०९

देत्यों के जस्त्रों से वरणों से निकलते हुए रुधिर से उन नित्याओं का कलेवर रक्त से समाप्तुत था और उसी दणा में वे जयोद्धत होती हुईं श्री ललिता देवी को आकर प्रणाम करने लगी थीं । १०६। इस प्रकार से वहाँ पर रात्रि में भयकर महान् युद्ध हुआ था । श्री ललिता देवी ने नित्याओं के उस स्वरूप को जो जस्त्रों से विक्षत था, देखा था । सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनकर महाराजी ने कृपा हृषि से उनको देखा था । उनके देखने मात्र से ही समस्त वरण भरकर ठीक हो गये थे । १०७-१०८। नित्याओं के उस विक्रम से भी ललिता देवी को बड़ी प्रसन्नता हुई थी । १०९।

### भण्डपुत्र वध वर्णन

दशाक्षोहिणिकायुक्तः कुटिलाक्षोऽपि वीर्यवान् ॥

दण्डनाथाशरैस्तीक्ष्णं रणे भग्नः पलायितः ।  
दशाक्षोहिणिकं सैन्यं तथा रात्रौ विनाशितम् ॥१॥

इमं वृत्तांतमाकर्ण्य भण्डः क्षोभमथाययो ।

रात्रौ कपटसंग्रामं दुष्टानां निर्जरद्रुहाम् ।

मंत्रिणी दण्डनाथा च श्रुत्वा निर्वेदमापतुः ॥२॥

अहो वत महत्कष्टं दैत्यदेव्याः समागतम् ।

उत्तानबुद्धिभिद्वं रमस्माभिश्रलितं पुरः ॥३॥

महाचक्ररथेन्द्रस्य न जातं रक्षणं बलैः ।

एतं त्ववसरं प्राप्य रात्रौ दुष्टैः पराकृतम् ॥४॥

को वृत्तांतोऽभवत्तत्र स्वामिन्या किं रणः कृतः ।

अन्या वा शक्तयस्तत्र चक्रुर्युद्धं महासुरं ॥५॥

विम्रष्टव्यमिदं कार्यं प्रवृत्तिस्तत्र कीटणी ।

महादेव्याश्च हृदये कः प्रसंगः प्रवर्तते ॥६॥

इति शंकाकुलास्तत्र दण्डनाथापुरोगमाः ।

मंत्रिणीं पुरतः कृत्वा प्रचेलुलंलितां प्रति ॥७॥

अथ प्रथम युद्ध दिवसः—दश अक्षोहिणियों से युक्त वीर्यशासी भी दण्डनाथा के तीक्ष्ण शरों से रण में भग्न होकर भाग गया था । उस देवी ने दश अक्षोहिणी सोना नष्ट कर दी थी । १। भण्डासुर इस वृत्तान्त को सुन-कर बड़ा भुव्य हो गया था । रात्रि में कपटयुक्त संग्राम जो दृष्ट असुरों ने किया था, इसको सुनकर मन्त्रिणी और दण्डनाथा दोनों को बड़ा निर्वेद हुआ था । २। दंत्यों के द्वारा देवी का समागमन का होना बहुत ही कष्ट का विषय है । उत्तान बुद्धि वाली हम आगे दूर चल दी थीं । ३। महाचक्र रथेन्द्र की रक्षा सौनिकों द्वारा नहीं हुई है । रात्रि में इसी अवसर को पाकर दृष्टों ने पराकरण किया था । ४। वहाँ पर क्या वृत्तान्त हुआ था ? क्या स्वामिनी ने युद्ध किया था ? अथवा अन्य शक्तियों ने असुरों के साथ युद्ध किया ? । ५। यह कायं विभ्रष्ट हो गया—वहाँ पर कैसी प्रवृत्ति है और महादेवी के हृदय में कौन सा प्रसंग प्रवृत्त हो रहा है । ६। इस रीति से उन शक्तियों ने जिनमें दण्डनाथा अग्रणी थी शंका से बेचैन होकर मन्त्रिणी को अपना अगुआ बनाकर ललिता के समीप में गमन किया था । ७।

शक्तिचक्रचमूनाथाः सर्वस्ताः पूजिता द्रुतम् ।

व्यतीतायां विभावर्यां रथेन्द्रं पर्यवारयन् ॥८॥

अवरुद्ध्य स्वयानाभ्यां मन्त्रिणोदण्डनायिके ।

अधस्तात्सैन्यमावेश्य तदारुहतू रथम् ॥९॥

क्रमेण नव पर्वणि व्यतीत्य त्वरितक्रमैः ।

तत्तत्सर्वंगतौ शक्तिचक्रैः सम्यद् निवेदितैः ॥१०॥

अभजेतां महाराजीं मंत्रिणीदण्डनायिके ।

ते व्यजिज्ञपतां देव्या अष्टांगस्पृष्ठभूतले ॥११॥

महाप्रमादः समभूदिति नः श्रुतमंविके ।

कूटयुद्धप्रकारेण दैत्येरपकृतं खलौः ॥१२॥

स दुरात्मा दुराचारः प्रकाशसमरात्मसन् ।

कुहकव्यवहारेण जयसिद्धि तु कांक्षति ॥१३॥

दैवान्नः स्वामिनीगात्रे दुष्टानाममरद्रुहाम् ।

शरादिकपरामर्शो न जातस्तेन जीवति ॥१४॥

शक्तिचक्र की सेना को सब स्वामिनी शीघ्र ही पूजित हुईं और विभावरी रात्रि के व्यतीत होने पर उन्होंने रथेन्द्र को चारों ओर से परिवारित कर लिया था । ८। मन्त्रिणी और दण्ड नायिका दोनों अपने यानों से नीचे उतरी थीं और नीचे को ओर सेना को आवेशित करके तब रथ पर समारूढ़ हुई थीं । ९। क्रम से नीचे को व्यतीत करके शीघ्र क्रमों वे चली थीं । उन-उनके सर्वंगत शक्ति चक्र जो सम्यक् रीति से निवेदित थे वे युक्त थीं । १०। मन्त्रिणी और दण्ड नायिका दोनों ने महाराजी का सेवन किया था । उन्होंने देवी के आगे भूमि में साष्टाङ्ग प्रणाम किया था और निवेदित किया था । ११। हे अम्बिके ! महान् प्रमाद हो गया है ऐसा हमने श्रवण किया है । उन खल देवत्यों ने कूट युद्ध के प्रकार से आपका अपकार किया है । १२। वह दुष्ट बुरे आचार वाला प्रकाश में युद्ध से डरकर कुहक व्यवहार से जय की सिद्धि चाहता है । १३। यह तो देव की गति है कि उन सुरों के द्वाहो दुष्टों का हमारी स्वामिनी के शरीर में फार आदि का स्पर्श नहीं हुआ और उसी से जीवित विवरान हैं । १४।

**एकावलंबनं कृत्वा महाराजि भवत्पदम् ।**

**वयं सर्वा हि जीवामः साधयामः समीहितम् ॥ १५ ॥**

**अतोऽस्माभिः प्रकर्तीयं श्रीमत्यंगस्य रक्षणम् ।**

**मायाविनश्च देत्येन्द्रास्तत्र मन्त्रो विधीयताम् ॥ १६ ॥**

**आपत्कालेषु जेतव्या भंडाच्या दानवाधमाः ।**

**कूटयुद्धं न कुर्वन्ति न विशंति चमूमिमाम् ॥ १७ ॥**

**प्रथमयुद्धदिवसः—**

**तथा महेद्रशेलस्य कार्यं दक्षिणदेशतः ।**

**शिविरं बहुविस्तारं योजनानां शतावधि ॥ १८ ॥**

**वह्निप्राकारवलयं रक्षणार्थं विधीयताम् ।**

**अस्मल्लेनानिवेशस्य द्विषां दर्षणमाय च ॥ १९ ॥**

**शतयोजनमात्रस्तु मध्यदेशः प्रकल्प्यताम् ।**

**वह्निप्राकारचक्रस्य द्वारं दक्षिणतो भवेत् ॥ २० ॥**

**यतो दक्षिणदेशस्थं शून्यकं विद्विषां पुरम् ।**

**द्वारे च ब्रह्मवत् कलायाः परिवारा उदायुधः ॥ २१ ॥**

हे महाराज ! हम तो सब एक मात्र आपका ही चरण का अब लम्बन ग्रहण करके जीवित हैं और आपके समीहित का साधन करती हैं । १५। इसलिए हमको श्रीमती के अङ्ग की रक्षा करनी चाहिए । १६। भंड आदि महान अधम दानव आपत्ति के समय में हो जीतने के योग्य हैं । ये कूट युद्ध नहीं करते हैं और इस सेना में भी प्रवेश नहीं करते हैं । १७। उसी पर्माति से महेन्द्र पर्वत के दक्षिण भाग में एक बहुत विस्तार वाला जिसकी सीमा सौ योजन की होते शिविर बनाना चाहिए । १८। उसकी रक्षा के लिए चारों ओर अग्नि का प्राकार बनाना चाहिए । उसमें हमारी सेना का निवेश होगा और यह द्वे विषयों के दर्प का शमन करने के लिए भी होगा । १९। सौ योजन मात्र इसका मध्य भाग प्रकल्पित किया जावे । बहिन प्राकार चक्र का द्वार दक्षिण को ओर होना चाहिए । २०। विद्वेषियों के पुर की स्थिति दक्षिण भाग में है जिसका नाम शून्यक है । उसके द्वार पर आयुध लिए हुए बहुत से परिवार कल्पित रहने चाहिए । २१।

**निर्गच्छतां प्रविशतां जनानामुपरोधकाः ।**

**अनालस्या अनिद्राश्च विधेयाः सततोद्यताः ॥२२**

**एवं च सति दुष्टानां कूट्युद्धं चिकीषितम् ।**

**अवेलासु च संध्यासु मध्यरात्रिषु च द्विषाम् ।**

**अशक्यमेव भवति प्रौढमाक्रमणं हठात् ॥२३**

**नो चेददुराशया देत्या बहुमायापग्निहाः ।**

**पश्यतोहरवत्सर्वं विलुठंति महदबलम् ॥२४**

**मंत्रिण्या दंडनाथाया इति श्रुत्वा वचस्तदा ।**

**शुचिदन्तरुचा मुक्ता बहन्ती ललिताब्रवीत् ॥२५**

**भवतीनामयं मन्त्रश्चारुद्धया विचारितः ।**

**अयं कुशलधीमार्गो नीतिरेषा सनातना ॥२६**

**स्वचक्रस्य पुरो रक्षां विधाय दृष्टसाधनः ।**

**परचक्राक्रमः कार्यो जिगीषद्विर्महाजनैः ॥२७**

**इत्युक्त्वा मन्त्रिणीदंडनाथे सा ललितेश्वरी ।**

**ज्वालामालिनिकां नित्यामाहूयेदमुवाच ह ॥२८**

जनों के उपरोक्त निर्गमन करें और प्रवेश करे। ये सब बिना आलस्य वाले अनिद्रा और निरन्तर उद्यत रखने चाहिए । २२। ऐसा होने पर दुष्टों का अभीष्ट कूट युद्ध नहीं होगा। और शत्रूओं का असमयों में—सन्ध्याओं में और मध्य रात्रियों में हठ से प्रोढ़ आक्रमण नहीं हो सकने के योग्य होता है । २३। यदि ऐसा नहीं किया जावे तो ये दैत्य बहुत बुरे अभिप्राय वाले तथा बहुत-सी माया के परिग्रह वाले हैं और ये स्वर्णकार के ही समान महान बल का विलुप्तन कर लिया करते हैं । २४। उस समय में मन्त्रिणी और दण्डनाथा के इस वचन का श्रवण करके शुद्ध दाँतों की कान्ति से मुक्ताओं का वहन करती हुई श्री ललिता देवी ने कहा— । २५। आप सबका यह मन्त्र बहुत ही सुन्दर बुद्धि से विचारा हुआ है। यह कुशल बुद्धि का मार्ग है और यह सनातन नोति है । २६। जीत की इच्छा वाले नहान जनों को चाहिए कि अपने चक्र के आगे रक्षा करके सुदृढ़ साधन वाला होवे, फिर दूसरे शत्रु के चक्र पर आक्रमण करना चाहिए । २७। उस ललितेश्वरी ने मन्त्रिणी और दण्डनाथा से कहा और ज्वाला मालिनिका को जो नित्या थी बुलाकर यह कहा था । २८।

वत्से त्वं वह्निरूपासि ज्वालामालामयाकृतिः ।

त्वया विधीयतां रक्षा बलस्यास्य महीयसः ॥ २६ ॥

शतयोजनविस्तारं परिवृत्य महीतलम् ।

त्रिशब्दोजनमुन्नद्वं ज्वालाकारत्वमाव्रज ॥ २० ॥

द्वारयोजनमात्रं तु मुक्त्वान्यत्र ज्वलत्तनुः ।

वह्निज्वालात्वमापन्ना संरक्ष सकलं बलम् ॥ २१ ॥

ज्वालामालिनिकां नित्यामित्युक्त्वा ललितेश्वरी ।

महेन्द्रोत्तरभूभागं चलितुं चक्र उद्यमम् ॥ २२ ॥

सा च नित्यानित्यमयी ज्वलज्ज्वालामयाकृतिः ।

चतुर्दशीतिथिमयी तथेति प्रणनाम ताम् ॥ २३ ॥

तथैव पूर्वनिर्दिष्टं महेन्द्रोत्तरभूतलम् ।

कुण्डलीकृत्य जज्वाल शालरूपेण सा पुनः ॥ २४ ॥

नभोवलयजंबालज्ज्वालामालामयाकृतिः ।

वभासे दंडनाथाया मंत्रिनाथचमूरपि ॥ २५ ॥

हे बत्से ! आप तो ज्वाला मालाओं से परिपूर्ण आकृति वाली वट्ठिन-रूपा हैं । इस महान् बन की रक्षा आपको ही करनी चाहिए । २६। इस महीतल को सौ योजन के विस्तार वाला परिवृत्त करो और तीस योजन ऊँचा बनाओ जो ज्वालाकार वाला हो । ३०। एक योजन मात्र ढार को छोड़कर अन्यत्र जाज्वल्यमान कलेवर वाला होवे । वट्ठिन की ज्वाला को प्राप्त होकर सम्पूर्ण सेना को रक्षा करो । ३१। उस ललितेश्वरी ने ज्वाला मालिनिका से इतना ही कहा था और फिर महेन्द्र गिरि के उत्तर की भूमि के भाग में चलने का उद्यम किया था । ३२। और फिर वह नित्यानित्यमयी थी तथा जलती हुई ज्वालाओं से पूर्ण आकृति वाली थी । वह चतुर्दशी तिथि मर्या थी । उसने ऐसा ही होगा—यह कहकर ललितादेवी को प्रणाम किया था । ३३। उसी भाँति से पूर्व में निर्दिष्ट महेन्द्र के उत्तर भूतल को कुण्डली कृत बनाकर उसने फिर शाल रूप से ज्वलित कर दिया था । ३४। दण्डनाथा और भन्त्रिणी की चमू भी ऐसी शोभित हुई थी मानो नभोवलय के जम्बाल से ज्वालाओं की माला से पूर्ण आकृति होवे । ३५।

अन्यासामपि शक्तीनां महतीनां महद्वलम् ।

विशंकटोदरं सालं प्रविवेश गतवलमा ॥ ३६ ॥

राजचक्ररथेन्द्रं तु मध्ये संस्थाप्य दंडिनी ।

वामपक्षे रथं स्वीयं दक्षिणे श्यामलारथम् ॥ ३७ ॥

पश्चाद्गारे सम्पदेशीं पुरस्ताच्च हयासनाम् ।

एवं संवेश्य परितश्चक्रराजरथस्य च ॥ ३८ ॥

द्वारे निवेशयामास विशत्यक्षीहिणीयुताम् ।

ज्वलदंडायुधोदग्रां स्तम्भिनीं नाम देवताम् ॥ ३९ ॥

या देवी दंडनाथाया विघ्नदेवीति विश्रुता ।

एवं सुरक्षितं कृत्वा शिविरं योत्रिणी तथा ।

पूषण्युदितभूयिष्ठे पुनर्युद्मुपाश्रयत् ॥ ४० ॥

कृत्वा किलकिलारावं ततः शक्तिमहाचमूः ।

अग्निप्राकारकद्वारान्तिर्जंगाम महारवा ॥ ४१ ॥

इत्थं सुरक्षितं श्रुत्वा ललिताणिविरोद्धरम् ।

भूयः सञ्ज्वरमापन्नः प्रचण्डो भंडदानवः ॥४२

अन्य शक्तियों का भी महान बल जो कि शक्तियाँ बहुत महान थीं गत कलम होकर विशंकदोदर शाल में प्रविष्ट हुआ था । ३६। दण्डनी ने राजचक्र रथेन्द्र को मध्य में स्थापित कर दिया था और उसकी बाँई और अपना रथ रखखा था तथा दाहिनी और श्यामला का रथ स्थापित किया था । ३७। पीछे के भाग में सम्पदेशी और आगे ह्यासना को नियुक्त किया था । इस रीति से सब ओर में चक्रराज रथ को संवेशित किया था । ३८। द्वार भाग में स्तन्मिभनो नाम वाली देवी को नियोजित किया था जो बीस अक्षोहिणो सेना से समन्वित थी और जलते हुए दण्डायुधों से बहुत ही उदय थी । ३९। जो दण्डनाथा की देवी विघ्न देवी—इस नाम से प्रसिद्ध थी उसने इस प्रकार से शिविर को सुरक्षित बना दिया था तथा योत्रिणी-पूषणी और उदित भूयिष्ठा ने फिर युद्ध का उपाश्रय लिया था । ४०। किलकिल की ध्वनि करके वह शक्ति की विशाल सेना अग्नि के प्राकार वाले द्वार बड़ा घोष करती हुई बाहिर निकली थी । ४१। ललिता देवी के शिविर के मध्यभाग को इस प्रकार से सुरक्षित हुआ श्रवण करके वह परम प्रचण्ड भंड दानव पुनः बड़े ही सन्ताप को प्राप्त हो गया था । ४२।

मन्त्रयित्वा पुनस्तत्र कुटिलाक्षपुरोगमैः ।

विषंगेण विशुक्रेणासममात्मसुतौरपि ॥४३

एकीघस्य प्रसारेण युद्धं कतुं महाबलः ।

चतुर्बाहुमुखान्पुत्रांश्चतुर्जलधिसन्निभान् ॥४४

चतुरान्युद्धकृत्येषु समाहृय स दानवः ।

प्रेषयामास युद्धाय भण्डश्चण्डकृधा ज्वलन् ॥४५

त्रिशत्संख्याश्च तत्पुत्रा महाकाया महाबलाः ।

तेषां नामानि वक्ष्यामि समाकर्णय कुम्भज ॥४६

चतुर्बाहुश्चकोराक्षस्तृतीयस्तु चतुःशिरा ।

वज्रघोषश्चोदर्शकेशो महाकायो महाहनुः ॥४७

मखशत्रुमंखस्कन्दी सिंहघोषः सिरालकः ।

ततुः प्रद्योन्यम् तु लितुर्मात्रः ॥४८

स्वर्गशत्रुः स्वर्गबलो दुर्गम्यः स्वर्गकण्टकः ।

अतिमाया बृहन्माय उपमावश्च वीर्यवान् ॥४६॥

फिर उसने वहाँ पर कुटिलाक्ष जिनमें प्रमुख था उन सबके साथ मन्त्रणा करके तथा विषज्ञ-विशुक और अपने पुत्रों के साथ भी मन्त्रणा की थी ।४३। उस महान बलवान ने एक ही साथ सामूहिक प्रसार से युद्ध करने के लिए निश्चय किया था और चार समुद्रों के तुल्य जो चतुर्बाहु प्रमुख चार पुत्र ये उनको नियुक्त किया था ।४४। उस दानव ने चारों को बुलाया था और युद्ध के क्रत्यों में नियुक्त किया था । भंडासुर बड़े ही प्रचण्ड क्रोध से जलता हुआ होकर उसने हमको युद्ध के लिए भेज दिया था ।४५। उसके पुत्र संस्था में तीस थे । इनके विशाल शरीर थे और इनमें महान बल विद्यमान था । हे कुम्भज ! उनके सबके नाम भी मैं बतलाऊँगा आप सुनिए ।४६। चतुर्बाहु-चकोराक्ष-चतुःशिरा—वज्रघोष-ऊर्ध्वकेश-महाकाय-महाहनु-मखशत्रु-मखस्कन्दी-सिंहघोष-शिरालक-लडुन-पटुसेन-पुराजित-पूर्वमारक-स्वर्ग-शत्रु-स्वर्गबल—दुर्गम्य-स्वर्ग-कण्टक-अतिमाय-बृहन्माय-उपमाय-वीर्यवान् ।४७-४८।

इत्येते दुर्मदाः पुत्रा भण्डदैत्यस्य दुर्द्धियः ।

पितुः सहशदोर्बीर्याः पितुः सहशविग्रहाः ॥५०

आगत्य भण्डचरणावश्यवंदत भक्तितः ।

तानुद्रीक्ष्य प्रसन्नाभ्यां लोचनाभ्यां स दानवः ।

सगौरवमिदं वाक्यं बभाषे कुलघातक ॥५१

भो भो मदीयास्तनया भवतां कः समो भुवि ।

भवतामेव सत्येन जितं विश्वं मया पुरा ॥५२

शक्रस्याग्नेयं मस्यापि निक्रृतेः पाशिनस्तथा ।

कचेषु कर्णं कोपात्कृतं युष्माभिराहवे ॥५३

अस्त्राण्यपि च शस्त्राणि जानीथ निखिलान्यपि ।

जाग्रत्स्वेव हि युष्मासु कुलभ्रंशोऽयमागतः ॥५४

मायाविनी दुर्लिलिता काचित्सत्री युद्धदुर्मदा ।

बहुभिः स्वसमानाभिः स्त्रीभिर्युक्ता हिनस्ति नः ॥५५

तदेनां समरेऽवश्यमात्मवश्यां विधास्यथ ।

जीवग्राहं च सा ग्राह्या भवदिभज्वलदायुधेः ॥५६

ये इतने भण्डासुर के दुष्ट बुद्धि वाले और दुर्मद पुत्र थे । ये सभी अपने पिता के ही समान तो बाहुबल वाले थे और पिता के तुल्य ही इनका कलेवर था ।५०। उन सबने भक्ति की भावना से भण्डासुर के चरणों में प्रणाम किया था । उस दानव ने प्रसन्न लोचनों से उनको देखा था और बड़े गौरव के साथ उनसे यह बाक्य बोला था और यह अपने समस्त कुल का धातक था ।५१। हे मेरे पुत्रो ! इस भूमण्डल में आपके समान कोई भी नहीं है । आप लोगों के ही बल-विक्रम से मैंने पहिले यह समस्त विश्व को जीत लिया था ।५२। तुम सबने युद्धस्थल में कोप से इन्द्र का—अग्नि का—यम का—निर्झृति का और पाणी के कवचों का कर्षण किया था ।५३। आप लोग सब अस्त्रों को भी जानते हैं । अब आप सबके जाग्रत रहते हुए भी यह हमारे कुल का भ्रंश आ गया है ।५४। कोई दुष्टा—मायाविनी और युद्ध करने में दुर्मदा है जो कि अपने ही सहृष्टि स्त्रियों से संयुत होकर हमको मार रही है ।५५। सो अब इसको युद्ध में अपने वज्र में अवश्य ही तुम कर लोगो । आप सब जलते हुए आयुधों को लेकर उसको जीवित ही पकड़ लेना ।५६।

अप्रमेयप्रकोपांधान्युष्मानेकां स्त्रियं प्रति ।

सम्प्रेषणमनौचित्यं तथायेष विधेः क्रमः ॥५७

इममेकं सहृद्धर्वं च शोयंकीतिविपर्यंयम् ।

इत्युक्त् वा भण्डदैत्येन्द्रस्तान्प्रहैषीद्रणं प्रति ।

द्विशतं चाक्षौहिणीनां तत्सहायतयाऽहिनोत् ॥५८

द्विशत्यक्षौहिणीसेना मुख्यस्य तिलकायिता ।

बद्धभ्रुकुटयः शस्त्रपाणयो निर्युग्महात् ॥५९

निर्गमे भण्डपुत्राणां भू प्रकम्पमलम्बत् ।

उत्पाता विविधा जाता वित्रस्तं चाभवज्जगत् ॥६०

तान्कुमारान्महासत्त्वांल्लाजवर्षेरवाकिरन् ।

वीथीषु यानैश्चलितान्पौरवृद्धपुरंधयः ॥६१

वंदिनो मागधाश्चैव कुमाराणां स्तुति व्यष्टुः ।

मंगलारातिकं चक्रुद्धरे द्वारे पुरांगनाः ॥६२

भिद्यमानेव वसुधा कुष्यमाणमिवांबरम् ।

आसीतेषां विनियर्णि घूर्णमान इवार्णवः ॥६३

आप सबका प्रकोप तो अप्रमेय है । आप सब ऐसे वीरों को केवल एक नारी की ओर भेजना उचित नहीं है तथापि यह विद्याता का ही ऐसा क्रम है ।५७। यह एक आपकी कीर्ति का बड़ा भारी विपर्यय है उसको आप लोग सहन कर लीजिए क्योंकि आपकी बहुत बड़ी शूरता है और एक साधारण नारी पर आक्रमण करना है । यह कह कर उस भण्डासुर ने उन सबको युद्ध में भेजा था । तथा उनकी सहायता के लिए दो सौ अक्षीहिणी सेनाएँ भी भेज दी थीं ।५८। वह दो सौ अक्षीहिणी सेना भी सबमें शिरो-मणि थी । वे सभी सैनिक क्रोध से अपनी भृकुटियों को ताने हुए थे और हाथों में हथियार लेकर वहाँ से निकले थे ।५९। जब भण्ड के पुत्रों ने निर्गमन किया था उस समय भूमण्डल कीप उठा था ।६०। उस पुर की प्रीढ़ स्त्रियों ने वीथियों में यानों के द्वारा चलते हुए महान उल्लान उन कुमारों के ऊपर लाजाओं की वर्षा की थी ।६१। बन्दीगण और मागधों ने उन कुमारों का स्तवन किया था और पुरकी अंगनाओं ने द्वारों पर उनकी मंगल कामना से आरती की थी ।६२। उस समय में यह भूमि विद्यमान सी हो रही थी और आकाश आकुष्यमाण-सा हो रहा था । उनके निकलने के समय सागर घूर्णमान सा हो गया था ।६३।

द्विश्त्यक्षीहिणीसेनां गृहीत्वा भण्डसूनवः ।

क्रोधोद्यद्भुकुटीकूरवदना निर्ययुः पुरान ॥६४

शक्तिसैन्यानि सर्वाणि भक्षयामः क्षणाद्रणे ।

तेषामायुधचक्राणि चूर्णयामः शितैः शरैः ॥६५

अग्निप्रकारावलयं शमयामश्च रंहसा ।

दुर्विदग्धां तां ललितां बन्दीकुर्मश्च सत्वरम् ॥६६

इत्यन्योन्यं प्रवलगन्तो वीरभाषणघोषणैः ।

आसेदुरग्निप्राकारसमीपं भण्डसूनवः ॥६७

यौवनेन मदेनान्धा भूयसा रुद्धृष्ट्यः ।

भ्रुकुटीकुटिलाश्चक्रुः सिहनादं महत्तरम् ॥६८॥

विदीर्णमिव तेनासीद्ब्रह्मांडं चंडिमस्पृशा ।

उत्पातवारिदोत्सृष्ट्योरनिष्ठतिरहसा ॥६९॥

एतस्याननुभूतस्य महाशब्दस्य डम्बरः ।

ओभयामास शक्तीनां श्रवांसि च मनांसि च ॥७०॥

दो सौ अक्षौहिणी सेना को साँड में लेकर उस भण्ड के पुत्र नगर से भ्रुकुटियाँ तानकर क्लूर मुखों वाले होते हुए ही निकल कर चल दिये थे ।६४।  
वे यही कहते हुए चल रहे थे कि हम समस्त शक्तियों की सेनाओं को खा जायेंगे और रणमें एक ही क्षण में अपने तीक्ष्ण बाणों से उनके सभी आयुधों का चूर्ण कर देंगे ।६५। उस अग्नि की चहार दीवारी के बलय को भी वेग से शान्त कर देंगे । उस दुविदग्धा ललिता की शीघ्र बन्दी बना डालेंगे ।६६।  
वे भण्डासुर के पुत्र परस्पर में वीर भाषणों के उद्घोषों से बातचीत करते हुए उस अग्नि के प्राकार के समीप में प्राप्त हो गये थे ।६७। यौवन से और बड़े बड़े हुए मद से अन्धे हो रहे थे और उनकी हाँड़ रुद्ध हो गयी थी ।  
उन्होंने अपनी भौहों को तिरछी करके बड़ा भारी सिंहनाद किया था ।६८।  
प्रचण्ड स्पर्श वाले उस सैन्य समुदाय से यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विदीर्ण-सा हो गया था । वह सैन्य समुदाय उत्पातजनक मेघों से उत्कृष्ट घोष का डम्बर ऐसा था कि उसने शक्तियों के कानों को और मनों को क्षुब्ध कर दिया था ।७०।

आगत्य ते कलकलं चक्रुः साध्म स्वसैनिकैः ।

विविधायुधसम्पातमूर्च्छ्वैमानिकच्छटम् ॥७१॥

चतुर्बाहुमुखान्भूत्वा भण्डदेत्यकुमारकान् ।

आगतान्युद्भृत्याय बाला कौतूहलं दधे ॥७२॥

कुमारी ललितादेव्यास्तस्या निकटवासिनी ।

समस्तशक्तिचक्राणां पूज्या विक्रमशालिनी ॥७३॥

ललितासहशकारा कुमारी कोपमादधे ।

या सदा उवर्तेन सर्वदिवागमसुरविः ॥

बालारुणतनुः श्रोणी शोणवर्ण वपुर्लंता । ॥७४  
 महाराजी पादपीठे नित्यमाहितसंनिधिः ॥७५  
 तस्या बहिश्चराः प्राणा या चतुर्थं विलोचनम् ।  
 तानागतान्नण्डसुतान्संहरिष्यामि सत्वरम् ॥७६  
 इति निश्चित्य बालांबा महाराज्ञयै व्यजिज्ञपत् । ॥७७  
 मातर्भंडमहादैत्यसूनवो योद्धुमागताः ॥७८

अनेक प्रकार के आयुधों के गिराने से विमानों की छटा को मूर्च्छित करते हुए उन्होंने वहाँ आकर अपने सैनिकों के साथ कलकल छवनि कर दी थी । ७१। चतुर्वाहि जिनमें प्रमुख था ऐसे उन भण्डासुर के कुमारों को आये हुए जानकर जो कि युद्ध के ही लिए समागत हुए थे वाला ने अपने मन में कौतूहल किया था । ७२। उस ललिता देवी के निकट में वास करने वाली कुमारी समस्त शक्तियों के चक्रों की पूज्य और विक्रम वाली थी । ७३। कुमारी ललिता के ही तुल्य आकार वाली थी । उसने कोप किया था जो सदा नृतन वर्षा के ही समान समस्त विद्याओं की बड़ी खान थी । ७४। उसकी श्रोणी बालसूर्य के तुल्य लाल वर्ण की थी तथा उसका शरीर भी श्रोण (रक्त) था । वह महाराजी के पाद पीठ पर ही नित्य सन्निधान करने वाली थी । ७५। उसके बाहिर संचरण करने वाले प्राण जो चौथा नेत्र ही था । उसने कहा था उन समागत भंड के पुत्रों को मैं शीघ्र मार डालूँगी । ७६। उस बालाम्बा ने यह निश्चय करके महाराजी से कहा था—हे माता ! भंडासुर के पुत्र युद्ध करने को आ गये हैं । ७७।

तैः समं योद्धुमिच्छामि कुमारित्वात्सकौतुका ।

स्फुरन्ता विव मे बाहू युद्धकण्ठ्ययानया ॥७८

क्रीडा ममैषा हन्तव्या न भवत्या निवारणे ।

अहं हि बालिका नित्यं क्रीडनेष्वनुरागिणी ॥७९

क्षणं रणक्रीडया च प्रीति यास्यामि चेतसा ।

इति विज्ञापिता देवी प्रत्युवाच महारिकाम् ॥८०

वत्से त्वमतिमृद्धंगी नववर्षा नवक्रमा ।

नवीनयुद्धशिक्षा च कुमारी त्वं ममैकिका ॥८१

त्वां विना क्षणमात्रं मे न निश्वासः प्रवर्तते ॥१६३॥  
 ममोच्छ्वसितमेवासि न त्वं याहि महाहवम् ॥१६४॥  
 दण्डनी मन्त्रिणी चैव शक्तयोऽन्याश्च कोटिशः ॥१६५॥  
 संत्येव समरे कतुं वत्से त्वं कि प्रमाद्यसि ॥१६६॥  
 इति श्रीललितादेव्या निरुद्धापि कुमारिका । ॥१६७॥  
 कीमारकौतुकाविष्टा पुनर्युद्धमयाचत ॥१६८॥

मैं कुमारी होने से बड़े कौतुक के साथ उनके साथ युद्ध करना चाहती हूँ । इस युद्ध करने की खुजली से मेरी बाहुएँ फड़क रही हैं ॥७८॥  
 आप मुझे इसके लिए निवारित न करें क्योंकि इस निषेध करने से तो मेरी यह क्रीड़ा का हनन ही हो जायगा । मैं तो छोटी बच्ची हूँ सर्वदा ही क्रीड़ाओं में मेरा अनुराग रहा करता है ॥७९॥ क्षणभर रण करने की क्रीड़ा से मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी और चित्त में आनन्द होगा । जब इस तरह से देवी से कहा गया था तो ललिता देवी ने उस कुमारिका से कहा था ॥८०॥  
 हे वत्स ! तुम तो बहुत ही कोमल अङ्ग वाली हो—नौ ही वर्ष की हो और नूतन क्रम वाली हो और तुमको नये युद्ध की ही शिक्षा मिली है ऐसी कुमारी तुम मेरी एक ही सैनिका हो ॥८१॥ तुम्हारे बिना मुझे एक क्षण भी निश्वास नहीं होता है । तुम तो मेरे श्वास ही हो अतः तुम इस महान संग्राम में मत जाओ ॥८२॥ दण्डनी और मन्त्रिणी ऐसी अन्य करोड़ों ही शक्तियाँ हैं, हे वत्स ! जो इस संग्राम में उपस्थित ही रहती हैं । तुम ऐसा प्रमाद क्यों कर रही हो ? ॥८३॥ इस रीति से ललिता देवी के द्वारा उस कुमारी को रोका भी गया था तो भी कुमारावस्था के कौतुक से समाविष्ट होकर पुनः युद्ध करने की प्रार्थना उसने की थी ॥८४॥

सुट्ठं निश्चयं दृष्ट्वा तस्याः श्रीललितांविका ।

अनुजां कृतवत्येव गाढमाश्लिष्य बाहुभिः ॥८५॥

स्वकीयकवचादेकमाच्छिद्य कवचं ददी ।

स्वायुधेभ्यश्वायुधानि वितीर्यं विसर्ज ताम् ॥८६॥

कर्णीरथं महाराजच्च चापदण्डात्समुद्धृतम् ॥८७॥

हंसयुग्मशतैर्युक्तमारुरोह कुमारिका ॥८८॥

तस्यां रणे प्रवृत्तायां सर्वपर्वस्थदेवताः । ॥६४॥  
 बद्धांजलिपुटा नेमुः प्रधृतासिपरम्पराः ॥६५॥  
 ताभिः प्रणम्यमाना सा चक्रराजरथोत्तमात् । ॥६६॥  
 अवरुह्य तले सैन्यं वर्तमानमगाहत् ॥६७॥  
 तामायांतीमथो दृष्ट्वा कुमारीं कोपपाटलाम् । ॥६८॥  
 मंत्रिणीदण्डनाथे च सभये वाचमूचतुः ॥६९॥  
 कि भर्तुंदारिके युद्धे व्यवसायः क्रुतस्त्वया । ॥७०॥  
 अकाण्डे कि महाराज्ञया प्रेषितासि रणं प्रति ॥७१॥

श्री ललिता अम्बा से उस कुमारी का परम दृढ़ निश्चय समझकर अपनी बाहुओं से खूब अच्छी तरह समालिङ्गन करके उसको युद्ध करने की आज्ञा दी थी । ॥७१॥ ललिता देवी ने अपने कवच से एक कवच निकाल कर उसको विद्या था और अपने आयुधों से आयुध देकर उसको विदा किया था । ॥७२॥ चाप और दंड से समुद्धृत महाराजी का कर्णी रथ था जो सैकड़ों हंसों से युक्त था उस पर कुमारिका ने समारोहण किया था । ॥७३॥ उसके रण में प्रवृत्त हो जाने पर सभी पवों पर स्थित देवता हाथों को जोड़े हुए असियों को प्रधृत करके प्रणाम करने लगे थे । ॥७४॥ उनके द्वारा प्रणाम किये जाने पर वह देवी चक्रराज रथोत्तम से नीचे उतर गयी और बहाँ पर जो सेना थी उसका अवगाहन किया था । ॥७५॥ इसके अनन्तर उस कुमारी को कोप से पाटन और आती हुई देखा तो मन्त्रिणी और दण्डनाथा ने भययुक्त होकर यह बचन कहे थे । ॥७६॥ हे भर्तुंदारिके ! क्या आपने युद्ध में व्यवसाय किया है ? महाराजी ने अकाण्ड में यह क्या रण की ओर आपको भेज दिया है ? ॥७७॥

तदेतदुचितं नैव वर्तमानेऽपि सैनिके । ॥७८॥  
 त्वं मूर्तं जीवितमसि श्रीदेव्या बालिके यतः ॥७९॥  
 निवर्त्तस्व रणोत्साहात्प्रणामस्ते विद्धीयते । ॥८०॥  
 इति ताभ्यां प्रार्थितापि प्राचलददृढनिश्चया ॥८१॥  
 अत्यन्तं विस्मयाविष्टे मंत्रिणीदण्डनाथिके । ॥८२॥  
 सहैव तस्या रक्षार्थं चेलतुः पार्श्वयोद्दियोः ॥८३॥

अथाग्निवरणद्वारा ताभ्यामनुगता सती । ॥६४  
 प्रभूतसेनायुक्ताभ्यां निर्जगम कुमारिका ॥६५  
 सनाथशक्तिसेनानां सर्वसामनुगृहणती । ॥६६  
 प्रणामांजलिजालानि कर्णीरथकृतासना ॥६७  
 भंडस्य तनयान्दुष्टानभ्यद्रवदर्दिमा । ॥६८  
 तस्याः प्रादेशिकं सैन्यं कुमार्या न हि विद्यते ॥६९  
 सर्वं हि ललितासैन्यं तत्सैन्यं समजायत । ॥७०  
 ततः प्रववृते युद्धमत्युद्धतपराक्रमम् ॥७१

हे बालिके ! क्योंकि आप तो श्री देवी के मूर्त्तिमान जीवने ही हैं अतएव यह उचित नहीं है जबकि सेनाएँ विद्यमान हैं ॥७२। आप तो इस समय इस रण करने के उत्साह को त्याग कर लौट जाइए । आपको हमारे प्रणाम किये जाते हैं । इस तरह से उन दोनों के द्वारा प्रार्थना भी की गयी थी तो भी हठ निश्चय वाली वहाँ चल दी थी ॥७३। मन्त्रिणी और दण्डनायिका दोनों अत्यधिक विस्मय से समाविष्ट हो गई थीं और उसके दोनों और उसी की रक्षा करने के लिए चल दी थीं ॥७४। इसके अनन्तर अग्नि के वरण के द्वारा उन दोनों से अनुगता होती हुई जो बहुत सेना से युक्त थीं कुमारिका वह वहाँ से निर्गत हुई थीं ॥७५। कर्णीरथ पर विराजमान स्वामी के सहित समस्त शक्तियों की सेनाओं पर अनुग्रह करती हुई वह रखाना हुई थी । उसको भार्ग में सभी प्रणामाङ्गलियाँ कर रहे थे ॥७६। शत्रुओं का दमन करने वाली ने भंडासुर के पुत्रों पर आक्रमण कर दिया था । उस कुमारी की प्रादेशिक सेना नहीं थी ॥७७। समस्त ललिता की ही सेना हो उसकी सेना हो गयी थी । इसके अनन्तर अतीव उद्धत पराक्रम से संयुत महान् युद्ध प्रवृत्त हो गया था ॥७८।

ववर्षं शरजालानि दैत्येन्द्रेषु कुमारिका । ॥७९  
 भण्डासुरकुमारस्तैर्महाराजो कुमारिका । ॥८०  
 यद्युद्धमत्नोत्तत्तु स्पृहणीयं सुरासुरे ॥८१  
 अत्यन्तविस्मिता दैत्यकुमारा नववर्षिणीम् । ॥८२  
 कर्णीरथस्त्रामालोक्य किरंतीं शरमंडलम् ॥८३

क्षणे क्षणे वालिकया क्रियमाणं महारणम् ।

व्यजिज्ञपन्महाराज्ञयै भ्रमत्यः परिचारिकाः ॥१०१

मंत्रिणीदण्डनाथे च न तां विजहतु रणे ।

प्रेक्षकत्वमनुप्राप्ते तूष्णीमेव बभूवतुः ॥१०२

सर्वेषां दैत्यपुत्राणामेकरूपा कुमारिका ।

प्रत्येकभिन्ना दृशे विवमालेव भास्वतः ॥१०३

सायकैरग्निचूडालैस्तेषां मर्मणि भिदती ।

रक्तोत्पलामिव क्रोधसंरक्तं विभ्रती मुखम् ॥१०४

आश्चर्यं ब्रुवतो व्योम्नि पश्यतां त्रिदिवीकसाम् ।

साधुवादैर्बहुविधैर्मन्त्रिणीदण्डनाथयोः ॥१०५

उस कुमारिका ने अपने बाणों के जालों की उन दैत्यन्द्रों पर वर्षा की थी । उन भंडासुर के पुत्रों के साथ उस महाराजी की कुमारिका का जो युद्ध उस समय में हुआ था वह सभी सुरों और असुरों के द्वारा स्पृहा करने के ही योग्य था । १०१। कर्णीरथ पर स्थित हुई बाणों के मण्डल की वर्षा करने वाली उस नौ वर्ष की कुमारिका को देखकर दंत्यराज के पुत्र अत्यन्त अधिक विस्मित हो गये थे । १००। प्रतिक्षण उस बालिका के द्वारा किये जाने वाले युद्ध का समाचार परिचारिकाएँ भ्रमण करती हुई महाराजी को बता रही थी । १०१। मन्त्रिणी और दण्डनाथाओं ने उस कुमारिका को कभी भी युद्ध में साथ नहीं छोड़ा था । ये दोनों प्रेक्षक थीं और चुप ही हो गयी थीं । १०२। सूर्य देव की विम्बमाला के ही तुल्य वह एक ही स्वरूप वाली कुमारी समस्त दैत्य के पुत्रों को प्रत्येक को भिन्न दिखाई दे रही थी । १०३। अग्नि चूडाल बाणों से उनके कर्मों का भेदन करती हुई युद्ध कर रही थी और उसका मुख क्रोध से लाल रक्त कमल के ही समान शोभित हो रहा था । १०४। नभ में देवगण देखते हुए बड़ा ही आश्चर्य प्रकट कर रहे थे । तथा मन्त्रिणी और दण्डनाथा के अनेक प्रकार के साधु वाद भी कहे जा रहे थे । १०५।

अर्च्यमाना रणं चक्रे लघुहस्ता कुमारिका ।

द्वितीयं युद्धदिवसं समस्तमपि सा रणे ॥१०६

प्रकाशयामास बलं ललितादुहितो निजम् । १०५  
 अस्त्रप्रत्यस्त्रमोक्षेण तान्सर्वानि पि भिदती ॥ १०७  
 नारायणास्त्रमोक्षेण महाराजीकुमारिका । १०८  
 द्विजत्यक्षोहिणीसैन्यं भस्मसादकरोत्क्षणात् ॥ १०९  
 अक्षोहिणीनां अयतः क्षणात्कोपमुपागताः । ११०  
 आकृष्टगुरुधन्वानस्तेऽपतन्नेकहेलया ॥ १०६  
 ततः कलकले जाते गत्तीनां च दिवोकसाम् । १११  
 युगपत्तिंशतो बाणानसृजत्सा कुमारिका ॥ ११०  
 हस्तलाघवमाश्रित्य मुक्तैश्चन्द्रार्धसायकः । ११२  
 त्रिशता त्रिशतो भंडपुत्राणामाहतं शिरः ॥ १११  
 इति भंडस्य पुत्रेषु प्राप्तेषु यमसादनम् । ११३

अत्यन्तविस्मयाविष्टा ववृषुः पुष्पमञ्चगाः ॥ ११२

लघु हाथों वाली वह कुमारिका पूज्यमान होती हुई युद्ध कर रही थी । उसने युद्ध में दूसरा पूर्ण दिवस भी समाप्त किया था और उस ललिता देवी की पुत्री ने अपने बल को प्रकाशित किया था । वह उन सबको अपने अस्त्रों और प्रत्यस्त्रों से भेदन कर रही थी । १०६-१०७। उस महाराजी की कुमारिका ने नारायणास्त्र को छोड़कर दो सौ अक्षोहिणी सेनाओं को एक ही क्षण में भस्मसात् कर दिया था । १०८। उन अक्षोहिणी सेनाओं के विनाश होने से एक ही क्षण में क्षोध को प्राप्त हुए वे देत्यराज के पुत्रों ने अपने-अपने धनुषों को खींचा था और वे सब एक ही साथ गिर गये थे । १०९। फिर शक्तियों का और देवगणों का कलकल उत्पन्न हो जाने पर उस कुमारिका ने एक ही साथ तीस बाण छोड़े थे । ११०। हाथ की कुशलता का आश्रय लेकर छोड़े हुए अर्धं चन्द्र बाणों से जो सख्या में तीस थे उन तीसों भण्डासुर के पुत्रों का उसने शरीर काट डाला था । १११। इस तरह से भंड के समस्त पुत्रों के मर जाने पर अत्यधिक विस्मय से युक्त होकर देवों ने आकाश में स्थित होकर पुष्पों की वर्षा की थी । ११२।

सा च पुत्री महाराज्या: विष्वस्तासुरसैनिका । ११३

मन्त्रिणीदण्डनार्थ्यामालिग्यत भृशं मुदा ॥ ११३

तस्याः पराक्रमोन्मेषीर्नुत्यत्यो जयदायिभिः ॥११४  
 शक्तियस्तुमुलं चक्रः साधुवादैर्जगत्त्रयम् ॥११४ इतीकी  
 सवश्च शक्तिसेनान्यो दण्डनाथापुरःसराः । इतीकी  
 तदाश्चर्यं महाराज्ञये निवेदयितुमुद्गताः ॥११५ इतीकी  
 ताभिनिवेद्यमानानि सा देवी ललितांबिका । इतीकी  
 पुत्रीभुजावदानानि श्रुत्वा प्रीति समाययौ ॥११६ इतीकी  
 समस्तमपि तच्चक्रं शक्तीनां तत्पराक्रमः । इतीकी  
 अदृष्टपूर्वदेवेषु विस्मयस्य वशं गतम् ॥११७ इतीकी

और उस महाराजी की पुत्री ने मंडासुर के सब पुत्रों को विघ्नस्त कर दिया था और फिर मन्त्रिणी और दण्डनाथा के द्वारा बार-बार आलिंगन की गयी थी तथा इन दोनों को बड़ी ही प्रसन्नता हुई थी । ११३। उस कुमारिका के जो विजय देने वाले पराक्रमों के उन्मेषों से नुत्य करती हुई शक्तियों के साधुवादों के तुमुल धोष से तीनों लोकों को भर दिया था । ११४। समस्त शक्तियों के सेनानियों ने जिनमें दण्डनाथा भी थी उस महान आश्चर्य जनक युद्ध की विजय को महाराजी को निवेदन करने के लिए तैयारी की थी । ११५। ललिता देवी ने अपनी पुत्री की भुजाओं के अवदानों को जो उन शक्तियों के द्वारा सुनाये गये थे श्रवण करके बहुत ही अधिक प्रसन्नता प्राप्त की थी । ११६। वह समस्त चक्र शक्तियों के अदृष्ट पूर्व पराक्रमों से देवों के भी विस्मय करने वाला हो गया था । ११७।

### ॥ गणनाथ पराक्रम वर्णन ॥

विललाप स दैत्येन्द्रो मत्वा जातं कुलक्षयम् ॥१  
 हा पुत्रा हा गुणोदारा हा मदेकपरायणः ।  
 हा मन्नेत्रसुधापूरा हा मत्कुलविवर्धनाः ॥२  
 हा समस्तसुरश्रेष्ठमदभंजनतत्पराः ।  
 हा समस्तसुरस्त्रीणामंतर्मोहनमन्गथाः ॥३

दिशत प्रीतिवाचं मे ममाके वलगताधुना । १४

किमिदानीमिमं तातमवमुच्य सुखं गताः ॥४

युष्मान्विना न शोभन्ते मम राज्यानि पुत्रकाः । ५

रित्कानि मम गेहानि रित्का राजसभापि मे ॥५

कथमेवं विनिशेषं हता यूयं दुराशयाः । ६

अप्रधृष्ट्यभुजासत्त्वान्भवतो मत्कुलांकुरान् । ७

कथमेकपदे दुष्टा वनिता संगरेऽवधीत् ॥६

मम नष्टानि सौख्यानि मम नष्टाः कुलस्त्रियः । ७

इतः परं कुले क्षीणे साहसानि सुखानि च ॥७

इसके अनन्तर अपने समस्त पुत्रों के विनष्ट हो जाने पर महान शोक से परिप्लुत होकर अण्डासुर विलाप करने लगा था और उसने यह मान लिया था कि अब मेरे कुल का नाश हो गया है । १। वह इस रीति से क्रन्दन करने लगा था—हा ! मेरे पुत्रो ! तुम सब तो बहुत ही उदार गुणों वाले थे—तुम सभी मेरी आज्ञा में तत्पर रहे थे—हा ! आप तो मेरे नेत्रों को सुधा के सूर के ही समान थे और मेरे कुल को बढ़ाने वाले थे । २। हा ! आप लोग तो सभी देवों के मद का भजन करने वाले थे—हा ! आप लोग देवाङ्गनाओं के हृदयों को मोहित करने में कामदेव के ही तुल्य थे । ३। मुझे अपनी प्रीति युक्त वाणी सुनाओ—जब मेरी गोद में आकर बैठा—इस समय यह घटना हो गयी है कि आप लोग अपने पिता का त्याग करके सुखी हो गये हो । ४। हे पुत्रो ! आप सबके बिना यह मेरे राज्य शोभित नहीं हो सकते हैं । मेरे घर सब अब सुने हैं और मेरी राज्य सभा भी सूनी हो गयी है । यह क्या हुआ और आप सभी कैसे दुराशयों वाले एक ही साथ निहत हो गये हैं । जिनकी भुजाओं का बल कोई भी दबा नहीं सकता था ऐसे जो मेरे कुल के अंकुर आप सब थे उन सबको एक ही बार में उस दुष्टा नारी ने युद्ध में कैसे मार डाला था । ५-६। मेरी सब सेनाएँ नष्ट हो गयीं और मेरी कुल स्त्रियाँ भी विनष्ट हो गयीं हैं । इससे आगे कुल के क्षीण हो जाने पर सब साहस और सुख भी विनष्ट हो गये हैं । ७।

भवतः सुकृतंलैङ्घवा मम पूर्वजनुः कुतः । ८

नाशोऽयं भवतामद्य जातो नष्टस्ततोऽस्मद्गम ॥८

हा हतोऽस्मि विपन्नोऽस्मि मन्दभाग्योऽस्मि पुत्रकाः । १५  
 इति शोकात्स पर्यस्यन्प्रलपन्मुक्तमूर्धजः । १६  
 मूर्च्छया लुप्तहृदयो निष्पपात् नृपासनात् ॥६  
 विशुक्रश्च विषंगश्च कुटिलाक्षश्च संसदि । १७  
 भंडमाश्वासयामासुदेवस्य कुटिलकमैः ॥१०  
 विशुक्र उवाच—  
 देव किं प्राकृत इव प्राप्तः शोकस्य वश्यताम् । १८  
 लपसि त्वं प्रति सुतान्प्राप्तमृत्यून्महाहवे ॥११  
 धर्मवान्विहितः पंथा वीराणामेष शाश्वतः । १९  
 अशोच्यमाहवे मृत्युं प्राप्नुवंति यदहितम् ॥१२  
 एतदेव विनाशाय शल्यवद्वाधते मनः । २०  
 यत्स्त्री समागत्य हठान्विहंति सुभटानुणे ॥१३  
 इत्युक्ते तेन देत्येन पुत्रशोको व्यमुच्यत । २१  
 भंडेन चंडकालाभिसदृशः क्रोध आदधे ॥१४

आप लोगों के जन्म मैंने पूर्व पुण्यों के द्वारा ही प्राप्त किये थे आज आप सबका विनाश हो गया है अब तो मैं भी विनष्ट ही हो गया हूँ । या हे पुत्रो ! हा ! अब तो मैं मर ही गया हूँ—विपत्ति ग्रस्त हो गया हूँ और खोटी तकदीर वाला हो गया हूँ । इस तरह से वह शोक से ग्रस्त हो गया था और माथे के बालों को खोलकर प्रलाप कर रहा था । उसको मूर्च्छा हो गयी थी और उसकी हृदयगति लुप्त हो गयी थी—वह किर नृपासन से नीचे गिर पड़ाथा । १५। किर विशुक्र-विषञ्ज और कुटिलकमों ने उस संसद में भाग्य के कुटिलाओं को कहते हुए भण्डासुर को आश्वासन दिया था । १०। विशुक्र ने कहा—हे स्वामिन् ! आप सामान्य मानव के ही समान शोक के वश में वयों प्राप्त हो गये हैं । महान संग्राम में मरे हुए पुत्रों की ओर क्या बात कर रहे हैं । ११। वीरों का तो यह युद्ध करते हुए मर जाना धार्मिक मार्ग ही है और यह निरन्तर होने वाला है । जो युद्ध में मृत्यु को प्राप्त होते हैं वह तो उनकी मृत्यु शोच करने के योग्य नहीं हुआ करती है प्रत्युत पूजित ही हुआ करती है । १२। केवल यही बात शल्य के समान मन को

पीड़ा दे रही है कि स्त्री ने आकर युद्ध में बड़े-बड़े योधाओं का हनन किया है । १३। उस दैत्य के द्वारा ऐसा कहने पर भण्ड ने पुत्रों के शोक का त्याग कर दिया था और फिर भण्ड ने प्रचण्ड कालाग्नि के समान क्रोध किया था । १४।

स कोशात्क्षप्रमुदधृत्य खड्गमुग्रं यमोपमम् ।

विस्फारिताक्षियुगलो भृशं जज्वालं तेजसा ॥ १५ ॥

इदानीमेव तां दुष्टां खड्गेनानेन खंडशः ।

गकलीकृत्य समरे श्रमं प्राप्त्यामि बंधुभिः ॥ १६ ॥

इति रोषस्खलद्वर्णः श्वेसन्निव भुजंगमः ।

खड्गं विधुन्वन्नुत्थायः प्रचचालातिमत्तवत् ॥ १७ ॥

तं निरुद्ध्य च संभ्रान्ताः सर्वे दानवपुञ्जवाः ।

वाचमूचुरतिक्रोधाज्जवलंतो ललितां प्रति ॥ १८ ॥

न तदर्थं कार्यः स्वामित्संभ्रम ईदृशः ।

अस्माभिः स्वबलीयं त्तः रणोत्साहो विधीयते ॥ १९ ॥

भवदाजालवं प्राप्य समस्तभूवनं हठात् ।

विमर्द्यितुमीशा स्मः किमु तां मुग्धभामिनीम् ॥ २० ॥

कि चूषयामः सप्ताध्यीन्क्षोदयामोऽथ वा गिरीद् ।

अधरोत्तरमेवैतत्त्रैलोक्यं करवाम वा ॥ २१ ॥

उसने यमराज के तुल्य अपने खड्ग को म्यान से निकाल लिया था जो बड़ा ही दुर्ग्रे था । उसने अपने नेत्रों को फलाया था और वह तेज से ज्वलित हो गया था । १५। युद्ध में बन्धुओं के सहित इसी समय में इस खड्ग से उस दुष्ट के खण्ड-र करके युद्ध में श्रम को प्राप्त करूँगा । १६। इस तरह से रोष से उसका वर्ण स्खलित हो गया था और वह संप के ही तुल्य निःश्वास ले रहा था । वह एक मत्त पुरुष के ही समान अपने खड्ग का हिलाता हुआ वहां से चल दिया था । १७। सभी सम्भ्रान्त दानवों ने उसको राक दिया था और अत्यधिक क्रोध से जलते हुए उन्होंने ललिता के प्रति वचन कहने का आरम्भ कर दिया था । १८। हे स्वामिन् ! उसके लिए आपको ऐसा सम्भ्रव नहीं करना चाहिए । हम लोग अपने बलों से समन्वित

होकर रण करने का उत्साह करते हैं । १६। आपकी सामान्य भी आज्ञा पाकर हम लोग सम्पूर्ण भुवन का मर्दन करने में हठ से समर्थ हैं । उस मुख्य भागिनी की तो बात ही क्या है । अर्थात् वह विचारी नारी हमारे सामने बहुत ही तुच्छ है । २०। क्या हम सातों सागरों का चूष डालें अथवा समस्त पर्वतों को खोदकर चूण कर देवे और इन तीनों भुवनों को उठाकर अधर देवें । तात्पर्य यह है कि हम असम्भव कार्य को भी आपके आदेश से कर सकने की शक्ति रखते हैं । २१।

१६. २०. २१. २२. २३. २४. २५. २६. २७. २८. २९. ३०.

**छिनदाम सुरान्सर्वान्भिनदाम तदालयान् ॥**

**पिनषाम हरित्पालानाज्ञां देहि महामते ॥ २२ ॥**

**इत्युदीरितमाकर्ण्य महाहंकारगवितम् ॥**

**उवाच वचनं क्रुद्धः प्रतिघारुणलोचनः ॥ २३ ॥**

**विशुक्ष भवता गत्वा मायांतहितवर्ज्ञणा ॥**

**जयविघ्नं महायन्त्रं कर्तव्यं कटके द्विषाम् ॥ २४ ॥**

**इति तस्य वचः श्रुत्वा विशुक्षो रोषरुषितः ॥**

**मायातिरोहितवपुर्जगाम ललिताबलम् ॥ २५ ॥**

**तस्मिन्प्रयातु मुदयुक्ते सूर्योऽस्तं समुपागतः ॥**

**पर्यस्तकिरणस्तोभपाटलीकृतदिङ्मुखः ॥ २६ ॥**

**अनुरागवती संध्या प्रयांतं भानुमालिनम् ॥**

**अनुबन्नाज पातालकुञ्जे रतुमिवोत्सुका ॥ २७ ॥**

**वेगात्प्रपततो भानोद्देहसगात्समुत्थिताः ॥**

**चरमाव्येरिव पयः कणास्तारा विरेजिरे ॥ २८ ॥**

हम समस्त सुरों को छेद डालेंगे शोर उनके आलयों को तोड़-फोड़ डालेंगे । हम दिक्षालों को पीस डालेंगे । हे महामते ! आप हमको अपनी आज्ञा भर दे दीजिए । २२। इस महान् अहंकार में युक्त वचन को सुनकर साल नेत्रों वाला भण्ड क्रुद्ध होकर बोला था । २३। हे विशुक्ष ! माया से अपने वर्ज्ञ को छिपाकर आप वहाँ जाकर कटक में शत्रुओं के जय के विघ्न बाले महायन्त्र को करो । २४। उसके इस वचन को श्रवण करके विशुक्ष रोष से भर गया था और माया से अपने शरीर को छिपाकर ललिता की सेना

में गया था । २५। जब प्रेमाण करने को वह उद्यत हुआ था तो सूर्य अस्त हो गया था । पर्यंस्त किरणों के समुदाय से दिशाएँ सब पारस वर्ण की हो गयी थीं । २६। अनुराग वाली सन्ध्या गमन करते हुए भानुमाली पीछे ही चली गयी मानो पाताल की कुच्छ में वह सूर्य के साथ रमण करने को उत्सुक हो गयी थी । चरमाबिधि के पय के ही समान तारे सोभित हो रहे थे । बड़े वेग से प्रयाण करने वाले सूर्य के देह के सङ्ग से ही वे कण समुत्तिरु हुए थे । २७-२८।

अथाससाद बहुलं तमः कज्जलमेचकम् ।  
 सार्थं कर्तुं मिवोद्युक्तं सर्वर्णस्यासिदुर्धिया ॥२९॥  
 मायारथं समाख्यो गूढशार्वरसंवृतः ।  
 अदृश्यवपूरापेदे ललिताकटकं खलः ॥३०॥  
 तत्र गत्वा उवलज्ज्वालं वह्निप्राकारमंडलम् ।  
 शतयोजनविस्तारमालोकयत दुर्मतिः ॥३१॥  
 परितो विश्रमङ्गशालमवकाशमवाप्नुवन् ।  
 दक्षिणं द्वारमासाद्य निदध्यो क्षणमुद्धतः ॥३२॥  
 तत्रापश्यन्महासत्त्वास्सावधाना धृतायुधाः ।  
 आख्यानाः संनद्धर्मणो द्वारदेशतः ॥३३॥  
 स्त भिनीप्रमुखाः शक्तीविशत्यक्षोहिणीयुताः ।  
 सर्वदा द्वाररक्षार्थं निदिष्टा दंडनाथया ॥३४॥  
 विलोक्य विस्मयाविष्टो विचार्य च चिरं तदा ।  
 शालस्य बहिरेवासौ स्थित्वा यन्त्रं समातनोत् ॥३५॥

इसके अनन्तर काजल के तुल्य एक दम काला बड़ा भारी अन्धकार प्राप्त हो गया था । असिकी दुर्धी से मानों सवर्ण का साथ करने को ही वह उद्युक्त हो गया था । २६। गूढ शार्वर से संवृत वह दंत्य माया के रथ पर सवार हुआ था और उसने अपना शरीर अदृश्य कर लिया था । फिर वह खल ललिता की सेना में प्राप्त हुआ था । ३०। वहाँ जाकर उस दुष्ट बुद्धि वाले ने अग्नि का प्राकार मण्डल देखा था जो जलती हुई ज्वालाओं वाला Hinduism Disciples of Sri Shankaracharya से संबंधित विषय ॥३५॥ उसके सब बाहर ब्रह्मण

करते हुए उसने शाल को अवकाश न पाया था । फिर दक्षिण में द्वार पर पहुँचकर क्षण भर उस उद्धत ने सोचा था । ३२। वर्हा पर सावधान-महान बली-हाथों में हथियार उड़ाये हुए—यानों पर समारूढ़ और संनद वर्मों वाले जो द्वार देश पर स्थित थे, देखे थे । ३३। सबंदा द्वार की रक्षा के लिए दण्डनाथा के द्वारा निविष्ट विश्वित अक्षोहिणी सेना से संयुत स्तम्भिनी प्रमुख शक्तियाँ थीं । ३४। उनको देखकर वह विस्मय से समाविष्ट हो गया था और उस समय में उसने विचार बहुत देर तक किया था । शाल के बाहिर ही स्थित होकर उसने यन्त्र को फेलाया था । ३५।

गव्यूतिमात्रकायामे तत्समानप्रविस्तरे ।

शिलापट्टे सुमहति प्रालिखद्यन्त्रमुत्तमम् ॥३६॥

अष्टदिक्षवष्टश्लेन संहाराक्षरमौलिना ।

अष्टभिर्देवतैश्चैव युक्तं यन्त्रं समालिखत् ॥३७॥

अलसा कृपणा दीना नितन्द्रा च प्रमीलिका ।

क्लीवा च निरहंकारा चेत्यष्टौ देवताः स्मृताः ॥३८॥

देवताष्टकमेतच्च शूलाष्टकपुटोपरि ।

नियोज्य लिखितं यन्त्रं मायावी सममन्त्रयत ॥३९॥

पूजां विधाय मन्त्रस्य बलिभिश्छागलादिभिः ।

तद्यन्त्रं चारिकटके प्राक्षिपत्समरेऽसुरः ॥४०॥

प्राकारस्य बहिर्भगि वर्तिना तेन दुष्यिया ।

क्षिप्तमुल्लांघ्य च रणे पपात कटकातरे ॥४१॥

तद्यन्त्रस्य विकारेण कटकस्थास्तु जत्तयः ।

विमुक्तशस्त्रसंन्यासमास्थिता दीनमानसाः ॥४२॥

उसने आठ देवताओं से युक्त यन्त्र को लिखा था । दो कोण की चौड़ाई में और उतने ही निस्तार में एक शिला पट्ट पर जो महान था उस उत्तम यन्त्र को लिखा था । ३६-३७। उन आठ दिशाओं में आठ शूल संहाराक्षर मौलि से ही लिखा गया था । ३८। उन आठ देवताओं के नाम हैं—अलसा-कृपणा-दीना-नितन्द्रा-प्रमीलिका-क्लीवा-निरहंकारा—ये आठ देवता कहे गये हैं । इन देवताओं के अष्टक को शूलाष्टक पुट के ऊपर नियोजित

कर लिखा गया मन्त्र था उसको उस मायवी ने भली-भाँति मन्त्रित किया था । ३६। यन्त्र की पूजा करके छागल आदि की बलि दी थी । उस असुर ने समर में चारिकटक में उसका क्षेप किया था । ४०। उस प्राकार के बाहिर के भाग में रहने वाले उस दुष्ट धी ने प्रक्षिप्त किया था और उल्लंघन कर कटक के मध्य के रण में गिरा था । ४१। उस यन्त्र के विकार से कटक में स्थित शक्तियाँ शस्त्रों को छोड़कर दीन मानसों वाली हो गयी थीं । ४२।

किं हत्तैरसुरः कार्यं शस्त्राशस्त्रकमैरलम् ।

जयसिद्धफलां किं वा प्राणिहिंसा च पापदा ॥४३॥

अमराणां कृते कोऽयं किमस्माकं भविष्यति ।

वृथा कलकलां कृत्वा न फलं युद्धकर्मणा ॥४४॥

का स्वामिनी महाराजी का वासी दण्डनायिका ।

का वा सा मन्त्रिणी श्यामा भृत्यत्वं नोऽथ कोदृशम् ॥४५॥

इह सर्वाभिरस्माभिभृत्यभूताभिरेकिका ।

वनिता स्वाजिनीकृत्ये कि फलं मोक्ष्यते परम् ॥४६॥

परेषां मर्मभिदुररायुधेनं प्रयोजनम् ।

युद्धं शाम्यतु चास्माकं देहशस्त्रक्षतिप्रदम् ॥४७॥

युद्धे च मरणं भावि वृथा स्युर्जीवितानि नः ।

युद्धे मृत्युर्भवेदेव इति तत्र प्रमेव का ॥४८॥

उत्साहेन फलं नास्ति निद्रैवेका सुखावहा ।

आलस्यसदृशं नास्ति चित्तविश्रांतिदायकम् ॥४९॥

उनको ऐसा सन्ध्यास हो गया था कि उनके मनों में ये भाव उत्पन्न हो गये थे कि इन असुरों के मारने से क्या कार्य होगा—यह शस्त्राश्वरों का क्रम भी व्यर्थ है—जय की सिद्धि से भी क्या फल है । युद्ध में प्राणियों की हिंसा से पाप होगा । ४३। यह देवों के लिए क्या है इससे हमारा भी क्या होगा । कल-२ करना व्यर्थ है और युद्ध के कर्म से क्या फल होगा । ४४। कौन तो महाराजी स्वामिनी है और यह दण्ड नायिका क्या है । वह मन्त्रिणी श्यामा क्या है और हमारा उनका कैसा भृत्य होना है । ४५। यहाँ पर हम सबने जो भृत्य भूता है एक वनिता को स्वामिनी बना रखा है । इससे क्या परम मोक्ष हांगता है । दूसरों के पर्सों के नेतृत्वे रखे वाले आयुधों की क्या

आवश्यकता है। यह युद्ध जो देश और जाति की अति करने वाला है अब ज्ञान्त हो जाना चाहिए। ४७। और युद्ध में मरण होने वाला है तो हमारा जीवन भी बृथा ही है। युद्ध में तो मौत ही होगी बहार पर प्रमा ही क्या है। ४८। इस उत्साह से कोई भी कल नहीं है अतः निद्रा ही सुख देने वाली है। आलस्य के तुल्य चित्त को विश्रान्ति देने वाला अन्य कोई भी नहीं है। ४९।

एताहशीश्व नो जात्वा सा राजी किं करिष्यति ।

तस्या राजीत्वमपि नः समवायेन कल्पितम् ॥५०॥

एवं चोपेक्षितास्माभिः सा विनष्टवला भवेत् ।

नष्टसत्त्वा च सा राजी कान्तः गिक्षा करिष्यति ॥५१॥

एवमेव रणारंभं विमुच्य विघ्नात्युधाः ।

शक्तयो निद्रया द्वारे घूर्णमाना इवाभवन् ॥५२॥

सर्वत्र मादियं कार्येषु महदालस्यमागतम् ।

जिथिलं चाभवत्सर्वं शक्तीनां कटकं महत् ॥५३॥

जयविघ्नं महायन्त्रमिति कृत्वा सा दानवः ॥५४॥

निविद्या तत्प्रभावेण कटकं प्रमिमथिषुः ।

द्वितीययुद्धदिवसस्याधरात्रे गते सति ॥५५॥

निस्सुत्य नगरादभूयस्त्रिशदक्षोहिणीवृतः ।

आजगाम पुनर्देत्यो विशुकः कटकं द्विषाम् ॥५६॥

अश्रूयं त ततस्तस्य रणनिः साणनिस्वनाः ।

तथापि ता निरुद्योगाः शक्तयः कटकेऽभवन् ॥५७॥

हमको ऐसी जानकर वह राजी क्या करेगी। उसको राजी बना देना भी तो हम ही सबने कल्पित किया है। ५०। इस रीति से हमारे द्वारा जब वह उपेक्षित होगी तो वह भी नष्ट बल वाली ही हो जायगी। जन नष्ट बल वाली राजी होगी तो फिर वह हमको क्या शिक्षा देगी। ५१। इसी प्रकार से उन शक्तियों ने रणारम्भ को त्याग दिया था और सब हथियार छोड़ दिये थे। वे निद्रा से घृणित होती हुई द्वार पर ही रह गयी थी। ५२। सर्वत्र कायों में मन्दता आ गयी और मदालस्य छा गया था। वह महान् शक्तियों का कटक उस समय में जिथिल हो गया था। ५३। यह महायन्त्र-

जय विघ्न था जिसको उस दानव ने किया था । ५४। कटक का प्रमन्धन करने की इच्छा वाला वह उसके प्रभाव से निविद्य हो गया था उस समय में फिर नगर से निकलकर फिर तीस अक्षीहिणी सेना से युत होकर विशुक्र दैत्य शत्रुओं के कटक में आ गया था । ५५-५६। फिर रण के निःशाणों के शब्द सुने गये थे तो भी वे शक्तियाँ कटक में उच्चोग ही नहीं हो गयी थीं।

५७।

तदा महानुभावत्वाद्विकारंविघ्नयं त्रजे ।

अस्पृष्टे मंत्रिणीदण्डनाथे चितामवापतुः ॥५८॥

अहो बत महत्कष्टमिदमापतितं भयम् ।

कस्य वाथ विकारंण सैनिका निर्गतोद्यमाः ॥५९॥

निरस्तायुधसंरंभा निद्रातन्द्राविघृणिता ।

न मानयंति वाक्यानि नार्चयंति महेश्वरीम् ।

ओदासीन्यं वितन्वंति शक्तयो निस्पृहा इमाः ॥६०॥

इति ते मंत्रिणीदण्डनाथे चितापरायणे ।

चक्रस्यन्दनमारुढे महाराजीं समूचतुः ॥६१॥

मंत्रिण्युवाच-

देवि कस्य विकारोऽयं शक्तयो विगतोद्यमाः ।

न शृण्वन्ति महाराज्ञि तवाज्ञां विश्वपालिताम् ॥६२॥

अन्योन्यं च विरक्तास्ताः पराच्यः सर्वकर्मसु ।

निद्रातन्द्रामुकुलिता दुर्वक्षियानि वितन्वते ॥६३॥

का दंडिनी मंत्रिणी का महाराजीति का पुनः ।

युद्धं च कीदृशमिति क्षेपं भूरिवतन्वते ॥६४॥

उस समय में विघ्नयन्त्र से समुत्पन्न विकारों से महानुभाव होने के कारण से मन्त्रिणी और दण्डनाथा अस्पृष्ट थीं। और उनको बड़ी चिन्ता प्राप्त हो गयी थीं । ५८। अहो ! बड़े खेद का विषय है और महान कष्ट तथा भय आ पड़ा है । अथवा यह किसका विकार है जिसके प्रभाव से समस्त सैनिक उच्चोग हीन हो गये हैं । ५९। आयुधों का सरम्भ निरस्त कर दिया है और सब निराकरण से विमुक्ति है । तो ये गुरुओं को मानते हैं और

न महेश्वरी का ही अचंन करते हैं। ये सब शक्तियाँ उदासीनता कर रही हैं और निःस्पृह हो गयी हैं। ६०। वे मन्त्रिणी और दण्डनाथा इस प्रकार से चिन्ता मरन हो गयी थीं और चक्र स्थन्दन पर समाख्य होकर उन्होंने महाराजी से कहा था। ६१। मन्त्रिणी ने कहा—हे देवि ! यह किसका विकार है कि सब शक्तियों ने उद्यम स्थाग दिया है। हे महाराजि ! विश्वपालिता आपकी आज्ञा को भी वे अब नहीं सुनती हैं। ६२। वे परस्पर में सब कर्मों को छोड़ कर विरक्त हो गयीं हैं। वे निद्रा और तन्द्रा से मुकुलित हो रही हैं और दुवकियों को कहती हैं। ६३। वे कहती हैं यह दण्डनी और मन्त्रिणी कौन और क्या हैं तथा यह महाराजी क्या कौन है और यह युद्ध भी कैसा है—ऐसा ही बहुत क्षेप कर रही हैं। ६४।

अस्मिन्नेवांतरे शत्रुरागच्छति महाबलः ।

उद्दृढभेरीनिस्वानैविभिदन्निव रोदसी ॥६५॥

अत्र यत्प्राप्तं रूपं तन्महाराजि प्रपद्यताम् ।

इत्युक्तवा सह दण्डिन्या मंत्रिणीं प्रणति व्यधात् ॥६६॥

ततः सा ललिता देवी कामेश्वरमुखं प्रति ।

दत्तदण्ठिः समहसदतिरक्तरदावलिः ॥६७॥

तस्याः स्मितप्रभापुञ्जे कुंजराकृतिमान्मुखे ।

कटक्रोडगलदानः कश्चिदेव व्यजूम्भत ॥६८॥

जपापटलपाटल्यो बालचन्द्रवपुर्घरः ।

बीजपूरगदामिक्षुचापं शूलं सुदर्शनम् ॥६९॥

अब्जपाशोत्पलब्रीहिमंजरीवरदांकुशान् ।

रत्नकुम्भं च दण्भिः स्वकैर्हस्तैः समुद्धवन् ॥७०॥

इसी बीच में महान बल वाला शत्रु आ जाता है जो उद्धण्ड भोरियों के घोषों से रोदसी (भूमि और आकाश को) का भेदन सा कर रहा है। ६५। यहाँ पर जो भी रूप प्राप्त हुआ है हे महाराजि ! उसको बतलाइए। इतना कहकर वे दोनों दण्डनी और मन्त्रिणी ने स्वामिनी को प्रणाम किया था। ६६। इसके अनन्तर इस ललिता देवी ने कामेश्वर के मुख की ओर अपनी दण्ठि ढाली थी और बहुत हँसी थीं उनके अतीव रक्त रदावलि थी। ६७। उनके स्मित की प्रभा के पुञ्ज वाले मुख में कुञ्जर की आकृति वाला कोई

दिखाई दिया था जिसके कुम्भस्थल से मद चूरहा था । ६८। वह जपा पृष्ठ के समान पाटल्य था—शिर पर बालचन्द्र को धारण किये था और बीज-पूर-गदा-इक्षुचाप—शूल-सुदर्शन-अब्ज-पाश-उत्पल-ब्रीहि-मंजरी-वरदां-कृष और रत्नकुम्भ—इनको दश करों में उद्धवन कर रहे थे । ६९-७०।

**तुन्दिलश्वन्द्रचूड़ालो मन्द्रबृहितनिस्वनः ।**

**सिद्धिलक्ष्मीसमाशिलष्टः प्रणनाम महेश्वरीम् ॥७१॥**

तथा कृताशीः स महान्गणनाथो गजाननः ।

**जयविघ्नमहायन्त्रं भेत्तु वेगाद्विनिर्ययौ ॥७२॥**

अंतरेव हि शालस्य ऋमद्वन्तावलाननः ।

**निभृतं कुत्रचिल्लग्नं जयविघ्नं व्यलोकयत् ॥७३॥**

स देवो घोरनिर्धातैदुःसहैर्दंतपातनैः ।

**क्षणाच्चूर्णीकरोति स्म जयविघ्नमहाशिलाम् ॥७४॥**

तत्र स्थिताभिदुष्टाभिर्देवताभिः सहैव सः ।

**परागशेषतां नीत्वा तद्यन्त्रं प्राक्षिपद्विः ॥७५॥**

ततः किलकिलारावं कृत्वाऽलस्यविवर्जिताः ।

उद्यताः समरं कतु शक्तयः शस्त्रपाणयः ॥७६॥

स दंतिवदनः कण्ठकलिताकुण्ठनिस्वनः ।

**जययन्त्रं हि तत्सृष्टं तथा रात्रौ व्यनाशयत् ॥७७॥**

उनका पेट बड़ा था—चन्द्र चूड़ा में था और वे मन्द्र तथा वृहित ध्वनि वाले थे । वे सिद्धि लक्ष्मी से समाशिलष्ट थे । उनने आकर महेश्वरी को प्रणाम किया था । ७१। देवी ने उनको आशीर्वदि दिया था, वह महान गणनाथ गजानन थे और वे जयविघ्न महा यन्त्र का भेदन करने के लिए वेग के साथ निकलकर चले गये थे । ७२। शाल के अन्दर ही ऋमद्वन्ता बलानन ने चूपचाप कहीं पर लगा हुआ जयविघ्न यन्त्र को देखा था । ७३। उस देव ने घोर निर्धातों वाले कौर दुस्सह दाँतों के पातनों से एक ही क्षण में उस जयविघ्न महाशिला का चूर्ण कर दिया था । ७४। उन्होंने उसमें स्थित देवताओं के साथ ही जो बड़े दुष्ट थे सबका चूरा करके उस यन्त्र को दिवलोक में फेंक दिया था । ७५। इसके अनन्तर किलकिल की ध्वनि करके सब शक्ति

आलस्य रहित होगयी थीं और शस्त्र हाथों में लेकर युद्ध करने के लिए उद्यत हो गयी थीं । ७६। उस दन्ति वदन ने जिनके कलित कण्ठ की ध्वनि हो रही थी एक जप यन्त्र का सृजन किया था और रात्रि में विनाश कर दिया था जो बाधक था । ७७।

इमं वृत्तांतमाकर्ण्य भण्डः स क्षोभमाययो ।

ससर्जं च बहुनात्मरूपान्दंतावलाननाव् ॥७८॥

ते कटकोडविगलन्मदसौरभचञ्चलैः ।

चञ्चरीककुलैरग्रे गीयमानमहोदयाः ॥७९॥

स्फुरद्वाडिमकिंजल्कविक्षेपकररोचिषः ।

सदा रत्नाकरानेकहेलया पातुमुद्यताः ॥८०॥

आमोदप्रमुखा ऋद्धिमुख्यशक्तिनिषेविताः ।

आमोदश्च प्रमोदश्च सुमुखो दुर्मुखस्तथा ॥८१॥

अरिष्ठो विघ्नकर्त्ता च पडेते विघ्ननायकाः ।

ते सप्तकोटिसंख्यानां हेरंबाणामधीश्वराः ॥८२॥

ते पुरण्डलितास्तस्य महागणपते रणे ।

अग्निप्राकारवलयाद्विनिर्गत्य गजाननाः ॥८३॥

क्रोधहुंकारतुमुलाः प्रत्यपद्यन्तं दानवान् ।

पुनः प्रचण्डफूत्कारबधिरीकृतविष्टपाः ॥८४॥

इस वृत्तान्त को श्रवण करके भण्ड को बड़ा भारी क्षोभ हुआ था कि जिसने (गणपति ने) अपने ही समान बहुत से दन्तावलाननों का सृजन किया था । ७८। उनके कटस्थल से मद निकल रहा था और उसकी गन्ध से चञ्चल भ्रमरों के समूह आगे मँडरा रहे थे जो गान सा हो रहा था । ७९। उनकी कान्ति स्फुरित दड़िम के किंजल्क के विक्षेपकर रोचि वाले थे जो सदा ही अनेक सागरों को एक ही बार में पान करने के लिए उद्यत थे । ८०। उनमें आमोद प्रमुख था और ऋद्धि जिनमें मुख्य थी ऐसी शक्तियों के द्वारा सेवित थे । ये छु विघ्न नायक हैं और सात करोड़ संख्या वाले हेरम्बों के अधीश्वर थे । इनके नाम—आमोद—प्रमोद—सुमुख—दुर्मुख—अरिष्ठ और विघ्न कर्त्ता थे । ८१-८२। ये सब उन महा गणपति के युद्ध में आगे चल दिये थे ।

उस अग्नि प्राकार के वलय से गजानन निकलकर चले थे । ८३। उनके क्रोध पूर्ण हुङ्कार से वे परम तुमुल थे और ये सब दानवों के समीप में प्राप्त हो गये थे । फिर इनकी बड़ी प्रचण्ड फूतकार शी जिससे विष्टपों को भी बहिराकर दिया था । ८४।

पपात दैत्यसैन्येषु गणचक्रचमूगणः ।

अच्छिदन्निशितैवर्णिर्गणनाथः स दानवान् ॥८५॥

गणनाथेन तस्याभूद्विशुक्रस्य महोजसः ।

युद्धमुद्धत्तुंकारभिन्नकामुंकनिः स्वनम् ॥८६॥

भ्रुकुटी कुटिले चक्रे दष्टोष्टुमतिपाटलम् ।

विशुक्रो युधि विघ्राणः समयुध्यत तेन सः ॥८७॥

शस्त्राघट्टननिस्वानैहुंकारैश्च सुरद्विषाम् ।

दैत्यसप्तिखुरक्रीडत्कुद्वालीकूटनिस्वनं ॥८८॥

फेत्कारैश्च गजेन्द्राणां भयेनाकृन्दनैरपि ।

लेषया च हयश्रेण्या रथचक्रस्वनैरपि ॥८९॥

धनुषां गुणनिस्वानैश्चकृचीत्करणैरपि ॥९०॥

शरसात्कारघोषैश्च वीरभाषाकदंबकैः ।

अट्टहासैर्महेन्द्राणां सिहनादैश्च भूरिणः ॥९१॥

गण चक्र की सेना का समुदाय दैत्यों की सेना में कूद पड़ा था । उन गणनाथ ने अपने तीक्ष्ण बाणों से दानवों को छेद दिया था । ८५। उस गणनाथ का महान ओज वाले विशुक्र के साथ बड़ा भीषण युद्ध हुआ था जिसमें बहुत उद्धत हुङ्कारें हो रही थीं और धनुषों की टंकार की छवनि भी थी । ८६। विशुक्र ने भीहें टेढ़ी कर ली थीं और उसके दाँत और होठ पाटल बर्ण के थे । ऐसे उसने गणनाथ के साथ युद्ध किया था । ८७। शस्त्रों के घट्टन के शब्दों से और असुरों की हुङ्कारों से तथा दैत्यों की सप्तति की खुरों की क्रीड़ा से कुद्वालियों के कूट घोषों से दिशाएँ क्षुब्ध हो रही थीं । ८८। गजेन्द्रों के फेत्कारों से तथा भय से आकृन्दनों से—घोड़ों के हिन्हिनाने से और रथों के पहियों की ध्वनियों से भी सब दिशाएँ काँपने लगी

में हो रही थीं । ६०। वीरों के बचन समूहों से तथा शरों के सात्कारों के बोध एवं महेन्द्रों के अट्टहास और अधिकांश में सिहनाद भी हो रहे थे । ६१।

क्षुभ्यद्विगतं तत्र ववृद्धे युद्धमुद्धतम् ।

त्रिशदक्षोहिणी सेना विशुक्रस्य दुरात्मनः ॥६२॥

प्रत्येकं योधयामासुर्गणनाथा महरथाः ।

दन्तैमर्मं विभिदं तो वेष्टयंतश्च शुष्ठया ॥६३॥

क्रोधयन्तः कर्णतालैः पुष्करावर्तकोपमैः ।

नासाश्वासैश्च परुषेविक्षिपतः पताकिनीम् ॥६४॥

उरोभिर्मर्दयंतश्च शैलवप्रसमप्रभैः ।

पिण्डंतश्च पदाघातैः पीनैर्धन्तस्तथोदरैः ॥६५॥

विभिदन्तश्च शूलेन कृत्तंतश्चकृपातनैः ।

शङ्खस्वनेन महता त्रासयन्तो वरुथिनीम् ॥६६॥

गणनाथमुखोदभूता गजवक्त्राः सहस्रशः ।

धूलीशेषं समस्तं तत्सन्यं चक्रमहोद्यताः ॥६७॥

अथ क्रोधसमाविष्टो निसन्यपुरोगमः ।

प्रेषयामास देवस्य गजासुरमसौ पुनः ॥६८॥

उस समय में सब दिशाओं में बड़ा क्षोभ छागया था ऐसा वह उद्धत युद्ध हुआ था । उस दुरात्मा की जो तीस अक्षोहिणी सेना थी । उसमें प्रत्येक से महारथी गणनाथों ने युद्ध किया था । वे दाँतों से मर्मों का भेदन कर रहे थे और सूँड से उनका वेष्टन कर रहे थे । ६२-६३। पुष्करावर्तक के समान कानों के तालों से क्रोध करते हुए और पुरुष नाक के इवासों से पताकिनी के अन्दर विक्षेप ढालते हुए—पवंत के वप्रके तुल्य उरः स्थलों से मदन करते हुए—पेरों के घात से पीसते हुए—तथा पीन (स्थूल) उदरों से हनन करते हुए—शूल से विभेदन करते हुए और चक्रों के पातन से काटते हुए और महान शंखों की ध्वनि से सेना को त्रास देते हुए ऐसे गणनाथ के मुख से उत्पन्न सहस्रों ही गजवदन वहाँ पर विद्यमान थे । मद से उद्धत उन गजों के समान मुख वालों ने उस सेना को सम्पूर्ण को धूल में मिला दिया था । ६६-६७। इसके अनन्तर अपनी सेना के अग्रणी ने क्रोध में समाविष्ट होकर फिर इसने देव के गजासुर को भेजा था । ६८।

प्रचंचसिहनादेन गजदैत्येन दुर्धिया ।

सप्ताक्षीहिणियुक्तेन युयुधे स गणेश्वरः ॥६६

हीयमानं समालोक्य गजासुरभुजाबलम् ।

वर्धमानं च तद्वीर्यं विशुकः प्रपलायितः ॥१००

स एक एव वीरेन्द्रः प्रचलन्नाखुवाहनः ।

सप्ताक्षीहिणिकायुक्तं गजासुरमर्दयत् ॥१०१

गजासुरे च निहते विशुके प्रपलायिते ।

ललितांतिकमापेदे महागणपतिमृधात् ॥१०२

कालरात्रिश्च दैत्यानां सा रात्रिविरतिं गता ।

ललिता चाति मुदिता बभूवास्य पराक्रमैः ॥१०३

विततार महाराजी प्रीयमाणा गणेशितुः ।

सर्वदैवपूजायाः पूर्वपूज्यत्वमुत्तमम् ॥१०४

उस गणेश्वर ने प्रचण्ड सिहनाद वाले दुष्टमति सात अक्षीहिणियों से संयुत गजदैत्य के साथ युद्ध किया था ।६६। उस गजासुर की भुजाओं के बल को क्षीण होता हुआ देखकर और उसके बलवीर्यं को बढ़ा हुआ देखकर वहाँ से विशुक भाग गया था ।१००। मूषक का बाहन बाला वह एक ही वीरेन्द्र प्रचलन करता हुआ सातों अक्षीहिणी सेनाओं से युक्त उस गजासुर को मर्दन करने वाला होगया था ।१०१। उस गजासुर के मरने पर और विशुक के भाग जाने पर वह महा गणपति युद्ध स्थल से ललिता देवी के समीप में उपस्थित हो गये थे ।१०२। और दैत्यों की कालरात्रि वह रात समाप्त हो गयी थी । ललिता इस महा गणपति के पराक्रम से बहुत ही प्रसन्न होगयी थी ।१०३। परम प्रसन्न उस महाराजी ने गणेशजी की अर्चना समस्त देवों से पूर्व में होकर उनको पूर्व पूज्यत्व प्रदान किया था जो अतीव उत्तम वरदान था ।१०४।

### विशुक् विषंग वध वर्णन

समाप्तश्च द्वितीययुद्धदिवसः—

रणे भग्नं महादैत्यं भण्डदैत्यः सहोदरम् ।

सेनानां कदनं श्रुत्वा सन्तप्तो बहुचिन्तया ॥१॥

उभावपि समेतौ तौ युक्तौ सर्वेश्च सेनिकैः ।

प्रेषयामास युद्धाय भण्डदैत्यः सहोदरौ ॥२॥

तावुभौ परमक्रुद्धौ भण्डदैत्येन देशितौ ।

विषंगश्च विशुक् श्च महोद्यममवाप्तुः ॥३॥

कनिष्ठसहितं तत्र युवराजं महाबलम् ।

विशुक् मनुवद्राज सेना त्रैलोक्यकम्पनी ॥४॥

अक्षौहिणीचतुः शत्या सेनानामावृतश्च सः ।

युवराजः प्रववृथे प्रतापेन महीयसा ॥५॥

उलूकजित्प्रभृतयो भागिनेया दशोद्धताः ।

भंडस्य च भगिन्यां तु धूमिन्यां जातयोनयः ॥६॥

कृतास्त्रशिक्षा भंडेन मातुलेन महीयसा ।

विक्रमेण वलन्तस्ते सेनानाथाः प्रतस्थिरे ॥७॥

रण में अपने सहोदर महादैत्य को भग्न हुआ देखकर और सेनाओं का रुदन सुनकर भंड दैत्य अधिक चिन्ता से सन्तप्त हो गया था । १। फिर भंड दैत्य ने दो सहोदरों को जो सब सेनिकों से संयुत थे युद्ध करने के लिए वहाँ पर भेजा था । २। वे दोनों भाई परमाधिक क्रुद्ध हो रहे थे और भंड दैत्य के द्वारा उन्हें आज्ञा दी गयी थी । फिर विशुक् और विषंग ने महान उद्यम का प्राप्त किया था । ३। वहाँ पर छोटे भाई के सहित महान वल वाले युवराज को भी पीछे भेजा था । उसकी सेना तीनों लोकों को कम्पन देने वाली थी । ४। वह चार सौ अक्षौहिणी सेनाओं से आवृत था । युवराज महान प्रताप से बढ़ गया था । ५। उलूकजित् प्रभृति उसके दश भानजे थे जो बहुत ही उद्धत थे और भंड की धूमिनी भगिनी में समुत्पन्न हुए थे । ६। महान मातुल भंड के द्वारा ही उनको अस्त्रों की शिक्षा दी गयी थी । वे विक्रम से बलन करते हुए सेनापति भी रवाना हुए थे । ७।

प्रोदगते श्चापनिधीं विष्वियतो दिशो दशे ।

द्वयोर्मातुलयोः प्रीति भागिनेया वितेनिरे ॥८

आरूढयाना वित्येकगाढाहंकारशालिनः ।

आकृष्टगुरुधन्वानो विशुक् मनुवन्नजुः ॥९

यौवराज्यप्रभाचिह्न छत्र चामरशोभितः ।

आरूढवारणः प्राप विशुक् युद्धमेदिनीम् ॥१०

ततः कलकलारावकारिण्या सेनया वृतः ।

विशुक् पदु दध्वान सिहनादं भयंकरम् ॥११

तत्कोभात्कुभितस्वान्ता शक्तयः संभ्रमोद्धताः ।

अग्निप्राकारवलयान्निर्जमुर्बन्धपङ्क्तयः ॥१२

तडिन्मयमिवाकाशं कुवंत्यः स्वस्वरोचिषा ।

रक्ताम्बुजावृतमिव व्योमचक् रणोन्मुखाः ॥१३

अथ भंडकनीयां सावागतो युद्धदुर्मदौ ।

निशम्य युगपद्योदध्यं मंत्रिणीदंडनायके ॥१४

वे प्रोदगत धनुषों की इवनियों से दश दिशाओं को भर रहे थे ।

उन दोनों मातुलों की प्रीति को उन भानजों ने विस्तृत किया था । वा प्रत्येक गहरे अहंकार वाले यानों पर समारूढ़ हुए थे । उन्होंने धनुषों को चढ़ाकर विशुक् के पीछे अनुगमन किया था । १। यौवराज्य की प्रभा के चिह्न छत्र और चामरों से शोभित वारण पर समारूढ़ होकर विशुक् युद्ध भूमि में प्राप्त हुआ था । १०। इसके पश्चात् कलकल के घोष को करने वाली सेना से समावृत विशुक् ने महान भयंकर सिहनाद किया था । ११। उसके द्वाम से क्षुब्ध हृदयों वाली शक्तियाँ संभ्रम से उद्धत हो गई थीं और पक्तियाँ बांधकर वे उस अग्नि के प्राकार के वलय से निकली थीं । १२। अपनी कान्ति से आकाश को विद्युत से परिपूर्ण कर रही थीं । रण को उन्मुख उन्होंने व्योम चक् को रक्त कमल के सहृष्ण बना दिया था । १३। इसके बाद भंड के दोनों छोटे भाई वहाँ पर समागत हो गये थे जो युद्ध दुर्मद थे । एक ही साथ युद्ध करने के लिए आये हुए उनको मन्त्रिणी और

किरचक्रं जेयचक्रमारुदे रथशेखरम् ।  
 धृतातपत्रवलये चामराभ्यां च वीजिते ॥१५  
 अप्सरोभिः प्रनृताभिर्गीयमानमहोदये ।  
 निर्जन्मतु रणं कर्तु मुभाभ्यां ललिताज्ञया ॥१६  
 श्रीचक्ररथराजस्य रक्षणार्थं निवेशिते ।  
 शताक्षीहिणिकां सेनां वर्जयित्वास्त्रभीषणम् ॥१७  
 अन्यत्सर्वं चमूजालं निर्जगाम रणोन्मुखी ।  
 पुरतः प्राचलदण्डनाथा स्थनिषेदुषी ॥१८  
 एकयैव कराङ्गुल्या धूर्णयन्ती हलायुधम् ।  
 मुसलं चान्यहस्तेन भ्रामयन्ती मुहुर्मुहुः ॥१९  
 तरलेन्दुकलाचूडास्फुरत्पोत्रमुखाम्बुजा ।  
 पुरः प्रहर्वी समरे सर्वदा विक्रमोद्धता ।  
 अस्या अनुप्रचलिता गेयचक्ररथस्थिता ॥२०  
 धनुषो ध्वनिना विश्वं पूरयन्ती महोद्धता ।  
 वेणीकृतकचन्यस्तविलसच्चन्द्रपल्लवा ॥२१

उन दोनों ने रथों में शिरोमणि किरचक्र और जेय चक्र रथों पर समारोहण किया था । उन दोनों ने छत्रों को धारण किया था और चमर उन पर ढुराये जा रहे थे । वे दोनों ही प्रबृत्त अप्सराओं के द्वारा ले जायी जा रही थीं । वे दोनों ही ललिता देवी की आज्ञा पाकर युद्ध करने के लिए वहाँ से निकल कर चली थीं । १५-१६। श्री चक्रराज रथ की रक्षा के लिए ये निवेशित थीं । इन्होंने सौ अक्षीहिणी सेना और भीषण अस्त्रों को वर्जित कर दिया था । १७। अन्य समस्त चमू का जाल के साथ रण को उन्मुखी वह निकल कर चली थी । आगे रथ पर बंठी हुई दण्डनाथा रवाना हुई थी । १८। वह एक ही की अँगुली से हलायुध को घुमाती हुई और दूसरे हाथ से मुसल को बार-२ चुमा रही थी । १९। तरल चन्द्र की कला से स्फुरण करते हुए पोत्र मुखकमल वाली वह युद्धमें सबसे आगे सदा वह विक्रम से उद्धत रहती थी । इसके पीछे गेय चक्र रथ में विराजमान अनुगमन कर रही थी । २०। यह मद से उद्धत धनुष को ध्वनि से सम्पूर्ण विश्व को भर रही थी । उसने अपने

जूड़े की चोटी बनी रख्खी थी। जिसमें चन्द्र की कला शोभित हो रही थी। २१।

स्फुरत्तिवतनेत्रेण सिन्दूरतिलकत्विषा ।

पाणिना पद्मरम्येण मणिकंकणचारुणा ॥२२

तूणीरमुखतः कृष्टं भ्रामयन्ती शिलीमुखम् ।

जय वर्धस्ववर्धस्वेत्यतिहर्षसमाकुले । २३

नृत्यद्विद्विव्यमुनिभिर्बिर्द्धिताणीर्वचोऽमृतैः ।

गेयचक्ररथेन्द्रस्य चक्रनेमिविघट्टनैः ॥२४

दारयन्ती क्षितितलं दंत्यानां हृदयैः सह ।

लोकातिशायिता विश्वमनोमोहनकारिणा ।

गीतिबन्धेनामरीभिर्बह्वीभिर्गीतवैभवा ॥२५

अक्षोहिणीसहस्राणामष्टकं समरोद्धतम् ।

कर्षती कल्पविश्लेषनिर्मर्यादाब्धिसंनिभम् ॥२६

तस्याः शक्तिचमूचक्रे काश्चित्कनकरोचिषः ।

काश्चिद्वाडिमसंकाशाः काश्चिज्जीमूतरोचिषः ॥२७

अन्याः सिंदूररुचयः पराः पाटलपाटलाः ।

काचाद्रिकाभ्वराः काश्चित्पराः श्यामलकोमलाः ॥२८

स्फुरित तीन नेत्रों वाली और सिन्दूर के तिलक की कान्ति वाली देवी ने पद्म के तुल्य सुन्दर और मणियों के कंकण की कान्ति से सम्पन्न कर से तूणीर के मुख से खींचे हुए बाण को बुमा रही थी। वहाँ पर वर्धन हो—वर्धन हो—इसकी ध्वनि चारों ओर हो रही थी। २२-२३। दिव्य मुनिगण प्रसन्नता से नृत्य करते हुए वचनामृतों से आशीर्वाद दे रहे थे। गेय चक्र रथेन्द्र के पहियों का विघटन हो रहा था। इससे देत्यों के हृदय के साथ ही भूमि को विदीर्ण कर रही थी। उस समय में गीतों का भी बन्ध चल रहा था जो अलौकिक और विश्व के मन को मोहन करने वाला था। बहुत-सी मरीचियाँ गीत का गान कर रही थी। २४-२५। आठ हजार अक्षोहिणी सेना समर की उद्धत थी। कल्पान्त में मर्यादा से रहित सागर के

समान ही वह कर्षण कर रही थी । २६। उसकी शक्तियों की सेना के चक्र में विविध वेषभूषा वाली शक्तियाँ विद्यमान थीं । कुछ की कांति तो सुबर्ण के समान थी—कुछ दाढ़िम के तुल्य थीं और कुछ मेघों के तुल्य थीं । २७। अन्य सिन्धुर जैसी कान्ति वाली थी—कुछ पाटल वर्ण की थीं—कुछ कांच के अम्बरों की महाद्रि के सदृश थीं और दूसरी श्यामल एवं कोमल थीं । २८। क

अन्यास्तु हीरकप्रख्याः परा गारुत्मतोपमाः ।

विरुद्धैः पञ्चभिर्बण्िमिश्रितैः शतकोटिभिः ॥२६॥

व्यञ्जयंत्यो देहरुचं कतिचिद्विविधायुधाः ।

असंख्याः शक्तयश्चेतुर्दिन्यास्सैनिकस्तथा ॥३०॥

तथैव सैन्यसन्नाहो मंत्रिण्याः कुम्भसम्भव ।

यथा भूषणवेषादि यथा प्रभावलक्षणम् ॥३१॥

यथा सद्गुणशालित्वं यथा चाश्रितलक्षणम् ।

यथा दैत्योघसंहारो यथा सर्वेश्च पूजिता ॥३२॥

यथा शक्तिर्महाराज्या दण्डन्याश्च तथाखिलम् ।

विशेषस्तु परं तस्याः साचिव्ये तत्करे स्थितम् ।

महाराजीवितोर्णं तदाज्ञामुद्रांगुलीयकम् ॥३३॥

इत्थं प्रचलिते सैन्ये मंत्रिणीदण्डनाथयोः ।

तद्वारभंगुरा भूमिर्देलालीलामलंबत ॥३४॥

ततः प्रवृत्ते युद्धं तु मुलं रोमहर्षणम् ।

उद्धृतधूलिजंबालीभूतसप्तार्णं वीजलम् ॥३५॥

अन्य हीरे के सदृश थीं और कुछ गारुत्मत मणि के समान थीं ।

विरुद्ध पाँच बाणों से मिश्रित शत कोटियों से कुछ अनेक आयुधों वाली अपनी शारीरिक कान्ति को प्रकाशित कर रही थीं । ऐसी अगणित शक्तियाँ दण्डनी के सैनिकों के साथ वहाँ पर युद्ध के लिए चली थीं । २६-३०। हे कुम्भसम्भव ! जैसा उनका भूषण-वेषादि था और प्रभाव का लक्षण था वैसा ही मन्त्रिणी की सेना का भी सन्नाह भी था । ३१। जैसी सद्गुण शालिता थी और जो भी आश्रितों का लक्षण था तथा जैसा भी दैत्यों के

समुदाय का संहार था वैसी ही वे सबके द्वारा पूजित भी हुई थीं । ३२। महाराजी की जैसी शक्ति थी वैसी ही सम्पूर्ण दंडिनी की भी थी किन्तु विशेषता यही थी कि उसके हाथ में साचिव्य था । महाराजी ने उसकी आङ्गों की मुद्रांगूलीयक वितीर्ण कर दी थी । ३३। मनित्रणी और दण्डनाथा की सेना इस प्रकार से चली थी । उस सेना के भार से यह भूमि भगुर हो गयी थी और वह झूला की तरह ही हिलने लग गयी थी । ३४। इसके अनन्तर महान तुमुल और रोमहर्षण युद्ध प्रवृत्त हो गया था । उस युद्ध में उठी हुई धूलि में जो जम्बाल के ही समान हो गयी थी सातों सागरों के जल को छा लिया था । ३५।

**हयस्थर्हयसादिन्यो रथस्थै रथसस्थिताः ।**

आधोरण्हर्हस्तपकाः खड्गः पदगाश्च सङ्घताः ॥ ३६ ॥

**दण्डनाथाविषंगेण समयुध्यंत सङ्घरे ।**

विशुकेण समं श्यामा त्रिकृष्टमणिकामुंका ॥ ३७ ॥

अश्वारुद्धा चकारोच्चैः सहोलूकजिता रणम् ।

सम्पदीशा च जग्राह पुरुषेण युयुत्सया ॥ ३८ ॥

विषेण नकुली देवी समाहवास्त युयुत्सया ।

कुन्तिषेणेन समरं महामाया तदाकरोत् ॥ ३९ ॥

मलदेन समं चक्रं युद्धमुन्मत्तभैरवी ।

लघुश्यामा चकारोच्चैः कुशरेण समं रणम् ॥ ४० ॥

स्वप्नेशी मंगलाख्येन दैत्येन्द्रेण रणं व्यधात् ।

वाग्वादिनी तु जघटे द्रुघणेन समं रणे ॥ ४१ ॥

कोलाटेन च दुष्टेन चण्डकाल्यकरोद्रणम् ।

अक्षौहिणीभिर्दत्यानां शताक्षौहिणिकास्तथा ।

महातं समरे चक्रं रन्योन्यं क्रोधमूर्छिताः ॥ ४२ ॥

जो अश्वों पर सवार थे उन्होंने युद्ध सबारों के साथ—एवं हस्तिपकों ने आधोरणों के साथ और पदातियों ने पैदल संनिकों से सङ्घत होकर खड्गों से युद्ध किया था । ३६। संग्राम में दण्डनाथा ने विषङ्ग के साथ युद्ध किया । अपने मणियों के कामुक को लोकर श्यामा ने विषङ्ग के लावे युद्ध

किया था । ३७। अश्वारुदा ने बहुत भारी उल्क जितु के साथ रण किया था। सम्पदीक्षा ने युद्ध की इच्छा से पुरुष के साथ युद्ध ग्रहण किया था । ३८। नकुली देवी ने युद्ध करने की इच्छा से विष को बुलाया था। माहमाया ने कृतिषेण के साथ युद्ध किया था । ३९। उम्मत श्रेरवी ने मलद के साथ संग्राम किया था और लघुश्यामा ने कुशर के साथ रण किया था । ४०। स्वप्नेशी ने मङ्गल के साथ युद्ध किया था। वाग्वादिनी ने द्रुष्टव्य के साथ रण में भिड़न्त की थी । ४१। चण्डकाली ने कोलाट के साथ रण किया था। देत्यों की अक्षोहिणियों के साथ सौ अक्षोहिणी सेनाओं ने परस्पर में बड़ा भारी युद्ध क्रोध में मूर्छित होकर किया था । ४२।

**प्रवर्तमाने समरे विशुको दुष्टदानवः ।**

**वर्धगानां शक्तिचमूँ हीयभानां निजां चमूम् ॥४३॥**

अवलोक्य रुषाविषः स कृष्टगुरुकार्मुकः ।

जक्तिसन्ये समस्तेऽपि तृषास्त्रं प्रमुमोच ह ॥४४॥

तेन दावानलज्वालादीप्तेन मथितं बलम् ।

तृतीये युद्धदिवसे याममात्रं गते रवौ ।

विशुकमुक्ततर्वास्त्रव्याकुलाः शक्तयोऽभवत् ॥४५॥

ओभयन्निन्द्रियग्रामं तालुमूलं विशोषयन् ।

रुक्षयन्कर्णकुहरमंगदीर्बल्यमाहवन् ॥४६॥

पातयन्पृथिवीपृष्ठे देहं विश्वसितायुधम् ।

आविर्बभूव शक्तीनामतितीव्रस्तृषाज्वरः ॥४७॥

युद्धेष्वनुद्यमकृता सर्वोत्साहविरोधिना ।

तर्षेण तेन कवथितं शक्तिसन्यं विलोक्य सा ।

मन्त्रिणी सह पोत्रिष्या भृशं चितामवाप ह ॥४८॥

उवाच तां दण्डनाथामत्याहितविशकिनीम् ।

रथस्थिता रथगता तत्प्रतीकारकर्मणे ।

सखि पोत्रिणि दुष्टस्य तष्ठस्त्रमिदमागतम् ॥४९॥

उस युद्ध के प्रवृत्त होने पर दुष्ट दानव विशुक्र ने जब यह देखा था कि शक्तियों की सेना बढ़ रही है और अपनी क्षीण हो रही है तो क्रोध में भरकर उसने एक बड़ा धनुष खींचा था और उस समस्त शक्तियों की सेना में तृष्णास्त्र छोड़ दिया था । ४३-४४। उसने जो दावानल की जवाला के समान दीप्त था उस बड़ी सेना को मथ दिया था । तीसरे यद्ध के दिन में एक प्रहर मात्र रवि के गत होने पर विशुक्र के द्वारा छोड़े हुए तृष्णास्त्र से शक्तियों व्याकुल हो उठी थीं । ४५। उन तालु के मूल का शोषण कर रहा था । कानों के छिद्र भी रुक्ष हो रहे थे और अङ्गों में दुर्बलता हो रही थी तथा आयुधों को छोड़कर देहों को भूमि पर गिरा रहा था । ४६-४७। युद्ध में अनुचाम करने वाले तथा समस्त उत्साह के विरोधी उस तर्ण के द्वारा क्वथित शक्तियों की सेना को देखकर वह मन्त्रिणी पोत्रिणी के साथ बहुत ही चिन्तित हो गयी थी । ४८। अतीव अहित विशंका वाली उस दण्डनाथा से बोली रथ में स्थित और रथगता होकर उसके प्रतिकार कर्म के लिए कहा था हे सखि ! पोत्रिणि ! यह दुष्ट का तृष्णास्त्र आ गया है । इसका हमारी सेना पर बहुत ही बुरा प्रभाव हो गया है । ४९।

शिथिलीकुरुते सैन्यमस्माकं हा विधेः क्रमः ।

विशुष्कतालुमूलानां विभ्रष्टायुधतेजसाम् ।

शक्तीनां मंडलेनात्र समरे समुपेक्षितम् ॥५०॥

न कापि कुरुते युद्धं न धारयति चायुधम् ।

विशुष्कतालुमूलत्वादक्तुमप्यालि न क्षमाः ॥५१॥

ईदृशीन्नो गति श्रुत्वा किं वक्ष्यति महेश्वरी ।

कृता चापकृतिदर्त्यैरुपायः प्रविचित्यताम् ॥५२॥

सर्वत्र द्वयष्टसाहस्राक्षीहिण्यामत्र पोत्रिणि ।

एकापि शक्तिनैवास्ति या तर्णेण न पीडिता ॥५३॥

अत्रैवावसरे दृष्ट्वा मुक्तशस्त्रा पताकिनीम् ।

रंध्रप्रहारिणो हंत वाणीनिघ्नंति दानवाः ॥५४॥

अत्रोपायस्त्वया कार्यो मया च समरोद्यमे ।

त्वदीयरथपर्वस्थो योऽस्ति शीतमहार्णवः ॥५५॥

तमादिश समस्तानां शक्तीनां तर्षनुत्तये । ॥५५॥  
नाल्पैः पानीयपानाद्यैरेतासां तर्षसंक्षयः ॥५६॥

हा ! विश्वाता का क्या क्रम है । यह अस्त्र तो हमारी सेना को जिधिल कर रहा है । सबके तालुमूल सूख गये हैं और सबके आयुध भ्रष्ट हो गये हैं । इस युद्ध में शक्तियों का मण्डल उपेक्षित हो गया है ॥५०॥ न तो कोई भी युद्ध करती है और न कोई आयुध ही ग्रहण कर रही है । हे आलि ! तालुमूलों के शुष्क हो जाने से ये तो बोलने में भी असमर्थ हो गयी है ॥५१॥ हमारी ऐसी दशा को सुनकर महेश्वरी क्या कहेगी । दैत्यों ने तो हमारा बड़ा ही अपकार किया है । इसका कोई उपाय सोचना चाहिए ॥५२॥ हे पोत्रिणि ! सोलह हजार सर्वत्र यहाँ पर अक्षीहिणी हैं । ऐसी एक भी शक्ति नहीं है जो तर्ष से पीड़ित न होवे ॥५३॥ इसी अवसर सेना को हथियारों को छोड़ने वाली देखकर ये दानव छिद्रों में प्रहार करने वाले हैं और बाणों से निहनन कर रहे हैं । यह बड़े ही खेद की बात है ॥५४॥ यहाँ पर तुमको और मुझको कोई उपाय करना चाहिए । उस समरोद्धम में कुछ करना ही है । तुम्हारे रथ के पर्व में स्थित जो शीत का महार्णव है ॥५५॥ उसको ही शक्तियों की तृष्णा के छेदन के लिए आदेश दो क्योंकि अल्प पानीय के पानों से उनकी तृष्णा का क्षय नहीं होगा ॥५६॥

स एव मदिरासिधुः शक्त्यौघं तर्षयिष्यति । ॥५७॥  
तमादिश महात्मानं समरोत्साहकारिणम् । ॥५८॥  
सर्वतर्षप्रशमनं महाबलविवर्धनम् ॥५९॥  
इत्युक्ते दण्डनाथा सा सदुपायेन हृषिता । ॥६०॥  
आजुहाव सुधासिधुमाजां चक्रेश्वरी रणे ॥६१॥  
स मदालसरक्ताक्षो हेमाभः स्त्रिवभूषितः ॥६२॥  
प्रणम्य दण्डनाथा ती तदाज्ञापरिपालकः ॥६०॥  
आत्मानं बहुधा कृत्वा तरुणादित्यपाटलम् । ॥६३॥  
क्वचित्तापिच्छवच्छयामं क्वचिच्च ध्वलदयुतिम् ॥६४॥  
कोटिशो मधुराधारा करिहस्तसमाकृतीः । ॥६५॥  
ववर्षं सिधुराजोऽय वायुना बहुलीकृतः ॥६२॥

गुष्क रावर्तकाद्यैस्तु कल्पक्षयबलाहकैः ॥६३॥  
निषिद्धमानो मध्येऽधिः शक्तिसैन्ये पपात हि ॥६३॥

वही मदिरा का सिन्धु शक्तियों के समूहों को तृप्त करेगा । समर के उत्साह करने वाले महान् आत्मा वाले उसी को आदेश दो । वह समस्त तर्ष का प्रशमन करने वाला है और महान् बल के बढ़ानेवाला है ॥६३॥ ऐसा कहने पर वह दण्डनाथा इस समुदाय से परम हृषित हुई थी । चक्रेश्वरी ने रथ में सुधा के सिन्धु को आजा देकर बुलाया था ॥५८॥ वह मद से अलस और रक्त नेत्रों वाला था—हेम के समान उसकी आभा थी । माजाओं से वह भूषित था ॥५९॥ उसकी आज्ञा के पालक उसने दण्डनाथा को प्रणाम किया था ॥६०॥ उसने अनेक प्रकार का अपना स्वरूप बना लिया था—कहीं तो तरुण सूर्य के समान वह पाटल था और कहीं पर तापिच्छ के तुल्य श्यामल था और कहीं पर घबल कान्ति वाला था ॥६१॥ इस सिन्धुराज ने वायु के द्वारा अधिक होकर हाथी के सूँड के समान आकार वाली करोड़ों धाराएँ वर्षायी थीं ॥६२॥ कल्प के क्षय के समय पुष्कलावर्तक आदि बलाहकों से निषिद्धमान शक्तियों के मध्य में वह सागर गिरा था ॥६३॥

यदगन्धाद्याणमात्रेण मृत उत्तिष्ठते स्फुटम् ।

दुर्बलः प्रबलश्च स्यात्द्ववर्षं सुरांबुधिः ॥६४॥

पराद्दं संख्यातीतास्ता मधुधारापरम्पराः ।

प्रपिबन्त्यः पिपासात्मेमुखैः शक्तय उत्थिताः ॥६५॥

यथा सा मदिरासिंधुवृष्टिदेत्येषु नो पतेत् ।

तथा सैन्यस्य परितो महाप्राकारमण्डलम् ॥६६॥

लघुहस्ततया मुक्तै शरजातैः सहस्रशः ।

चकार विस्मयकरी कदम्बवनवासिनी ॥६७॥

मर्मणा तेन सर्वेऽपि विस्मिता मरुतोऽभवन् ।

अथ ताः शक्तयो भूरि पिबन्ति स्म रणातरे ॥६८॥

विविधा मदिराधारा बलोत्साहविवर्धनीः ।

तथा तथा तन भीति रुक्षि राजा दोषाद्यामा ॥६९॥

तृतीये युद्धदिवसे प्रहरद्वितयावधि ।

संततं मद्धधाराभिः प्रवर्ष सुराम्बुधिः ॥७०

जिसकी गन्ध मात्र से ही मृत प्राणी स्पष्ट उठकर खड़ा हो जाया करता है और जो दुर्बल होता है वह प्रबल हो जाया करता है वह सुराम्बुधि वर्षा था । ६४। परार्धं संरूपा से अतीत मधु धाराओं की परम्पराएँ यीं उनका पान करती हुई पिपासा से आर्तमुखों से उनने पान किया था और वे शक्तियाँ उठकर खड़ी हो गयी थीं । ६५। उस सेना के चारों ओर ऐसा एक प्रकार का मण्डल था कि जिससे वह मदिरा सिन्धु की वृष्टि देत्यों पर न जाकर पड़ जावे । ६६। कदम्ब वन वासिनी ने लघु हस्तता से छोड़े गये सहस्रों शरों से विस्मयकरी किया था । ६७। उस कर्म से सभी मरुत विस्मित हो गये थे । इसके अनन्तर उन शक्तियों ने रण के मध्य में पान बहुत किया था । ६८। अनेक मदिरा की धाराएँ बल और उत्साह के बधान करने वाली थीं । जिस-जिस के मन की जो-जो भी प्रीति थी वैसो-वैसी ही पी थी । ६९। तीसरे युद्ध के दिन में दो प्रहर की अवधि तक सुराम्बुधि ने निरन्तर मध्य की धाराओं से वर्षा की थी । ७०।

गौडी पैष्ठी च माढ्वी च वरा कादम्बरी तथा ।

हैताली लांगलेया च तालजातास्तथा सुरा: ॥७१॥

कल्पवृक्षोऽद्भुवा दिव्या नानादेशसमुद्भवाः ।

सुस्वादुसौरभाद्याश्च शुभगंधसुखप्रदाः ॥७२॥

बकुलप्रसवामोदाः ध्वनंत्यो बुद्बुदोज्ज्वलाः ।

कटुकाश्च कणायाश्च मधुरास्तिक्ततास्पृशः ॥७३॥

बहुवर्णसग्निविष्टाश्छेदिनीः पिच्छलास्तथा ।

ईषदम्लाश्च कट्वम्ला मधुराम्लास्तथा पराः ॥७४॥

शस्त्रक्षतरुगाहंत्री चास्थिसंधानदायिनी ।

रणध्रमहरा शीता लघ्व्यस्तद्वत्कवोष्टकाः ॥७५॥

संतापहारिणीश्चैव वारुणीस्ता जयप्रदाः ।

नानाविद्वा सुराधारा ववर्ष मदिरार्णवः ॥७६॥

अविच्छिन्नं याममात्रमेकका तत्र योगिनी ।

ऐरावतकरप्रख्यां सुराधारां मुदा पपौ ॥७७॥

मुरा एँ कितनी ही प्रकार की थीं । अब उनके प्रकारों को बताया जाता है—गौड़ी-पैष्टी-माधवी-वरा-कादावरी-हैताली-लाञ्छलेया—और ताल जाता सुरा एँ थी । ७१। कल्प वृक्ष से समुत्पन्न-दिव्या-अनेक देशों में उत्पन्ना थी । ये सुन्दर स्वाद वाली और सौरभ वाली थीं और इनसे शुभ गन्ध निकलती थीं । ७२। बकुल के प्रसवा-आमोदा-छवनन्ती-बुद्बुदा—उज्ज्वला थीं । कटुका-कषाया-मधुरा-तिक्तता के स्पर्श वाली थीं । ७३। बहुत वर्णों से समाविष्टा-छेदिनी-पिच्छला-ईषद् अम्ला-कट्टम्ला—तथा मधुराम्ला थीं । ७४। शस्त्र से होने वाले क्षत के रोग का हनन करने वाली—अस्थियों के सन्धान को देने वाली-लघ्वी और कबूष्टका थीं । ७५। सन्ताप का हरण करने वाली तथा वाहणी—जय प्रदान करने वाली—इस तरह से उस सुधार्णव ने अनेक प्रकार की सुराओं की धाराओं की वर्षा की थीं । ७६। वहाँ पर एक-एक योगिनी ने एक प्रहर तक अविच्छिन्न रूप से ऐरावत करप्रख्या सुरा की धारा को आनन्द के साथ पान किया था ।

उत्तानं वदनं कृत्वा विलोलरसनाश्वलम् ।

शक्तयः प्रपपुः सीधु मुदा मीलितलोचनाः ॥७६॥

इत्थं बहुविधं माधवीधारापातेः सुधांबुधिः ।

आगतस्तर्पयित्वा तु दिव्यरूपं समास्थितः ॥७६॥

पुनर्गत्वा दण्डनाथां प्रणम्य स सुरांबुधिः ।

स्तिर्घगंभीरघोषेण वाक्यं चेदमुवाच ताम् ॥८०॥

देवि पश्य महाराज्ञि दण्डमण्डलनायिके ।

मया संतप्तिता मुग्धरूपा शक्तिवरुथिनी ॥८१॥

काश्चिचन्तुत्यंति गायंत्यो कलकवणितमेखलाः ।

नृत्यंतीनां पुरः काश्चित्करतालं वितन्वने ॥८२॥

काश्चिच्छसंति व्यावलग्द्वलगुवक्षोजमण्डलाः ।

पतंत्यन्योन्यमञ्जेषु काश्चिदानन्दमन्थराः ॥८३॥

काश्चिच्छलगंति च श्रोणिविगलन्मेखलांबराः ।

काश्चिदुत्थाय ननेद्वा घूर्णयन्ति निरायुधाः ॥८४॥

शक्तियों ने अपने मुख को ऊपर की ओर उठाकर चञ्चल रसना वाली होते हुए अपनी आँखों को मूँदकर आनन्द से उस चल सुरा का पान किया था । ७८। इस रीति से उस सुधाम्बुद्धि ने बहुत तरह के माध्वी की धाराओं के पातों से तृप्त करके दिव्य रूप में समाप्ति हो गया था । ७९। फिर वह सुराम्बुद्धि दण्डनाथा को प्रणाम करके परम स्तिरघ और गम्भीर ध्वनि से उस देवी से यह वाक्य बोला था । ८०। हे महाराजि ! हे देवि ! हे दण्ड मण्डलनायिके ! आप देख लीजिए । मैंने मुग्धरूप वाली शक्तियों की सेना को भली-भाँति तृप्त कर दिया है । ८१। उनमें कुछ तो नृत्य कर रही हैं कुछ कल क्वणित मेखलाओं वाली गान कर रही हैं । नृत्य करने वाली शक्तियों के थागे कुछ करों से ताल दे रही हैं । ८२। कुछ व्यावलगबल्नु उरोजमण्डलों वाली होस रही है । कुछ आनन्दोद्वेक में मन्त्रर होती हुई परस्पर में अंगों में पतन कर रही हैं । ८३। कुछ अपनी श्रोणियों पर से गिरते हुए मेखलाम्बरों काली वल्ग कर रही है । कुछ उठाकर सन्नद्ध हो रही हैं और विना हो आयुधों के घूर्णन कर रही हैं । ८४।

इत्थं निदिश्यमानास्ताः शक्ती मेरेय सिधुना ।

अवलोक्य भृशं तुष्टा दण्डनी तमुवाच ह ॥८५॥

परितुष्टास्मि मद्याब्धे त्वया साह्यमनुष्ठितम् ।

देवकार्यमिदं कि च निविदिनतमिदं कृतम् ॥८६॥

अतः परं मत्प्रसादाद्वापरे याज्ञिकैर्मुखे ।

सोमपानवदत्यंतमुपयोज्यो भविष्यसि ॥८७॥

मन्त्रेण पृतं त्वां यागे पास्यन्त्यखिलदेवताः ।

यागेषु मन्त्रपूतेन पीतेन भवता जनाः ॥८८॥

सिद्धिमृद्धि वलं स्वर्गमपवर्गं च विभ्रतु ।

महेश्वरी महादेवो वलदेवश्च भार्गवः ॥८९॥

दत्तात्रेयो विधिविष्णुस्त्वां पास्यन्ति महाजनाः ॥९०॥

यागे समचितस्त्वं तु सर्वसिद्धि प्रदास्यसि ॥९१॥

इत्थं वरप्रदातेन तोषयित्वा सुराम्बुद्धिम् ॥९२॥

इस तरह से दिखाई गयीं उन शक्तियों को देखकर जो मेरेय सीधु से आनन्दित हो रही थीं दण्डनी अत्यन्त प्रसन्न हुई थी और उससे कहा था । ८५। हे मद्याव्ये ! मैं बहुत ही यदि तुष्ट हुई हूँ । आपने हमारी सहायता की है । यह देव कार्य है इसको आपने विघ्न रहित कर दिया है । ८६। अब इससे आगे द्वापर युग में मेरे प्रसाद से मख में याज्ञिकों के द्वारा सोम के पान के ही समान आप अत्यन्त उपयोग के योग्य होंगे । ८७। समस्त देवगण याग में मन्त्र से पूत करके इसका पान किया करेंगे । यागों में मन्त्र से पवित्र का पान भक्तजन करेंगे । ८८। इसके प्रभाव से सिद्धि-ऋद्धि—स्वर्ग—अपवर्ग को प्राप्त करेंगे । महेश्वरो—महादेव—बलदेव—भागव—दत्तात्रेय—विधि-विष्णु—ऐसे महान् सिद्धि जन भी तुम्हारा पान करेंगे । ८९। याग में समचित् तू सब प्रकार की प्रदान करोगी । ९०। इस प्रकार से वरदान के द्वारा सुराम्बुधि को तुष्ट किया था । ९१।

**मंत्रिणी त्वरयामास पुनयुद्घाय दण्डनी ।**

पुनः प्रवतृते युद्धं शक्तीनां दानवैः सह ॥ ९२ ॥

मुदाद्टहासनिभिन्नदिगष्टकधरा धरम् ।

प्रत्यग्रमदिरामत्ताः पाटलीकृतलोचनाः ।

शक्तयो दैत्यचक्रेषु न्यपतन्नेकहेलया ॥ ९३ ॥

द्वयेन द्वयमारेजे शक्तीनां समदश्रियाम् ।

मदरागेण चक्षूषि दैत्यरक्तेन शस्त्रिका ॥ ९४ ॥

तथा बभूव तुमुलं युद्धं शक्तिसुरद्विषाम् ।

यथा मृत्युरवित्रस्तः प्रजाः संहरते स्वयम् ॥ ९५ ॥

संस्खलत्पदविन्यासामदेनारक्तहृष्यः ।

स्खलदक्षरसंदर्भवीरभाषा रणोद्धताः ॥ ९६ ॥

कदम्बगोलकाकारा दृष्टसवींगहृष्यः ।

युवराजस्य संन्यानि शक्तयः समनाशयन् ॥ ९७ ॥

अक्षीहिणीशतं तत्र दण्डनी सा व्यदारयत् ।

अभीष्मिणीगार्दकतं नामामाम भन्नापी ॥ ९८ ॥

मन्त्रिणी और दण्डनी दोनों ने पुनः युद्ध करने के लिए शीघ्रता की थी और फिर शक्तियों का दानबों के साथ युद्ध प्रवृत्त हो गया था । ६२। प्रसन्नता से अट्टहास जो उन्होंने किया था तो आठों दिशाओं को और धरा को हिला दिया था । नवीन मदिरा से मत्त हो गयी थीं और उनके लोचन पाटल वर्ण के थे । वे शक्तियाँ देत्यों के चक्र में एक ही हल्ला के साथ निपत्ति हो गयी थीं । ६३। मद की श्री से सम्पन्न शक्तियों का युद्ध ऐसा हुआ था कि दो से दो ही भिड़ गयी थीं और शोभित हुई थीं । मद के राग से तो नेत्र लाल हो गयी थीं और देत्यों के रक्त से शस्त्र रक्त हो गये थे । ६४। शक्ति और असुरों का बड़ा तुमुल युद्ध हुआ था जैसे अविकृस्त मृत्यु स्वयं ही प्रजाओं का संहार करता हो । ६५। उनके चरणों के न्यास स्खलित हो रहे थे तथा मद से कुछ रक्त वर्ण के नेत्र हो रहे थे । वीरभाषा भी ऐसी थी कि उनमें अक्षरों का सन्दर्भ स्खलित हो रहा था । ऐसी वे रण में उद्धत हो गयी थीं । ६६। कदम्ब गोलक के आकार से युक्त और हष्ट सर्वाङ्ग हष्टि वाली शक्तियों ने युवराज की सेनाओं का विनाश कर दिया था । ६७। उस दण्डनी ने वहाँ पर सौ अक्षौहिणियों को विदीर्ण कर दिया था और डेढ़ सौ अक्षौहिणी का विनाश मन्त्रिणी ने कर दिया था । ६८।

अश्वारूढप्रभृतयो मदारुणविलोचनाः ।

अक्षौहिणीसार्धशतं निन्युरंतकमन्दिरम् ॥६६॥

अंकुशेनातितीक्ष्णेन तुरगा रोहणी रणे ।

उलूकजितमुन्मथ्य परलोकातिथि व्यधात् ॥१००॥

सम्पत्करीप्रभृतयः शक्तिदण्डाधिनायिकाः ।

पर्वेण मुखान्यन्यान्यवरुद्धा व्यदारयन् ॥१०१॥

अस्तं गते सवितरि छ्वस्तसर्वबलं ततः ।

विशुक्रं योधयामास श्यामला कोपशालिनी ॥१०२॥

अस्त्रप्रत्यस्त्रमोक्षेण भीषणेन दिवीकसाम् ।

महता रणकृत्येन योधयामास मन्त्रिणी ॥१०३॥

आयुधानि सुतीक्ष्णानि विशुक्रस्व महौजसः ।

क्रमशः खंडयती सा केतनं रथसारथिम् ॥१०४॥

धनुगुणं धनुर्देहं खंडयंती शिलीमुखैः ।

अस्त्रेण ब्रह्मशिरसा ज्वलत्पावकरोचिषा ॥ १०५

मद से अरुण लोचनों वाली अश्वारुद्धा आदि ने ढेढ़ सौ अक्षीहिणी को यमराज के पुर में भेज दिया था । १०६। अत्यन्त तीक्ष्ण अंकुश से अश्वारोहिणी ने युद्ध में उलूक जित् का उन्मथन करके उसे परलोक भेज दिया था । १००। सम्पत्करी प्रभृति शक्ति दण्डाधिनायिओं ने अपने कठोर प्रहार से परस्पर में अवरुद्धों को विदीण कर दिया था । १०१। सूर्य के अस्ताचलगामी होने पर समस्त सेना के इवस्त होने वाले विशुक्र के साथ कोपशालिनी श्यामा ने युद्ध किया था । १०२। मन्त्रिणी ने अस्त्र प्रत्यस्त्रों के छोड़ने के द्वारा देवों को भी भीषण महान रण कृत्य से युद्ध किया था । १०३। महान ओज वाले विशुक्र के परम तीक्ष्ण आयुधों का क्रम से खण्डन करती हुई उसने बाणों के द्वारा छजा रथ के सारथि-धनुष की प्रत्यञ्चा-धनुष का खण्डन करती हुई जलती हुई अस्त्र की कान्ति वाले ब्रह्मशिर अस्त्र से विशुक्र का मर्दन किया था । १०४-१०५।

विशुक्रं मर्दयामास सोऽपतच्चूर्णविग्रहः ।

विषंगं च महादेत्य दण्डनाथा मदोद्धता ॥ १०६

योधयामास चडेन मुसलेन विनिघ्नती ।

स चापि दुष्टो दनुजः कालदंडनिभां गदाम् ।

उद्यम्य बाहुना युद्धं चकाराशेषभीषणम् ॥ १०७

अन्योन्यमंग मृदनंतौ गदायुद्धप्रवर्तिनौ ।

चण्डाट्टहासमुखरौ परिभ्रमणकारिणौ ॥ १०८

कुवण्णौ विविधाण्चारान्धूर्णतौ तूर्णवेष्टिनौ ।

अन्योन्यदंडहननैर्मोहयंतौ मुहुर्मुहुः ॥ १०९

अन्योन्यप्रहृतौ रंधमीक्षमाणौ महीद्धतौ ।

महामुसलदंडाग्रघट्टनक्षोभितांबरौ ।

अयुध्येतां दुराधर्षौ दंडिनीदेत्यशेखरौ ॥ ११०

अशार्दुरात्रिसमयपर्यंतं कृतसंगरा ।

संकुद्धा हन्तुमारेभे विषंगं दंडनायिका ॥१११

तं मूर्द्धनि निमग्नेन हलेनाकृष्य वैरिणम् ।

कठोरं ताडनं चके मुसलेनाथ पोत्रिणी ॥११२

ततो मुसलघातेन त्यक्तप्राणो महासुरः ।

चूणितेन शतांगेन समं भूतलमाश्रयत् ॥११३

इति कृत्वा महत्कर्म मंत्रिणीदंडनायिके ।

तत्रैव तं निशाशेषं निन्यतु शिविरं प्रति ॥११४

विशुक्र का ऐसा विमदंन किया था कि वह चूर-चूर होकर भूमि पर गिर गया था । मदोद्धता दण्डनाथा ने महान् दैत्य विषंग के साथ युद्ध किया था और अपने प्रचण्ड मुसल से उस पर प्रहार किया था और वह दुष्ट दानव भी कालदण्ड के समान गदा को लेकर प्रस्तुत हो गया था और उसने बाहु से महान् भीषण युद्ध किया था । १०६-१०७। परस्पर में एक दूसरे का मदंन करते हुए महान् गदा युद्ध में प्रवृत्त हुए थे । चण्ड चट्टहास से दोनों शब्दायमान हो रहे थे और उधर-उधर परिभ्रमण करने वाले थे । १०८। अनेक चारों को करते हुए घूर्णन करते थे और तूर्ण बेष्टी हो रहे थे । परस्पर में प्रहारों से एक दूसरे को बार-बार मूर्च्छित करते हुए दोनों मदोद्धत छिद्रों को देख रहे थे । मूसल के दण्ड के प्रघट्टन से अम्बर को क्षुब्ध करते हुए वे दुराधर्ष दंडिनी और वह दैत्य शिरोमणि युद्ध कर रहे थे । १०९-११०। आधी रात तक युद्ध करने वाली दण्डनायिका ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर विषंग को मारना आरम्भ कर दिया था । १११। इसके शिर में गढ़े हुए हल से उस शत्रु को खींचकर पोत्रिणी ने मुसल ने खूब ताड़न किया था । ११२। फिर मुसल की चोट से महान् असुर गत प्राण वाला हुआ था और चूर्ण होकर भूमि पर गिर पड़ा था । ११३। उन मंत्रिणी और दण्डनायिका ने यह महान् कर्म करके वहाँ पर ही शिविर में उस रात्रि को व्यतीत किया था । ११४।

## ॥ चंडालुर वध वर्णन ॥

अगस्त्य उवाच—

अश्वानन महाप्राज्ञ वर्णितं मन्त्रिणीबलम् ।

विषंगस्य वधो युद्धे वर्णितो दण्डनाथया ॥१॥

श्रीदेव्या: श्रोतुमिच्छामि रणचक्रे पराक्रमम् ।

सोदरस्यापदं दृष्ट्वा भण्डः किमकरोच्छ्रुचा ॥२॥

कथं तस्य रणोत्साहः कैः समां समयुद्धयत ।

सहायाः केऽभवंस्तस्य हतभ्रातृतनूभुवः ॥३॥

हयग्रीव उवाच—

इदं शृणु महाप्राज्ञ सर्वपापनिकृन्तनम् ।

ललिताचरितं पुण्यमणिमादिगुणप्रदम् ॥४॥

वैषुवायनकालेषु पुण्येषु समयेषु च ।

सिद्धिदं सर्वपापव्यं कीर्तिदं पञ्चपर्वसु ॥५॥

तदा हतौ रणे तत्र श्रुत्वा निजसहोदरौ ।

शोकेन महताविष्टो भण्डः प्रविललाप सः ॥६॥

विकीर्णकेशो धरणी मूष्ठितः पतितस्तदा ।

न लेखे किञ्चिदाश्वासं भ्रातृव्यसनकर्णितः ॥७॥

अगस्त्यजी ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! हे अश्वानन ! आपने मन्त्रिणी के बल का वर्णन कर दिया है और दण्डनाथा ने युद्ध में विषंग वध किया था वह भी वर्णन कर दिया है । १। अब मैं युद्ध में श्रीदेवी के पराक्रम के श्रवण करने की इच्छा करता हूँ और भण्ड ने भाई के हनन को सुनकर शोक से क्या किया था ? फिर उसका रण में उत्साह कैसे हुआ था और उसने किनके साथ युद्ध किया था । जब उसके भाई पुत्र मर गये तो फिर उसके सहायक कौन हुए थे । २-३। हयग्रीवजी ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! अब यह भी आप सुनिए जो कि सब पापों का छेदन करने आला है । यह श्री ललिता देवी का बरित पात्र पुण्यमय है और अग्निविक आठों पात्र-

सिद्धियों के प्रदान करने वाला है । ५। वैषुवायन कालों में और पुण्य समयों में यह सिद्धि के देने वाला—सब पापों का विनाशक और पञ्च पवों में कीर्ति का दाता है । ६। उस समय में रण में अपने सहोदरों को मरे हुए मुनकद भंड महान् शोक से समाविष्ट हो गया था और उस भंडासुर ने वहाँ भारी विलाप किया था । ७। विकीर्ण के शों वाला वह मूर्छित होकर भूमि पर गिर गया था और भाइयों के दुख से कशित होकर कुछ भी आश्वासन उसने प्राप्त नहीं किया था । ८।

पुनः पुनः प्रविलपन्कुटिलाक्षेण भूरिशः ।

आश्वास्यमानः शोकेन युक्तः कोपमवाप सः ॥८॥

फालं वहन्नतिक्रूरं भ्रमद्भ्रुकुटिभीषणम् ।

अंगारपाटलाक्षश्च निःश्वसन्कृष्णसर्पवत् ॥९॥

उवाच कुटिलाक्षं द्रावसमस्तपृतनापतिभ् ।

क्षिप्रं मुहुर्मुहुः स्पृष्ट्वा धुन्वानः करवालिकाम् ॥१०॥

क्रोधहुकारमातन्वन्गर्जन्नुत्पातमेघवत् ॥११॥

यथैव दृष्ट्या मायावलादयुद्धे विनाशिताः ।

भ्रातरो सम पुत्राश्च सेनानाथाः सहस्रशः ॥१२॥

तस्याः स्त्रियाः प्रमत्तायाः कण्ठोत्थः शोणितद्रवैः ।

भ्रातृपुत्रमहाशोकवह्नि निर्वापियाम्यहम् ॥१३॥

गच्छ रे कुटिलाक्ष त्वं सज्जीकुरु पताकिनीम् ।

इत्युक्तवा कठिनं वर्म वज्रपातसहं महत् ॥१४॥

वह बार-बार प्रलविलाप कर रहा था तब कुटिलाक्ष ने उसको आश्वासन दिया था । जब बहुत कुछ समझाया तो शोक से युक्त उसने क्रोध किया था । ९। उसने अत्यन्त क्रूर फाल को ग्रहण किया था और अपनी भृकुटियों को तिरछी करके बहुत ही भीषण हो गया था । उसकी आँखें अङ्गारों के समान रक्त हो गयी थीं और वह काले सर्प की तरह फुङ्कारे मार रहा था । १०। फिर सब सेनाओं के स्वामी कुटिलाक्ष से शीत्र ही बोला था और बार-बार खङ्ग को लूटर उसे बुमाता जा रहा था । ११। वह क्रोध से हुङ्कार कर रहा था और उत्पात के समय में होने वाले मेघों के समान

गर्ज रहा था । ११। जिस दुष्टा ने माया के बल से युद्ध में मेरे भाइयों और पुत्रों को मार दिया है और सहस्रों सेना पतियों का विनाश कर दिया है उसी स्त्री के जब वह युद्ध में प्रवृत्त होगी तो उसके कण्ठ से निकले हुए रुधिर से भाई और पुत्रों के शोक की अग्नि को मैं शान्त करूँगा । १२-१३। रे कुटिलाक्ष ! चले जाओ और सेना को तैयार करो । इतना ही कहकर उसने वज्रपात को भी सहन करने वाले कठिन कवच को धारण किया था । १४।

दधानो भुजमध्येन बधनन्पृष्ठे तथेषुधी ।

उद्दाममौविनिः श्वासकठोरं आमयन्धनुः ॥ १५ ॥

कालाग्निरिव संकुद्धो निर्जगाम निजात्पुरात् ।

तालजंघादिकैः साढ्हौ पूर्वद्वारे निवेशिते ॥ १६ ॥

चतुभिधृं तश्चस्त्रीघृं धृं तवर्म्भिरुद्धर्तः ।

पञ्चर्त्रिशच्चमूनाश्चैः कुटिलाक्षपुरः सरैः ॥ १७ ॥

सर्वसेनापतींद्रेण कुटिलाक्षेण स कुधा ।

मिलितेन च भण्डेन चत्वारिंशच्चमूवराः ॥ १८ ॥

दीप्तायुधा दीप्तकेशा निर्जग्मुदीप्तकंकटाः ।

द्विसहस्राक्षौहिणीनां पञ्चाशीतिः पराधिका ॥ १९ ॥

तदेनमन्वगादेकहेलया मथितुं द्विषः ।

भण्डासुरे विनियति सर्वसैनिकसंकुले ॥ २० ॥

शून्यके नगरे तत्र स्त्रीमात्रमवशेषितम् ।

आभिलो नाम दैत्येन्द्रो रथवर्यो महारथः ।

सहस्रयुग्यसिहाद्यमारुरोह रणोद्धतः ॥ २१ ॥

वर्म को भुजाओं के मध्यभाग से धारण करके उसने पृष्ठ में तूणीर कहा था । उद्दाम मौर्वी के निश्वास से कठोर धनुष को छुपाते हुए कालाग्नि के समान से कुध होकर वह अपने नगर से निकलकर चल दिया था और तालजंघादिक उसके साथ थे तथा पूर्व द्वार पर सुरक्षा के लिए भी सेनाओं को निवेशित किया था । १५-१६। चार शस्त्रों के समूहों को धारण करने वाले—कवचों को पहिन हुए और उद्धर्त बीर वहाँ पर थे । पैंतीस सेना-

पतियों के सहित जिनमें कुटिलाक्ष भी आगे थे वह चला था । १७। सब सेना-पतियों का स्वामी कुटिलाक्ष के साथ वह क्रोध से युक्त हुआ था भंड को भी मिलाकर चालीस चमूवर थे । १८। इनके आयुध परम दीप्ति थे और इनके केश भी दीप्ति थी ऐसे दीप्ति कक्ष वाले निकल गये थे दो सहस्र अक्षौहिणी सेना थी और पराधिक पिचासी थीं । १९। शत्रु का मथन करने को एक ही साथ उसके पीछे गये थे । भंडासुर के निकल कर जाने पर जो सभी सेनाओं से संकुल थी । २०। उस शून्यक नगर में केवल स्त्रियाँ ही रह गयी थीं । आभिल नामक देत्येन्द्र जो रथवर्य और महारथी था एक सहस्र युग्य सिंहों से युक्त रथ पर रणोदृत होकर सवार हुआ था । २१।

तत्वरे विज्वलज्ज्वालाकालाग्निरिव दीप्तिमान् ।

घातको नाम वै खड्गश्चन्द्रहाससमाकृतिः ॥२२॥

इतस्ततश्चलंतोनां सेनानां धूलिरुत्थिता ।

बोदुं तासां भरं भूमिरक्षमेव दिवं ययो ॥२३॥

केचिद्भूमेरपयप्तिं प्रलेलुव्योमवर्त्मना ।

केषांचित्स्कन्धमारुदाः केचिच्चेलुर्महारथाः ॥२४॥

न दिक्षु न च भूचके न व्योमनि च ते ममुः ।

दुःखदुखेन ते चेलुरन्योन्याश्लेषपीडिताः ॥२५॥

अत्यन्त सेनासंमद्दिवचक्रविचूणिताः ।

केचित्पादेन नागानां मदिता न्यपतन्मुवि ॥२६॥

इत्थं प्रचलिता तेन समं सर्वंश्च संनिकैः ।

वज्रनिष्पेषसहशो मेघनादो व्यधीयत ॥२७॥

तेनातीव कठोरेण सिहनादेन भूयसा ।

भंडदीत्यमुखोत्थेन विदीर्णमभवज्जगत् ॥२८॥

वह जलती हुई ज्वाला बाले कालाग्नि के तुल्य ही दीप्ति बाला था । उसके खड्ग का नाम घातक या जो चन्द्रहास खड्ग के ही समान आकृति बाला था । २२। इधर-उधर चलने वाली सेनाओं से धूलि उड़कर ऊपर उठ गयी थी । मानों भूमि उन सेनाओं के भार को सम्हालने में असमर्थ होकर ही आकाश में जा रही थी । २३। उनमें कुछ तो भूमि पर स्थान न पाकर

व्योम के ही मार्ग से चल दिये थे । कुछ महारथी कुछ लोगों के स्कन्ध पर समारूढ़ होकर चले थे । २४। जब उस भंडासुर की सेनाएँ चली थीं तो कहीं पर भी स्थान नहीं रहा था । एक दूसरे से रगड़ खाकर पीडित से होते हुए जा रहे थे । न तो दिशाओं में न भूमि में और न नम में वे समाये थे । बड़े ही दुख से चल रहे थे । २५। अत्यन्त सेना के समदं से और रथों के पहियों से चूर्ण होते हुए जा रहे थे । कुछ हावियों के पैरों से मर्दित होकर भूमि पर गिर गये थे । २६। इस रीति से उसके साथ सभी सैनिक गमन कर रहे थे और वज्रपात के समान उनने सिहनाद किया था । उस प्रवल और बड़े भारी सिहनाद से एवं कठोर से जो भंड के मुख से किया गया था सम्पूर्ण जगत् विदीर्ण हो गया था । २७-२८।

**सागराः शोषमापन्नाश्चन्द्राकौ प्रपलायितौ ।**

**उडूनि न्यपतन्योम्नो भूमिर्दोलायिताभवत् ॥२६**

**दिङ्नागाश्चाभवस्त्रस्ता मूर्च्छिताश्च दिवीकसः ।**

**शक्तीनां कटकं चासीदकांडत्रासविह्लम् ॥३०**

**प्राणान्संधारयामासुः कर्थचिन्मध्य आहवे ।**

**शक्तयो भयविभ्रष्टान्यायुधानि पुनर्दधुः ॥३१**

**वह्निप्राकारवलयं प्रशांतं पुनरुत्थितम् ।**

**देत्येन्द्रसिहनादेन चमूनाथधनुः स्वनैः ॥३२**

**कन्दनेश्चापि योद्धूणामभूच्छब्दमयं जगत् ।**

**तेन नादेन महता भंडदेत्यविनिर्गमम् ।**

**निश्चत्य ललिता देवी स्वयं योदधुः प्रचक्षमे ॥३३**

**अशक्यमन्यशक्तीनामाकलय्य महाहवम् ।**

**भंडदेत्येन दुष्टेन स्वयमुद्योगमास्थिता ॥३४**

**चक्रराजरथस्तस्याः प्रचचाल महोदयः ।**

**चवुर्वेदमहाचक्रपुरुषार्थमहाभयः ॥३५**

**समस्त सागर सूख गये थे । चन्द्र और सूर्य भी भाग गये थे । तारा-**

**गण आकाश से गिर रहे थे और समस्त पृथ्वी कीप रही थी । २६। दिवपाल  
Hinduism Discord Server <https://dsc.gigidharma> | MADE WITH LOVE BY Avinash**

की सेना अकाण्डत्रास से विट्बल हो गयी थीं । ३०। उस युद्ध में भय में किसी प्रकार से प्राणों को धारण किया था । शक्तियों ने भय से विघ्निष्ट आयुषों को पुनः धारण किया था । ३१। वहिन प्राकार वलय प्रशान्त फिर उत्थित हो गया था । उस दैत्येन्द्र के सिहनाद से और सेना यतियों के धनुषों को ठड्डारों से तथा योद्धाओं के कन्दनों से समस्त जगत ही शाकायमान हो गया था । उस महान् नाद से भण्डासुर के समागमन का निश्चय करके ललिता देवी ने स्वयं ही युद्ध करने की इच्छा को था । ३२-३३। यह महान् संशाम शक्तियों के द्वारा नहीं किया जा सकता है ऐसा विचार करके दुष्ट भण्ड देत्य के साथ स्वयं ही युद्ध करने के लिए उच्चोग में समास्थित हुई थी । ३४। उसका चक्रराज रथ जो महान् हृदय वाला था वहाँ से चले दिया था । चारों वेद उसके चक्र थे और पुरुषार्थ महान् भय वाला था । ३५।

आनन्दद्वजसंयुक्तो नवभिः पर्वभियुतः ॥३५॥

नवपर्वस्थदेवीभिराकृष्टगुरुधन्विभिः ॥३६॥

पराधर्माधिकसंख्यातपरियारसमृद्धिभिः ॥३७॥

पर्वस्थानेषु सर्वेषु पालितः सर्वतो दिशम् ॥३८॥

दशयोजनमुन्नद्दशतुर्योजनविस्तृतः ॥३९॥

महाराजीचक्रराजो रथेन्द्रः प्रचलन्वभौ ॥४०॥

तस्मिन्प्रचलिते जुष्टे श्यामया दण्डनाथया ॥४१॥

गेयचक्रं तु वालाग्रे किरिचक्रं तु पृष्ठतः ॥४२॥

अन्यासामपि शक्तीनां वाहनानि पराद्देशः ॥४३॥

न सिहोष्ट्रनरव्यालमृगपक्षिहयास्तथा ॥४४॥

गजभेषण्डशरभव्याघ्रवातमृगास्तथा ॥४५॥

एतादृशश्च तिर्यचोऽप्यन्ये वाहनतां गताः ॥४६॥

मुहुरुच्चावचाः शक्तीर्भंडासुरवधोद्यताः ॥४७॥

योजनायामविस्तारमपि तद्वारमंडलम् ॥४८॥

वहिनप्राकारचक्रस्य न पर्याप्तं चमूपते: ॥४२॥

वह रथ आनन्द की छवजा से युक्त था और उसमें नो पर्व थे । नो पर्वों पर देवियाँ स्थित थीं जिन्होंने बड़े-बड़े धनुषों को चढ़ा रखा था । ३६।

परार्थ से अधिक संख्या वाले परिवारों की समृद्धियों से समस्त पर्व स्थानों में सब दिशाओं में उसकी सुरक्षा भी थी । ३७। वह रथ दश योजन ऊँचा और चार योजन चौड़ा था । ऐसा वह महाराजी का चक्रराज रथेन्द्र गमन करता हुआ शोभित हुआ था । ३८। श्यामा और दण्डनाथा के द्वारा सेवित वह रथ रवाना हुआ था । उस बाला के आगे गेय चक्र था । ३९। अन्य शक्तियों के भी वाहन पराद्व के नृसिंह—उष्ट्र—नर—ब्याल—मृग—पक्षी और हय थे । ४०। हाथी—भेषण—ब्याघ—वात—मृग ऐसे ओर तियंक योनि वाले भी उनके वाहन थे । ४१। वर-बार उच्चावच शक्तियाँ भंडासुर के वध करने के लिए उद्यत हुई थीं । उसका द्वारमंडल भी योजन आयाम विस्तार वाला था जो बहिनप्राकार चक्र के सेनापति को परापृत नहीं था । ४२।

ज्वालामालिनिका नित्या द्वारस्यात्यंतविस्तुतिप्र ।

विततान समस्तानां सैन्यानां निर्गमीषिणी ॥४३॥

अथ सा जगतां माता महाराजी महोदया ।

निर्जग्माग्निपुरतो वरद्वारात्प्रतापिनी ॥४४॥

देवदुन्दुभयो नेदुः पतिताः पृष्ठवृष्टयः ।

महामुक्तातपत्रं तद्विदीप्तमहश्यत ॥४५॥

निमित्तानि प्रसन्नानि शंसकानि जयश्रियाः ।

अभवंल्लितासैन्ये उत्पातास्तु द्विषां बले ॥४६॥

ततः प्रववृते युद्धं सेनयोरुभयोरपि ।

प्रसर्पद्विशिखैः स्तोमवद्वान्धतमसच्छटम् ॥४७॥

हन्यमानगजस्तोमसृतशोणितबिंदुभिः ।

ह्लीयमाणशिरश्छन्नदे त्यश्वेतातपत्रकम् ॥४८॥

न दिशो न नभो नागा न भूमिनं च किञ्चन ।

हश्यते केवलं हृष्टं रजोमात्रं च मूर्च्छितम् ॥४९॥

ज्वाला मालिनिका नित्या ने द्वारकी अत्यन्त विस्तृति को विस्तृत किया था । यह समस्त सेनाओं की निर्गम की चाहने वाली थी । ४३। इसके उपरान्त जगतों की माता महोदया महाराजी प्रतापिनी वरद्वार से अग्निपुर

उस नदी में थे । चक्र से कटे हुए करियों के समुदाय ही उसमें कूपों की पैख्परा थीं ॥५१। शक्तियों के द्वारा ध्वस्त महान् देत्यों के गलगण्ड ही उस नदी में शिलोच्चय थे । जिनके काण्ड विलून होगथे हैं ऐसे चमर जो उसमें थे वे ही फेन थे ॥५२। तीक्ष्ण जो असियाँ थीं वे ही बल्लरी थीं जिनके कारण उस नदी की तटभूमि निविड़ हो रही थी । देत्यों के नेत्रों के शेणियाँ ही मुक्ति सम्पुट थे जिससे वह नदी भासुर थी ॥५३। देत्य वाहनों के समुदाय ही उस जोशित की नदी में सैकड़ों नकु और मछलियाँ थीं जिनसे वह घिरी हुई थी । दोनों सेनाओं का युद्ध होने पर वहाँ रुधिर की नदी प्रवाहित हो रही थी ॥५४। इसके अनन्तर श्री ललिता देवी और भण्ड का युद्ध हुआ था । उसमें अस्त्रों और प्रत्यस्त्र का ऐसा संक्षोभ हुआ था कि समस्त दिशायें तुमुली कृत हो गयी थीं ॥५५।

धनुज्यतिलटकारहुंकारैरतिभीषणः ।

तूणीरवदनात्कृष्टधनुर्वरविनिः सृतैः ।

विमुक्तैर्विशिखैर्भीमैराहवे प्राणहारिभिः ॥५७

हस्तलाघववेगेन न प्राज्ञायत किंचन ।

महाराजीकरांभोजव्यापारं शरमोक्षणे ।

शृणु सर्वं प्रवक्ष्यामि कुम्भसंभव सज्जरे ॥५८

संधाने त्वेकधा तस्य दशधा चापनिगंभे ।

शतधा गगने देत्यसेन्यप्राप्तो सहस्रधा ।

देत्यांगसंगे संप्राप्ताः कोटिसंख्याः शिलीमुखाः ॥५९

परांधकारं सृजती भिदती रोदसी शरेः ।

ममीभिनत्प्रचंडस्य महाराजी महेषुभिः ॥६०

वहृत्कोपारुणं नेत्रं ततो भंडः स दानवः ।

ववर्षं जरजालेन महृता ललितेश्वरीम् ॥६१

अन्धतामिल्लकं नाम महास्त्रं प्रमुमोच सः ।

महातरणिवाणेन तन्नुनोद महेषवरी ॥६२

पाखंडास्त्रं महावीरो भंडः प्रमुमुचे रणे ।

गायत्र्यस्त्रं तस्य नुत्यै ससर्ज जगदम्बिका ॥६३

वह युद्ध धनुष की ढोरी की टंकारों और हुङ्कारों से अत्यन्त भीषण हो गया था। तृणीर से निकालकर खीचे हुए धनुषों से छोड़े गये महान् भयंकर बाणों से जो युद्ध में प्राणों के हरण करने वाले थे वह रण बहुत ही भयानक था। ५७। शरों के छोड़ने में महाराजी के कर कमलों का व्यापार हाथ की सफाई के बेग से कुछ भी नहीं जाना गया था। हे कुम्भ सम्भव ! संग्राम में जो हुआ था उस सबको मैं बतलाऊँगा—आप थ्रण कीजिए। ५८। वे बाण ऐसे थे कि सन्धान के समय में एक ही प्रकार का था—बही चाप से निकलने पर दश प्रकार का हो जाता था—गगन में सौ प्रकार का—दैत्यों की सेना में प्राप्त होने पर सहस्र प्रकार का होना था और दैत्यों के अङ्गों के संगम में सम्प्राप्त होकर करोड़ों प्रकार का हो जाता था। ५९। परान्धकार का सृजन करती हुई और रोदसी को शरों से भेदन करती हुई महाराजी ने विशाल बाणों से प्रत्यक्ष के मर्मों का भेदन कर दिया था। ६०। भंड ने क्रोध से लाल नेत्रों को वहन करते हुए उस दैत्य ने बड़े पारीशरों के जालों की लखितेश्वरी के ऊपर वर्षा की थी। ६१। उसने अन्ध तामिल नाम वाले महास्व को छोड़ा था। महेश्वरी ने महातरणि बाण से उसको काट दिया था। ६२। महावीर भंड ने रण में पाखण्डास्त्र को छोड़ा था उसके निवारण के लिए जगदम्बा ने गाय व्यस्त्र को छोड़ दिया था। ६३।

**अन्धास्त्रमसृजद्भंडः शक्तिहृष्टविनाशनम् ।**

**चाक्षुष्मतमहास्त्रेण णमयायास तत्प्रसः ॥६४**

**शक्तिनाणाभिधं भंडो मुमोचास्त्रं महारणे ।**

**विश्वावसोरथास्त्रेण तस्य दर्पमपाकरोत् ॥६५**

**अन्तकास्त्रं ससर्जोच्चन्तः संक्रुद्धो भंडानवः ।**

**महामृत्युञ्जयास्त्रेण नाशयामास तद्वलम् ॥६६**

**सर्वस्त्रस्मृतिनाशाख्यमस्त्रं भंडो व्यमृठ्चत ।**

**धारणास्त्रेण चक्रेशो तद्वलं समनाशयत् ॥६७**

**भयास्त्रमसृजद्भंडः शक्तीना भीतिदायकम् ।**

**अभयंकरमैद्रास्त्रं मुमुक्षे जगदम्बिका ॥६८**

**महारोगास्त्रमसृजच्चवित्सेनासु दानवः ।**

**राजग्रामाद्यो चेष्टास्त्रोपायनम् ॥६९**

तन्निवारणसिद्धयर्थं ललिता परमेश्वरी ।

नामत्रयमहामन्त्रमहास्त्रं सा मुमोच ह ॥७०॥

भंड ने हष्टि के विनाशक अन्धास्त्र का प्रहार किया था । देवी ने चाक्षुञ्जमहास्त्र के द्वारा उसका शमन कर दिया था ।६४। उस महारण में भंड ने शक्ति नाशक नाम वाले अस्त्र को छोड़ा था उसका दर्पं विश्वावसु अस्त्र के प्रयोग से दूर कर दिया था ।६५। भंड दानव ने अन्तकास्त्र को छोड़ा था और बहुत क्रोधित हुआ था । उसके बल को देवी ने महामृत्युञ्जयास्त्र से दूर कर दिया था ।६६। फिर भंड ने सब अस्त्रों की स्मृति के विनाश करने वाले अस्त्र को छोड़ा था, चक्रेशी ने धारणास्त्र के द्वारा उसका विनाश कर दिया था ।६७। शक्तियों को भय देने वाले भयास्त्र का प्रयोग भंड ने किया था और जगदम्बिका ने अभयंकर ऐन्द्रास्त्र को छोड़ सिया था ।६८। दानव ने शक्ति सेनाओं में महारोगास्त्र छोड़ दिया था जिससे राज-यक्षमा आदि सहस्रों रोग होते थे । उसके निवारण की सिद्धि के लिए परमेश्वरी ललितादेवी ने नाम त्रय महामन्त्र महास्त्र का प्रयोग किया था । ६६-७०।

अच्युतश्चाप्यनन्तश्च गोविन्दस्तु शरोत्थिताः ।

हुंकारमात्रतो दग्धवा रोगांस्ताननयन्मुदम् ॥७१॥

नत्वा च तां महेशानीं तद्भवतव्याधिमर्दनम् ।

विधातुं त्रिषु लोकेषु नियुक्ताः स्वपदं ययुः ॥७२॥

आयुर्नाशनमस्त्रं तु मुक्तवान्भंडदानवः ।

कालसंकर्षणीरूपमस्त्रं राजो व्यमुञ्चत ॥७३॥

महासुरास्त्रमुदामं व्यसृजदभंडदानवः ।

ततः सहस्रो जाता महाकाया महाबलाः ॥७४॥

मधुश्च कैटभश्चैव महिषासुर एव च ।

धूम्रलोचनदैत्यश्च चंडमुण्डादयोऽसुराः ॥७५॥

चिक्षुभश्चामरश्चैव रक्तबीजोऽसुरस्तथा ।

शुम्भश्चैव निशुम्भश्च कालकेया महाबलाः ॥७६॥

धूम्राभिधानाश्च परे तस्मादस्त्रात्सम् त्थिताः ।

ते सर्वे दानवश्रेष्ठाः कठोरैः शस्त्रमण्डलैः ॥७७—७८ ।

उस महेशानी को नमस्कार करके उसके भक्तों ने व्याघ्रि मर्दन को करने के लिए तीनों लोकों में नियुक्त अपने स्थान को छले गये थे । शरों से उत्थित अच्युत-अनन्तर और गोविन्द हुङ्कार मात्र से ही रोगों को दग्ध करके उनको प्रसन्न किया था । ७१-७२। इसके उपरान्त उस महान् श्रीषण युद्ध स्थल में पराक्रमी फिर भण्ड ने आयुनशिन अस्त्र छोड़ा था और राजी ने काल संकर्षणी रूप अस्त्र को प्रयुक्त किया था । ७३। भंड दानव ने उदाम महासुरास्त्र को छोड़ दिया था । उससे सहस्रों ही महाकाय और महाबली उत्पन्न हो गये थे । मधु-कंटभ- महिषासुर-धूम्रलोचन और चंड-मुँड प्रश्रृति असुर थे । ७४-७५। चिक्षुभ- चामर- रक्तबीज- निशुभ और महान् बलवान् कालकेय थे । ७६। दूसरे धूम्राभिधान वाले उस अस्त्र से उत्थित हो गये थे । वे सभी श्रेष्ठ दानव कठोर शस्त्रों के मंडलों से प्रहार कर रहे थे । ७७।

शक्तीसेना मर्दयन्तो तर्दन्तश्च भग्यंकरम् ।

हाहेति कन्दमानाश्च शक्तयो देत्यमर्दिताः ॥७८—७९ ।

ललितां शरणं प्राप्ताः पाहि पाहीति सत्वरम् ।

अथ देवी भृशं क्रुद्धा रुषाट्टहासमातनोत् ॥७९—८० ।

ततः समुत्थिता काचिददुर्गा नाम यशस्विनी ।

समस्तदेवतेजोभिन्निमिता विश्वरूपिणी ॥८०—८१ ।

शूलं च शूलिना दत्तां चक्रं चक्रिसमपितम् ।

शंखं वरुणदत्तश्च शक्तिं दत्तां हविर्भुजा ॥८१—८२ ।

चापमक्षयतूणीरो मरुदत्तो महामृधे ।

वज्रिदत्तां च कुलिशं चषकं धनदापितम् ॥८२—८३ ।

कालदंडं महादंडं पाशं पाशधरापितम् ।

त्रहृदत्तां कुण्डकां च धण्टामेरावतापिताम् ॥८३—८४ ।

मृत्युदत्तौ खडगखेटौ हारं जलधिनापितम् ।

विश्वकर्मप्रदत्तानि भूषणानि च विश्रीती ॥८४—८५ ।

वे सब शक्ति सेना का मर्दन कर रहे थे और भयानक नर्दन कर रहे थे । हा-हा-कहकर क्रन्दन करती हुई शक्तियाँ देत्यों से मदित हो रही थीं ॥७६॥ वे सभी शक्तियाँ ललिता देवी की शरण में शीघ्रता से प्राप्त हुई थीं और रक्षा करो-रक्षा करो-ऐसा कह रही थीं । इसके पश्चात् वह देवी क्रोध से रुष्ट हो गई थी और उसने अट्ठास किया था ॥७७॥ फिर कोई दुर्गा नाम वाली उत्पन्न हुई थी जो बहुत यशस्विनी थी । यह विश्व रूपिणी सब देवों के तेजों से निर्मित हुई थी ॥७८॥ उसको शूली ने शूल दिया था और विष्णु ने चक्र समर्पित किया था । वरुण ने शंख दिया था और अग्नि ने शक्ति दी थी ॥७९॥ उस युद्ध में मरुत् ने अक्षय चाप और तूणीर किया था । वज्री ने कुलिश दिया था और धनद ने चक्र दिया था । पाण्डव ने काल-दंड-महादंड और पाञ्च दिया था । ब्रह्मा ने कुण्डिका दी थी और ऐरावत ने घण्टा दिया था ॥८०॥८१॥ मृत्यु ने खड़ग और लेट दिया था तथा जल विधि ने हार अप्ति किया था । विश्वकर्मा ने भूषण दिये थे जिनको वह धारण कर रही थी ॥८२॥

**अङ्गः सहस्रकिरणश्चेणिभासुररश्मिभिः ॥**

**आयुधानि समस्तानि दीपयंति महोदयः ॥८३॥**

**अन्यदत्तौरथान्यैश्च शोभमाना परिच्छदः ॥**

**सिंहवाहनमारुह्य युद्धं नारायणी व्यधात् ॥८४॥**

**तथा ते महिषप्रख्या दानवा विनिपातिताः ॥८५॥**

**चण्डिकासप्तशत्यां तु यथा कर्म पुराकरोत् ॥८६॥**

**तथैव समरं चक्रे महिषादिमदापहम् ॥८७॥**

**तत्कृत्वा दुष्करं कर्म ललितां प्रणनाम सा ॥८८॥**

**मूकास्त्रमसृजददुष्टः शवितसेनासु दानवः ॥८९॥**

**महावाग्वादिनी नाम ससज्जस्त्रं जगत्प्रसूः ॥९०॥**

**विद्यारूपस्य वेदस्य तस्करानसुराधमान् ॥९१॥**

**ससर्ज तत्र समरे दुर्मदो भण्डदानवः ॥९२॥**

**दक्षहस्ताङ्गुष्ठनखान्महाराजश्चा तिरस्कृतः ॥९३॥**

**अर्णवास्त्रं महावीरो भण्डदेत्यो रणेऽसृजत् ॥९४॥**

सहस्रों किरणों की शेणियाँ सेनापुर अङ्गों से सहस्रों आयुधों आयुधों को दीप्त कर रही थीं। अन्यों के द्वारा दिये हुए परिच्छदों से यह शोभमान थी और सिंह के वाहन पर आरूढ़ होकर उस नारायणी ने युद्ध किया था। उसने वे महिष मुरुग जो दानव थे वे सब मार गिराये थे। चण्डिका ने सप्तशती में पहुँचे जो कर्म किया था। ६५-६७। उसी भाँति से महिष प्रभृति के मद का अपहारक युद्ध किया था। उस महान दुष्कर कर्म को करके उसने ललिता देवी को प्रणाम किया था। ६८। उस दुष्ट दानव ने शक्तियों की सेना में गूकास्त्र छोड़ा था। उसके प्रतिकार के लिए जगदभाने महा वाग्वादिनी नामक अस्त्र का प्रयोग किया था। ६९। उस दुष्ट दानव ने तस्कर अधम असुरों के ऊपर विद्या रूप वेद का सृजन किया था। ७०। महाराजी ने दाहिने हाथ के बैंगूठे के नख से उसका तिरस्कार कर दिया था। भण्ड-दैत्य ने अणवास्त्र का रण में प्रयोग किया था। ७१।

**तत्रोद्धामपयः पूरे शक्तिसैन्यं ममज्ज च ।**

अथ श्रीललितादक्षहस्ततजंनिकानखात् ।

**आदिकूर्मः समुत्पन्नो योजनायतविस्तरः ॥६२**

**धृतास्तेन महाभोगख्यपरेण प्रथीयसा ।**

**शक्तयो हर्षमापन्नाः सागरास्त्रभयं जहुः ॥६३**

**तत्सामुद्रं च भगवान्सकलं सलिलं पपो ।**

**हैरण्याक्षं महास्त्रं तु विजही दुष्टदानवः ॥६४**

**तस्मात्सहस्रशो जाता हिरण्याक्षा गदायुधाः ।**

**तैर्हन्यमाने शक्तीनां संन्ये सन्त्रासविह्वले ।**

**इतस्ततः प्रचलिते शिथिले रणकर्मणि ॥६५**

**अथ श्रीललितादक्षहस्तमध्याद्गु लीनखात् ।**

**महावराहः समभूच्छ्वेतः कंलाससंनिभः ॥६६**

**तेन वज्रसमानेन पोत्रिणाभिविदारिताः ।**

**कोटिशस्ते हिरण्याक्षा मर्द्य मानाः क्षयं गताः ॥६७**

**अथ भण्ड स्त्वतिक्रोधादभ्रुकुटीं विततान ह ।**

**तत्य भ्रुकुटितो जाता हिरण्यः कोटिसंस्तकः ॥६८**

वहाँ पर उद्वाम पूर्ण जल के समुदाय में शक्ति सेना को दुबा दिया था इसके अनन्तर श्री ललिता के दाहिने हाथ की तर्जनी के नख से योजन पर्यन्त आयत विस्तार से युक्त आदि कूर्म समुत्पन्न हुआ था । ६२। उस महान प्रधीयान भोग खपंर से धारण किया था । शक्तियाँ बहुत हृषित हुई थीं और उन्होंने सागरास्त्र का भय त्याग दिया था । ६३। उस समुद्र जल को पूर्ण रूप से भगवान कूर्म ने जल का पान कर लिया था । दुष्ट दानव ने हैरण्याक्ष महान् अस्त्र को छोड़ा था । ६४। उससे सहस्रों हैरण्याक्ष गदा लिये हुए थे । उनके द्वारा शक्तियों के हृन्यमान होने पर शक्ति सेना में संत्रास से विह्वलता हो गयी और वे रण के कर्म से शिथिल होकर इधर-उधर चलने लग गयीं थीं । ६५। इसके उपरान्त श्री ललितादेवी के दक्षिण हाथ की मध्यमा अंगुलि के नख से कंलास के समान श्वेत महान वराह उत्पन्न हुए थे । ६६। उसने वज्र के समान पोत्रि से करोड़ों हैरण्याक्ष विदीर्ण कर दिये थे और मदित होते हुए वे सब क्षीण हो गये थे । ६७। इसके पश्चात् भंडासुर ने महान क्रोध से भीहें तान लो थीं । उसकी भृकुटी से करोड़ों हैरण्य समुत्पन्न हुए थे । ६८।

**ज्वलदादित्यवटीप्ता दीपप्रहरणाश्व ते ।**

**अमर्दयच्छक्तिसौन्यं प्रह्लादं चाप्यमर्दयन् ॥६६॥**

**यः प्रह्लादोऽस्ति शक्तीनां परमानन्दलक्षणः ।**

**स एव बालको भूत्वा हैरण्यपरिपीडितः ॥१००**

**ललितां शरणं प्राप्तस्तेन राज्ञी कृपामगान् ।**

**अथ शक्तया नन्दरूपं प्रह्लादं परिरक्षितुम् ॥१०१**

**दक्षहस्तानामिकाग्रं धुनोति स्म महेश्वरी ।**

**तस्माद् धूतस्टाजालः प्रज्वलल्लोचनत्रयः ॥१०२**

**सिहास्यः तुरुषाकारः कंठस्याधो जनार्दनः ।**

**नखायुधः कालरुद्ररूपी घोराट्टहासवान् ॥१०३**

**सहस्रसंख्यदोर्ण्डो ललिताज्ञानुपालकः ।**

**हैरण्यकणिपून्सवन्भंडभ्रकुटिसंभवान् ॥१०४**

**क्षणाद्विदारयामास नखैः कुलिशकर्कशैः ।**

**अमुच्चललिता देवी प्रतिभंडमहासुरम् ॥१०५**

वे जलते हुए आदित्य के समान दीप्त थे और दीपों के प्रहरणों से उद्धत थे। उसने शक्तियों की सेना का मर्दन किया था और प्रह्लाद का भी मर्दन किया था। ६६। जो प्रह्लाद शक्तियों का था वह परमानन्द लक्षण वाला ही था। वह ही एक बालक होकर हिरण्याक्ष के द्वारा परिपीड़ित हुआ था। १००। वह ललिता के शरण में प्राप्त हो गया था। राज्ञी ने उस पर कृपा की थी। इसके पश्चात् शक्तियों के आनन्द स्वरूप प्रह्लाद की रक्षा करने के लिए। १०१। ललिता देवी ने दाहिने हाथ की अनामिका को हिलाया था। उससे जटाओं के जाल को हिलाने वाले—तीन नेत्रों से युक्त जो जाज्वल्यमान थे—सिंह के मुख वाले—पुरुषाकार और कण्ठ के नीचे जनादेन—कारुद के रूप वाले—नखों के आयुधों से संयुत घोर अदृहास वाले उत्पन्न हुए थे। १०२-१०३। उनकी भुजाएँ सहस्रों की संख्या में थीं और वे ललिता की आज्ञा के पालक थे। जो भण्ड की भौंहों से समुत्पन्न हिरण्यकशिपु थे। १०४। उन सबको क्षणभर में कुलिश के समान कर्कश नखों से विदीर्ण कर दिया था। फिर ललिता देवी ने सब देवों के विनाशक एक महान् घोर बलीन्द्रास्त्र को प्रत्येक भंड महासुर के प्रति छोड़ा था। १०५।

**तदस्त्रदर्पनाशाय वामनाः शतशोऽभवन् ।**

**महाराजीदक्षहस्तकनिष्ठाग्रान्महोजसः ॥१०६**

**क्षणे क्षणे वर्धमानाः पाशहस्ता महाबलाः ।**

**बलींद्रानस्त्रसंभूतान्बधनंतः पाशबन्धनैः ॥१०७**

**दक्षहस्तकनिष्ठाग्राज्जाताः कामेश्योषितः ।**

**महाकाया महोत्साहास्तदस्त्रं समनाशयत् ॥१०८**

**हैह्यास्त्रं समसृजद्भंडदेत्यो रणाजिरे ।**

**तस्मात्सहस्रशो जाताः सहस्रार्जुनकोटयः ॥१०९**

**अथ श्रीललितावामहस्तांगुष्ठनखादितः ।**

**प्रज्वलन्भार्गवो रामः सक्रोधः सिंहनादवान् ॥११०**

**धारया दारयन्नेतान्कुठारस्य कठोरया ।**

**सहस्रार्जुनसंख्यातान्क्षणादेव व्यनाशयन् ॥१११**

अथ कुदो भंडदेत्यः क्रोधादधुकारमातनोत् ।

तस्मादधुकारतो जातश्चंद्रहासकृपाणवान् ॥११२

फिर महादेवी के दाहिने हाथ की कनिष्ठिका के नख के अग्रभाग से महान् ओज वाले वामन सैकड़ों ही उसके दर्प के विनाश करने के लिए हुए थे जो छोड़े गये थे । १०६। एक-एक क्षण में बढ़े हुए—हाथों में पाश लिये हुए महा बलवान् अस्त्र से समुत्पन्न वतीन्द्रों को पाशों बन्धनों से बांधते हुए थे । १०७। दाहिने हाथ की कनिष्ठा के अग्रभाव से कामेश्योषित उत्पन्न हुई थीं जिनके विशाल शरीर थे और महान उत्साह था अस्त्र का उन्होंने विनाश कर दिया था । १०८। भंडदेत्य ने फिर उस संयाम में हैह्यास्त्र छोड़ा था । उससे सहस्रों ही सहस्रार्जुन समुत्पन्न हो गये थे । १०९। इसके पश्चात् ललिता के अंगुष्ठ के अग्रभाग से क्रोधयुत प्रज्वलित सिंहनाद वाले भार्गव राम प्रकट हुए थे । ११०। उन्होंने कठोर परशु की धार से इन सब सहस्रों सहस्रार्जुनों को विदीर्ण करके एक ही क्षण में विनष्ट कर दिया था । १११। इसके पश्चात् भंड देत्य ने क्रोध से हुङ्कार की थी । उस हुङ्कार से चन्द्रहास कृपाणवान् उत्पन्न हो गया था । ११२।

सहस्रार्ज्ञौहिणीरक्षः सेनया परिवारितः ।

कनिष्ठं कुम्भकर्णं च मेघनादं च नन्दनम् ।

गृहीत्वा शक्तिसेन्यं तदतिदूरमर्दयत् ॥११३

अथ श्रीललितावामहस्ततज्जनिकानखात् ।

कोदण्डरामः समभूलक्ष्मणेन समन्वितः ॥११४

जटामुकुटवान्वल्लीबद्धतूणीरपृष्ठभूः ।

नीलोत्पलदंलश्यामो धनुर्विस्फारयन्मुहुः ॥११५

नाशयामास दिव्यास्त्रः क्षणाद्राक्षससेनिकम् ।

र्दयामास पौलस्त्यं कुम्भकर्णं च सोदरम् ।

लक्ष्मणो मेघनादं च महावीरमनाशयत् ॥११६

द्विविदास्त्रं महाभीममसृजद्वंडदानवः ।

तस्मादनेकशो जाताः कपयः पिंगलोचनाः ॥११७

क्रोधेनात्यंतताम्रास्याः प्रत्येकं हनुमत्समाः ।

व्यनाशयच्छक्तिसैन्यं क्रूरकेकारकारिणः ॥११५

अथ श्रीललितावामहस्तमध्यांगुलीनखात् ।

आविर्बेभूत तालांकः क्रोधमध्यारुणेक्षणः ॥११६

वह सहस्रों राक्षसों की सेना से घिरा हुआ था । छोटा भाई कुम्भ कर्ण और नन्दन मेघनाद को लेकर उसने शक्तियों की सेना को दूर तक मर्दित कर दिया था ॥११३। इसके अनन्तर ललिता देवी के बाये हाथ की कनिष्ठिका के अग्रभाग से लक्ष्मण के सहित क्रोदण्डराम उत्पन्न हुए थे ॥११४। वह श्रीराम जटा और मुकुट धारी थे जिनके पृष्ठ पर तूणीर था—वे नीलकमल के समान श्याम वर्ण के थे और बार-बार धनुष को विस्फारित कर रहे थे ॥११५। उन्होंने एक ही क्षण में दिव्यास्त्रों से राक्षसों की सेना का विनाश कर दिया । कुम्भकर्ण भाई को और पीलस्त्य को मर्दित कर दिया था । लक्ष्मण ने मेघनाद को जो महान वीर था विनष्ट कर दिया था ॥११६। भंड ने फिर द्विविदास्त्र को उत्पन्न किया था । उससे अनेक कपिगण पिङ्गलोचनों वाले उत्पन्न हो गये थे ॥११७। वे क्रोध से अत्यन्त ताप्रमुखों वाले थे और सभी हनुमान के तुल्य थे । वे क्रूर केढ़ारकारी थे और उन्होंने शक्तियों की सेना का विनाश किया था ॥११८। इसके उपरान्त श्री ललिता के बाये हाथ की मध्यमा के नख से तालाङ्क आविर्भूत हुआ था जो क्रोध से अरुण लोचनों वाला था ॥११९।

नीलांवरपिनद्वांगः कैलासाचलनिर्मलः ।

द्विविदास्त्रसमुद्भूतान्कपीन्सन्वन्द्यनाशयन् ॥१२०

राजासुरं नाम महत्ससज्जस्त्रं महाबलः ।

तस्मादस्त्रात्समुद्भूता बहवो नृपदानवाः ॥१२१

शिशुपालो दन्तवक्त्रः शाल्वः काशीपतिस्तथा ।

पौड़को वासुदेवश्च रुक्मी दिभकहंसको ॥१२२

शम्बुरश्च प्रलंबश्च तथा बाणासुरोऽपि च ।

कंसश्चाणूरमल्लश्च मुष्टिकोत्पलशेखरौ ॥१२३

अरिष्टो धेनुकः केशी कालियो यमलाजुंनौ ।

पृथग्यकृपञ्चेत् तणावत्प्रियोऽसुरा ॥१२४

नरकाख्यो महावीरो विष्णुरूपी मुरासुरः ।

अनेके सह सेनाभिरुत्थिताः शस्त्रपाणयः ॥ १२५

तान्विनाशयितुं सवन्विवासुदेवः सनातनः ।

श्रीदेवीवामहस्ताबजानामिकानखसंभवः ॥ १२६

नीले वस्त्रसे उसका अङ्गपिनष्ट था और कैलासके समज निर्मल था ।

द्विविदास्त्र से उत्पन्न समस्त कपियों का उसने विनाश कर दिया था ॥ १२० ॥

उस महा बलवान ने राजासुर नामक महान अस्त्र को छोड़ा था । उस अस्त्र

से बहुत से भूत दानव समुत्पन्न हुए थे ॥ १२१ ॥ उनमें शिशुपाल दन्त वक्र-

शालव—काशीपति—पोण्ड्रक—बासुदेव—रुक्मीडिम्भक हंसक थे ॥ १२२ ॥

शम्बर—प्रलम्ब—बाणासुर भी था । कंस—चाणूर मल्ल—मुष्टिक—उत्पल

शेखर थे ॥ १२३ ॥ अरिष्ट—धेनु—ककेशी—कालिय—यमलाजुन—पूतना—

शकर—तृणाचर्त्त आदि असुर सभी थे ॥ १२४ ॥ महावीर नरक और विष्णु-

रूपी मुरासुर था । ऐसे बहुत से हथियारों को हाथों में लेकर सेनाओं के

साथ आविर्भूत हो गये थे ॥ १२५ ॥ उन सबके विनाश करने के लिए श्री देवी

के बाये हाथ की अनामिका के नख से संभूत सनातन बासुदेव प्रकट हुए

थे ॥ १२६ ॥

चतुर्व्यूहं समातेने चत्वारस्ते ततोऽभवन् ।

वासुदेवो द्वितीयस्तु संकर्षण इति स्मृतः ॥ १२७

प्रदयुम्नश्चानिरुद्धश्च ते सर्वे प्रोद्धतायुधाः ।

तानशेषान्दुराचारान्भूमेभरिप्रवर्तकान् ॥ १२८

नाशयामासुरुर्वीशवेषच्छन्नान्महासुरात् ॥ १२९

अथ तेषु विनष्टेषु संक्रुद्धो भंडदानवः ।

धर्मविष्ण्वावकं घोरं कल्यस्त्रं सममुञ्चत ॥ १३०

ततः कल्यस्त्रतो जाता आंध्राः पुण्ड्राश्च भूमिपाः ।

किराताः शवरा हृणा यज्ञनाः पापवृत्तयः ॥ १३१

वेदविष्ण्वावका धर्मद्रोहिणः प्राणिहिसकाः ।

वणश्चिमेषु सांकर्यकारिणो मलिनांगकाः ।

ललिताशक्तिसैन्यानि भूयोभूयो व्यमर्दयन् ॥ १३२

अथ श्रीललितावामहस्तपद्मस्य भास्वतः ।

कनिष्ठिकानखोदभूतः कलिकर्नाम जनार्दनः ॥ १३३

वे चारों ने चतुर्व्यूह बनाया था जो फिर हुए थे । उनमें वासुदेव—  
दूसरे संकरण थे । १२७। तीसरे प्रद्युम्न और चौथे अनिरुद्ध थे । ये सभी  
आयुधों से समुच्छत थे । इन्होंने उन दुराचारियों को जो भूमि पर भार के  
प्रवर्त्तक थे । १२८। वे राजा के रूप में छिपे हुए महासुर थे उन सबका  
विनाश कर दिया था । १२९। इन सबके विनष्ट होने पर अण्डासुर बहुत  
कुद्ध हुआ था और फिर उसने धर्म के विप्लावक घोर कलि के अस्त्र को  
छोड़ा था । १३०। उससे आनंद और पुण्ड्र राजा उत्पन्न हुए थे । किरात-  
शबर-हृण और यवन पापवृत्ति वाले उत्पन्न हुए । १३१। ये सब वेदों के  
विप्लावक—धर्मद्रोही और प्राणियों के हिंसक थे । इनके अङ्ग मलिन थे  
तथा वणथियों में सांकर्य करने वाले थे । इन्होंने ललिता शक्ति की सेनाओं  
का बार-बार विमर्दन किया था । १३२। इसके पश्चात् ललिता के बाम कर  
कमल से जो प्रज्वलित कनिष्ठका के नख से उत्पन्न कलिक नामक जनार्दन  
प्रभु हुए थे । १३३।

अष्वारुद्धः प्रदीप्तश्रीरट्टहासं चकार सः ।

तस्यैव छवनिना सर्वे वज्रनिष्पेषबन्धुना ॥ १३४

किराता मूर्च्छिता नेशः शक्तयश्चापि हर्षिताः ।

दशावतारनाथास्ते क्रुत्वेद कर्म दुष्करम् ॥ १३५

ललितां तां नमस्कृत्य बद्धाजलिपुटाः स्थिताः ।

प्रतिकल्पं धर्मरक्षां करुं मत्स्यादिजन्मभिः ।

ललितां बानियुक्तास्ते वैकुण्ठाय प्रतस्थिरे ॥ १३६

इत्थं समस्तेष्वस्त्रेषु नाशितेषु दुराशयः ।

महामोहास्त्रमसृजच्छक्तयस्तेन मूर्च्छिताः ॥ १३७

शांभवास्त्रं विसृज्यांशा महामोहास्त्रमक्षिणोत् ।

अस्त्रप्रत्यस्त्रधाराभिरित्थं जाते महाहवे ।

अस्तशीलं गभस्तीशो गन्तुमारभतारुणः ॥ १३८

अथ नारायणास्त्रेण सा देवी ललितांबिका ।

सर्वा अक्षोहिणीस्तस्य भस्मसादकरोद्रणे ॥ १३६ ॥

अथ पाशुपतास्त्रेण दीप्तकालानलत्विषा ।

चत्वारिंशच्चमूनाथान्महाराजी व्यभद्र्यत् ॥ १४० ॥

यह अश्वपर आरुढ़ थे और इनकी श्री प्रदीप्त थी । इनने अटृहास किया था । उसकी बज्जे के समान छवनि से सभी किरात बेहोश हो गये थे । १३४। मब मूर्च्छित होकर नष्ट हो गये थे और शक्तियाँ हृषित हो गयी थीं । दशावतारों के नाथों ने इस दुष्कर कर्म को करके सम्पन्न किया था । १३५। फिर उस ललिता देवी को नमस्कार करके हाथ जोड़कर उसके आगे स्थित हो गये थे । प्रत्येक कल्प में मत्स्य आदि भर्म की रक्षा करने के लिए ललिताम्बा के द्वारा नियुक्त थे वे फिर वैकुण्ठ को चले गये । १३६। इस रीति से समस्त अस्त्रों के विनाशित होने पर उस दुराशय ने महामोहास्त्र को छोड़ दिया था जिससे समस्त शक्तियाँ मूर्च्छित हो गयी थी । १३७। जगद्भूमि ने शाम्भक शस्त्र को छोड़कर उस महामोहास्त्र को नष्ट कर दिया था । इस तरह से अस्त्रों और प्रत्यस्त्रों की धाराओं से महान् युद्ध खुला था । गमस्तीश अरुण अस्ताचल को जा रहा था । उस समय में ललितादेवी ने अस्त्र का प्रहार किया था । १३८। उस देवी ललिताम्बा ने नारायणास्त्र से युद्ध में उसकी समस्त अक्षोहिणी सेनाओं को भस्मीभूत कर दिया था । १३९। इसके अनन्तर दीप्त कालाग्नि के समान कान्ति वाले पाशुपतास्त्र से चालीस सेनानियों को महाराजी ने विमर्दित कर दिया था । १४०।

अर्थक्षेषं तं दुष्टं निहतीषेषबांधवम् ।

क्रोधेन प्रज्वलंतं च जगद्विप्लवकारिणम् ॥ १४१ ॥

महासुरं महासत्त्वं भंडं चडपराक्रमम् ।

महाकामेश्वरास्त्रेण सहस्रादित्यवर्चसा ।

गतासुमकरोन्मातो ललिता परमेश्वरी ॥ १४२ ॥

तदस्त्रज्वालयाक्रान्तं शून्यकं तस्य पट्टनम् ।

सस्त्रीकं च सबालं च सगोष्ठं धनधान्यकम् ॥ १४३ ॥

निर्दग्धमासीत्सहसा स्थलमात्रमशिष्यत ।

भंडस्य संक्षयेणासीत्त्रैलोक्यं हृष्णन्तितम् ॥ १४४

इत्थं विद्याय सुरकार्यमनिद्यशीला श्रीचक्रराज—भुर्गं पिंडो  
रथमंडलमंडनश्रीः ।

कामेश्वरी त्रिजगतां जननी वभासे विद्योतमान-

संन्यं समस्तमपि सञ्ज्ञरक्मेखिन्नं

भंडासुरप्रबलवाणकृशानुतप्तम् ।

अस्तं गते सवितरि प्रथितप्रभावा श्रीदेवता

शिविरमात्मन आनिनाय ॥ १४६

यो भंडानववधं ललितांबयेमं क्लृप्तं सकृत्पठति

तस्य तपोधनेन्द्र ।

नाशं प्रयांति कदनानि धृताष्टसिद्धेभुक्तिश्च

मुक्तिरपि वर्तत एव हस्ते ॥ १४७

इमं पवित्रं ललितापराक्रमं समस्तपापद्नमशेषसिद्धिदम् ।

पठन्ति पुण्येषु दिनेषु ये नरा भजन्ति ते

भाग्यसमृद्धिमुत्तमाम् ॥ १४८

इसके उपरान्त वह दुष्ट एक हो शेष बच गया था और उसके सब  
बान्धव मर चुके थे । वह भी क्रोध से प्रज्वलित हो रहा था और इस जगत्  
के विष्वल को करने वाला था । १४१। महान् प्रचण्ड महान् सत्त्व युक्त उस  
महासुर को सहस्र सूर्यों के समान वचंस् वाले महाकामेश्वरास्त्र से परमेश्वरी  
ललिता ने भंड को गत प्राण कर दिया था । १४२। उसके अस्त्र की ज्वाला  
से उसका शून्यक नगर भी हित्रयों—वालों—गोल्ठों और धान्यों के सहित  
तुरन्त ही निर्दग्ध हो गया था । उस भंडासुर के विनाश से तीनों लोक  
हरित हुए थे । १४३-१४४। इस प्रकार से अनिन्द्यशील वाली देवी देवों के  
कार्य को करके श्रीचक्रराज रथ के मंडल की श्री वह तीनों जगतों की  
जननी वह कामेश्वरी विजय श्री से सुसम्पन्न विद्योतमान वैभव वाली  
शोभित हई थी । १४५। समस्त सेतु भी युद्ध कर्म में लिज ले याकी थी और

भंडासुर के प्रबल बाणों की अग्नि से संतप्त हो गयी थी। सूर्य के अस्त होने पर प्रथित प्रभाव वाली उसने जो श्री देवता थी अपने शिविर में बुला लिया था । १४६। हे तपोधनेन्द्र ! जो भी कोई पुरुष ललिताम्बा के द्वारा किये गये इस भंडासुर के वध को एक बार भी पढ़ता है उसके सब दुःख विनष्ट हो जाते हैं और उसको आठ सिद्धियों की प्राप्ति होती है तथा भुक्ति और भुक्ति दोनों ही उसके हाथ में होती है । १४७। यह पवित्र ललिता का पराकृम समस्त पापों का नाशक और अशेष सिद्धियों का दाता है । जो मनुष्य पुण्य दिनों में इसको पढ़ते हैं वे उत्तम भाग्य की समृद्धि को प्राप्त किया करते हैं । १४८।

### ॥ मदन पुनर्भव वर्णन ॥

अगस्त्य उवाच—  
अश्वानन् महाप्राज्ञ श्रुतमाख्यानमुत्तमम् ।  
विक्रमो ललितादेव्या विशिष्टो वणितस्त्वया ॥१  
चरितैरनधैर्देव्याः सुप्रातोऽस्मि हृयानन् ।  
श्रुता सा महतो शक्तिर्मत्रिणीदण्डनाथयोः ॥२  
पश्चात्किमकरोत्तत्र युद्धानन्तरमंबिका ।  
चतुर्थदिनशर्वर्या विभातायां हृयानन् ॥३

### हयग्रीव उवाच—

शृणु कुम्भज तत्प्राज्ञ यत्तया जगदम्बया ।  
पश्चादाचरितं कर्म निहते भंडदानवे ॥४  
शक्तीनामखिलं सैन्यं दैत्यायुधशतादितम् ।  
मुहुराह्लादयामास लोचने रमृताप्लुते ॥५  
ललितापरमेशान्याः कटाक्षामृतधारया ।  
जुहुर्यु द्वपरिश्रांति शक्तयः प्रीतिमानसा ॥६  
अस्मिन्नवसरे देवा भंडमर्दनतोषिताः ।  
सर्वेऽपि सेवितुं प्राप्ता ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः ॥७

अगस्त्यजी ने कहा—हे महात् प्राज ! हे अश्वानन ! आपने यह उत्तम आख्यान सुन लिया है । आपने जो ललिता देवी के विक्रम को विशेषता से युक्त वर्णन किया है । १। हे हयानन ! देवी के अनघ चरितों से मैं बहुत प्रसन्न हुआ हूँ और मैंने मन्त्रणी और दंडिनी की भी बड़ी भारी शक्ति का शब्दण किया है । २। उस युद्ध के अनन्तर उस अभिवका ने वया किया गया था । ३। हयग्रीव जी ने कहा—हे प्राज कुम्भज ! आप अब वही सुनिए जो भंडासुर के मरने पर जगदम्बा ने किया था । ४। शक्तियों की सम्पूर्ण सेना को जो देत्यों के आयुधों से अर्दित हो गयी थी अपने अमृत से प्लुत लोचनों के हारा पुनः आह्लादित किया था । ५। परमेशानी ललिता देवी के कटाक्षों की अमृत धारा से शक्तियों ने युद्ध की श्रान्ति का त्याग कर दिया था और वे प्रसन्न मानस वाली हो गयी थीं । ६। इस अवसर में देवगण भंडासुर के मर्दन से प्रसन्न हुए थे । वे सभी जिनमें ब्रह्मा-विष्णु अगुआ थे उस देवी की सेवा करने के लिए समागत हो गये थे । ७।

**ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च शक्राद्यास्त्रिदशास्तथा ।**

**आदित्य वसवो रुद्रा मरुतः साध्यदेवताः ॥८॥**

**सिद्धाः किपुरुषा यक्षा निक्रृत्याद्या निशाचराः ।**

**प्रह्लादाद्या महादेत्याः सर्वेऽप्यंडनिवासिनः ॥९॥**

**आगत्य तुष्टुवुः प्रीत्या सिहासनमहेश्वरीम् ॥१०॥**

**ब्रह्माद्या ऊचुः—**

नमोनमस्ते जगदेकनाथे नमोनमः श्रीत्रिपुराभिधाने ।

नमोनमो भंडमहासुरघ्ने नमोऽस्तु कामेश्वरि वामकेशि ॥११॥

चितामणे चितितदानदक्षेऽचिन्त्ये चिराकारतरंगमाले ।

चित्राम्बरे चित्रजगत्प्रसूते चित्राख्यनित्ये सुखदे नमस्ते ॥१२॥

मोक्षप्रदे मुग्धशशांकचूडे मुग्धस्मिते मोहनभेददक्षे ।

मुद्रेश्वरीच्चितराजतन्त्रे मुद्राप्रिये देवि नमोनमस्ते ॥१३॥

कृतंतकध्वंसिनि कोमलांगे कोपेषु कालीं तनुमादधाने ।

कोडोनने पालितसंन्यचक्रे क्रोडीकृताशेषभये नमस्ते ॥१४

ब्रह्मा—विष्णु—रुद्र—शक्रादि सब देवगण—आदित्य—वसुगण—  
मरुदगण—साध्य देवता—सिद्ध—किम्पुरुष—यक्ष—निकृति आदि मिशा-  
चर—प्रह्लाद आदि महादेत्य—सभी अंड में निवास करने वाले वहाँ आकर  
उपस्थित हुए थे और उन्होंने प्रसन्नता से सिंहासनेश्वरी की स्तुति की थी । ८-१०। ब्रह्मादिक ने कहा—हे इस जगत की एक मात्र स्वामिनि ! आपको  
बारम्बार नमस्कार है । हे श्री त्रिपुरामिष्ठाने ! आपको नमस्कार अनेक  
बार है । हे महान भंडासुर के हनन करने वाली ! हे कामेश्वर ! हे बाम-  
केश ! आपकी सेवा में अनेकशः प्रणाम समर्पित हैं । ११। हे चिराकार  
तरङ्गमाले ! आप तो अचिन्तनीय हैं—आप चिन्तामणि के ही समान हैं तथा  
जो भी प्राणियों का चिन्तित होता है उसके प्रदान करने में दक्ष हैं । हे  
चित्राम्बदे ! हे चित्र जगत प्रसुते ! हे चित्राख्य नित्ये ! आप सुखों के देने  
वाली हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है । १२। आप मोक्ष देने वाली हैं—  
मुख्यशशाङ्क चूडे ! आपका स्मित मोहन करने वाला है और आप मोहन  
करने वाला है और आप मोहन करने में परम दक्ष हैं । हे मुद्रेश्वरी नित्यित  
राजतन्त्रे ! आप मुद्राप्रिया हैं । हे देवि ! आपको अनेक बार प्रणाम हैं । १३।  
हे कोमलाङ्गे ! आप तो कृत अन्तक के छवंभ करने वाली हैं । आप कोप के  
अवसरों पर काली का विग्रह धारण कर लेती हैं । आप कोप के अवसरों  
पर काली का पालन किया है । हे क्रोडी-कृताशेष भये । आपको मेरा  
नमस्कार है । १४।

षडंगदेवीपरिवारकृष्णे षडंगयुक्तश्रुतिवावयमृग्ये ।

षट्चक्षसंस्थे च षडुमियुक्ते षड् भावरूपे ललिते नमस्ते ॥१५

कामे शिवे मुख्यसमस्तनित्ये कांतासनान्ते कमलायताक्षि ।

कामप्रदे कामिनि कामशंभोः काम्ये

कलानामधिपे नमस्ते ॥१६

दिव्यीषवाद्ये नगरीघरूपे दिव्ये दिनाधीशसहस्रकांते ।

देदीप्यमाने दयया सनाथे देवाधिदेवप्रमदे नमस्ते ॥१७

सदाणिमायैकसेवनीये सदाशिवात्मोज्ज्वलमञ्चवासे ।

भृष्ये सदेकालयपादपूज्ये सावित्रि लोकस्य नमोनमस्ते ॥१५  
 ब्राह्मीमुखं मातृगणं निषेव्ये ब्रह्मप्रिये ब्राह्मणवन्धभेत्रि ।  
 ब्रह्मामृतस्रोतसि राजहंसि ब्रह्मेश्वरि श्रीललिते नमस्ते ॥१६  
 संक्षोभिणीयुख्यसमस्तमुद्रासंसेविते संसरणप्रहंत्रि ।  
 संसारलीलाकृतिसारसाक्षि सदा नमस्ते ललितेऽधिनाथे ।  
 नित्य कलाषोङ्गकेन नामाकर्षिष्यधीशि प्रमथेन सेव्ये ॥२०  
 नित्ये निरातं कदयाप्रपञ्चे नीलालकश्चेणि नमोनमस्ते ।  
 अनंगपृष्ठादिभिरुन्नदाभिरुनं गदेवीभिरजस्त्वसेव्ये ।  
 अभव्यहं त्यक्षरराशिरुपे हतारिवर्गे ललिते नमस्ते ॥२१

हे ललिते ! आप षडगदेवी परिवार कृष्णा हैं । हे षडगयुक्त श्रुति वाख्यों के द्वारा आप षट्चक्र में विराजमाना हैं । हे षडभियुक्ते ! आप षडभाव रूपों वाली हैं । आपको हम सबका प्रणाम हैं । १५। हे मुख्ये समस्त नित्ये ! हे कामे ! हे शिवे ! हे कान्तासनान्ते ! आपके तेव्र कमलों के समान हैं । आप कामनाओं के देने वाली हैं । हे कामिनि ! आप कामशम्भु की काम्य हैं । हे कलाओं की स्वामिनि ! आपको नमस्कार है । १६। हे दिव्यौषधादये ! आप नगरीष रूप वाली हैं । हे दिव्ये ! आप दिनाधीश सहस्रों के समान कान्ति वाली हैं । हे सनाथे ! आप दया से देवीप्यमाना है । हे देवाविदेव शम्भु की प्रमदे ! आपको हम सबका प्रणाम निवेदित है । १७। हे सावित्रि ! आप सर्वदा अणिमादिक आठों सिद्धियों के द्वारा सेवा करने के योग्य हैं आप सदा शिव के आत्मोज्जतल मञ्च पर निवास किया करती है । हे सदेकालय पादपूज्ये ! हे सभ्ये ! आप लोक को रक्षिका है । आप लोक की रक्षिका हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है । १८। ब्राह्मी जिनमें प्रमुख हैं ऐसी मातृ गणों के द्वारा आप सेव्य हैं । आप ब्रह्म प्रिया हैं । हे ब्राह्मण वन्धभेत्रि ! आप तो ब्रह्मामृत की स्रोत हैं । हे राजहंसि ! आप ब्रह्मेश्वरी हैं । हे श्री ललिते ! आपको हमारा प्रणाम है । १९। संक्षोभिणी जिनमें प्रधान हैं उन समस्त मुद्राओं के द्वारा संसेवित आप हैं और संसरण का प्रहनन करने वाली हैं । हे संसार लीला कृतिसार साक्षि ! हे संसार लीला कृतिसार साक्षि ! हे अधिनाथे ! लसिते ! आपको हमारा नमस्कार है । हे अर्पीशि ! आप निर्णा हैं और त्वेष्टा से अवकर्णि

करने वाली हैं तथा प्रमथ के द्वारा सेवन करने के योग्य हैं । २०। हे नित्ये ! आपकी दया का प्रपञ्च निरांतक है । आपके नीले अलकों की श्रेणियाँ हैं । आपको बारम्बार नमस्कार है । अनंग पुष्पादि एवं उन्नदा अनंग देवियों के द्वारा आप निरन्तर सेवन के योग्य रहती हैं । हे अभव हन्त्र ! हे अक्षर-राशि रूपे ! आपने समस्त शत्रुओं को निहत कर दिया है । हे ललिते ! आपको हमारा नमस्कार है । २१।

**संक्षोभिणीमुख्यचतुर्दशाचिर्मालाद्वतोदारमहाप्रदीप्ते ।**

**आत्मानमाविभ्रति विभ्रमाद्ये शुभ्राश्रये  
शुभ्रपदे नमस्ते ॥२२**

**सशर्वसिद्धादिकशक्तिवन्द्ये सर्वज्ञविज्ञातपदार्विदे ।**

**सर्वाधिके सर्वंगते समस्तसिद्धिप्रदे श्रीललिते नमस्ते ॥२३**

**सर्वज्ञजातप्रथमाभिरन्यदेवीभिरप्याश्रितचक्रभूमे ।**

**सर्वमिराकांक्षितपूरयित्रि सर्वस्य लोकस्य सवित्रि पाहि ॥२४**  
वन्दे वणिन्यादिकवाग्विभूते वद्धिष्ठुचक्रद्युतिवाहवाहे ।

**बलाहकश्यामकचे वचोऽब्द्ये वरप्रदे सुन्दरि पाहि  
विश्वम् ॥२५**

**ब्राणादिदिव्यायुधसार्वभौमे भंडासुरानीकवनांतदावे ।**

**अत्युग्रतेजोज्जवलितांबुराशे प्रसेव्यमाने परितो नमस्ते ॥२६**

**कामेशि वज्रेशि भगेश्य रूपे कन्ये कले कालविलोपदक्षे ।**

**कथाविशेषीकृतदैत्यसैन्ये कामेशयांते कमले नमस्ते ॥२७**

**बिन्दुस्थिते बिन्दुकलंकरूपे विद्वातिमके वृहितचित्प्रकाशे ।**

**वृहत्कुचांभोजविलोलहारे वृहत्प्रभावे ललिते नमस्ते ॥२८**

आप संक्षोभिणी प्रभृति जिनमें मुख्य हैं ऐसी अचि मालाओं से समा-  
वृत उदार महान प्रदीप वाली है हे विभ्रमाद्ये ! आप आत्मा को आवि-  
भरण करती हैं । आपका शुभ्र आश्रय है । हे शुभ्रपदे ! आपको नमस्कार  
है । २२। शम्भु के सहित सिद्ध आदि शक्तियों से आप वन्द्यमान हैं । आपका  
चरण कमल सर्वज्ञ के द्वारा ही विज्ञात है । आप सबसे बड़ी हैं—आप सबमें  
विद्यमान हैं और आप सब सिद्धियों के प्रदान करने वाली हैं । हे श्री

ललिते ! आपको प्रणाम है । २३। आप सर्वत्र से समुत्पन्न प्रथम देवियों के द्वारा आश्रित चक्रभूमि वाली हैं । और सब देवों के मनोरथों को पूर्ण करने वाली हैं । आप सम्पूर्ण लोक की माता हैं । हमारी रक्षा कीजिए । २४। हे वाशिनी आदि वाग्विभूते ! आप वधिष्ठु चक्र की वाह वाह हैं । आपके केश बलाहक की द्युति वाले हैं । आप बचनों की सागर हैं । आप वरदान देने वाली हैं । हे सुन्दरि ! आप इस विश्व की रक्षा करें । २५। बाण के आदि विशेष आयुधों की साम्राज्ञी हैं । आप भंडासुर की सेना के बन लिये दावाग्नि हैं । आप अतीव उग्र तेज से अम्बुराभि को भी ज्वलित करने वाली हैं । आप प्रसंब्यमाना हैं । आपकी सभी ओर से प्रणाम है । २६। हे कामेशि ! वज्रेशि ! हे भगेशि ! आप रूप रहित हैं । हे कन्ये ! हे कले ! आप काल के विलोप करने में परम दक्ष हैं । आपने देवों की सेनाओं को पूर्णतया समाप्त कर दिया है और अब उनकी केवल कथा ही शेष है । कामेशयान्ते ! हे कमले ! आपको नमस्कार है । २७। आप बिन्दु में ही संस्थित हैं और आपका रूप बिन्दु कला ही एक है । आप बिन्दु के स्वरूप वाली हैं और आपने ज्ञान के बड़े प्रकाश को किया है । आपके बड़े कुचों पर हार विलु-लित हो रहा है । आपका प्रभाव वृहत् है । हे ललिते ! आपको हम सबका नमस्कार है । २८।

कामेश्वरोत्संगसदानिवासे कालात्मिके देवि कृतानुकम्पे ।

कल्पावसानोत्थितकालिरूपे कामप्रदे कल्पलते नमस्ते ॥ २९ ॥

सवारुणे सांद्रसुधांशुशीते सारंगशावाक्षि सरोजवक्त्रे ।

सारस्य सारस्य सदैकभूमे समस्तविद्ये श्वरि संनतिस्ते ॥ ३० ॥

तव प्रभावेण चिदग्निजायां श्रीशम्भुनाथप्रकटीकृतायाः ।

भंडासुराद्याः समरे प्रचंडा हृता जगत्कंटकतां प्रयाताः ॥ ३१ ॥

नव्यानि सर्वाणि वपुष्यि कृत्वा हि सांद्रकारुण्यसुधाप्लयन्तः ।

त्वया समस्तं भुवनं सहर्षं सुजीवितं सुन्दरि सभ्यलभ्ये ॥ ३२ ॥

श्रीशम्भुनाथस्य महाशयस्य द्वितीयतेजः प्रसरात्मके यः ।

स्थाण्वाश्रमे कलृप्ततया विरक्तः सतीवियोगेन ॥ ३३ ॥

विरस्तभोगः ॥ ३३ ॥

तेनाद्रिवंशे धूतमन्मलाभां कन्यामुर्मा योजयितुं प्रवृत्ताः ।  
एवं स्मरं प्रेरितवंतं एव तस्यांतिकं घोरतपः स्थितस्य ॥३४

तेनाथ वैराग्यतपोविद्यातक्रोधेन लालाटकृशानुदग्धः ।  
भस्मावशेषो मदनस्ततोऽभूततो हि भंडासुर एष जातः ॥३५

आप का मेश्वर की गोद में ही सदा निवास किया करती हैं और आपका काल ही स्वरूप है । हे देवि ! आपने वडी अनुकम्पा की है । आप कल्प के अन्त में उठी हुई काली के स्वरूप वाली हैं । आप कामनाओं के देने वाली हैं और आप साक्षात् कल्पलता हैं । आपको नमस्कार है । आप सवारुणा हैं और सान्द्रशीतांशु के समान शीतल हैं । आपके नेत्र हरिण के बच्चे के तुल्य हैं और आपका मुख कमल जैसा है । आप सार के भी सार की सदा एक भूमि है । आप समस्त विद्याओं की स्वामिनी हैं । आपको हमारा प्रणिपात है । २६-३०। आपके प्रभाव से श्री शम्भुनाथ के हारा प्रकटित अग्निजा में चित् है । समर में महान प्रचण्ड भंडासुर प्रभृति सब जो जगत के कंटक थे, मारे गये हैं । ३१। सब शरीरों को नवीन करके हमको स्वस्थ बना दिया है और आपने सान्द्र करुणा की सुधा से ही कर दिया था । आपने समस्त भुवन को हर्ष के साथ जीवित कर दिया है । हे सभ्य-लम्हे ! आप तो परम सुन्दरी हैं । ३२। महान् आशय वाले श्री शम्भु के आप द्वितोय तेज के प्रसर के स्वरूप वालो हैं । जो स्थाणु के आश्रम से कलृप्तता से विरक्त सती के वियोग से विरस्त भोग वाला है । ३३। इससे आदि के वंश में जन्म का लाभ प्राप्त करने वाली कन्या उमा को योजित करने के लिए सब प्रवृत्त हुए थे । घोर तपस्या में वर्त्तमान उनके समीप में कामदेव को भेजने की प्रेरणा की थी । ३४। उन्होंने वैराग्य से किये जाने वाले तप के विद्यात से जो क्रोध हुआ था उससे वह कामदेव ललाट की अग्नि से दग्ध कर दिया था । फिर मदन भस्म मात्र रह गया था । वही मदन फिर भंडासुर होकर उत्पन्न हुआ था । ३५।

ततो वथस्तस्य दुराशयस्य कृतो भवत्या रणदुर्मदस्य ।

अथास्मदर्थे त्वतनुसमजातस्त्वं कामसंजीवनमाशु कुर्याः ॥३६

इयं रतिर्भूत्वं वियोगखिन्ना वैधव्यमत्यंतमभव्यमाप ।

पुनस्त्वदुत्पादितकामसंगाद्विष्यति श्रीललिते सनाथा ॥३७

तथा तु हृष्टेन मनोभवेन संमोहितः पूर्वदिदुमौलिः ।

चिरं कृतात्यंतमहासपयो तां पार्वतीं द्राक्षपरिणेष्यतीशः ॥३८  
तयोश्च संगाङ्गविता कुमारः समस्तगीर्णिचमूविनेता ।

तेनैव वीरेण रणे निरस्य स तारको नाम सुरारिराजः ॥३९  
यो भंडदेत्यस्य दुराशयस्य मित्रं स लोकत्रयधूमकेतुः ।

श्रीकण्ठपुत्रेण रणे हतश्चेत्प्राणप्रष्ठिं तदा भवेन्नः ॥४०

तस्मात्त्वमंब त्रिपुरे जनानां मानापहं मन्मथवीरवर्यम् ।

उत्पाद्य रत्या विधवात्वदुःखमपाकुरु व्याकुलकुन्तलायाः ॥४१

एषा त्वनाथा भवतीं प्रपन्ना भर्तुं प्रणाशेन कृशांगयष्टिः ।

नमस्करोति त्रिपुराभिधाने तदत्र कारुण्यकलां विधेहि ॥४२

इसके अनन्तर आपने दुराशय का जो रण में बहुत ही दुर्मद था बध किया था और हम लोगों के लिए वह विना शरीर वाला हो गया है । उस कामदेव के संजीवन को आप शीघ्र ही कर दीजिए । ३६। यह रति विचारी अपने स्वामी के वियोग से बहुत ही खिल्म है । उसको अत्यन्त बुरा वैधव्य प्राप्त हो गया है । हे श्रोललिते ! फिर आपके द्वारा उत्पन्न किये गये कामदेव के सञ्ज्ञ से वह सनाथा होगी । ३७। उसी भाँति उस दुष्ट कामदेव ने फिर इन्दुमौलि को पूर्व की ही भाँति संमोहित किया है वह ईश चिरकाल पर्यन्त अचंना करने वाली उस पार्वती के साथ शीघ्र ही विवाह करेंगे । ३८। उन दोनों (पार्वती-शिव) के संयोग से कुमार उत्पन्न होगा जो समस्त देवगणों की सेना का सेनानी होगा । उस ही वीर के द्वारा रण में असुरों का राजा वह तारक पराजित किया गया । ३९। वह तीनों लोकों का धूमकेतु परम दुष्ट भंडासुर का मित्र था । वह रण में श्रीकण्ठ के पुत्र के द्वारा ही मारा गया था । उसी समय में हमारे प्राणों की प्रतिष्ठा हुई थी । ४०। इस कारण से हे अम्ब ! हे त्रिपुरे ! जनों के मान के अपहर्ता वीरवर कामदेव को उत्पन्न करके विचारी उस व्याकुल कुन्तला रति के विधवापने को आप दूर कर दीजिए । ४१। यह विचारी अनाथ है और अपने भर्ता के प्रणाश होने से अत्यन्त कृश अञ्जों वाली आपकी शरणागति में प्राप्त हुई है । हे त्रिपुराभिधाने ! यह आपको नमस्कार करती है । अतएव इस विचारी पर

**हयग्रीव उत्तर-**

इति स्तुत्वा महेशानीं ब्रह्माद्या विवृधोत्तमाः ।

तां रति दर्शयमासु मलिनां शोककर्षिताम् ॥४३॥

सा पर्यन्त्रमुखी कीर्णकुन्तला धूलिधूसरा ।

ननाम जगदम्बां वै वैधव्यत्यक्तभूषणा ॥४४॥

अथ तद्वर्णनोत्पन्नकारुण्या परमेश्वरी ।

ततः कटाक्षाद्रुत्पन्नः स्पृयमानमुखांबुजः ॥४५॥

पूर्वदेहाधिकरुचिर्मन्मथो मदमेदुर ।

द्विभुजः सर्वभूषाढ्यः पुष्पेषुः पुष्पकामुँकः ॥४६॥

आनन्दयन्कटाक्षेण पूर्वजन्मप्रियां रतिम् ।

अथ सापि रतिर्देवी महत्यानन्दसागरे ।

मज्जन्तो निजश्वरिमवलोक्य मुदं गता ॥४७॥

आनन्दितांतरात्मानौ भक्तिनिर्भरमानसौ ।

ज्ञात्वाथ तौ महाराजी मन्दस्मितमुखांबुजा ।

व्रीडानतां रति क्ष्य श्यामलामिदमव्रीत् ॥४८॥

श्यामले स्नपथित्वैनां वस्त्रकांच्यादिभूषणः ।

अलंकृत्य यथापूर्वं शीघ्रमानीयतामिह ॥४९॥

हयग्रीवजी ने कहा—उत्तम देव ब्रह्मा आदि ने इस रीति से उस इंशानी की स्तुति की थी और उस रति को बहुत ही मलिन और शोक से कर्शित थी दिखा दिया था ।४३। वह मुख पर असू फैलाती हुई बिखरे हुए केशों वाली और धूलि से धूसर और विधवा होने के कारण भूषणों को त्याग देने वाली उस रति ने उस जगदम्बा की सेवा में प्रणाम किया था । ४४। इसके अनन्तर उस विचारी वैधव्य को प्राप्त हुई रति की ओर देख-कर जगदम्बा के हृदय में करुणा उत्पन्न हो गयी थी और उस परमेश्वरी के कटाक्ष से मुस्कराते हुए मुख वाला कामदेव समुत्पन्न हो गया था ।४५।

उसके देह की कान्ति पूर्व के देह से भी अधिक थी और वह मद से मेदुर हो गया था । उसको दो बाहू थीं—वह समस्त भूषणों से सम्पन्न था और पुष्पों के बाणों वाला तथा कुमुमों के धनुष वाला था ।४६। पूर्वजन्म की प्रिया

रति को कटाक्ष के द्वारा आनन्दित कर रहा था । वह रति भी महान आनन्द के सागर में मग्न होकर अपने स्वामी को देखती हुई आनन्द को प्राप्त हुई थी । ४७। महाराजी उन दोनों रति और कामदेव को भक्ति से निर्भर मानस वाले तथा परम प्रसन्न अन्तरात्मा वाले देखकर मन्दस्मित मुखकमल वाली हुई थी और लज्जा से नम्रमुखी उस रति को देखकर श्यामला से यह बोली थी । ४८। हे श्यामले ! इसको स्नान कराकर वस्त्रों और कांची आदि भूषणों से भूषित करके पूर्व की ही भाँति शीघ्र यहाँ लाओ । ४९।

तदाज्ञां शिरसा धृत्वा श्यामा सर्वं तथाकरोत् ।

ब्रह्मविभिवंसिष्ठाद्यं वैवाहिकविधानतः ॥५०॥

कारयामास दम्पत्योः पाणिग्रहणमंगलम् ।

अप्सरोभिश्च सर्वाभिनृत्यगीतादिसंयुतम् ॥५१॥

एतददृष्ट्वा महेन्द्राद्या ऋषयश्च तपोधनाः ।

साधुसाधिवति शंसंतस्तुष्टुवुर्लितांविकाम् ॥५२॥

पुष्पवृष्टिं विमुञ्चन्तः सर्वं सन्तुष्टमानसाः ।

बभूवुस्तौ महाभक्तया प्रणम्य ललितेश्वरीम् ॥५३॥

तत्पाश्वें तु समागत्य बद्धांजलिपुटी स्थितौ ।

अथ कंदर्पवारोऽपि नमस्कृत्य महेश्वरीम् ।

व्यज्ञापयदिदं वाक्यं भक्तिनिर्भरमानसः ॥५४॥

यद्यग्धमीशनेत्रेण वपुर्मे ललितांविके ।

तत्त्वदीयकटाक्षस्य प्रसादात्पुनरागतम् ॥५५॥

तत्र पुत्रोऽस्मि दासोऽस्मि क्वापि कृत्ये नियुक्त्व माम् ।

इत्युक्ता परमेशानी तमाह मकरध्वजम् ॥५६॥

उस महाराजी की आज्ञा को शिर पर धारण करके उस श्यामला ने सब कुछ वैसा ही कर दिया था । वसिष्ठ आदि ब्रह्मविभियों के द्वारा वैवाहिक विधान किया गया था । ५०। उन दम्पतियों का पाणिग्रहण का मञ्जल किया गया जो सभी अप्सराओं के द्वारा नुत्य और गीत आदि से समन्वित था । ५१। यह सब कुछ देखकर महेन्द्र आदि देवगण तथा तपोधन ऋषियों ने

अच्छा हुआ—अच्छा हुआ —यह कहकर ललिताम्बा की सुन्ति की थी । ५२।  
 सबने परम सन्तुष्ट होते हुए नभो मंडल से पुष्पों की वर्षा थी । वे दोनों भी  
 बहुत प्रसन्न हुए थे और उन्होंने महा भक्ति से ललितेश्वरी को प्रणाम  
 किया था । ५३। वे दोनों-ललितेश्वरी के समीप में समागत होकर दोनों हाथों  
 को जोड़कर समीप में लिखत हो गये थे ? इसके अनन्तर कामदेव भी महे-  
 श्वरी को प्रणाम करके भक्ति भाव से परिपूर्ण मन बाला होकर इस वाक्य  
 को बोला था । ५४। हे ललिताम्बिके ! राम्भु के नेत्र से जो मेरा शरीर दग्ध  
 हो गया था वह आपके कुण कटाक्ष से पुनः प्राप्त हो गया है । ५५। मैं  
 आपका ही पुत्र हूँ । किसी भी सेवा में मुझे नियुक्त कीजिए । इस प्रकार से  
 जब परमेशानी से कहा गया था तो उस देवी ने कामदेव से कहा था । ५६।

### श्रीदेव्युवाच—

वत्सागच्छ मनोजत्मन्न भयं तव विद्धते ।

मत्प्रसादाजजगत्सर्वं मोहयाव्याहताशुग ॥ ५७ ॥

तद्वाणपातनाजजातधीर्यविष्टव ईश्वरः ।

पर्वतस्य सुतां गौरीं परिणेष्यति सत्वरम् ॥ ५८ ॥

सहस्रोटयः कामा मत्प्रसादात्त्वदुद्घ्वाः ।

सर्वेषां देहमाविश्य दास्यन्ति रतिमुत्तमाम् ॥ ५९ ॥

मत्प्रसादेन वैराग्यात्संकुद्धोऽपि स ईश्वरः ।

देहदाहं विधातुं ते न समर्थो भविष्यति ॥ ६० ॥

अदृश्यमूर्तिः सर्वेषां प्राणिनां भवमोहनः ।

स्वभार्याविरह शंकी देहस्यार्धं प्रदास्यति ।

प्रयातोऽसौ कातरात्मा त्वद्वाणाहतमानसः ॥ ६१ ॥

अद्य प्रभृति कन्दर्पं मत्प्रसादान्महीयसः ।

त्वन्तिदां ये करिष्यन्ति त्वयि वा विमुखाशयाः ।

अवश्यं क्लीवतैव स्यात्तेषां जन्मनिजन्मनि ॥ ६२ ॥

ये पापिष्ठा दुरात्मानो मद्भक्तद्रोहिणश्च हि ।

तानगम्यासु नारीषु पाययित्वा विनाशय ॥ ६३ ॥

श्री देवी ने कहा—हे वत्स ! आओ, हे मनोजजन्मन्, आपको अब कुछ भी कहीं पर भय नहीं है । हे अव्याहृत बाणों वाले ! मेरे प्रसाद से आप सम्पूर्ण जगत को मोहित करो । ५७। तुम्हारे बाणों के पातन से धैर्य के विप्लव होने से शम्भु पर्वत हितवान् की सुता पार्वती को श्रीघ्र ही व्याहृ लेंगे । ५८। मेरे प्रसाद से तुमसे समुत्पन्न सहस्रों करोड़ कामदेव सबके देहों में प्रवेश करके उत्तम रति को देंगे । ५९। मेरे प्रसाद से क्रुद्ध भी भगवान शम्भु जिनको कि वे राग्य हो गया है तुम्हारे देह को दग्ध करने में समर्थ नहीं होंगे । ६०। भव को मोहित करने वाला कामदेव सब प्राणियों में अदृश्य मूर्ति वाला होकर रहेगा । अपनी भार्या के विरह की आशंका वाला देह के आधे भाग को दे देता । तुम्हारे बाण से आहत मानस वाले यह कातरात्मा होकर प्रयाण कर गये हैं । ६१। आज से लेकर हे कन्दर्प ! महान् मेरे प्रसाद से जो तेरी निन्दा करेंगे अथवा तुझसे विमुख विचार वाले होंगे उनको अवश्य ही नपुंसकता जन्म-जन्मों में हो जायगी । ६२। जो पापिष्ठ हैं और मेरे भक्तों के द्वोही हैं उनको अगम्या अर्थात् न गमन करने के योग्य तारियों में गिराकर विनाश करदो । ६३।

येषां मदीय पूजामु मद्दूक्तेष्वाहृतं मनः ।

तेषां कामसुखं सर्वं संपादय समीप्सितम् ॥ ६४ ॥

इति श्रीललितादेव्या कृताज्ञावचनं स्मरः ।

तथेति शिरसा विभ्रत्सांजलिनिर्यंयौ ततः ॥ ६५ ॥

तस्यानंगस्य सर्वेभ्यो रोमखूपेभ्य उत्थिताः ।

बहवः शोभनाकारा मदना विश्वमोहनाः ॥ ६६ ॥

तैविमोह्या समस्तं च जगच्चक्रं मनोभवः ।

पुनः स्थाप्वाश्रमं प्राप चन्द्रमौलेजिगीषया ॥ ६७ ॥

ब्रसंतेन च मित्रेण सेनान्या शीतरोचिषा ।

रागेण पीठमदेन मन्दानिलरयेण च ॥ ६८ ॥

पुंस्कोकिलगलत्स्वानकाकलीभिश्च संयुतः ।

शृङ्गारवीरसंपन्नो रत्यालिंगितविग्रहः ॥ ६९ ॥

जैत्रं शरासनं धुन्वन्प्रवीराणां पुरोगमः ।

महात्मेष्विमुखं सर्वं तिर्थं साम्प्रितः ॥ ७० ॥

जिनके हृदय मेरी पूजा में और मेरे भक्तों में आदर करने वाले हैं उनको समस्त कार्य का सुख दो और उनका अभीष्ट पूर्ण कर दो । ६४। कामदेव ने इस श्री ललितादेवी के आज्ञा वचन को शिर से ग्रहण करके फिर हाथों को जोड़े हुए वह कामदेव वहाँ से निकल कर चला गया था । ६५। उस कामदेव के समस्त रोमों के लिंगों से उठे हुए बहुत से परम शोभन आकार वाले कामदेव सम्पूर्ण विश्व को मोहन करने वाले थे । ६६। कामदेव ने उन बहुत से अनङ्गों के द्वारा इस सम्पूर्ण जगत के मंडल को मोहित कर दिया था और फिर भगवान् शम्भु पर विजय पाने की इच्छा से स्थानु के आश्रय में प्राप्त हो गया था । ६७। अपने मित्र वसन्त के साथ तथा सेनानी श्रीतांशु के महित पीठमर्द राग से संयुत एवं मन्द वायु के सहित और पुंस्को-किल के निकले हुए शब्द की काकलियों से समंवित-शृङ्गार वीर सम्पन्न रति से आलिङ्गित वरु वाला कामदेव जयशील धनुष को हिलाता हुआ प्रवीरों का अग्रगामी होकर मदन के अरि शिव के समक्ष में पहुँचकर निडर होकर समाप्ति हो गया था । ६८-७०।

**तपोनिष्ठं चन्द्रचूडं ताड्यामास सायकं ।**

**अथ कन्दर्पवाणीघंस्ताडितश्चन्द्रशेखरः ।**

**दूरीचकार वैराग्यं तपस्तत्याज दुष्करम् ॥७१॥**

**नियमानस्त्रिलांस्त्यक्त्वा त्यक्त्वौयः शिवः कृतः ।**

**तामेव पार्वती ध्यात्वा भूयोभूयः स्मरातुरः ॥७२॥**

**निशश्वास वहशशर्वः पांडुरं गण्डमंडलम् ।**

**ब्राष्पायमाणो विरही संतप्तो धीर्यविष्लवात् ।**

**भूयोभूयो गिरिसुतां पूर्वदृष्टमनुस्मरन् ॥७३॥**

**अनंगबाणदहनैस्तप्यमानस्य शूलिनः ।**

**न चन्द्ररेखा नो गङ्गा देहतापच्छिदेऽभवत् ॥७४॥**

**नन्दिभृंगिमहाकालप्रमुखेर्गणमंडलैः ।**

**आहृते पुष्पशयने विलुलोठ मुहुर्मुहुः ॥७५॥**

**नन्दिनो हस्तमालंब्य पुष्पतल्पान्तरात्पुनः ।**

**पुष्पतल्पान्तरं गत्वा व्यञ्जेष्वत् मुहुर्मुहुः ॥७६॥**

न पुष्पशयनेनेन्दुखण्डनिगंलितामृते ।  
न हिमानोपयसि वा निवृत्तस्तद्वपुज्जरः ॥७७

तपश्चर्या में स्थित भगवान् चन्द्रचूड़ को सायकों से तड़ित करने लगा था । इसके पश्चात् काम के बाणों से शम्भु ताढ़ित हुए थे और उन्होंने वैराग्य को दूर कर दिया था तथा दुष्कर तप को त्याग दिया था । ७१। समस्त नियमों को छोड़कर शम्भु धैर्यं त्याग देने वाले कर दिये गये थे । अब तो उसी पावंती का ध्यान करके बारम्बार काम से आतुर हो गये थे । ७२। शिव निःश्वास ले रहे थे और उनका गंड मंडल पाण्डुर हो गया था । अश्रु निकल रहे थे तथा धैर्य के विष्टव होने से विरही बहुत ही संताप युक्त हो गये थे । बारम्बार पूर्व में देखी हुई गिरि की सुता का अनुस्मरण करने लगे थे । ७३। कामदेव के बाणों की अग्नि से संतात होते हुए शिव के दाह को दूर करने में न तो चन्द्ररेखा और न गंगा समर्थ हुए थे । ७४। नन्दी-भृजी—और महाकाल आदि प्रमुखों के द्वारा लाई हुई पुष्पों की शय्या में शिव बार-बार लोट लगा रहे थे । ७५। नन्दी के हाथ का सहारा ग्रहण करके फिर दूसरी पुष्पों की शय्या पर भी पहुँचे थे । दूसरी पुष्पों की शय्या पर पहुँचकर भी बार-बार विशेष चेष्टा शान्ति पाने के लिए की थी । ७६। किन्तु उनके देह का काम ज्वरोत्पन्न सन्ताप पुष्पों की शय्या से—चन्द्रकला से निर्गत अमृत से और हिमानी के जल से भी शान्त नहीं हुआ था । ७७।

स तनोरतनुज्वालां शमयिष्यन्मुहुर्मुहुः ।  
शिलीभूतान्हिमपयः पट्टानध्यवसच्छिवः ।  
भूयः शैलसुतारूपं चित्रपट्टे नखैलिखत् ॥७८

तदालोकनतोऽद्वूरमनंगार्तिमवर्धयित् ।

तामालिख्य हिया नम्रां वीक्षमाणां कटाक्षतः ॥७९  
तच्चित्रपट्टमंगेषु रोमहर्षेषु चाक्षिपत् ।

चिन्तासंगेन महता महत्या रतिसंपदा ।

भूयसा स्मरतापेन विव्यथे विषमेक्षण ॥८०

तामेव सर्वतः पश्यस्तस्यामेव मनो दिशन् ।

तयैव संल्लपन्सार्थमुन्मादेनोपपन्नया ॥८१

तन्मात्रभूतहृदयस्तच्चित्तस्तत्परायणा ।

तत्कथासुधया नीतसमस्तरजनीदितः ॥८२

तच्छोलवर्णनरतस्तद्रूपालोकनोत्सुकः ।

तच्चारुभोगसंकल्पभालाकरसुमालिकः ।

तन्मयत्वमनुप्राप्तस्ततापातितरां शिवः ॥८३

इमां मनोभवरुजमचिकित्स्या स धूर्जटिः ।

अवलोक्य विवाहाय भृशमुद्यमवानभूत् ॥८४

वे अपने शरीर की बढ़ी हुई ज्वाला को बार-बार शम भी कर रहे थे और शिला के रूप में जो हिम का जल के पट्ट थे उन पर भी शिव जाकर बैठे थे । वहाँ पर फिर वे शंख सुता के चित्र को नखों से लिखने लग गये थे । ७८। उस चित्र के आलोकन से बहुत ही कामात्ति बढ़ गयी थी । उसका आलेखन ऐसा किया था जो लज्जा से नीचे की ओर मुख बाली थी और कटाक्ष से देख रही थी । ७९। उस चित्र के पट्ट को शिव ने रोमांचित अङ्गों पर प्रक्षिप्त कर लिया था । उस समय बड़ा भारी चिन्ता का सञ्च था और बहुत ही अधिक रति करने की सम्पत्ति थी । विषमेक्षण बहुत अधिक मदन के ताप से व्ययित हो गये थे । ८०। शिव पावंती ही को सब ओर देख रहे थे और उसी में अपना मन लगा लिया था । उन्माद से उप-पन्न उसी के माथ संलाप करते थे । ८१। उनके हृदय में केवल पावंती ही थी और वे तच्चित्त और उसी में परायण हो गये थे । उस पावंती की कथा रूपिणी मुद्धा से सब दिन और पूरी रात व्यतीत की थी । ८२। उसके ही शील स्वभाव के वर्णन में वे निरत थे और उसके ही रूप के अवलोकन में उत्सुक हो गये थे । उसके साथ भोग के संकल्पों की माला कर में लेकर सुमालिक हो गये थे । शिव तन्मयता को प्राप्त होकर बहुत ही अधिक संतप्त हुए थे । ८३। वह धूर्जटि इस कामदेव की बीमारी को जिसकी कोई भी चिकित्सा नहीं थी जब शिव ने देखा था तो फिर वे विवाह करने के लिए बहुत ही अधिक उद्यमवान हुए थे । ८४।

इथं विमोह्य तं देवं कन्दपो ललिताजया ।

अथ तां पर्वतसुतामाशुगेरम्यतापयत् ॥८५

प्रभूतविरहज्वालामलिनैः इवसितानलैः ।

शुद्ध्यमाणाधरदलो भृशं पांडुकपोलमूः ॥८६

नाहारे वा न शयने न स्वापे धृतिमिच्छति ॥५५॥ महाकाली  
 सखीसहस्रैः सिषिचे नित्यं शीतोपचारकैः ॥५६॥ इति क्षेत्री  
 पुनः पुनस्तप्यमाना पुनरेव च विह्वला । ॥५७॥ इति क्षेत्री  
 न जगाम रुजा शांतिं मन्मथाग्नेर्महीयसः ॥५८॥ इति क्षेत्री  
 न निद्रां पार्वती भेजे विरहेणोपतापिता । ॥५९॥ इति क्षेत्री  
 स्वतनोस्तापनेनासौ पितुः खेदमवध्यत् ॥६०॥ इति क्षेत्री  
 अप्रतीकारपुरुषं विरहं दुहितुः शिवे । ॥६१॥ इति क्षेत्री  
 अवलोक्य स शैलेन्द्रो महादुखमवाप्तवान् ॥६०॥ इति क्षेत्री  
 भद्रे त्वं तपसा देवं तोषयित्वा महेश्वरम् । ॥६२॥ इति क्षेत्री  
 भातरिं तं समृच्छेति पित्रा सम्ब्रेरिताथ सा ॥६१॥ इति क्षेत्री  
 हिमवच्छैलशिखरे गौरीशिखरनामनि । ॥६२॥ इति क्षेत्री  
 चकार पतिलाभाय पार्वती दुष्करं तपः ॥६३॥ इति क्षेत्री  
 शिणिरेषु जलावासा ग्रीष्मे दहनमध्यगा । ॥६४॥ इति क्षेत्री  
 अकें निविष्टृष्टिश्च सुधोरं तप आस्थिता ॥६५॥ इति क्षेत्री

ललिता देवी की आज्ञा से उस कन्दर्प ने इस तरह से शिव को  
 विमोहित करके फिर उसने पार्वती को अपने बाणों से अभितप्त कर दिया  
 था । ५५। वडे हुए विरह की ज्वाला से मलिन श्वासों की वायुओं से उसके  
 अधर दल सूख गये थे और उसके कपोल पाण्डु वर्ण के हो गये थे । ५६।  
 पार्वती को आहार में—शयन में—स्नान में कही भी धैर्य नहीं होता था ।  
 सहस्रों सद्बिर्या नित्य ही श्रीतल उपचारों से उसका सेचन किया करती थी ।  
 ५७। बार-बार तापमान होती हुई वह फिर-फिर कर बेचैन हो जाती थी ।  
 कामाग्नि से जो अधिक थी वह उस रोग की शान्ति नहीं प्राप्त कर सकी थी ।  
 ५८। विरह से उप तापित होकर पार्वती को निद्रा भी नहीं आती थी ।  
 अपने शरीर के सन्तापन से उसने पिता के भी खेद को बढ़ा दिया था । ५९।  
 जिसका कुछ भी प्रतिकार नहीं था ऐसा शिव के विषय में दुहिता के विरह  
 को देखकर शैलराज को महान दुख प्राप्त हो गया था । ६०। पिता ने उसको  
 प्रेरणा दी थी कि हे भद्रे ! तुम तप के द्वारा महेश्वर को प्रसन्न करो और  
 मन्त्रो अपना भर्ता प्राप्त करो ॥६१॥ विष्टृष्टिश्च सुधोरं तप आस्थिता ॥६२॥ इति क्षेत्री

शिखर नाम वाली चोटी है उस पर पार्वती ने पति के लाभ प्राप्त करने के लिये बड़ा ही महान् दुष्कर तप किया था । शीत में जल में निवास करती थी और ग्रीष्म में अग्नि के मध्य में रही थी । सूर्य में हाँड़ लगाकर उसने घोर तप किया । ६२-६३।

तेनैव तपसा तुष्टः सान्निध्यं दत्तवाऽन्धिष्ठवः ।

अङ्गीचकार तां भार्या वैवाहिकविधानतः ॥६४॥

अथाद्रिपतिना दत्तां तनयां नलिनेक्षणाम् ।

सप्तषिद्वारतः पूर्वं प्रायितामुदवोढ सः ॥६५॥

तया च रममाणोऽसौ बहुकालं महेश्वरः ।

ओषधीप्रस्थनगरे श्वशुरस्य गृहेऽवसत ॥६६॥

पुनः कैलासमागत्य समस्ते प्रमथे सह ।

पार्वतीमानिनायाद्रिनाथस्य प्रीतिमार्वहत् ॥६७॥

रममाणस्तया सार्धं कैलासे मन्दरे तथा ।

विन्ध्याद्रौ हेमशीले च मलये पारियात्रके ॥६८॥

नानाविक्षेषु स्थानेषु रत्ति प्राप महेश्वरः ।

अथ तस्यां ससर्जेण्यं वीर्यं सा सोदुमक्षमा ॥६९॥

भुव्यस्यजत्सापि बह्लौ कृत्तिकासु स चाक्षिपत् ।

ताश्च गङ्गाजलेऽमुञ्चन्सा चैव शरकानने ॥१००॥

उसी तप से तुष्ट होकर शिव ने उसका सान्निध्य किया था । उस पार्वती को शिव ने वैवाहिक विधि से अपनी भार्या बनाना स्वीकार कर लिया था । ६४। इसके बश्चात् शिव ने सप्तषियों के द्वारा प्रायिता उस अद्वियति के द्वारा प्रदान की हुई नलिनेक्षण पुत्री का उद्भाव कर लिया था । ६५। वह महेश्वर उसके साथ रमण बहुत समय पर्यन्त करते रहे थे और अपने श्वशुर के ही घर में औषधिप्रस्थ नगर में उन्होंने निवास किया था । ६६। फिर कैलास पर आ गये थे और प्रमथों के साथ पार्वती को बहाँ ले आये थे तथा शैलराज की प्रीति भी प्राप्त कर ली थी । ६७। कैलास में तथा मन्दर में उस पार्वती के साथ रमण करते रहे थे । तथा विन्ध्य में—हेमशील में—मलयाचल में और पारियात्रिक में रमण किया था । ६८। अनेक स्थानों

में महेश्वर ने रति प्राप्त की थी। इसके बाद उसमें अपना उग्रबीर्यं छोड़ा था जिसके सहन करने में वह असमर्थ हो गयी थी। १६६। इसने भी उस बीर्य को भूमि में—वह्नि में—कृतिकाओं में—क्षिप्त कर दिया था। उन्होंने गङ्गाजल में छोड़ दिया था और उसने शर कानन में छोड़ा था। १००।

**तत्रोदभूतो महावीरो महासेनः षडाननः ।**

**गंगायाश्चातिकं नीतो धूर्जटिवृद्धिमागमत् ॥ १०१ ॥**

**स वर्धमानो दिवसे दिवसे तीव्रविक्रमः ।**

**शिक्षितो निजतातेन सर्वा विद्या अवाप्तवान् ॥ १०२ ॥**

**अथ तातकृतानुजः सुरसेन्यपतिर्भवत् ।**

**तारकं मारयामास समस्तैः सह दानवैः ॥ १०३ ॥**

**ततस्तारकदेत्येद्रवधसन्तोषशालिना ।**

**शक्रेण दत्तां स गुहो देवसेनामुपानयत् ॥ १०४ ॥**

**सा शक्तनया देवसेना नाम यशस्विनी ।**

**आसाद्य रमणं स्कन्दमानन्दं भृशमादधौ ॥ १०५ ॥**

**इत्थं संमोहिताशेषविश्वचक्रो मनोभवः ।**

**देवकार्यं सुसम्पाद्य जगाम श्रीपुरं पुनः ॥ १०६ ॥**

**यत्र श्रीनगरे पुण्ये ललिता परमेश्वरी ।**

**वर्तते जगतामृद्धर्यं तत्र तां सेवितुं ययौ ॥ १०७ ॥**

वहाँ पर महान् सेनानी महावीर षडानन समुत्पन्न हुए थे गङ्गा के समीप में पहुँचाया गया था और धूर्जटि वृद्धि को प्राप्त हुए थे। १०१। वह प्रतिदिन बढ़ने लगे थे और परम तीव्र विक्रम वाले हुए थे। अपने ही पिता के द्वारा उसको शिक्षा दी गयी थी और उसने समस्त विद्याएँ प्राप्त कर ली थीं। १०२। इसके पश्चात् पिता की आज्ञा प्राप्त करके देवों के सेनापति का पद ग्रहण कर लिया था। फिर उनने समस्त दानवों के साथ तारक को मार डाला था। १०३। फिर तारक देत्य के वध से सन्तोष शाली इन्द्र ने देवों की सेना दी थी और गुह देव सेना को प्राप्त हो गये थे। फिर शुक्र की पुत्री देवसेना नाम वाली यशस्विनी ने स्कन्द को अपना स्वामी प्राप्त करने पर अधिक आनन्द प्राप्त किया था। १०४-१०५। इस रीति से कामदेव ने

सम्पूर्ण विश्व को संमोहित कर दिया था। वह देवों के इस कार्य को पूर्ण करके फिर श्रीपुर में चला गया था। १०६। जहाँ पर परम पुण्य श्री नगर में परमेश्वरी ललिता जगतों की समृद्धि के वर्तमान रहती है। उसी की सेवा करने के लिए वह चला गया था। १०७।

## ॥ भतंग कन्या प्रादुर्भवि वर्णन ॥

अगस्त्य उवाच—

किमिदं श्रीपुरं नाम केन रूपेण वर्तते ।

केन वा निमितं पूर्वं तत्सर्वं मे निवेदय ॥१॥

कियत्प्रमाणं कि वर्णं कथयस्व मम प्रभो ।

त्वमेव सर्वं सन्देहपञ्चशोषणभास्करः ॥

हयग्रीव उवाच—

यथा चक्ररथं प्राप्य पूर्वोक्तैर्लक्षणं युतम् ।

महायागानलोत्पन्ना ललिता परमेश्वरी ॥३॥

कृत्वा वैवाहिकीं लीलां ब्रह्माद्यैः प्रार्थिता पुनः ।

व्यजेष्ट भण्डनामानमसुरं लोककण्टकम् ॥४॥

तदा देवा महेन्द्राद्याः सन्तोषं बहु भेजिरे ।

अथ कामेश्वरस्यापि ललितायाश्च शोभनम् ।

नित्योपभोगसत्र्यां मन्दिरं कर्तुं मुत्सुकाः ॥५॥

कुमारा ललितादेव्या ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥

वर्धकि विश्वकर्मणं सुराणां शिल्पकोविदम् ॥६॥

असुराणां शिल्पिनं च मयं मायाविचक्षणम् ।

आहूय कृतसत्कारानूचिरे ललिताज्या ॥७॥

अगस्त्यजी ने कहा—यह श्रीपुर नाम बाला क्या है। और यह किस स्वरूप से होता है। पूर्व में इसका निर्माण किसने किया था—यह सब आप कृपया मुझको बतला दीजिए। १। यह श्रीपुर किसना बहा है और इसका क्या वर्ण है—हे प्रभो! यह सभी कुछ बतलाइए। आप ही एक ऐसे हैं जो

सभी प्रकार से सन्देह के पंक को सुखा देने वाले हैं । २। श्री हययोधीजी ने कहा—जिस प्रकार से पूर्व में कहे हुए लक्षणों से युक्त चक्ररथ को प्रोत्साहन करके महाभागानला परमेश्वरी ललिता समुत्पन्न हुई थी । ३। फिर ब्रह्मा आदि के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर वैवाहिकी लीला करके उसने लोकों के लिए कष्टक भंडासुर पर विजय प्राप्त की थी । ४। वहाँ पर महेन्द्र आदि देवगण बहुत ही अधिक सन्तुष्ट हुए थे । इसके उपरान्त कामेश्वर का और ललिता का परम शोभन नित्य उपभोग के समस्त अर्थों वाला एक मन्दिर का निर्माण करने के लिए सब देवगण उत्सुक हुए थे । ५। ललिता देवी के कुमार ब्रह्मा-विष्णु और महेश्वर थे । इन्होंने वर्धकि विश्वकर्मा को जो कि शिल्प विद्या का परिणित था । ६। और असुरों का शिल्पी मय को जो माया में बढ़ा कुशल था बुलाया था । इनका सत्कार करके ललिता की आज्ञा से उनसे सवने कहा था । ७।

### अधिकारिपुरुषा ऊचुः—

भो विश्वकर्मजिठल्पज्ज भोभो मय महोदय ।

भवन्तो सर्वज्ञास्त्रज्ञो घटनामागंकोविदो ॥८॥

संकल्पमात्रेण महाशिल्पकल्पविशारदो ।

युवाभ्यां ललितादेव्या नित्यज्ञानमहोदये ॥९॥

षोडशीशेत्रमध्येषु तत्क्षेत्रसमसंख्यया ।

कर्तव्या श्रीनगर्यो हि नानारत्नैरलङ्घुताः ॥१०॥

यत्र षोडशधा भिन्ना ललिता परमेश्वरी ।

विश्वव्राणाय सततं निवासं रचयिष्यति ॥११॥

अस्माकं हि प्रियमिदं मरुतामपि च प्रियम् ।

सर्वलोकप्रियं चैतत्तन्नाम्नैव विरच्यताम् ॥१२॥

इति कारणदेवानां वचनं सुनिशम्य तौ ।

विश्वकर्ममयौ नत्वा व्यभाषेतां तथास्त्वति ॥१३॥

पुनर्नत्वा पृष्ठवन्ती तौ तान्कारणपूरुषान् ।

तेषु श्वेतेषु कर्तव्याः श्रीनगर्यो महोदयः ॥१४॥

अधिकारी पुरुषों ने कहा था—हे विश्वकर्मन् ! आप बहुत ही ऊँचे शिल्प कर्म के ज्ञाता हैं । हे महोदय मय ! आप दोनों ही घटना मार्ग के विद्वान् हैं और सभी शास्त्रों के भी ज्ञाता हैं ? ॥१३॥ आप लोग तो केवल संकल्प से ही महान् शिल्प कल्प के विशारद हैं । आप दोनों को ही नित्य ज्ञान की सागर ललितादेवी की श्री नगरियाँ बनानी चाहिए जो षोडशी क्षेत्र के मध्य में उसके क्षेत्र की समान संख्या से युक्त होंगी । वे श्री नगरी अनेक रत्नों से विभूषित भी बनानी चाहिए ॥१४॥ जहाँ पर सोलह प्रकार से भिन्न परमेश्वरी ललिता इस विश्व की रक्षा के लिए अपना निवास बनायेगी ॥१५॥ यह हमारा भी प्रिय होवे और मरहों का भी प्रिय हो और सर्वलोक का प्रिय होवे ऐसा यह नाम से ही विरचित करो ॥१६॥ यह कारण देवों का वचन उन दोनों ने श्रवण करके दोनों विश्वकर्माओं ने ऐसा ही होगा—यह कहकर स्वीकार किया था ॥१७॥ फिर उनने नमस्कार करके उन कारण देवताओं से पूछा था कि ये श्री नगरियाँ किन क्षेत्रों में बनानी चाहिए ॥१८॥

**ब्रह्माद्याः परिपृष्ठास्ते प्रोचुस्तौ शिल्पिनौ पुनः ।**

**क्षेत्राणां प्रविभागं तु कल्पयन्तौ यथोचितम् ॥१५॥**

**कारणपुरुषा ऊचुः—**

प्रथमं मेरुपृष्ठे तु निषधे च महीधरे ।

हेमकूटे हिमगिरौ पञ्चमे गन्धमादने ॥१६॥

नीले मेषे च शृंगारे महेन्द्रे च महागिरौ ।

क्षेत्राणि हि नवैतानि भौमानि विदितान्यथ ॥१७॥

औदकानि तु सप्तैव प्रोक्तान्यखिलसिन्धुषु ।

लवणोऽब्दीक्षुसाराब्धिः सुराब्धिघृतसागरः ॥१८॥

दधिसिन्धुः क्षीरसिन्धुर्जलसिन्धुश्च सप्तमः ।

पूर्वोक्ता नव श्लेन्द्राः पश्चात्सप्त च सिन्धवः ॥१९॥

आहृत्य षोडश क्षेत्राण्यंबाश्रीपुरब्लृप्तये ।

येषु दिव्यानि वेशमानि ललिताया महोजसः ।

सृजत दिव्यघटनापण्डितौ शिल्पिनौ युवाम् ॥२०॥

येषु क्षेत्रेषु कलृप्तानि धनत्या देव्या महासुरान् ।  
नामानि नित्यानाम्नैव प्रथितानि न संशयः ॥२१॥

ब्रह्मादिक से परिपृष्ठ हुए उन दोनों शिल्पियों ने कहा था कि क्षेत्रों का प्रविभाग यथोचित कल्पित कीजिए । १५। कारण पुरुषों ने कहा—प्रथम तो मेर के पृष्ठ पर और निषध महीधर पर—हेम गिरि पर—हिम कूट पर और पाँचवे गन्ध मादन पर—नील—मेष—शुंगार और महागिरि महेन्द्र पर ये नी क्षेत्र भौम विदित हैं । १६-१७। जलीय सात ही स्थान हैं जो समस्त सिन्धुओं में बताये गये हैं । लवण सागर—इक्षुसार सागर—सुरा सागर—घृत सागर । १८। दधि सागर—क्षीर सिन्धु है । पूर्व में कहे हुए नी शैलेन्द्र और पीछे बताये गये सात सिन्धु हैं । १९। इन सोलह क्षेत्रों का आहरण करके श्री के पुरों की कलृप्ति के लिए हैं । महान ओज वाली ललिता देवी के जिनमें दिव्य गृह होंगे । आप दोनों ही शिल्पी हैं और दिव्य घटना के महान् पण्डित हैं । अतः ऐसा ही निर्मण कीजिए । २०। जिन क्षेत्रों में असुरों का हनन करने वाली देवी के नाम कलृप्त हैं वे सब नित्य नाम से ही प्रथित हैं—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है । २१।

सा हि नित्यास्वरूपेण कालव्याप्तिकरी परा ।

सर्वं कलयन्ते देवी कलनांकतया जगत् ॥२२॥

नित्यानां च महाराजी नित्या यत्र न तद्विदा ।

अतस्तदीयनाम्ना तु सनामा प्रथिता पुरा ॥२३॥

कामेश्वरीपुरी चैव भगमालापुरी तथा ।

नित्यविलन्नापुरीत्यादिनामानि प्रथितान्यलम् ॥२४॥

अतो नामानि वर्णेन योग्ये पुण्यतमे दिने ।

महाशिल्पप्रकारेण पुरीं रचयतां शुभाम ॥२५॥

इति कारणकृत्येन्द्रैर्ब्रह्मविष्णुमहेश्वरैः ।

प्रोक्तो तौ श्रीपुरीस्थेषु तेषु क्षेत्रेषु चक्रतुः ॥२६॥

अथ श्रीपुरविस्तारं पुराधिष्ठातृदेवताः ।

कथयाम्यहमाधार्यं लोपामुद्रापते शृणु ॥२७॥

यो मेरुखिलाधारस्तुं गश्चानन्तयोजनः ।

चतुर्दशजगच्चक्रसंप्रोतनिजविग्रहः ॥२८॥

वह देवी परा नित्या के स्वरूप से काल की व्याप्ति करने वाली है । कलनान्तकता से देवी सम्पूर्ण जगत् का कलन करती है । २२। महाराजी नित्या नाम वाली है जिसमें तदभिदा भी नित्या नाम ही है । अतएव उसके ही नाम से वह पुरी पहिले सनामा प्रथिता हुई है । २३। कामेश्वरी पुरी तथा भगमाला पुरी तथा नित्य खिलन्नापुरी—इत्यादि नाम ही प्रथिता है । वही पर्याप्त है । २४। इसीलिए नाम वर्ण से योग्य पूण्य दिन में महान शित्प के प्रकार मेर उस शुभा पुरी को रचना की थी । २५। इसलिए कारण कृत्येन्द्र ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वरों के द्वारा उन क्षेत्रों में श्री पुरीस्थों में कहे गये थे । २६। हे लोपामुद्रापते ! आप श्रवण कीजिए—मैं अब उस श्री पुर का विस्तार और पुर के अधिष्ठातृ देवताओं को बतलाता हूँ । २७। जो मेरु का अखिलाधार है और अनन्तयोजन ऊँचा है चौदह शुभवर्णों के चक्र में संप्रोत विग्रह वाला है । २८।

तस्य चत्वारि शृंगाणि शकनंक्रृतवायुषु ।

मध्यस्थलेषु जातानि प्रोच्छायस्तेषु कथ्यते ॥२९॥

पूर्वोक्तशृंगत्रितयं शतयोजनमुन्नतम् ।

शतयोजनविस्तारं तेषु लोकास्त्रयो मताः ॥३०॥

ब्रह्मलोको विष्णुलोकः शिवलोकस्तर्थेव च ।

एतेषां गृहविन्यासान्वद्याम्यवसरांतरे ॥३१॥

मध्ये स्थितस्य शृंगस्य विस्तारं चोच्छ्रुयं शृणु ।

चतुःशतं योजनानामुच्छ्रुतं विस्तृतं तथा ॥३२॥

तत्रेव शृगे महति शिलिपभ्यां श्रीपुरं कृतम् ।

चतुःशतं योजनानां विस्तृतं कुम्भसंभव ॥३३॥

तत्रायं प्रविभागस्ते प्रविविच्य प्रदर्श्यते ।

प्राकारः प्रथमः प्रोक्तः कालायसविनिमितः ॥३४॥

षड्दशाधिकसाहस्रयोजनायतवेष्टनः ॥३५॥

चतुर्दिक्षु द्वायुं तश्च चतुर्योजनमुच्छ्रुतः ॥३५॥

उसके चार शिखर शक्ति—नेत्रहृत्य—बायु—मध्यस्थलों में हुए हैं । जो ऊँचाई है वह बतलायी जाती है । २६। पूर्व में कहे हुए तीन शृंग शर् योजन उन्मत हैं और उनका सौ योजन ही विस्तार है । उनमें तीनों लोक माने गये हैं । ३०। ब्रह्मलोक-विष्णु लोक और शिव लोक हैं इनके महान विच्छासों का वर्णन अन्य अवसर में बताऊँगा । ३१। मध्य में स्थित शृंग का विस्तार ओर ऊँचाई अवण कीजिए । चार सौ योजन उच्चता और विस्तार है । ३२। वहाँ पर ही महान शिखर पर शिल्पयों ने श्रीपुर बनाया था । हे कुम्भ सम्भव ! वह चार सौ योजन विस्तार और ऊँचाई वाला है । ३३। वहाँ पर यह प्रविभाग है जो आपको विवेचन। करके दिखाया जाता है । उसका जो प्रथम प्राकार है कालायस से बनाया गया है । ३४। सोलह सहस्र योजन आयत वेष्टन है । चारों दिशाओं में वह द्वारों से युक्त है और चार योजन ऊँचा है । ३५।

**शालमूलपरीणाहो योजनायुतमध्यिप ।**

शालाग्रस्य तु गव्यूतेन्द्रवातायनं पृथक् ॥ ३६ ॥

शालद्वारस्य चौन्तत्यमेकयोजनमाश्रितम् ।

द्वारे द्वारे कपाटे द्वे गव्यूत्यर्धप्रविस्तरे ॥ ३७ ॥

एकयोजनमुन्नद्वे कालायसविनिर्मिते ।

उभयोर्गंला चेत्थमर्धक्रोशसमायता ॥ ३८ ॥

एवं चतुषु द्वारेषु सहशं परिकीर्तितम् ।

गोपुरस्य तु संस्थाने कथये कुम्भसंभव ॥ ३९ ॥

पूर्वोक्तस्य तु शालस्य मूले योजनसंमिते ।

पाश्वद्वये योजने द्वे द्वे समादाय निर्मिते ॥ ४० ॥

विस्तारमपि तावंतं संप्राप्तं द्वारगम्भितम् ।

पाश्वद्वये योजने द्वे मध्ये शालस्य योजनम् ॥ ४१ ॥

मेलयित्वा पञ्च मुने योजनानि प्रमाणतः ।

पाश्वद्वयेन साधेन कोशयुग्मेन संयुतम् ॥ ४२ ॥

हे अधिष्ठप ! शाल वृक्ष के मूल के समान परिणाम वाला है और

की ऊँचाई एक योजन आश्रित है। आधी गव्यूति के विस्तार वाले प्रति द्वार में दो किवाड़ हैं। ३७। वे एक योजन उन्नद्ध हैं तथा कृष्ण लौह के द्वारा बने हुए हैं। उन दोनों में एक अंगला है जो आधे कोश के बराबर आयत है। ३८। इस प्रकार से चारों द्वारों में समान ही कीर्ति है। हे कुम्भ सम्भव ! गोपुर का संस्थान में कहता हूँ। ३९। पूर्व में कहे हुए शाल के मूल में जो योजन समित है। दोनों पाश्वरों में दो-दो योजन लाकर निर्मित किये गये हैं। ४०। विस्तार भी द्वारों से युक्त उतना ही सम्प्राप्त है। दोनों पाश्वर मध्य में दो योजन हैं जो शाल का योजन है। ४१। हे मुने ! प्रमाण से पाँच योजन मिलाकर दोनों पाश्वर ढाई कोश से संयुत हैं। ४२।

**मेलयित्वा पञ्चसंख्यायोजनान्यायतस्तथा ।**

एवं प्राकारतस्तत्र गोपुरं रचितं मुने ॥४३॥

तस्मादगोपुरमूलस्य वेष्टो विश्वितयोजनः ।

उपयुपरि वेष्टस्य ह्लास एव प्रकीर्त्यते ॥४४॥

गोपुरस्योन्नतिः प्रोक्ता पञ्चविश्वितयोजना ।

योजने योजने द्वारं सकपाटं मनोहरम् ॥४५॥

भूमिकाश्चापि तावन्त्यो यथोधर्वं ह्लाससंयुताः ।

गोपुराग्रस्य विस्तारो योजनं हि समाश्रितः ॥४६॥

आयामोऽपि च तावान्वै तत्र त्रिमुकुटं स्मृतम् ।

मुकुटस्य तु विस्तारः कोशमानो घटोद्ध्रव ॥४७॥

क्रोशद्वयं समुन्नद्धं ह्लासं गोपुरवन्मुने ।

मुकुटस्यांतरे क्षोणी कोशार्थेन च संमिता ॥४८॥

मुकुटं पश्चिमे प्राच्यां दक्षिणे द्वारगोपुरे ।

दक्षोत्तरस्तु मुकुटाः पश्चिमद्वारगोपुरे ॥४९॥

यिलाकर पाँच योजन आयत है। इस प्रकार से बहाँ पर हे मुने ! गोपुर की रचना की गई। ४३। इस कारण से गोपुर के मूल का वेष्ट बीस योजनों बाला है। उस वेष्ट के ऊपर-ऊपर में ह्लास बताया जाता है। ४४। उस गोपुर की ऊँचाई पञ्चोंस योजन की है ऐसा कहा गया है। एक-एक

योजन पर द्वार हैं जिनमें बहुत सुन्दर किंवाढ़ लगे हुए हैं । ४५। और भूमि-कायें भी उतनी ही हैं जैसी ऊर्ध्व में हास में संयुत हैं । गोपुर के आगे का विस्तार एक योजन समाप्ति है । ४६। उसका आयाम भी वहाँ पर उतना ही है त्रिमुकुट कहा गया है । हे घटोद्भव ! मुकुट का विस्तार एक कोश के मान वाला है । ४७। हे मुने ! गोपुर के ही तुल्य दो कोश समुन्नद्ध हास है । मुकुट के अन्दर की भूमि आधे के बराबर है । ४८। मुकुट पश्चिम—पूर्व—दक्षिण में द्वार गोपुर में है । दक्षोत्तर मुकुट पश्चिम द्वार गोपुर में है । ४९।

दक्षिणद्वारवत्प्रोक्ता उत्तरद्वाः किरीटिकाः ॥५०॥  
 पश्चिमद्वारवत्पूर्वद्वारे मुकुटकल्पना ॥५०॥  
 कालायसार्थ्यशालस्यांतरे मारुतयोजने ।  
 अंतरे कांस्यशालस्य पूर्ववदगोपुरोऽन्वितः ॥५१॥  
 शालमूलप्रमाणं च पूर्ववत्परिकीर्तितम् ।  
 कांस्यशालोऽपि पूर्वादिदिक्षु द्वारसमन्वितः ॥५२॥  
 द्वारेद्वारे गोपुराणि पर्वलक्षणभांजि च ।  
 कालायसस्य कांस्यस्य योऽतदेशः समंततः ॥५३॥  
 नानावृक्षमहोद्यानं तत्प्रोक्तं कुम्भसंभव ।  
 उद्धिज्जायं यावदस्ति तत्सर्वं तत्र वर्तते ॥५४॥  
 परसहस्रास्तरवः सदापुष्पाः सदाफलाः ।  
 सदापल्लवशोभाद्याः सदा सौरभसंकुलाः ॥५५॥  
 चूताः कंकोलका लोधा बकुलाः कर्णिकारकाः ।  
 शिशपाशच शिरीषाश्च देवदारूनमेरवः ॥५६॥

दक्षिण द्वार के समान उत्तर द्वार किरीटिका कही गयी है । पश्चिम द्वार के तुल्य पूर्व द्वार में मुकुट की योजना है । ५०। कालायस शाल के अन्तर में मारुत योजन में कांस्यशाल के अन्तर में पूर्व की भाँति गोपुर अन्वित है । ५१। शाल के मूल का प्रेमाण तो पूर्व के ही समान कीर्ति किया गया है । कांस्य शाल भी पूर्व आदि दिशाओं के द्वार से समन्वित है । ५२। प्रतिद्वार में पर्व लक्षण वाले गोपुर हैं । कालायस और कांस्य का जो अन्त-

देंश है वह माना गया है जो चारों ओर है । ५३। हे कुम्भ सम्भव ! वह नाना वृक्षों का महान् उद्यान कहा गया है । उद्भिज्ज आदि जितने भी हैं वे सभी वहाँ पर विद्यमान हैं । ५४। सहस्रों से भी अधिक तरुण जो सदा ही पुण्य और फल देने वाले हैं । वे सर्वदा पत्रों से शोभित हैं और सदा ही सौरभ से संकुल हैं । ५५। आग्र—कंकोल—लोहा—वकुल—कणिकार—जिंशप—जिरीष—देवदारु—नमेरु वृक्ष हैं । ५६।

पुन्नाग नागभद्राश्च मुचुकुन्दाश्च कट्टफलाः ।

एलालबंगास्तवकोलास्तथा कपूरशाखिनः ॥५७॥

पीलवः काकतुण्ड्यश्च शालकाश्चासनास्तथा ।

कांचनाराश्च लकुचाः पनसा हिंगुलास्तथा ॥५८॥

पाटलाश्च फलिन्यश्च जटिल्यो जघनेफलाः ।

गणिकाश्च कुरण्डाश्च बन्धुजीवाश्च दाढिमाः ॥५९॥

अश्वकण्ठं हस्तिकण्ठिचापेयाः कनकद्रुमाः ।

यूथिकास्तालपर्णश्च तुलस्यश्च सदाफलाः ॥६०॥

तालास्तमालहितालखर्जूराः शरबर्वुराः ।

इक्षवः क्षीरिणश्चैव श्लेष्मातकविभीतकाः ॥६१॥

हरीतक्यस्त्ववाक्पुण्यो घोण्टाल्यः स्वर्गपुष्पिकाः ।

भल्लातकाश्च खदिराः शाखोटाश्चन्दनद्रुमाः ॥६२॥

कालागुरुद्रुमाः कालस्कन्धाश्चिच्चा वटास्तथा ।

उदुम्बराजुं नाश्वतथाः शमीवृक्षा ध्रुवाद्रुमाः ॥६३॥

प्रन्नाग—नागभद्र—मुचुकुन्द—कट्टफल—एलालबंग—तवलोल—कपूरशाली हैं । ५७। पीलु—काकतुण्डी—शाल—आसनकांनार—लकुच—पनस—हिंगुल हैं । ५८। पाटल—फलिनी जटिली—जघनेफल—गणिका—कुरण्ड—बन्धुजीव—दाढिम—अश्वकण्ठ—हस्तिकण्ठ—चाम्पेय—कनकद्रुम—यूथिका—तालपर्णी—तुलसी और सदा फल के वृक्ष हैं । ५९-६०। ताल—तमाल—हिन्ताल—खर्जूर—शरबर्वुर—इक्षु—क्षीरी—श्लेष्मातक—विभीतक से वृक्ष हैं । ६१। हरीतकी—अवाक्पुण्यी—घोण्टाली—स्वर्ग पुष्पिका—भल्लातक—खदिर—शाखोट—चन्दन द्रुम हैं । ६२। कालागुरु द्रुम—काल-

सकन्ध—चिचा—वट—उदुम्बर—अजुन—अश्वत्थ—शभी वृक्ष—ध्रुवाद्रुम हैं । ६३।

रुचका: कुटजा: सप्तपर्णश्च कृतमालका: ।

कपित्थास्तितिणी चंबेत्येवमाद्याः सहस्रशः ॥६४॥

नानाश्रृतुसमाविष्टा देव्याः शृगारहेतवः ।

नानावृक्षमहोत्सेधा वर्तते वरशाखिनः ॥६५॥

कांस्यशालस्यांतरोले सप्तयोजनदूरतः ।

चतुरस्रस्ताम्रशालः सिंधुयोजनमुन्नतः ॥६६॥

अनयोरंतरक्षोणी प्रोक्ता कल्पकवाटिका ।

कर्पूरगन्धिभिश्चारुरत्नबीजसमन्वितः ॥६७॥

कांचनत्वक्सुरुचिरैः फलेस्तैः फलिता द्रुमाः ।

पीतांबराणि दिव्यानि प्रवालान्येव शाखिषु ॥६८॥

अमृतं स्थान्मधुरसः पुष्पाणि च विभूषणम् ।

ईटशा बहवस्तत्र कल्पवृक्षाः प्रकीर्तिः ॥६९॥

एषा कक्षा द्वितीया स्थान्कल्पवापीति नामतः ।

ताम्रशालस्यांतरोले नागशालः प्रकीर्तिः ॥७०॥

रुचक—कुटज—सप्तपर्ण—कृतमालक—कपित्थ—तित्तिणी—इत्यादि सहस्रों प्रकार के वृक्ष हैं । ६४। ये सभी वृक्ष अनेक जीव-जन्तुओं से समन्वित हैं जो श्रीदेवी के शृगार के कारण हैं । नाना भाँति के वृक्षों के महान् उत्सेध से युक्त हैं ऐसे श्रेष्ठशाखी हैं । ६५। कांस्यशाल के अन्तराल में सात-योजन दूर चौकोर ताम्र शाल है जो सिन्धु योजन अनुकूल है अर्थात् सात योजन तक पीछे लगा हुआ है । ६६। इन दोनों की भीतर की पृथ्वी है जो कल्पक वाटों वाली कही गयी है वे द्रुम ऐसे हैं जो ऐसे हैं जो ऐसे फलों वाले हैं जिनमें कर्पूर की गन्ध है और सुन्दर रत्नों के बीजों से संयुक्त हैं । उनकी छाल सुनहली है और परम सुन्दर हैं । इन वृक्षों में पीताम्बर दिव्य प्रवाल हैं । ६७-६८। अमृत इनका मधुरस है और पुष्प ही विभूषण हैं । इस प्रकार के वहाँ पर बहुत से कल्प वृक्ष कीर्तित किये गये हैं । ६९। यह दूसरी कक्षा है । जिसका नाम कल्पवापी है । फिर उस ताम्रशाल के अन्तराल में

अनयोरुभयोस्तिर्यग्देशः स्यात्सप्तयोजनः । ॥७१  
 तत्र संतानवाटी स्यात्कल्पवापीसमाकृतिः ॥७१  
 तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता हरिचन्दनवाटिका ।  
 कल्पवाटीसमाकारा फलपुष्पसमाकुला ॥७२  
 एषु सर्वेषु शालेषु पूर्ववद्वारकल्पनम् ।  
 पूर्ववद्गोपुराणां च मुकुटानां च कल्पनम् ॥७३  
 गोपुरद्वारकलृप्तं च द्वारे द्वारे च संमितिः ।  
 आरकूटस्यांतराले सप्तयोजनदूरतः ॥७४  
 पञ्चलोहमयः शालः पूर्वशालसमाकृतिः ।  
 तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता मन्दारद्रुमवाटिका ॥७५  
 पञ्चलोहस्यांतराले सप्तयोजनदूरतः ।  
 रौप्यशालस्तु संप्रोक्तः पूर्वोक्तैर्लक्षणैर्युतः ॥७६  
 तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता पारिजातद्रुवाटिका ।  
 दिव्यामोदसुसंपूर्णा फलपुष्पभरोज्ज्वला ॥७७

इन दोनों का एक तियंग देश है जो सात योजन वाला है । वहाँ पर एक सन्तानवाटी है जो कल्प वापी के ही सदृश आकृति वाली होती है ॥७१। उन दोनों के मध्य में यही बतायी गयी है । जिसका नाम हरि चन्दन वाटिका है । यह भी कल्पवाटी के तुल्य ही आकार वाली है और फलों तथा पुष्पों से घिरी हुई है ॥७२। इन समस्त शालों में पूर्व की ही भाँति द्वारों की कल्पना है और पहिली भाँति ही गोपुरों का और मुकुटों का भी कल्पन है ॥७३। प्रत्येक द्वार में गोपुर द्वार के ही समान संमिति है आरकूट के अन्तराल में सात योजनों की दूरी वाला एक प्राकार और है ॥७४। पञ्च लौह से पूर्ण-शाल है जो पूर्व शाल के समान आकार वाला है । उन दोनों के मध्य में जो मही है वह मन्दार द्रुमों की वाटिका वाली है ॥७५। पाँचों लौहों के अन्तराल में सात योजनों की दूरी वाला चौंदी का शाल है जो पूर्व के ही सदृश लक्षणों तथा आकृति वाला है ऐसा बताया गया है ॥७६। उन दोनों के मध्य में जो मही है वह पारिजात के द्रुमों की ही वाटिका है । वह परम दिव्य गन्ध वाली तथा फल पुष्पों से समन्वित है ॥७७।

रौप्यशालस्थांतराले सप्तयोजनविस्तरः । ॥७५  
 हेमशालः प्रकथितः पूर्वद्वारशोभितः ॥७६  
 तयोर्मध्ये मही प्रोक्ता कदम्बतरुवाटिका ।  
 तत्र दिव्या नीपवृक्षा योजनद्वयमुन्नताः ॥७७  
 सदंव मदिरास्पदा मेदुरप्रसवोज्ज्वलाः ।  
 गेभ्यः कादम्बरी नाम योगिनी भोगदायिनी ॥७८  
 विशिष्ठा मदिरोद्याना मन्त्रिण्याः सततं प्रिया ।  
 ते नीपवृक्षाः सुच्छायाः पत्रलाः पल्लवाकुलाः ।  
 आमोदलोलभृगालीझांकारैः पूरितोदराः ॥७९  
 तत्रैव मन्त्रिणीनाथामन्दिरं सुमनोहरम् ।  
 कदम्बवनवाटचास्तु विदिक्षु ज्वलनादितः ॥८०  
 चत्वारि मंदिराण्युच्चैः कल्पितान्यादिशिलिपना ।  
 एकैकस्य तु गेहस्य विस्तारः पञ्चयोजनः ॥८१  
 पञ्चयोजनमायामः समावरणतः स्थिति ।  
 एवमन्यविदिक्षु स्युस्सर्वत्र प्रियकद्रुमाः ।  
 निवासनगरी सेयं श्यामायाः परिकीर्तिता ॥८२

रौप्य शाल के अन्तराल में सात योजनों के विस्तार वाला हेम शाल कहा गया है जो पूर्व की ही भाँति द्वारों से शोभित है । ७५। उन दोनों के मध्य में भूमि जो थो वह ऐसी बतलायी गयी है कि उसमें कदम्बों के द्रुमों की वाटिका बनी है । उसमें परम दिव्यनीपों के वृक्ष हैं जो दो योजन ऊँचाई वाले हैं । ७६। वे सदा ही मदिरा का स्पन्दन करने वाले हैं और मेदुर प्रसवों से परम उज्ज्वल हैं । जिनसे कादम्बरी नाम वाली योगिनी भोग देने वाली है । ७७। वह विशेषता से युक्त मदिरोद्याना वाटिका मन्त्रिणी देवी की निरन्तर प्रिया है । वे नीपों की वृक्षावलियाँ छाया वाली तथा सुरम्य पत्र और पल्लवों से समाकुल रहा करती हैं । उसकी सुरम्य सुगन्ध से परम चञ्चल ध्रुमों की झांकार हुआ करती है जिससे उसका मध्य भाग भरा हुआ रहता है । ७८। वहाँ पर ही मन्त्रिणीनाथा का एक बहुत मनोहर मन्दिर है । कदम्बों के बन की वाटिका के विदिशाओं में ज्वलनादि से युक्त है । ७९। उस जाँदि

शिल्पी ने चार परमोच्च मन्दिर बनाये थे । एक-एक के घर का विस्तार पाँच योजन का था । ८३। पाँच योजनों का उनका आयाम था और समावरण से उनकी स्थिति थी । इसी रोति से अन्य विदिशाओं में सभी जगह प्रियक के द्वाम वहाँ पर थे । यह श्यामादेवी की परम प्रिय निवास की नगरी थी । ८४।

सेनाथं नगरी त्वन्या महापद्माटवीस्थले ।

यदत्रैव गृहं तस्या बहुयोजनदूरतः ॥८५॥

श्रीदेव्या नित्यसेवा तु मन्त्रिण्या न घटिष्यते ।

अतश्चितामणिगृहोपांतेऽपि भवनं कृतम् ।

तस्याः श्रीमन्त्रनाथायाः सुरत्वष्ट्रा मयेन च ॥८६॥

श्रीपुरे मन्त्रिणीदेव्या मन्दिरस्य गुणान्वहन् ।

वर्णयिष्यति को नाम यो द्विजिह्वासहस्रवान् ॥८७॥

कादम्बरीमदाताम्रनयनाः कलबीणया ।

गायन्त्यस्तत्र खेलंति मान्यमातंगकन्यकाः ॥८८॥

अगस्त्य उवाच—

मातङ्गो नाम कः प्रोक्तस्तस्य कन्याः कथं च ताः ।

सेवन्ते मन्त्रिणीनाथां सदा मधुमदालसाः ॥८९॥

हयग्रीव उवाच—

मतंगो नाम तपसामेकराशिस्तपोधनः ।

महाप्रभावसंपन्नो जगत्सर्जनलंपटः ॥९०॥

तपः शक्त्यात्तधिया च सर्वत्राजाप्रवर्त्तकः ।

तस्य पुत्रस्तु मातंगो मुद्रिणी मन्त्रिनायिकाम् ॥९१॥

सेना के निवास करने की अन्य नगरी भी जो महा पद्माटवी के स्थल में थी और वहाँ पर ही इसका गृह था जो बहुत योजनों तक दूर था । ८५। श्री देवी की नित्य सेवा मन्त्रिणी के द्वारा नहीं होगी । इसीलिए चिन्ता मणि गृह के ही समीप में भी उसका भवन बनाया था । उस मन्त्रिणीनाथा का विश्वकर्मा और मय ने ही भवन का निर्माण कराया था । ८६। श्री पुर

में मन्त्रिणी देवी के जो प्रचुर दुष्ट थे उनका वर्णन ऐसा कौन है जो कर सकता है जिसके दो सहस्र जिट्वायें होवें । ८७। कादम्बरी के मद से लाल लोचनों वाली कल वीणा के द्वारा गायन करती हुई वहाँ पर कीड़ा किया करती है जो कि मान्य मातंगों की बालिकाएँ हैं । ८८। अगस्त्यजी ने कहा— मतंग नाम वाला यह कौन कहा गया है और उसकी कन्या कैसी थीं जो सर्वंदा ही मधु से मदालसा होकर मन्त्रिणी नाधा की सेवा किया करती है । ८९। श्री हयग्रीव ने कहा—मतंग नाम वाला एक तपों का समूह तपस्वी था और यह महान् प्रभाव से संयुत था । यह जगत का सूजन करने में बहुत ही लम्पट था । ९०। तप की जबित से इसमें ऐसी बुद्धि हो गयी थी कि सर्वंत्र आज्ञा का यह प्रवर्त्तक था । उसका पुत्र मातंग हुआ था । इसकी ओर तपस्या से मन्त्र नायिका मुद्रिणी तुष्ट हो गयी थी । ९१।

घोरेस्तपोभिरत्यर्थं पूरयामास धीरधीः ।

मतंगमुनिपुत्रेण सुचिरं समुपासिता ॥९२॥

मन्त्रिणी कृतसान्निध्या त्रुणीष्व वरमित्यशात् ।

सोऽपि सर्वमुनिश्रेष्ठो मातंगस्तपसां निधिः ।

उवाच तां पुरो दत्तसान्निध्यां श्यामलांविकाम् ॥९३॥

मातंगमहामुनिरुवाच—

देवी त्वत्स्मृतिमात्रेण सर्वाश्च मम सिद्धयः ।

जाता एवाणिमाद्यास्ताः सर्वाश्चान्या विभूतयः ॥९४॥

प्रापणीयन्त मे किञ्चिदस्त्यंबभुवनत्रये ।

सर्वतः प्राप्तकालस्य भवत्याश्चरितस्मृतेः ॥९५॥

अथापि तव सांनिध्यमिदं नो निष्फलं भवेत् ।

एवं परं प्रार्थयेऽहं तं चरं पूरयांविके ॥९६॥

पूर्वं हिमवता सार्धं सौहादं परिहासवान् ।

कीडामत्तेन चावाच्येस्तत्र तेन प्रगल्भितम् ॥९७॥

अहं गौरीगुरुरिति श्लाघामात्मनि तेनिवान् ।

तत्त्वाग्यं सा त्वं वासुदावत्तवामिको गुणम् ॥९८॥

धीरदुद्धि वाले उसने परमात्मा घोर तपों के द्वारा पूरित कर दिया था और मातंग मुनि के पुत्र ने उसकी उपासना भली-भाँति से की थी । ६२। मन्त्रिणी के समीप में उपस्थित हो गयी थी और उसने उससे वरदान का वरण करने के लिए कहा था । वह भी समस्त मुनियों में परम श्रेष्ठ था और मातंग तपों को खान था । उसने समीप में उपस्थित श्यामला देवी के आगे यही कहा था । ६३। मातंग महामुनि ने हे देवि मुझे आपकी केवल स्मृति ही से समस्त सिद्धियाँ अणिमा आदि हो जावें और अन्य भी सब विश्रूतियाँ भी हो जावें । ६४। हे अम्ब ! तीनों भुवनों में मुझे कुछ भी प्राप्त करने के योग्य न रहे । केवल आपके चरित की स्मृति से ही सभी ओर से मुझे सब कुछ की प्राप्ति का समय हो जावे । ६५। और आपका मेरे समीप में उपस्थित हो जाना भी निष्फल न होवे । इस रीति से मैं दूसरा वर माँगता हूँ उसको भी हे अम्बिके ! आप पूर्ण करिए । ६६। पूर्व में मेरा हिमवान् के साथ परिहास वाला सौहार्द था । क्रीड़ा में मत्त उसने कुछ अवाच्य वचन कह डाले थे । ६७। उसने कहा था कि मैं गौरी का गुरु हूँ—ऐसी बहुत आत्म प्रशंसा की थी । उसका वह वाक्य ऐसा था कि मेरे पास कुछ भी उत्तर नहीं था क्योंकि उसमें अधिक गुण था । ६८।

उभयोर्गुणसाम्ये तु मित्रयोरधिके गुणे ।

एकस्य कारणाज्जाते तत्रात्यस्य स्पृहा भवेत् ॥ ६६ ॥

गौरीगुरुत्वश्लाघार्थं प्राप्ताकामोऽप्यहं तपः ।

कृतवान्मन्त्रिणीनाथे तत्त्वं मत्तनया भव ॥ १०० ॥

यतो मन्नामविख्याता भविष्यसि न संशयः ।

इत्युक्तं वचनं श्रुत्वा मातंगस्य महामुनेः ।

तथास्त्वति तिरोधत्त स च प्रीतोऽभवन्मुनिः ॥ १०१ ॥

मातंगस्य महर्षेस्तु तस्य स्वप्ने तदा मुदा ।

तापिच्छमञ्जरीमेकां ददौ कण्वितंसतः ॥ १०२ ॥

तत्स्वप्नस्य प्रभावेण मातंगस्य सधर्मिणी ।

नाम्ना सिद्धिमती गर्भे लघुश्यामामधारयत् ॥ १०३ ॥

तत एव समुत्पन्ना मातंगी तेन कीर्तिः ।

लघुश्यामेति सा प्रोक्ता श्यामा यन्मूलकन्दभूः ॥ १०४ ॥

मातंगकन्यका हृद्याः कोटीनामपि कोटिशः ।

लघुश्यामा महाश्यामामातंगी वृन्दसंयुताः ।

अङ्गशक्तित्वमापन्नाः सेवन्ते प्रियकप्रियाम् ॥ १०५ ॥

इति मातंगकन्यानामुत्पत्तिः कुम्भसंभव ।

कथिताः सप्तकक्षाश्च शाला लोहादिनिर्मिताः ॥ १०६ ॥

दोनों में गुणों की समता मित्रों में हो तो ठोक है यदि किसी में भी अधिक गुण होते हैं तो एक के कारण से दूसरे में भी सृहा हो जाया करती है । ६६। गौरो गुरुत्व की श्लाघा के लिए प्राप्ति कामना वाले मैंने तप किया था सो हे मन्त्रिणीनाथे ! अब आप मेरी पुत्री हो जावें । १००। क्योंकि मेरे नाम से आप विरुद्धात होंगी—इसमें संशय नहीं है । मातंग महामुनि के इस वचन को सुनकर 'ऐसा ही होगा'—यह कहकर वह तिरोहित हो गयी थी और मुनि बहुत प्रसन्न हुए थे । १०१। उस समय में मातंग मुनि के स्वप्न के प्रसन्नता से कण्ठितंस से एक तापिच्छ की मंजरी प्रदान की थी । १०२। उस स्वप्न के प्रभाव से मातंग की सहवर्मिणी ने जिसका नाम सिद्धि मती था गर्भ में लघुश्यामा को धारण किया था । १०३। उसी से जो समुत्पन्न हुई थी इसी कारण से मातंगी कही गयी है । वह लघुश्यामा भी कही गयी थी क्योंकि उसकी मूलकन्द भू श्यामा थी । १०४। मातंग की कन्याएँ बड़ी सुन्दर थीं तथा करोड़ों थीं । लघुश्यामा—महाश्यामा वृन्द संयुत मातंगी अङ्ग शक्तित्व को प्राप्त हुईं प्रियक प्रिया की सेवा किया करती हैं । १०५। हे कुम्भसंभव ! यहो मातंग कन्याओं की उत्पत्ति है लोहादि से निर्मित सप्त कक्षा शालाएँ भी कह दी गयी हैं । १०६।

### श्रीनगर त्रिपुरा सप्त कक्षा वर्णन

अगस्त्य उवाच—

लोहादिसप्तशालानां रक्षका एव सन्ति वै ।

तन्नामकीर्तय प्राज्ञ येन मे संशयच्छिदा ॥ १ ॥

हयग्रीव उवाच—

नानावृक्षमहोद्याने वर्तते कुम्भसंभव ।

महाकालः सर्वलोकभक्षकः श्यामविग्रहः ॥ २ ॥

श्यामकंचुकधारी च मदारुणविलोचनः ॥३॥  
 ब्रह्मांडचषके पूर्णं पिबन्विश्वरसायनम् ॥४॥  
 महाकालीं घनश्यामामतंगाद्विपाङ्ग्यत् ।  
 सिंहासने समासीनः कल्पांते कलनात्मके ॥५॥  
 ललिताध्यानसम्पन्नो ललितापूजनोत्सुकः ।  
 वितन्बैललिताभक्तेः स्वायुषो दीर्घदीर्घंताम् ॥६॥  
 कालमृत्युप्रमुख्यैश्च किकरैरपि सेवितः ॥७॥  
 महाकालीमहाकाली ललिताजाप्रवत्तं को ।  
 विश्वं कलयतः कृत्स्नं प्रथमेऽध्वनि वासिनी ॥८॥  
 कालचकं मतञ्जस्य तस्यैवासनतां गताग् ।  
 चतुरावरणोपेतं मध्ये विन्दुमनोहरम् ॥९॥

श्री अगस्त्यजी ने कहा—लोहादि सात शालाओं के रक्षक भी होंगे ही । हे प्राज्ञ ! अब आप उनके नामों को भी बतला दीजिए जिससे मेरे मन में संशय का छेदन हो जावे ।१। श्री हययोव जी ने कहा—हे कुम्भ सम्प्रद ! अनेक प्रकार के वृथों के महान उद्यान में समस्त लोकों के भक्षण करने वाला जिसका श्याम गरीर है वह महाकाल विद्वामान रहा करता है ।२। यह श्याम वर्ण की कञ्चुकी के ध्वारण करने वाला था और मद से उसके लाल नेत्र थे । तथा ब्रह्माण्ड के प्याले में वह विश्व रसायन का पान किया करता है । ३। घन के समान श्याम वर्ण वालों की और जो काम से आद्रं थी कटाक्षपात कर रहा था । कलनात्मक कल्प के अन्त में वह सिंहासन पर विराजमान रहा करता है ।४। यह सदा ललिता देवी के ध्यान में सम्पन्न रहता है और ललितादेवी के पूजन करने में इसकी उत्सुकता रहती है । जो भी ललितादेवी के भक्त हैं उनकी आयु की दीर्घता का विस्तार अधिक किया करता है । कालमृत्यु जिनमें प्रद्यान है ऐसे अनेक किञ्चुरों के द्वारा वह सेवित रहता है ।५। महाकाली और महाकाल ये दोनों ही ललितादेवी की आज्ञा के प्रवतक हैं ये प्रथम मार्ग में वास करने वाले सम्पूर्ण विश्व को कलित किया करते हैं ।६। उसी मतंग का यह काल चक्र आसनता को प्राप्त हुआ था । यह चार आवरणों से उपेत था और मध्य में भनोहर विन्दु था ।७।

त्रिकोणं पञ्चकोणं च षोडशच्छदपंकजम् । ॥१५॥  
 अष्टारपंकजं चैवं महाकालस्तु मध्यगः ॥१६॥  
 त्रिकोणे तु महाकाल्या महासंघ्या महानिशा । ॥१७॥  
 एतास्तिस्त्रो महादेव्यो महाकालस्य शक्तयः ॥१८॥  
 तत्रैव पञ्चकोणाग्रे प्रत्यूषश्च पितृप्रसूः ।  
 प्राह्णापराह्णमध्याह्नाः पञ्च कालस्य शक्तयः ॥१९॥  
 अथ षोडशपत्राब्जे स्थिता शक्तीमुंने शृणु ।  
 दिनमिश्रा तमिस्त्रा च ज्योत्स्नी चैव तु पक्षिणी ॥२१॥  
 प्रदोषा च निशीषा च प्रहरा पूर्णिमापि च ।  
 राका चानुमतिश्चैव तथैवामावस्थिका पुनः ॥२२॥  
 सिनीबाली कुहूभंद्रा उपरागा च षोडशी । ॥२३॥  
 एता षोडशमात्रस्थाः शक्तयः षोडश स्मृताः ॥२४॥  
 कला काष्ठा निमेषाश्च क्षणाश्चैव लवास्त्रुटिः । ॥२५॥  
 मुहूर्ताः कुतपाहोरा शुक्लपक्षस्तथैव च ॥२६॥  
 एक त्रिकोण है—फिर पञ्च व कोण है—फिर सोलह दलों वाला  
 पञ्चज है—फिर आठ आरों काल पञ्चज है—और महाकाल मध्यगामी  
 रहता है। वा त्रिकोण में महाकाल्या—महासंघ्या और महा निशा—ये तीन  
 महा देवियाँ जो महाकाल की शक्तियाँ हैं विद्यमान हैं ॥१॥ वहाँ पर ही  
 पञ्चकोण के अग्रभाग से प्रत्यूष—पितृ प्रसू—प्राह्णपराह्ण—मध्याह्न ये पाँच  
 काल की शक्तियाँ हैं ॥२॥ हे मुने ! अब आप सुनिए इसके पश्चात् सोलह  
 दलों वाले कमल में जो शक्तियाँ स्थित रहा करती हैं । तमिस्त्रा—दिनमिश्रा—  
 ज्योत्स्नी—पक्षिणी—प्रदोषा—निशीषा—प्रहरा—पूर्णिमा—राका—अनुमति और  
 अमावस्यिका हैं ॥३॥-२॥ सिनीबाली—कुहू—भंद्रा और सोलहवीं उपरागा  
 है । ये सोलह मात्रस्थ षोडश शक्तियाँ कही गयी हैं ॥४॥ कला—काष्ठा—  
 निमेषा—क्षणा—लवा—त्रुटि मुहूर्तं तथा कुतपा होरा और शुक्ल पक्षा है ॥५॥  
 कुणपक्षायनाश्चैव विषुवा च त्रयोदशी । ॥६॥

एताः षोडश पत्राब्जवासिन्यः शक्तयः स्मृताः । १५५  
 इद्वत्सरा तत्शेन्दुवत्सरावत्सरेऽपि च ॥१६  
 तिथिवर्गांश्च नक्षत्रं योगाश्च करणानि च । १७  
 एतास्तु शक्तयो नागपत्रांभोरुहसंस्थिताः ॥१८  
 कलिः कल्पा च कलना काली चेति चतुष्टयम् । १९  
 द्वारपालकतां प्राप्तं कालचक्रस्य भास्वतः ॥२०  
 एता महाकालदेव्यो मदप्रहसिताननाः । २१  
 मदिरापूर्णचषकमशेषं चारुणप्रभम् ।

दधानाः श्यामलाकाराः सर्वाः कालस्य योषितः ॥२२  
 ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणाः ।  
 निषेवन्ते महाकालं कालचक्रासनस्थितम् ॥२३

अथ कल्पकवट्यास्तु रक्षकः कुम्भसम्भव । २४  
 वसन्ततर्तुर्महातेजा ललिताप्रियकिङ्करः ॥२५  
 कृष्णपक्ष—अयन—विषुवा और—त्रयोदशी—सम्वत्सरा परि वत्सरा

इडा वत्सरा ॥२६। ये सोलह पत्राब्ज वासिनी शक्तियाँ कही गयी हैं। इद्वत्सरा—इन्दुवत्सरा—तिथि—वत्सरा—तिथि—वार—नक्षत्र—योग—करण ये शक्तियाँ नाग पत्राम्बुरुह में संस्थित रहती हैं ॥२६-२७। कलि—कल्प—कलना—काली—ये चार भास्वात काल चक्र के द्वार पालकता को प्राप्त होते हैं ॥२८। ये महाकाल देवियाँ मद से प्रहसित मुखों वाली हैं। उनका चषक अथवा प्याला मदिरा से परिपूर्ण रहा करता है और उसकी प्रभा अरुण होती है। ये सब काल की स्त्रियाँ श्यामल आकार वाली हैं ॥२९। ये कालचक्र के आसन पर स्थित होती हुई श्री ललितादेवी के ध्यान—पूजन जप और स्तोत्रों के पाठ में ही परायण रहती हैं और महाकाल की सेवा किया करती हैं ॥२०। हे कुम्भसम्भव ! कल्पक वटी का रक्षक वसन्त श्रृंतु होता है जो महात् तेज से युक्त ललितादेवी का परम प्रिय किङ्कर है ॥२१।

पुष्पसिहासनासीनः पुष्पमाठवीमदारुणः । २२  
 पुष्पायुधः पुष्पभूषः पुष्पचक्रेण शोभितः ॥२३  
 मधुश्रीमधिवश्रीश्च द्वे देव्यो तस्य दीव्यतः । २४  
 प्रसूनमदिरामतो प्रसून शरलालसे ॥२५

सन्तानवाटिकापालो ग्रीष्मतुं स्तीक्षणलोचनः ॥२३  
 ललिताकिङ्कुरो नित्यं तस्यास्त्वाज्ञाप्रवर्तकः ॥२४  
 शुक्रश्रीश्च शुचिश्रीश्च तस्य भाये उभे स्मृते ।  
 हरिचन्दनवाटी तु मुने वर्षतुं ना स्थिता ॥२५  
 स वर्षतुं मंहातेजा विद्युत्पिङ्गललोचनः ।  
 वज्ञाट्टहासमुखरो मत्तजीमूतवाहनः ॥२६  
 जीमूतकवचच्छन्नो मणिकामुकधारकः ।  
 ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणः ॥२७  
 वर्तते विन्ध्यमथन त्रैलोक्याहलाददायकः ।  
 नभःश्रीश्च नभस्यश्रीः स्वरस्वारस्वमालिनी ॥२८

यह वसन्त ऋतु पुष्पों के आसन पर विराजमान और पुष्पों की माघी के मध से अरुण वर्ण वाला है। इसके आयुध भी कुसुमों के ही हैं तथा पुष्प ही भूषणों वाला और पुष्पों के छत की भूषा वाला है। २२। मधु श्री और माधव श्री—ये दो देवियाँ उसकी दीप्ति हैं। ये दोनों ही पुष्पों की मदिरा से भूत हैं और प्रसूत शर (कामदेव) की लालसा वाली हैं। २३। सन्तान वाटिका का पालक ग्रीष्म ऋतु है जिसके लोचन बहुत तीक्ष्ण हैं। यह भी श्रीलक्ष्मिता देवी का सेवक नित्य ही रहता है तथा उसकी आज्ञा का प्रवर्तक है। २४। शुक्र श्री और शुचि श्री—ये दो उसकी भायाएँ हैं। हे मुने ! वर्षा ऋतु हरिचन्दन वाटिका में स्थित रहा करती है। २५। वह वर्षा ऋतु महान् तेज से युक्त है और विद्युत के सदृश उसके पिङ्गल लोचन हैं। यह वज्ञपात के समान अटूहास से शब्दायमान हैं तथा मेघ ही इसका वाहन होता है। २६। मेघों के कवच से यह ढका हुआ रहता है और मणियों के कामुक वाला है। यह भी ललिता देवी के अर्चन ध्यान और स्तोत्र पाठ में तत्पर रहा करता है। २७। यह विन्ध्य मथन त्रैलोक्य के आहलाद का देने वाला है। नभः श्री—नभस्य श्री स्वर स्वार स्वरमालिनी उसकी शक्तियाँ हैं। २८।

अम्बा दुला निरलिश्चाभ्रयन्ती मेघप्रविका ।  
 वर्षयन्ती चिबुणिका वारिधारा च शक्तयः ॥२९

वर्षंत्यो द्वादश प्रोक्ता मदारुणविलोचनाः ॥३०॥  
 ताभिः समं स वर्षतुः शक्तिभिः परमेश्वरीम् ॥३०॥  
 सदेव संजपन्नास्ते निजोत्थः पुष्पमंडलैः ।  
 ललिताभक्तदेशांस्तु भूषयन्स्वस्य सम्पदा ॥३१॥  
 तद्वैरिणां तु वसुधामनावृष्ट्या निषीडयन् ।  
 वर्तंते सततं देवकिङ्करौ जलदागमः ॥३२॥

मन्दारवाटिकायां तु सदा शरहृतुवंसन् ।

तां कक्षां रक्षति श्रीमाल्लोकचित्प्रसादनः ॥३३॥

इषश्रीश्च तथोर्जश्रीस्तस्यतोः प्राणनायिके ।

ताभ्यां संजहृतुस्तोयं निजोत्थः पुष्पमंडलैः ।

अभ्यर्चयति साम्राज्ञीं श्रीकामेश्वरयोषितम् ॥३४॥

हेमन्ततुर्मंहातेजा हिमशीतलविग्रहः ।

सदा प्रसन्नवदनो ललिताप्रियकिङ्करः ॥३५॥

अम्बा—दुला—निरलि—अध्रयन्ती—मेघयन्त्रिका—वर्षयन्ती—चिकु-  
 णिका और वारिधारा—वर्षन्ती ये बारह जो महान् नेत्रों वाली हैं इसकी  
 शक्तियाँ हैं । २६। उस ऋतु की इष श्री और ऊर्ज श्री दो प्राण नाभिकाएँ  
 हैं । अपने उठाये हुए पुष्प मण्डलों से उन दोनों के द्वारा जल का भली-भाँति  
 हरण किया जाया करता था । श्री कामेश्वर ही योषित का जो महा-  
 साम्राज्ञी थी ये अभ्यर्चन करती हैं । उन सबके साथ जो वर्षा ऋतु की  
 शक्तियाँ हैं वे थ्रम से उत्थित पुष्पमण्डलों से सदा ही सम्पत्त हैं । जो  
 ललिता के भक्तों के देश हैं उन पर कृपा से सम्पदा के द्वारा भूषित किया  
 करती हैं । ३०-३१। उनके शत्रुओं की वसुधा को अनावृष्टि से पीड़ित करता  
 हुआ देवी का किङ्कर जलदागम वर्तमान रहता है । ३२। मन्दारों की वाटिका  
 में सदा ही शरद ऋतु निवास किया करता है । वह श्रीमान् लोगों के चित्त  
 को प्रसन्न करने वाला उस कक्षा की रक्षा करता है । ३२-३३। हेमन्त ऋतु  
 हिमसे शीतल विग्रह वाला होता है । यह सदा ही प्रसन्न मुख वाला है और  
 ललिता देवी का बहुत ही प्रिय किकर है । ३४-३५।

निजोत्थं पुष्पसंभारे रचयन्परमेश्वरीम् ।

पारिजातस्य वाटीं तु रक्षति ज्वलनादनः ॥३६॥

सहश्रीश्च सहस्यश्रीस्तस्य द्वे योषिते शुभे ।

कदम्बवनवाट्यास्तु रक्षकः शिशिराकृतिः ॥३७॥

शिशिरतुं मुनिश्रेष्ठ वर्तते कुम्भसम्भव ।

सा कक्ष्या तेन सर्वत्र शिशिरीकृतभूतला ॥३८॥

तद्वासिनी ततः श्यामा देवता शिशिराकृतिः ॥३९॥

तपश्रीश्च तपस्यश्रीस्तस्य द्वे योषिदुत्तमे ।

ताभ्यां सहारचयत्यंवा ललिता विश्वपावनीम् ॥३१॥

अगस्त्य उवाच—

गन्धर्वबदन श्रीमन्नानाखृक्षादिसप्तकैः ।

प्रथमोद्यानपालस्तु महाकालो मया श्रितः ॥४०॥

चतुरावरणं चक्रं त्वया तस्य प्रकीर्तिम् ।

षणामृतूनामन्येषां कल्पकोद्यानवाटिषु ।

पालकत्वं श्रुतं त्वत्तर्चकदेव्यस्तु न श्रुताः ॥४१॥

अत एव वसन्तादिचक्रावरणदेवताः ।

क्रमेण ब्रह्मि भगवन्सर्वज्ञोऽसि यतो महान् ॥४२॥

अपने में समुत्पन्न कुसुमों के संभारों से यह परमेश्वरी की अर्चना किया करता है । ज्वलनादन यह पारिजात की बाटिका की सर्वदा रक्षा किया करता है । ३६। सहश्री और सहस्य श्री—ये दो परम शुभ उसकी पत्नियाँ हैं । उन अपनी उत्तम नारियों को साथ में लेकर यह विश्व पावनी अम्बा ललिता का समर्चन किया करता है । कदम्ब वन की बाटिका की शिशिराकृति रक्षा करता था । ३७। हे मुनिश्रेष्ठ ! हे कुम्भ सम्भव ! यह शिशिर छहतु है । वह सभी जगह कक्ष्या उसी से शीतल भूतल वाली है । ३८। उसमें निवास करने वाली शिशिराकृति श्यामा देवता है । तपश्री और तपस्य श्री ये दो उसकी उत्तम स्त्रियाँ हैं । उन दोनों के ही साथ वह विश्वपावनी ललिता देवी का लक्षण करता है ।

गन्धर्व वदन ! श्री सप्तपन अनेक वृक्षों के सप्तक से प्रथमोद्यान का पालक महाकाल मयाश्रित है । चतुरषारण चक्र आपने उसका कीर्तित किया है । अन्यों का छै ऋतुएँ कल्पोद्यान वाटिकाओं में पाला है—यह भी सुना है और आप से चक्र की देवियाँ नहीं सुनी हैं । ४०-४१। अतएव वसन्त आदि चक्र के आवरण देवता आप क्रम से बताइए । क्योंकि आप तो महान् सर्वज्ञ महापुरुष हैं । ४२।

**हयग्रीव उवाच—**

आकर्णय मुनिश्रेष्ठ तत्तचक्रस्थदेवता ॥४३॥

कालचक्रं पुरा प्रोक्तं वासन्तं चक्रमुच्यते ।

त्रिकोणं पञ्चकोणं च नागच्छदसरोरुहम् ।

षोडशारं सरोजं च दशारद्वितयं पुनः ॥४४॥

चतुरस्त्रं च विज्ञेयं सप्तावरणसंयुतम् ।

तन्मध्ये बिन्दुचक्रस्थो वसन्ततुर्मंहाद्युतिः ॥४५॥

तदेकद्वयसंलग्ने मधुश्रीमाधवश्रियो ।

उभाभ्यां निजहस्ताभ्यामुभयोस्तनमेककम् ॥४६॥

निपीडयन्स्वहस्तस्य युगलेन ससौरभम् ।

सपुष्पमदिरापूर्णचषकं पिशितं बहन् ॥४७॥

एवमेव तु सर्वतुर्ध्यानं विद्यनिषूदन ।

वर्षतोस्तु पुनर्ध्यनि शक्तिद्वितयमादिमम् ।

अकस्थितं तु विज्ञेयं शक्तयोऽन्याः समीपगाः ॥४८॥

अथ वासन्तचक्रस्थदेवीः श्रृणु बदाम्यम् ।

मधुशुक्लप्रथमिका मधुशुक्लद्वितीयिका ॥४९॥

श्री हयग्रीवजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! आप उन-उन चक्रों में स्थित देवताओं को श्रवण कीजिए । ४३। पहिले हमने कालचक्र बता दिया है । अब वासन्त बताया जाता है । त्रिकोण पञ्चकोण नागच्छद सरोरुह है । सोलह आर हैं ऐसा सरोज है । फिर चौबीस हैं । ४४। सात आवरणों से गुक्त चतुरस्त्र जान लेना चाहिए । उसके मध्य में बिन्दुचक्र में स्थित महान् द्युति वाला

वसन्त ऋतु है । ४५। उसके एक के साथ दो प्रियाएँ संलग्न रहती हैं जिनके नाम मधु श्री और माधव श्री हैं । दोनों के स्तनों को अपने एक-एक हाथ से ग्रहण किये हुए हैं । ४६। उन उरोजों को अपने दोनों हाथों से निपीड़ित करता है और सौरभ से समन्वित है । वह सौरभ वालो मदिरा पुष्पों से संयुत है उसका चपक भरा हुआ है और पिंशित भी है इनका वहन कर रहा है । ४७। विन्ध्य निषूदन ! इस रीति से सब ऋतुओं का ध्यान करे । वर्षा ऋतु के ध्यान ये फिर दो शक्तियों आदि का ध्यान करे । जो उसके अङ्कुर में ही स्थित हैं तथा अन्य शक्तियाँ का उसके समीप में स्थित हैं । ४८। उसके अनन्तर अब उस वासन्त चक्र में जो देवियाँ वर्तमान रहती हैं उनको भी मैं आपको अभी बतलाता हूँ—आप उनका श्रवण कीजिए । मधु शुक्ला पहली है और मधु शुक्ल द्वितीय हैं । ४९।

**मधुशुक्लतृतीया च मधुशुक्लचतुर्थिका ॥४९॥**

**मधुशुक्ला पञ्चमी च मधुशुक्ला च षष्ठिका ॥५०॥**

**मधुशुक्ला सप्तमी च मधुशुक्लाष्टमी पुनः ॥५१॥**

**नवमी मधुशुक्ला च दशमी मधुशुक्लिका ॥५२॥**

**मधुशुक्लैकादशी च द्वादशी मधुशुक्लतः ॥५३॥**

**मधुशुक्लत्रयोदश्यां मधुशुक्ला चतुर्दशी ॥५४॥**

**मदुशुक्ला पौणमासी प्रथमा मधुकृष्णिका ॥५५॥**

**मधुकृष्णा द्वितीया च तृतीया मधुकृष्णिका ॥५६॥**

**चतुर्थी मधुकृष्णा च मधुकृष्णा च पञ्चमी ॥५७॥**

**षष्ठी तु मधुकृष्णा स्यात्सप्तमी मधुकृष्णतः ॥५८॥**

**मधुकृष्णाष्टमी चैव नवमी मधुकृष्णतः ॥५९॥**

**दशमी मधुकृष्णा च विन्ध्यदर्पनिषूदन ॥६०॥**

**मधुकृष्णिकादशी तु द्वादशी मधुकृष्णतः ॥६१॥**

**मधुकृष्णत्रयोदश्या मधुकृष्णचतुर्दशी ॥६२॥**

मधुशुक्ल तृतीया है और मधुशुक्ल चतुर्थिका है । मधु शुक्ला पञ्चमी और मधुशुक्ल षष्ठिका है । ५०। मधुशुक्ला सप्तमी और फिर मधु-शुक्ला अष्टमी है 'नवमी मधुशुक्ला है । ५१। मधुशुक्ला एकादशी और

द्वादशी मधुशुक्ल है मधु शुक्ल व्रयोदशीमें तथा मधुशुक्ला चतुर्दशी है । ५२। मक्रशुक्ला पौर्णमासी और मधुकृष्णा प्रथमा है । मधुकृष्णा हृतीया और तृतीया मधुकृष्णिका है । ५३। चतुर्थी मधुकृष्णा और मधुकृष्णा पञ्चमी षष्ठी मधुकृष्णा और सप्तमी मधु कृष्ण से है । ५४। मधुकृष्णा अष्टमी मधुकृष्ण से नवमी है । हे विन्ध्यदर्प निषूषदन ! दशमी मधुकृष्णा है । ५५। मधुकृष्णा एकादशी है तथा द्वादशी मधुकृष्ण से है । मधुकृष्ण व्रयोदशी से है और मधुकृष्ण चतुर्दशी है । ५६।

**महवमा चेति विजेयस्त्रिशदेतास्तु शक्तयः ।**

**एवमेव प्रकारेण माधवाख्यो परिस्थितिः ॥५७॥**

**शुक्लप्रतिपदाद्यास्तु गत्तयस्त्रिशदन्यकाः ।**

**मिलित्वा षष्ठिसंख्यास्तु ख्याता वासन्तशक्तयः ॥५८॥**

**स्वैःस्वैर्मन्त्रैस्तत्र चक्रे पूजनीया विधानतः ।**

**वासन्तचक्रराजस्य सप्तावरणभूमयः ॥५९॥**

**षष्ठिः स्युर्देवतास्तासु षष्ठिभूमिषु सस्थिताः ।**

**विभज्य चार्चनीयाः स्युस्तत्तन्मन्त्रैस्तु साधकैः ॥६०॥**

**तथा वासन्तचक्रस्यात्थैवान्येषु च त्रिषु ।**

**देवतास्तु परं भिन्नाः शुक्लशुच्यादिभेदतः ॥६१॥**

**शक्तयः षष्ठिसंख्याता ग्रीष्मचक्रे महोदयाः ।**

**एवं वर्षादिके चक्रे भेदान्नभनभस्यजात् ॥६२॥**

**षष्ठिषष्ठिसु शक्तीना चक्रेचक्रे प्रतिष्ठिसाः ।**

**ग्रन्थविस्तारभीत्या तु तत्संख्यानाद्विरम्यते ॥६३॥**

मधु अमा है—ये तीस शक्तियाँ हैं । इसी प्रकार से माधवाख्य के ऊपर में स्थित हैं । ५७। शुक्ल प्रतिपदा आदिक अन्य तीस शक्तियाँ हैं । ये सब मिलकर वासन्त शक्तियाँ साठ विष्ण्यात है । ५८। अपने-अपने मन्त्रों के द्वारा वही चक्र में वासन्त चक्रराज में वासन्त चक्रराज की सात आवरण भूमियाँ विधि से पूजन करने के योग्य हैं । ५९। साठ भूमियों में ये साठ देवता संस्थित हैं । साधकों के द्वारा विभाग करके उन-डन मन्त्रों से पूजन करने के योग्य हैं । ६०। उसी भाँति से वासन्त चक्र तीन अन्यों में है और

शुक्र शुच्यादि के भेद से देवता भिन्न है । ६१। शक्तियाँ संख्या में साठ हैं जो महोदया ग्रीष्म चक्र में हैं । इसी तरह से वर्षादिक चक्र में भेद से नमन-भस्यज है । ६२। ये साठ-साठ शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं । ग्रन्थ के विस्तार से भय से उनकी संख्या करने से विराम लिया जा रहा है । ६३।

आतेव्याः शक्तयस्त्वेता ललिताभक्त सौख्यदाः ।

ललितापूजनध्यानजपस्तोत्रपरायणाः ॥६४

कल्पादिवाटिकाचक्रे सङ्चरंत्यो मदालसाः ।

स्वस्वपुष्पोत्थमधुभिस्तर्पयंत्यो महेश्वरीम् ॥६५

मिलित्वा चैव संख्याताः षट्युत्तरशतत्रयम् ।

एवं सप्तसु शालेषु पालिकाश्चकदेवताः ॥६६

नामकीर्तनपूर्वं तु प्रोक्तस्तुभ्यं प्रपृच्छते ।

अन्येषामपि जालानामुपादानं तु पूरकम् ।

विस्तारं तत्र शक्ति च कथयाम्यवधारय ॥६७

ये शक्तियाँ ललिता देवी के सौख्य के देने वाली हैं इनका आहरण करना चाहिए । जो भी ललिता के पूजन ध्यान जप और स्तोत्र में परायण हैं । ६४। कल्पादि धाटिका के चक्र में मदालता ये सङ्चरण किया करती हैं । अपने-अपने पुष्पों के मधु से ये महेश्वरी का तर्पण किया करती हैं । ६५। सब मिलकर तीन सौ साठ होती हैं । इसी तरह से सात शालों में चक्र देवता पालिका हैं । ६६। आपने पूछा है तो आपके सामने नामों का कीर्तन कर दिया है । अन्य शालाओं का उपादान पूरक है । उनका विस्तार और शक्ति कहता है, आप अवधारण कीजिए । ६७।

॥ पुष्पराग प्रकारादि मुक्ताकार वर्णन ॥

हयश्रीव उचाच—

कथितं सप्तशालानां लक्षणं शिलिपमिः कृतम् ।

अथ रत्नमयाः शालाः प्रकीर्त्येऽवधारय ॥१

सुवर्णमयशालस्य पुष्परागमयस्य च ।

प्रत्ययोजनमात्रं स्यामस्येनारम्भाद्यतम् ॥२

तत्र सिद्धाः सिद्धनार्थः खेलंति मदविह्वलाः ।

रसे रसायनैश्चापि खड्गः पादांजनैरपि ॥३

ललितायां भक्तियुक्तास्तर्पयन्तो महाजनान् ।

वसन्ति विविधास्तत्र पिबन्ति मदिरारसान् ॥४

पुष्परागादिशालानां पूर्ववद्वारकलृप्तयः ।

पुष्परागादिशालेषु कवाटागंलगोपुरम् ।

पुष्परागादिजं ज्ञेयमुच्चेन्द्रादित्यभास्वरम् ॥५

हेमप्राकारचक्कस्य पुष्परागमयस्य च ।

अन्तरे या स्वली सापि पुष्परागमयी स्मृता ॥६

वक्ष्यमाणमहाशालाकक्षासु निखिलास्वपि ।

तद्वर्णाः पक्षिणस्तत्र तद्वर्णानि सरांसि च ॥७

श्री हयग्रीवजी ने कहा—शिल्पियों के द्वारा निर्मित सप्त शालाओं का लक्षण बता दिया गया है। इसके अनन्तर रत्नों से परिपूर्ण शालायें अब कीर्त्तित की जाती हैं। उनका आप अवधारण कीजिए। १। सुवर्ण से परिपूर्ण शाल और पुष्प रोगों से परिपूर्ण शाल का जो मध्य में अन्तर है वह सात योजन मात्र कहा गया है। २। वहाँ पर सिद्ध और मद से विह्वल सिद्धों की नारियाँ खेला करती हैं। उनकी क्रीड़ा के साधन रस-रसायन-खड्ग और पादाञ्जन होते हैं। ३। ये ललिता देवी में भक्ति से युक्त हैं और महाजनों का तर्पण किया करती हैं। वहाँ पर अनेक प्रकार के वास करते हैं और मदिरारस का पान किया करते हैं। ४। पुष्पराज आदि की जो शालाएँ हैं उनके द्वारों की रचनाएँ पूर्ण की ही भाँति हैं। पुष्प राग प्रभृति की शालों में कपाट अर्गला और गोपुर हैं। यह सभी पुष्प राग आदि से समुत्पन्न हैं तथा इन्दु और सूर्य के समान ही परम भास्वर हैं। ५। हेम के प्राकार वाले चक्र का और पुष्परागों से परिपूर्ण का जो अन्तर है उसमें जो स्थल है वह भी पुष्परागों से परिपूर्ण है ऐसा ही कहा गया है। ६। आगे कहे जाने वाली महा शालाओं की कक्षाओं में समस्तों में भी उनके ही वर्ण वाले सब पक्षी हैं और उनके ही वर्णों वाले सब सरोवर हैं। ७।

तद्वर्णसलिला नद्यस्तद्वर्णशिवं मणिद्रुमाः ।

सिद्धजातिषु ये देवीमुपास्य विविधैः क्रमैः ।

त्यक्तवन्तो वपुः पूर्वं ते सिद्धास्तत्र सांगनाः ॥८

ललितामन्त्रजप्तारो ललिताकमत्पराः ।

ते सबै ललितादेव्या नामकीर्तनकारिणः ॥९

पृष्ठरागमहाशालान्तरे मारुतयोजने ।

पद्मरागमयः शालश्चतुरस्तः समंततः ॥१०

स्थली च पद्मरागाढ्या गोपुराद्यं च तन्मयम् ।

तत्र चारणदेशस्थाः पूर्वदेहविनाशतः ।

सिद्धि प्राप्ता महाराजीचरणाम्भोजसेवकाः ॥११

चारणीनां स्त्रियश्चापि चावर्ण्यो मदलालसाः ।

गायन्ति ललितादेव्या गीतिबन्धान्मुहुर्मुहुः ॥१२

तत्रैव कल्पवृक्षाणां मध्यस्थवेदिकास्थिताः ।

भर्तृभिः सहचारिण्यः पिबन्ति मधुरं मधु ॥१३

पद्मरागमहाशालान्तरे मरुतयोजने ।

गोमेदकमहाशालः पूर्वशालासमाङ्गतिः ।

अतितुङ्गो हीरशालस्तयोर्मध्ये च हीरभूः ॥१४

वहाँ की समस्त नदियाँ भी उसी के वर्ण वाली हैं तथा मणियों के वृक्ष भी उसी बणों वाले हैं। अनेक प्रकार के क्रमों से जो सिद्ध जातियों में देवी की उपासना करने वाले थे पूर्व शरीर को त्याग कर अङ्गनाओं के साथ ही थे। वे सभी ललितादेवी के मन्त्र का जाप करने वाले और ललिता के ही क्रम में परायण थे। वे सभी ललितादेवी के नाम का कीर्तन करने वाले ही थे। १। पृष्ठराग के महाशाल के अन्तर में मारुत योजन में पद्मरागमय एक शाल है जो सभी ओर से चौकोर है। १०। वहाँ की जो स्थली है वह भी पद्मरागों से संयुत है और गोपुर आदि भी उसी पद्मराग से परिपूर्ण है। वहाँ पर चारण देश में संस्थित होने वाले अपने देह के विनाश हो जाने से सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं क्योंकि वे सभी महाराजी के चरण कमलों के सेवक थे। १। चारणों की स्त्रियाँ भी परम सुन्दर अङ्गों

वाली हैं और मद से अलस । वे सभी ललितादेवी के गीत बन्धों को बार-बार गाया करती हैं । १२। वहीं पर कल्प वृक्षों के मध्य में जो वेदिकाएँ थीं उनमें संस्थित होकर अपने भल्लियों के साथ सहचरण करती हुए मधुर मधु का पान किया करती हैं । १३। पद्मरागों के महाशाल के मध्य में मास्त योजन में गोमेद की महाशाल है और उसका आकार प्रकार भी के पूर्व के ही समान है । अत्यन्त ऊँचा हीरों का पाल है और उन दोनों के मध्य में ही रकों की ही भूमि भी है । १४।

**तत्र देवीं समध्यचर्यं पूर्वजन्मनि कुम्भज ।**

**वसन्त्यप्सरसां वृन्दैः साकं गन्धवंपुञ्जवाः ॥ १५**

**महाराजीगुणगणात्यायन्तो वल्लकीस्वनैः ।**

**कामभोगैकरसिकाः कामसन्तिभविग्रहाः ।**

**सुकुमारप्रकृतयः श्रीदेवीभक्तिशालिनः ॥ १६**

**गोमेदकस्य शालस्तु पूर्वशालसमाकृतिः ।**

**तदन्तरे योगिनीनां भैरवाणां च कोटयः ।**

**कालसंकर्षणीमंडां सेवन्ते तत्र भक्तिः ॥ १७**

**गोमेदकमहाशालान्तरे मास्तयोजने ।**

**उर्वशी मेनका चिव रम्भा चालंबुषा तथा ॥ १८**

**मन्जुघोषा सुकेशी च पूर्वचित्तिघृताचिका ।**

**कृतस्तला च विश्वाची पुञ्जिकस्थलया सह ॥ १९**

**तिलोत्तमेति देवानां वेश्या एतादृशोऽपराः ।**

**गन्धवैः सह नव्यानि कल्पवृक्षमधूनि च ॥ २०**

**पिबन्त्यो ललितादेवीं ध्यायन्त्यश्च मुहुमुंहुः ।**

**स्वसौभाग्यविवृद्ध्यथं गुणयन्त्यश्च तन्मनुम् ॥ २१**

हे कुम्भज ! वहीं पर देवी की भली भाँति बच्चना करके परम श्रेष्ठ गन्धवों का समूह अप्सराओं के समुद्रायों के ही साथ में निवास किया करते हैं । १५। वे सब वल्लकी चाला के शब्दों से महाराजी के गुणगणों का गायन किया करते हैं । ये कामभोग में बड़े रसिक हैं तथा कामदेव के ही समान

शरीरों वाले परमाधिक सुन्दर हैं। ये श्री देवी की भक्ति करने वाले हैं और इनकी प्रकृतियाँ भी परम सुकुमार होती हैं । १६। गोमेदों का जो शाल है वह भी पहिले शाल के ही सहश आकार वाला है । उसके मध्य में करोड़ों योगिनियाँ और भैरवों की श्रेणियाँ विद्यमान हैं वहाँ पर वे भक्तिभाव से काल संकषिणी अम्बा की सेवा किया करते हैं । १७। गोमेदक शाल के मध्य में बहुत सी प्रमुख परम सुन्दरी अप्सराएँ रहा करती हैं जो कि मारुत योजन में हैं । उर्वशी—नेनका—रम्भा—अलम्बुषा—मन्जुघोषा—सुकेशी—पूर्वचित्ति—घृताचिका—विश्वाची और पुञ्जिका स्थला—ये सभी वहीं पर रहती हैं । १८-१९। देवों की वेश्या तिलोत्तमा भी है और ऐसी अनेक दूसरी भी हैं । वे सब गन्धवर्णों के साथ में रहकर कल्प वृक्षों के मध्यों का पान किया करती हैं । २०। तथा ललिता देवी का ध्यान बार-बार करती हैं । सौभाग्य की वृद्धि के लिए ही उस देवी के मन्त्र का गुणन किया करती हैं । २१।

**चतुर्दशसु चोत्पन्ना स्थानेष्वप्सरसोऽखिलाः ।**

**तत्रैव देवीमर्चन्त्यो वसन्ति मुदिताशयाः ॥२२॥**

**अगस्त्य उवाच—**

**चतुर्दशापि जन्मानि तासाभ्यसरसां विभो ।**

**कीर्तय त्वं महाप्राज्ञ सर्वविद्यामहानिदेष्ट ॥२३॥**

**हयग्रीव उवाच—**

**ब्राह्मणो हृदयं कामो मृत्युरुर्वी च मारुतः ॥२४॥**

**तपनस्य कराश्चन्द्रकरो वेदाश्च पावकः ॥२५॥**

**सौदामिनी च पीयूषं दक्षकन्या जलं तथा ॥**

**जन्मनः कारणान्येतान्यामनन्ति मनीषिणः ॥२६॥**

**गीर्वणिगण्यनारीणां स्फुवत्सौभाग्यसंपदाम् ॥२७॥**

**एताः समस्ता गंधर्वाः सार्धमर्चन्ति चक्रिणीम् ॥२८॥**

**किन्नराः सह नारीभिस्तथा किपुरुषा मुने ॥२९॥**

**स्त्रीभिः सह मदोत्तमो हीरकस्त्रामाखिलाः ॥३०॥**

महाराजी मन्त्रजापे विधूता शेष कलमषाः । २३  
नृत्यं तश्चैव गायं तो वर्तंते कुम्भ सम्भव ॥ २८

चौदह स्थानों में समस्त अप्सराएँ समुत्पन्न हुई हैं । वहीं पर परमानन्द से सुसम्पन्न होकर देवी का अचंन करती हुई निवास किया करती हैं । २२। अगस्त्यजी ने कहा—हे विभो ! आप तो समस्त विद्याओं के निष्ठि हैं । हे महाप्राज्ञ ! बन अप्सराओं के चौदहों जन्मों का आप वर्णन कीजिए । २३। श्री हयग्रीव ने कहा—ब्राह्मण—हृदय—काम—मृत्यु—उर्वा—मारुत—तपन के कर—चन्द्रकर—वेद—पावक—सौदामिनी—पीयूष—दक्ष कन्या—जल—ये ही मनीषी गण जन्म के कारण माना करते हैं । २४-२५। स्फुरित सौभाग्य की सम्पदा वाली देवगणों में मुख्यों की नारियों की ये समस्त गन्धवाँ के ही साथ में चक्रिणी की अचंना किया करती हैं । २६। हे मुने ! अपनी नारियों के साथ किन्तर तथा किम्पुरुष अपनी स्त्रियों के सहित भद्र से उन्मत्त होते हुए उस हीरों के स्थल में आश्रम लिए हुए हैं । २७। हे कुम्भ सम्भव ! महाराजी के मन्त्र के जापों से समस्त कलमषों को दूर कर देने वाले नृत्य करते हुए और गान करते हुए विद्यमान रहा करते हैं । २८।

तत्रैव हीरकक्षोऽयां वज्रा नाम नदी मुने ।

वज्राकारै निबिडिता भासमाना तटद्रुमैः ॥ २९

वज्ररत्ने कसिकता वज्रद्रवमयोदका ।

सदा वहति सा सिधुः परितस्तत्र पावनी ॥ ३०

ललितापरमेशान्यां भक्ता ये मानवोत्तमाः ।

ते तस्या उदकं पीत्वा वज्ररूपकलेवराः ।

दीघयुषश्च नीरोगा भवन्ति कलशोद्भव ॥ ३१

भंडासुरेण गलिते मुक्ते वज्रे शीं प्रति भक्तिमान् ॥ ३२

तस्यास्तीरे तपस्ते पे वज्रे शीं प्रति भक्तिमान् ॥ ३२

तज्जवलादुदिता देवी वज्रं दत्त्वा बलविषे ।

पुनरंतदंधे सोऽपि कृतार्थः स्वर्गमेयिवान् ॥ ३३

अथ वज्राख्यशालस्यातरे मारुतयोजने ।

वैदूर्यशाल उत्तुंगः पूर्ववद्गोपुरान्वितः ॥ ३३

स्थाली च तत्र वैदूर्यनिर्मिता भास्वराकृतिः ॥३४

पातालवासिनो ये ये श्रीदेव्यर्चनसाधकाः ।

ते सिद्धमूर्तयस्तत्र वसन्ति सुखमेदुराः ॥३५

हे मुने ! वहीं पर हीरों की भूमि में एक वज्र नाम वाली नदी है । उसके तट पर जो द्रुम हैं वे वज्राकार हैं । उनसे वह निविड़ित है ऐसी ही भासमान होती है । २६। वह नदी परम पावनी सदा ही वहती रहती है और सभी ओर उसका बहाव रहता है । उसका जल ही ऐसा प्रतीत होता है कि वज्रों से परिपूर्ण है तथा उसकी सिकत्ता भी वज्र (हीरा) रत्नों का ही मुख्य भाग है । ३०। परमेशानी ललिता के जो मानव परम भक्त हैं वे ही उस नदी के जल का पान करके वज्र स्वरूप कलेवरों वाले हो जाया करते हैं । वे दीर्घ आयु वाले नीरोग हैं कलशोद्भव ! हुआ करते हैं । ३१। भण्डा-सुर के द्वारा गलित और वज्र के मुक्त होने पर इन्द्रदेव ने वज्रेशी के चरणों में भक्ति भाव से उस नदी के तट पर तपश्चर्या की थी । ३२। उसके जल से समुदित हुई देवी ने इनके लिए वज्र दिया था । फिर वह अन्तर्हित हो गयी थीं और वह इन्द्र भी कृतार्थ होकर स्वर्ग को चला गया था । ३३। इसके अनन्तर वज्राख्य शाल के अन्तर में मारुत योजन में ठीक बहुत ऊँचा वेदर्य शाल है और उसका भी गोपुर तथा द्वार पूर्व के ही समान है । वहीं की स्थली भी वैदूर्यों से निर्मित है और उसकी आकृति परम भास्वर है । ३४। जो भी पाताल के निवासी श्री देवी के साधक प्राणी हैं वे ही सिद्ध मूर्ति वाले सुख से मेदुर होकर वहाँ पर निवास किया करते हैं । ३५।

शेषकर्कोटकमहापद्मवासुकिशंखकाः ।

तक्षकःशङ्खचूडश्च महादन्तो महाफणः ॥३६

इत्येवमादयस्तत्र नागानागस्त्रियोऽपि च ।

बलींद्रप्रमुखानां च देत्यानां धर्मवर्तिनाम् ।

गणस्तत्र तथा नागैः साधि वसति सांगनाः ॥३७

ललितामन्त्रजप्तारो ललिताशास्त्रदीक्षिताः ॥३८

ललितापूजका नित्यं वसन्त्यसुरभोगिनः ॥३९

तत्र वैदूर्यकक्षार्यां नद्यः शिशिरपायसः ।

सरांसि विमलांभांसि सारसालंकृतानि च ॥४०

भवनानि तु दिव्यानि वैदूर्यमणिमंति च ।

तेषु क्रीडति ते नागा असुराश्च सहांगना ॥४०॥

वैदूर्यख्यमहाशालान्तरे मारुतयोजने ।

इन्द्रनीपमयः शालश्चक्रवाल इवापरः ॥४१॥

तन्मध्यकक्षाभूमिश्च नीलरत्नमयी मुने ।

तत्र नन्दश्च मधुरा: सरांसि शिशिराणि च ।

नानाविधानि भोग्यानि वस्तुनि सरसान्यपि ॥४२॥

शेष—कर्कटक—महापद्म—वासुकि—शंखक—तक्षक—शंखचूड़—  
महादन्त—महाफण—इत्येवमादिक नाग वहाँ पर तथा उन नागों की स्त्रियाँ  
भी हैं और बलोन्द्र प्रभृती धर्मवर्ती देत्यों का गण भी अपनी अङ्गनाओं के  
साथ वहाँ पर नागों के सहित वास किया करते हैं । ३६-३७। ये सभी ललिता  
देवी के जास्त्र में दीक्षित हैं और ललिता देवी की पूजा करने वाले वहाँ  
पर निवास किया करते हैं । ३८। वहाँ पर वैदूर्य मणियों की कक्षा में नदियाँ  
भी शिशिर जलों वाली हैं । सरोवर भी विमल जलों वाले तथा सारस  
पक्षियों से विभूषित हैं । ३९। वहाँ पर जो भवन हैं वे परम दिव्य हैं तथा  
वैदूर्यमणियों के ही द्वारा निर्मित हैं । उन भवनों में नागों के समुदाय और  
अपनी अङ्गनाओं के साथ लेकर असुरगण क्रीड़ा किया करते हैं । ४०। वैदू-  
र्यख्य महाशाला के अन्तर में मारुत योजन में एक इन्द्रनील मणियों से  
परिपूर्ण-दूसरे चक्रवाल के ही तुल्य शाल है । ४१। उसके मध्य की कक्षा की  
भूमि भी है मुने ! नील रत्नमयी है और वहाँ पर नदियाँ मधुर हैं और  
सरोवर भी शिशिर हैं । वहाँ पर अनेक प्रकार की परम दिव्य एवं सरस  
भोगने के योग्य वस्तुएँ भी हैं । ४२।

ये भूलोकगता मर्त्यां ललितामन्त्रसाधकाः ।

ते देहांते शक्रनीलकक्ष्यां प्राप्य वसंति वै ॥४३॥

तत्र दिव्यानि वस्तुनि भुञ्जाना वनितासखा ॥

पिबन्तो मधुरं मद्यां नृत्यतो भक्तिर्भर्तराः ॥४४॥

सरस्मु तेषु सिंधूनां कुलेषु कलशोद्धव ॥

लतागृहेषु रम्येषु मन्दिरेषु महद्विषु ॥४५॥

सदा जपतः श्रीदेवीं पठन्तश्चापि तदगुणान् ।

निवसति महाभागा नारीभिः परिवेष्टिताः ॥४६॥

कर्मक्षये पुनर्याति भूलोके मानुषीं तनुम् ।

पूर्ववासनया युक्ताः पुनरचंति चक्रिणीम् ।

पुनर्याति श्रीनगरे शक्रनीलमहास्थलीम् ॥४७॥

तत्स्थलस्यैव संपक्तं गद्वेषसमुद्भवैः ।

नीलंभविः सदा युन्नतवर्तते मनुजा मुने ॥४८॥

ये पुनर्जननिनो मर्त्या निर्द्वंद्वा नियतेन्द्रियाः ।

ते मुने विस्मयाविष्टाः संविश्टति महेश्वरीम् ॥४९॥

जो मानव भूलोक के मध्य में हैं और ललितादेवी के मन्त्र की साधना करने वाले हैं वे अपने देहों के अन्त में इन्द्र देव की नील कक्षया को प्राप्त करके वहाँ पर ही निवास किया करते हैं ॥४३॥ वहाँ पर अपनी वनिताओं के साथ में दिव्य वस्तुओं का भोग करते हुए मधुर मद्य का पान किया करते हैं और भक्तिभाव में निर्भर होते हुए नृत्य किया करते हैं ॥४४॥ हे कलशोद्भव ! उन सरोबरों में और नदियों के सपुदायों में—लताओं के गृहों में तथा रम्य एवं महान् ऋद्धियों वाले मन्दिरों में वे सदा श्रीदेवी का जाप करते और उसके ही गुणगणों को पढ़ा करते हैं । ये महान् भाग वाले पुरुष अपनी नारियों से परिवेष्टित होकर निवास किया करते हैं ॥४५-४६॥ जब इनके पुण्य कर्मों का क्षय हो जाता है तो उस स्वर्गीय सुख का त्याग करके फिर इसी मनुष्य का वेह प्राप्त किया करते हैं । पूर्व की वासना उनकी आत्मा में बनी ही रहा करती है और वे पुनः चक्रिणी का अचंत किया करते हैं । फिर वे श्रीनगर में शक्रनील महास्थली में गमन किया करते हैं ॥४७॥ हे मुने ! उस स्थल के सम्पर्क से ही राग-द्वेष से समुत्पन्न भावों से जो नील होते हैं वे सर्वदा युक्त होते हैं ऐसे ही मनुष्य रहते हैं ॥४८॥ जो ज्ञान वाले मनुष्य होते हैं वे निर्द्वंद्व और नियत इन्द्रियों वाले हैं । हे मुने ! वे विस्मय युक्त होकर महेश्वरी में प्रवेष किया करते हैं ॥४९॥

इन्द्रनीलाख्यशालस्थांतरे मारुतयोजने ।

मुक्तापत्रस्य शालः पूर्ववद्गोप्तु नितः ॥५०॥

अत्यंतभास्वरा स्वच्छा तयोर्मध्ये स्थली मुने । ॥५१॥  
 सर्वापि मुक्ताखचिताः शिशिरातिमनोहराः ॥५१॥  
 ताग्रपर्णी महापर्णी सदा मुक्तफिलोदका । ॥५२॥  
 एवमाद्या महानद्यः प्रवह्यति महास्थले ॥५२॥  
 तासां तीरेषु सर्वेऽपि देवलोकनिवासिनः । ॥५३॥  
 वसंति पूर्वजनुषि श्रीदेवीमन्त्रसाधकाः ॥५३॥  
 पूर्वद्यष्टसु भागेषु लोकाः शक्तादिगोचराः ।  
 मुक्ताशालस्य परितः संयुज्य द्वारनेशकान् ॥५४॥  
 मुक्ताशालस्य नीलस्य द्वारयोर्मध्यदेशतः ।  
 पूर्वभागे शक्तलोकस्तत्कोणे वह्निलोकभूः ॥५५॥  
 याम्यभागे यमपुरं तत्र दण्डधरः प्रभुः ।  
 सर्वत्र ललितामन्त्रजापी तीव्रस्वभाववान् ॥५६॥

इन्द्रनील नामक शाल के अन्तर में महत योजन में एक मुक्ताफलों से परिपूर्ण शाल है और वह पहिली भाँति ही गोपुर से समन्वित है ॥५०॥ है मुने ! उन दोनों के मध्य में अत्यधिक भास्वर स्थली है जो परम स्वच्छ है । वह सब ही मुक्ताओं से खचित है और शिशिर से अतीब मनोहर है । ॥५१॥ उस महा स्थल में ताग्रपर्णी—महापर्णी आदि महा नदियाँ हैं जिनका जल मुक्ता फलों के ही समान हैं । ऐसी नदियाँ सर्वदा वहाँ वहा करती हैं । ॥५२॥ उनके तटों पर सभी देवलोक के निवासी वास किया करते हैं जो अपने पूर्वजन्म में श्रीदेवी के मन्त्र की साधना करने वाले हैं ॥५३॥ पूर्व आदि आठ भागों में शक्तादि गोचर लोक हैं जो मुक्ता शाल के सब ओर द्वार-देशकों को संयोजित करते हैं ॥५४॥ मुक्ता शाल नील के द्वारों में मध्य देश से पूर्व भाग में इन्द्र लोक हैं और उसके कोण में वह्निलोक की भूमि है । ॥५५॥ याम्य भाग में यम राज का नगर है । वहाँ पर दण्डधर प्रभु निवास किया करते हैं । सर्वत्र ललिता के मन्त्र का जाप करने वाले हैं और वीन स्वभाव वाले हैं ॥५६॥

आज्ञाधरो यमभट्टेश्चत्रगुप्तपुरोगमेः ।  
 साधौ नियमयत्येव श्रीदेवीसमयं गुहः ॥५७॥

गुहसप्तान्दुराचारांलिलिताद्वेषकारिणः । ॥५५  
 कूटभक्तिपरान्मूखर्णि स्तब्धानत्यंतदर्पितान् ॥५६  
 मन्त्रचोरान्कुमन्त्रांश्च कुविद्यानघसंश्रयान् ।  
 नास्तिकान्पापशीलांश्च वृथैव प्राणिहिंसकान् ॥५७  
 स्त्रीद्विष्टांल्लोकविद्विष्टान्पीषंडानां हि पालिनः ।  
 कालसूत्रे रौरवे च कुम्भीपाके च कुम्भज ॥६०  
 असिपत्रवने घोरे कुमिभक्षे प्रतापने ।  
 लालाश्नेपे सूचिवेषे तथैवांगारपातने ॥६१  
 एवमादिषु कष्टेषु नरकेषु घटोद्भव ।

पातयत्याज्ञया तस्याः श्रीदेव्याः स महीजसः ॥६२  
 तस्यैव पश्चिमे भागे निर्छृतिः खड्गधारकः ।  
 राक्षसं लोकमाश्रित्य वर्तते ललितार्चकः ॥६३

चित्रगुप्त जिनमें अग्रणी है ऐसे यमराज के भटों के साथ आज्ञा के धारण करने वाले गुह श्री देवी के समय को नियमित किया करते हैं ।५७। जो गुह के द्वारा शप्त हैं—दुराचारी हैं—ललिता के साथ द्वेष करने वाले हैं—कूटभक्ति में तत्पर हैं—मूखं हैं—स्तब्ध हैं और बहुत ही अधिक दर्प वाले हैं—मन्त्र चोर हैं—कुत्सित मन्त्र वाले हैं—कुविद्या के पाप का संस्थय करने वाले हैं—नास्तिक हैं—पाप कर्मों के करने वाले हैं उनको भिन्न-भिन्न नरकों में डाल दिया जाता है । उन नरकों के नाम ये हैं—कालसूत्र-रौरव-कुम्भीपाक-वह महान ओज वाला उसी सी देवी की आज्ञा से है घटोद्भव ! इन नरकों में डाल दिया करता है ।५८-६२। उसके ही पश्चिम भाग में खड्ग का धारण करने वाला निर्छृति है । वह भी सी ललिता का अर्चक राक्षस लोक का आस्रय ग्रहण करके रहा करते हैं ।६३।

तस्य चोत्तरभागे तु द्वारयोरंतरस्थले ।  
 वारुणं लोकमाश्रित्य वरुणे वर्तते सदा ॥६४  
 वारुण्यास्वादनोन्मत्तः शुभ्रांगो झघवाहनः ।  
 सदा श्रीदेवतामन्त्रजापी श्रीकमसाधकः ॥६५

श्रीदेवतादर्शनस्य द्वेषिणः पाशबन्धनैः । ६५  
 वद्धवा नयत्यधोमार्गं भक्तानां बन्धमोचकः ॥६६  
 तस्य चोत्तरकोणेषु वायुलोको महाद्युतिः ।  
 तत्र वायुशरीराश्च सदानन्दमहोदयाः ॥६७  
 सिद्धा दिव्यविषयश्चैव पवनाभ्यासिनोऽपरे ।  
 गोरक्षप्रमुखाश्चान्ये योगिनो योगतत्पराः ॥६८  
 एतेः सह महासत्त्वस्तत्र श्रीमारुतेश्वरः ।  
 सर्वथा भिन्नमूर्तिश्च वर्तते कुम्भसम्भव ॥६९  
 इडा च पिङ्गला चैव सुषुम्णा तस्य शक्तयः ।  
 तिस्रो मारुतनाथस्य सदा मधुमदालसाः ॥७०

उसके उत्तर भाग में दोनों के मध्य स्थल में वारुण लोक का आश्रके लेकर सदा वहन देवता रहा करता है । ६४। यह वारुणी के अस्वादन में मत्त रहता है । इसका परमशुभ्र है और वृष इसका वाहन है । यह भी श्रीदेवी के मन्त्र के जप करने वाला है और स्री के क्रम की साधन करने वाला है । ६५। जो भी स्री देवता से द्वेष करने वाले हैं उनको पाशों के बन्धनों से बांधकर भक्तों के बन्धन को छुड़ाने वाला यह अधो मार्ग में पहुँचा दिया करता है । ६६। और उसके उत्तर कोने में महती द्युति वाला वायुलोक है । वहाँ पर वायु के ही शरीरों वाले तथा सर्वदा आनन्द से पूर्ण महोदय सिद्धगण और दिव्य ऋषिगण तथा दूसरे पवन के अभ्यास वाले—गो की रक्षा में प्रधान—योग में परायण योगी रहा करते हैं और इन्हीं के साथ महान सत्त्व वाला स्रीमारुतेश्वर निवास करते हैं । इनकी मूर्ति सर्वथा भिन्न है । ६७-६९। है कुम्भ-सम्भव ! इडा-पिङ्गला और सुषुम्णा इसकी शक्तियाँ हैं । ये तीन शक्तियाँ मरुतनाथ की सर्वदा मधु के मद से अलस रहा करती हैं । ७०।

छवजहस्तो मृगवरे वाहने महति स्थितः ।  
 ललितायजनध्यानक्रमपूजनतत्परः ॥७१  
 आनन्दपूरिताङ्गीभिरन्याभिः शक्तिभिर्वृतः ।  
 स मारुतेश्वरः श्रीमान्सदा जपति चक्रिणीम् ॥७२  
 तेन सत्त्वेन कल्पान्ते त्रैलोक्यं सच्चराचरम् ।

परागमयतां नीत्वा विनोदयति तत्क्षणात् ॥७३

तस्य सत्वस्य सिद्धयर्थं तानेव ललितेश्वरीम् ।

पूजयन्भावयन्नास्ते सर्वाभिरणभूषितः ॥७४

तल्लोकपूर्वभागस्ये यक्षलोके महाद्युतिः ।

यक्षेन्द्रो वसति श्रीमांस्तद्वारद्वारद्वमध्यगः ॥७५

निविभिश्च नवाकारेण्ह द्विवृद्ध्यादिशक्तिभिः ।

सहितो ललिताभक्तान्पूर्वन्धनसम्पदा ॥७६

यक्षीभिश्च मनोज्ञाभिरनुकूलप्रवृत्तिभिः ।

विविधेमधुमेदश्च सम्पूजयति चक्रिणीम् ॥७७

वह मारुतेश्वर श्रेष्ठ सिंह के बाहन पर विराजमान हैं—हाथ में छवजा लिए हुए हैं और ललिता देवी के यजन-ध्यान और अचंन के क्रम में परायण रहते हैं । ७१। आनन्द से पूरित अङ्गों वाली अन्य शक्तियों से समावृत रहते हैं । वह श्रीमान मरुतेश्वर सदा चक्रिणी का जाप किया करते हैं । ७२। उसी के सत्व से चराचर त्रैलोक्य को कल्प के अन्त में परागमयता को प्राप्त करके उसी क्षण में निनोदित किया करते हैं । ७३। उसी सत्व की सिद्धि के लिए उसी ललितेश्वरी की भावना तथा अचंना करते हुए समस्त आभरणों से भूषित हैं । ७४। उस लोक के पूर्व भाग में यक्षलोक है उसमें महान कान्ति सम्पन्न यशराज निवास किया करते हैं । यह श्री सम्पन्न हैं और उसके द्वारों के मध्य में स्थित हैं । ७५। निधियों के द्वारा जो नी है तथा ऋद्धि, वृद्धि आदि शक्तियों के द्वारा ललिता के भक्तों को धन सम्पदा से पूर्ति किया करते हैं । ७६। अनुकूल प्रवृत्ति वाली परम सुन्दरी पत्नियों के सहित अनेक प्रकार के मधु के भेदों से उसी चक्रिणी देवी की सविधि पूजा किया करते हैं । ७७।

मणिभद्रः पूर्णभद्रो मणिमान्माणिकन्धरः ।

इत्येवमादयो यक्षसेनान्यस्तत्र सन्ति वै ॥७८

तल्लोकपूर्वभागे तु रुद्रलोको महोदयः ।

अनध्यंरत्नखचितस्तत्र रुद्रोऽधिदेवता ॥७९

संज्ञेव मनुका दीनः सदा तत्त्वमनेषुधिः ।

स्वसमानैर्महासत्त्वैलोकनिर्वाहदक्षिणः ॥८०

अधिज्यकार्मुकैर्दक्षैः पोडशावरणस्थितैः ।

आवृतः सततं वक्त्रैर्जपञ्चूदेवतामनुम् ॥८१

श्रोदेवीध्यानसम्पन्नः श्रीदेवीपूजनोत्सुकः ।

अनेककोटिरुद्राणीगणमंडितपाश्वंभूः ॥८२

ताश्च सर्वाः प्रदीप्तांश्यो नवयौवनगचिताः ।

ललिताध्याननिरताः सदासवमदालसाः ॥८३

ताभिश्च साकं स श्रीमान्गहारुदस्त्रशूलभृत् ।

हिरण्यबाहुप्रमुखै रुद्ररन्धेनिषेवितः ॥८४

वहाँ पर बहुत से यक्षराज के सेनानी गण भी निवास किया करते हैं जिनके प्रमुख नाम मणि भद्र-पूर्ण भद्र-मणिमान और मणिकन्धर हैं ।८०  
उस लोक के पूर्व भाग में महान उदय वाला रुद्रलोक भी हैं । वेशकी मती रत्नों से खचित वहाँ पर रुद्र उसके अधिष्ठाता देव है ।८१  
वह सदा हीं क्रोध से दीप्त रहता है और सर्वदा धनुष को चढ़ाये हुए रहते हैं । अपने हीं सहश-दक्ष-पोडश आवरणों में स्थित वक्त्रों से निरन्तर आवृत श्री देवता के मन्त्र का नाप किया करता है ।८०-८१  
श्री देवो के ध्यान से सम्पन्न और श्री देवी के पूजन में समुत्सुक-बहुत सी करोड़ों रुद्राणियों के गणों से मणिडित पाश्वं की भूमि वाले हैं ।८२  
वे सभी रुद्राणियाँ भी प्रदीप्त अङ्गों वाली हैं और नवीन यौवन के गवं से अन्वित हैं । वे सभी श्री ललिता के ध्यान में निमग्न रहा करती हैं तथा सर्वदा आसव के मद से अलग हैं ।८३  
उन सबके साथ में श्रीमान् महान रुद्र त्रिशूल के धारी हैं और हिरण्य बाहु जिनमें प्रमुख हैं ऐसे अन्य अनेक रुद्रों के द्वारा निषेवित हैं ।८४

ललितादर्शनभ्रष्टानुद्वतान्गुरुधिवकृताव् ।

शूलकोट्या विनिभिद्य नेत्रोत्थैः कटुपावकैः ॥८५

दहस्तेषां वधूभृत्यान्प्रजाशचैव विनाशयन् ।

आज्ञाधरो महावीरो ललिताज्ञाप्रपालकः ॥८६

रुद्रलोकेऽतिरुचिरे वर्तते कुम्भसम्भव ।

महारुद्रस्य तस्यष्टे परिवाराः प्रमाथिनः ॥८७

ये रुद्रास्तानसंख्यातान्को वा वक्तुं पटुभीवेत् ।

ये रुद्रा अधिभूम्यां तु सहस्राणां सहस्रशः ॥८८

दिवि येऽपि च वर्तंते सहस्राणां सहस्रशः ।

येषामन्नमिषण्वै येषां वातास्तथेषवः ॥८९

येषां च वर्षमिषवः प्रदीप्ताः पिङ्गलेक्षणाः ।

अर्णवे चांतरिक्षे च वर्तमाना महोजसः ॥९०

जटावंतो मधुमन्तो नीलग्रीवा विलोहिताः ।

ये भूतानामधिभूवो विशिखासः कपर्दिनः ॥९१

ललिता के दर्शन से ध्रष्ट—उद्धत और गुह के द्वारा विकृत है उनको शूल की कोटि से भेदन करके विनष्ट कर देता है। तथा नेत्रों से समुत्पन्न तीक्ष्ण पावक से उनके भृत्य-बधू और सन्तति का दाह करके विनाश कर दिया करता है। यह महावीर आज्ञा का पालक और ललिता का आदेश करने वाला है। ८५-८६। हे कुम्भसम्भव ! यह अतीव सुरम्य रुद्रलोक में विश्वमान रहता है। हे ऋषे ! उस महारुद्र के परिवार प्रमाणी हैं। ८७। जो भी रुद्र हैं वे अगणित हैं ऐसा कोई भी पटु नहीं है कि उनकी गणना कर सके। जो रुद्र भूमि में है वे भी सहस्रों ही हैं। ८८। और जो दिवलोक में हैं वे भी हजारों ही हैं। जिनके अन्नमिष हैं और जिनके वात तथा इषु हैं। ८९। और जिनके वर्षे इषु हैं—ये परम प्रदीप हैं तथा इनके नेत्र पिङ्गल वर्ण के हैं। ये महान ओज वाले सागर में—अन्तरिक्ष में भी वर्तमान रहा करते। ९०। ये जटाजूट धारी हैं—मधुमान हैं—इनकी ग्रीवा नील वर्ण की है और विलोहित हैं। ये भूतों के अधिभू हैं—विशिखा और कपर्दी हैं। ९१।

ये अन्नेषु विविध्यंति पात्रेषु पिवतो जनान् ।

ये पश्चां रथका रुद्रा ये च तीर्थनिवासिनः ॥९२

सहस्रसंख्या ये चान्ये सूकावंतो निषंगिणः ।

ललिताज्ञाप्रणेतारो दिशो रुद्रा वितस्थिरे ॥९३

ते सर्वे सुमहात्मानः क्षणाद्विश्वत्रयीवहाः ।

श्रीदेव्या ध्याननिष्णाताऽङ्गीदेवीमन्त्रजापिनः ॥९४

श्रीदेवतायां भक्ताश्च पालयन्ति कृपालवः ।  
षोडशावरणं चक्रं मुक्ताप्राकारमंडले ॥६५  
आश्रित्य रुद्रास्ते सर्वे महारुद्रं महोदयम् ।  
हिरण्यबाहुप्रमुखा उवलन्मन्युमुपासते ॥६६

जो अन्नों में विविद्ध होते हैं—पात्रों में जनों को पीते हैं पथों में रथक हैं और जो तीथों में निवास करने वाले हैं ॥६२। और जो अन्य हैं उनकी भी सहस्रों ही संख्या है। ये सृकावान् हैं और निषझी हैं। सभी ललितादेवी की आज्ञा के प्रणेता हैं। ऐसे रुद्र दिशाओं में प्रस्थित हैं ॥६३। वे सभी महान आत्माओं वाले हैं और ऋणभर में तीनों लोकों के वहन करने वाले हैं। ये सभी श्रीदेवी के ध्यान में परम निष्णात रहने वाले हैं तथा श्रीदेवी के मन्त्र का जाप करने वाले हैं ॥६४। ये श्रीदेवी में परम भक्त हैं तथा कृपालु उसकी आज्ञा का पालन किया करते हैं। सोलह आवरण वाले चक्र में जो मुक्ताओं के प्रकार मण्डल में हैं समाप्त्य ग्रहण करके सभी महोदय महारुद्र की उपासना करते हैं जो कि क्रोध से जाज्वल्यमान हैं। इनमें हिरण्य बाहु प्रधान है ऐसे सब रुद्र हैं ॥६५-६६।

— X —

### ॥ दिग्पालादि शिवलोकान्तर वर्णन ॥

अगस्त्य उवाच—

षोडशावरणं चक्रं किं तद्रुद्राधिदेवतम् ।

तत्र स्थिताश्च रुद्राः के केन नाम्ना प्रकीर्तिताः ॥१

केष्वावरणविवेषु किन्नामानो वसन्ति ते ।

यौगिकं रौढिकं नाम तेषां ब्रूहि कृपानिधे ॥२

हयग्रीव उवाच—

तत्र रुद्रालयः प्रोक्तो मुक्ताजालकनिमितः ।

पञ्चयोजनविस्तारस्तत्संख्यायामशोभितः ॥३

षोडशावरणं युवतो मध्यपीठमनोहरः ॥४

मध्यपीठे महारुद्रो उवलन्मन्युस्त्रिलोचनः ॥५

सञ्जकामुंकहस्तश्च सर्वदा वर्तते मुने ।

त्रिकोणे कथिता रुद्रास्त्रय एव घटोद्भव ॥५

हिरण्यबाहु सेनानीदिशांपतिरथापरः ॥६

वृक्षाश्र हरिकेशाश्च तथा पशुपतिः परः ।

शिष्ठजरस्त्वषीमांश्च पथीनां पतिरेव च ॥७

श्री अगस्त्यजी ने कहा—शोडशावरण चक्र क्या वह रुद्र के अधिदेवत बाला है । वहाँ पर संस्थित रुद्र कौन है और किस नाम से प्रकीर्तित हैं । १। १। और किन आवरण विषयों में किस नामों वाले निवास किया करते हैं ? हे कृपानिधि ! उनका योगिक और रौद्रिक नाम आप मुझे बतलाइये । २। श्री हृष्णजी ने कहा—वहाँ पर तीन रुद्र कहे गये हैं—मुक्ता जातक में निमित हैं । उसकी संख्या और आयाम से शोभित पाँच योजन का विस्तार है । ३। मध्यपीढ मनोहर सोलह आवरणों से युक्त है । मध्य में जो पीठ है जो जाज्वल्यमान मन्त्र (क्रोध) वाले और तीन लोचनों से समन्वित है । ४। हे मुने ! वह सर्वदा सुसज्जित कामुक से हाथ में लेकर विद्यमान रहा करते हैं । हे घटोद्भव ! त्रिकोण में तीन ही रुद्र कहे गये हैं । ५। एक तो हिरण्य बाहु है—दूसरे सेनानी हैं और तीसरे का नाम दिशांपति है । ६। तथा वृक्ष-हरिकेश और तीसरे पशुपति हैं । शिष्ठजर—त्विषीमान् और पथीनां पति है । ७।

एते पट्कोणगाः किं च बभ्रुशास्त्वष्टकोणके ।

विव्याध्यन्नपतिश्चैव हरिकेशोपवीतिनौ ॥८॥

पुष्टानां पतिरप्यन्यो भवो हेतिस्तथैव च ।

दशपत्रे त्वावरणे प्रथमो जगतां पतिः ॥९॥

रुद्रातताविनौ क्षेत्रपतिः सूतस्तथापरः ।

अहं त्वन्यो वनपती रोहितः स्थपतिस्तथा ॥१०॥

वृक्षाणां पतिरप्यन्यश्चैते सज्जशरासनाः ।

मन्त्री च बाणिजश्चैव तथा कक्षपतिः परः ॥११॥

भवन्तिस्तु चतुर्थः स्यात्पञ्चमो वाग्विदस्ततः ।

नोपदीनां पतिरात्रैक नाम त्रिपुरासंपत्वा ।

उच्चैर्षोषाक्रन्दयन्ती पतीनां च पतिस्तथा ।

कृत्स्नवीतश्च धावश्च सत्त्वानां पतिरेव च ॥१३

एते द्वादश पत्रस्थाः पञ्चमावरणस्थिताः ।

सहमानश्च निव्याधिरव्यधीनां पतिस्तथा ॥१४

ये तो षट्कोणों में स्थित हैं और अष्ट कोणों में बहुत से हैं । निव्याधि—हरिकेश—उपवीती—पुष्टों के पति—भव—हेति हैं । दश पत्र आवरण में प्रथम जगतों के पति हैं । ८-९। रुद्र-अततावी—क्षेत्रपति—तथा सूत—अहंतु अन्य पति—रोहित और स्थपति हैं । १०। अन्य वृक्षों का पति—ये धनुष को सुसज्जित रखने वाले हैं । मन्त्री—वाणिज—कक्ष पति—भवन्ति चौथा और पाँचवाँ वाग्विस्तत है । औषधियों के पति—छठवाँ है कलश सम्भव है । ११-१२। उच्चैर्षोष-आक्रन्दयन्त तथा पतियों का पति है । कृत्स्न वीत-धाव-सत्त्वों का पति—ये इतने द्वादश पत्रों में स्थित हैं जो पञ्चम आवरण में वर्तमान रहते हैं । सहमान निव्याधि-के पति हैं । १३-१४।

ककुभश्च निषंगी च स्तेनानां च पतिस्तथा ।

निचेरुश्चेति विज्ञेयाः षष्ठावरणदेवताः ॥१५

अधः परिचरोऽरण्यः पतिः किं च सृकाविषः ।

जिधांसन्तो मुण्णतां च पतयः कुम्भसम्भव ॥१६

असीमंतश्च सुप्राज्ञस्तथा नक्तं चरो मुने ।

प्रकृतीनां पतिश्चैव उण्णीषी च गिरेश्चरः ॥१७

कुलुञ्चानां पतिश्चैवेषु मन्तः कलशोद्भव ।

धन्वाविदश्चातन्वानप्रतिपूर्वदधानकाः ॥१८

आयच्छतः षोडशीते षोडशारनिवासिनः ।

विसृजन्तस्तथास्यंतो विद्युतश्चापि सिधुप ॥१९

आसीनाश्च शयानाश्च यन्तो जाग्रत एव च ।

तिष्ठन्तश्चैव धावन्तः सभ्याश्चैव समाधिपाः ॥२०

अश्वाश्चैवाश्वपतय अव्याधिन्यस्तथैव च ।

विविष्यन्तो गणाध्यक्षा वृहन्तो विष्यमद्देन ॥२१

कुम्भ—निषंग—स्तेनों के पति और निचेह—छठवें आवरण के देवता हैं। १५। अष्ट—परिचर—अरथ—पति—सृकाविष—जिषांसंत—मुष्णितां पति—हे कुम्भसम्भव ! धृत्वाविद—आत्मवान—आत्मवान—असीमन्त—सुप्राज्ञनवतंचर—प्रकृतियों के पति—उष्णीषी—गिरेश्चर—कुलंचों से पति—इषुमन्त—प्रतिपूर्व दधानक—आयच्छत—ये बोडश सोलह आरों के निवासी हैं—निसृजन्त—आस्थ्यन्त धावन्त—सभ्य—समाधिप—अश्व—अश्वपति—व्याधि—न्यस्त—विविधन्त—गणाध्यक्ष—बृहन्त और विद्यमदंन हैं। १६-२१।

**गृत्सञ्चाष्टादशविधा देवता अष्टमावृती ।**

अथ गृत्साधिपतयो द्राता द्राताधिपास्तथा ॥२२॥

गणाश्च गणपाशचैव विश्वरूपा विरूपकाः ।

महान्तः क्षुल्लकाशचैव रथिनाश्चारथाः परे ॥२३॥

रथाश्च रथपत्याख्याः सेनाः सेनान्य एव च ।

क्षत्तारः संग्रहीतारस्तक्षाणो रथकारकाः ॥२४॥

कुलालश्चेति रुद्रास्ते नवमावृत्तिदेवताः ।

कर्माराशचैव पुन्जिठा निषादाश्चेषुकृदगणाः ॥२५॥

धन्वकारा मृगयवः श्वनयः श्वान एव च ।

अश्वाशचैवाश्वपतयो भवो रुद्रो घटोदभव ॥२६॥

शर्वः पशुपतिर्नीलश्रीवश्च शितिकण्ठकः ।

कपर्दी व्युष्टकेशश्च सहस्राक्षस्तथापरः ॥२७॥

शतधन्वा च गिरिशः शिपिविष्टश्च कुम्भज ।

मीदुष्टम इति प्रोक्ता रुद्रादश मशालगा ॥२८॥

और गृत्स ये अष्टमावृति में अष्टादश नामक देवता हैं। इसके अनन्तर गृत्साधिप तप—द्राता ता द्राताधिपा—गणा—गण्डया विश्वरूपा—विरूपका—महान्त—क्षुल्लका—रथित—आरथा—तथा—रथ पत्याख्या—सेना—सेनान्य—क्षत्तार—संग्रहीतार—तक्षाण—रथकारका—कुलाल—ये रुद्र नवमाकृति वे देवता हैं। २२-२४। कुमार—पुंजिष्ठा—निषादा—इषुकृदगणा—धन्वकारा—मृगयव—श्वनय—श्वान—और अश्वा—अश्वय तप—हे



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server!



**COLLECTION OF VARIOUS**  
→ HINDUISM SCRIPTURES  
→ HINDU COMICS  
→ AYURVEDA  
→ MAGZINES

FIND ALL AT [HTTPS://DSC.GG/DHARMA](https://dsc.gg/dharma)

Made with



By

Avinash/Shashi

Icreator of  
hinduism  
server!

घटोदभव ! भव और रुद्र—शर्व—पशुपति—बालग्रीव—शिति कण्ठक—कपर्दी—व्युपत्केश—सहस्राक्ष—शतधन्वागिरिश—शिपि विष्ट—मीदुष्ठम ये इतने रुद्र दशम शाल में से स्थित हैं । २५-२६।

अथैकादशचक्रस्था इषुमद्धस्ववामनाः ।

बृहंश्च वर्षीयांश्चैव वृद्धः समृद्धिना सह ॥२६॥

अग्र्यः प्रथम आशुष्चाजिरोन्यः शीघ्रशिष्यकौ ।

उम्यविस्वन्यरुद्रौ च स्रोतस्यो दिव्य एव च ॥३०॥

ज्येष्ठश्चैव कनिष्ठश्च पूर्वजावरजौ तथा ।

मध्यमश्चावगम्यश्च जघन्यश्च घटोदभव ॥३१॥

चतुर्विंशतिराख्याता एने रुद्रा महाबलाः ।

अथ बुद्धन्यः सोम्यरुद्रः प्रतिसर्पकयाम्यकौ ॥३२॥

क्षेम्योवोचवखल्यश्च ततः श्लोक्यावसान्यकौ ।

वन्यः कक्ष्यः श्रवश्चैव ततोऽन्यस्तु प्रतिश्रवः ॥३३॥

आशुषेणश्चाशुरथः शूरश्च तपसां निधे ।

अवभिदश्च वर्मी च वरुथी विलिमना सह ॥३४॥

कवची च श्रुतश्चैव सेनो दुन्दुभ्य एव च ॥३५॥

उसके उपरान्त एकादशवें चक्र में स्थित रुद्रों के नाम हैं । इषुमद—हस्ववामन—बृहत्—वर्षीयाव—वृद्ध—समृद्धि—अग्र्य—प्रथम—आशु—अजिरोन्य—शीघ्र—शिष्यक—उम्यविसु—अन्य रुद्र—स्रोतस्य—दिव्य—ज्येष्ठ—कनिष्ठ—पूर्वक—अवरज—मध्यम—अवगम्य—जघन्य—ये चौबीस महाबल रुद्र आख्यात हैं । इसके उपरान्त बुद्धन्य—सोम्य रुद्र—प्रतिसर्पक—याम्यक—क्षेम्य—वोचवखल्य—श्लोक्य—असान्यक—वन्य—कक्ष्य—श्रव—प्रतिश्रव—आशुषेण—आशुरथ—शूर—हे तपसांनिधे ! अवभिन्द—वर्मी—वरुथी—विलिमी—कवची—श्रुत—सेन—दुन्दुभी इत्यादि रुद्र हैं । २६-३५।